# स्वामी रामचरण

[ जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन ]

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल् उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध]


प्रस्तुतकर्ता :
**माधव प्रसाद पाण्डेय**
हिन्दी विभाग
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कुशीनगर

निदेशक
**डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय**
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद



जनवरी १९७४

"नामदेव पुंडरपुर भणीजे ।
ज्यूं कबीर कासी मैं गिणीजे ।
रामचरण पीलाड़ै जेम ।
तामैं भूल न लावै नेम ।"

-- जगन्नाथ

# भू मि का

# भूमिका

समय की गति द्रुत है और नियति की लीला विलक्षण । किसी भी बात का होना इन्हीं पर निर्भर है । बात पुरानी हुई । सन् १९५२ में एम०ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद शोध कार्य में लगने की कामना ने निश्चय का रूप ले लिया । अपने एम०ए० के अध्ययन काल में ही मैं गुरुवर डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी से रिसर्च-सन्दर्भ छेड़कर अपनी रुचि व्यक्त कर चुका था । उनके प्रेरक एवं उदार व्यक्तित्व से प्रभावित मेरे मन को शोध की धुन सवार हो गयी और उन्हीं के निर्देशन में खोज-कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ । स्वामी रामचरण पर कार्य करने की प्रेरणा भी मुझे उन्हीं से मिली । मैं शोधछात्र के रूप में दो वर्षों तक नियमित रूप से कार्य-रत रहा पर समय और नियति के सामने अपना वश नहीं चला । इन्दौर की यात्रा से वापस हुआ था, बात सन् १९५५ की है । मेरा बाक्स चोरी चला गया -- कुछ कपड़े, कुछ पैसे और थोड़े-से कागज़-पत्र । ये वही कागज़-पत्र थे जिन्हें शोध के नाम पर लिखा-पढ़ा गया था । मन बोझिल हो गया, वह निराशा का घर बन गया और मैं भगवान अमिताभ की धरती का वासी एकान्तवासी बना । पर शोधकार्य की लगन मन से न जाती । बरबस भूलना चाहता लेकिन याद उसकी पत्थर पर बनी लकीर सदृश अमिट थी । परन्तु याद ही याद थी मन तो टूट गया था । और इस प्रकार आ गया सन् '७२ । स्मृतियाँ टूटे मन को सहारा देकर उठाने में सफल हो गयीं । समय की दूरी के चिह्न भी मिटने लगे और मैं पुन: शोध से जुड़ गया । परिणाम सामने है -- स्वामी रामचरण : जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन ।

जब मैंने कार्यारम्भ किया था, उस समय तक इस विषय पर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ था । मेरी दृष्टि मे फरवरी सन् १८३५ की 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' के अंक में कैप्टेन वेस्मकट का रामसनेही सम्प्रदाय पर लिखित विस्तृत लेख ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य था । इसके अलावा साधु मनोहरदास जी ने 'रामस्नेही धर्म दर्पण' नाम की एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी । श्री मनोहरदास जी स्वामी रामचरण जी के

पंथ रामसनेही सम्प्रदाय के साधु हैं। सन् १९५३ के फूलडोल महोत्सव के अवसर पर जब उनसे मेरी भेंट हुई शाहपुरा में हुई थी तो उन्होंने `स्वामी रामचरण` नामक ग्रंथ लिखने के स्वनिश्चय की चर्चा करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की थी कि मैं उन्हीं का कार्य कर रहा हूं। संत मनोहरदास जी भूल गये होंगे पर मैंने उनका कार्य पूर्ण कर दिया है, यह जानकर उन्हें संतोष होगा।

इस बीच रामसनेही सम्प्रदाय और स्वामी रामचरण पर कुछ कार्य हुए हैं। मुझे स्वामी रामचरण का प्रथम शोध विद्यार्थी बनने का सौभाग्य तो अवश्य प्राप्त हुआ पर मेरा शोध-प्रबंध प्रथम नहीं कहा जा सकता। रामसनेही सम्प्रदाय पर गोरखपुर विश्वविद्यालय में डाक्टर भगवतीप्रसाद सिंह के निर्देशन में श्री राधिका प्रसाद त्रिपाठी शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर चुके हैं। इस शोध-प्रबंध में तीनों रामसनेही सम्प्रदायों एवं उनके साम्प्रदायिक साहित्यों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। दूसरा शोध-प्रबंध गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डा० अमरचन्द वर्मा का है। डाक्टर वर्मा ने `स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन` विषय पर शोध कार्य किया है।

डाक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी की शोधकृति से रामसनेही नाम के जो तीन सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उन तीनों के साम्प्रदायिक साहित्य एवं उनके सन्तों का सम्यक् विवेचन मिलता है। स्वामी रामचरण शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य थे, अतः स्वामी जी के जीवन एवं कृतित्व पर भी उन्होंने संक्षेप में विचार किया है। डाक्टर अमरचन्द वर्मा की शोध रचना विषय से सीधा सम्बन्ध रखती है। उनका अध्ययन सम्यक् पर संक्षिप्त है।

उक्त दोनों शोध-प्रबंधों के अवलोकन के बाद भी मैं इस निष्कर्ष पर रहा कि स्वामी रामचरण के जीवन एवं कृतित्व के विस्तृत अध्ययन की अभी अपेक्षा है। डा० त्रिपाठी का शोध-प्रबंध विषय से सीधे संबंधित नहीं है, फिर भी उनके शोध से स्वामी रामचरण के अध्ययन में सहायता मिलती है। डाक्टर वर्मा का अध्ययन अवश्य इस विषय पर प्रथम प्रकाशित शोध-रचना है। डाक्टर वर्मा इस ग्रंथ के `प्राक्कथन` में लिखते हैं, `इस सम्प्रदाय के संतों के सम्पर्क में होने के कारण मैं अन्य व्यक्ति की तुलना में प्रचुर मात्रा में सामग्री प्राप्त करने तथा उनके वैज्ञानिक परीक्षण

में साम्प्रदायिक महत्व के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने में अधिक सफल हो सकूंगा, ऐसा हुआ भी ।"[1] इसी सन्दर्भ को वे आगे बढ़ाते हैं, "सम्प्रदाय के संतों एवं अनुयायियों से आशा के अनुरूप ही सामग्री प्राप्त हुई परन्तु उसमें साम्प्रदायिक दृष्टिकोण इतना तीव्र था कि उसमें से वैज्ञानिक पद्धति पर सर्व स्वीकृत तथ्यों को निकाल पाना सरल न था ।"[2] सम्प्रदाय विशेष के प्रवर्तक के अध्ययन में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की महत्ता अवश्य रहती है । उसे भी नकारा जा सकता है, किन्तु जहां दृष्टिकोण रूढ़िग्रस्त फलत: अप्रामाणिक प्रतीत हो, वहां उनके आवर्तों से निकल पाना अवश्य समस्या होती है । ऐसे कतिपय स्थल हैं जहां मैं डाक्टर शर्मा के दृष्टि-कोण से सहमत नहीं हो पाया । मैंने उन स्थलों की समीक्षा कर अपने निष्कर्ष दिये हैं । साम्प्रदायिक व्यक्तियों से जुड़े होने के कारण अध्ययन को वैज्ञानिक दृष्टि देना कठिन नहीं । मैं भी इस अध्ययन के सम्बन्ध में अनेक संतों एवं गृहस्थों के सम्पर्क में आया और उनसे अध्ययन में पर्याप्त सुविधा मिली । स्वामी रामचरण के जीवन को चमत्कारिक घटनाओं से जोड़ने का प्रयास साम्प्रदायिक साहित्य में जहां कहीं दृष्टिगत हुआ है, मैंने अपने अध्ययन को उससे अप्रभावित ही रखा है । डाक्टर शर्मा कहीं-कहीं साम्प्रदायिक आवर्त से प्रभावित हो गये हैं । यथा -- स्वामी जी को किसी स्त्री द्वारा विष दिया जाना और उस विष की प्रभावहीनता, भील द्वारा उन पर वार और फिर क्षमायाचना आदि ।

अपने अध्ययन में मैंने स्वामी रामचरण के जीवनवृत्त से संबंधित साम्प्रदायिक साक्ष्यों और असाम्प्रदायिक साक्ष्यों की तुलना करके निष्कर्ष पर पहुंचने की चेष्टा की है । यद्यपि साम्प्रदायिक साक्ष्य पर्याप्त सबल हैं, उनका जीवनीकार जगन्नाथ सफल जीवनीकार सिद्ध हुआ है पर असाम्प्रदायिक साक्ष्यों में से भी कतिपय को नकारा नहीं जा सकता । यथा -- कैप्टेन वेस्टकट का रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित सन् १८३५ ई० के फरवरी अंक का लेख। जनश्रुतियों को प्रमाण रूप में ग्रहण करने का अवसर बहुत कम यानी नहीं के बराबर आया है । एकाध ही

---

१- डाक्टर अमरचन्द शर्मा -- स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, प्राक्कथन, पृ० १ ।
२- वही ।

स्थान ऐसे मिलेंगे । इसी प्रकार अन्त:साक्ष्यों का भी अभाव ही है । एकाध ही स्थल उसके भी मिलते हैं । सम्पूर्ण अध्ययन को मैंने तीन खण्डों एवं आठ अध्यायों में विभाजित किया है --

[क] प्रथम खण्ड -- परिचय

प्रथम अध्याय -- अध्ययन के सूत्र
द्वितीय अध्याय -- स्वामी रामचरण का जीवनवृत्त
तृतीय अध्याय -- स्वामी रामचरण का पंथ रामस्नेही संप्रदाय
चतुर्थ अध्याय -- स्वामी रामचरण की रचनाएं

[ख] द्वितीय खण्ड -- विचारधारा

पंचम अध्याय -- विचारधारा : अध्यात्मपक्ष
षष्ठ अध्याय -- विचारधारा : लोकपक्ष

[ग] तृतीय खण्ड -- काव्यत्व

सप्तम अध्याय -- काव्यत्व : अनुभूतिपक्ष
अष्टम अध्याय -- काव्यत्व : अभिव्यक्तिपक्ष
उपसंहार ।

अपने इस अध्ययन को मैंने भरसक पूर्ण बनाने की चेष्टा की है । इसे कहाँ तक पूर्णता मिल पायी है, इसका निर्णय तो सुधीजन ही कर सकेंगे, पर मेरा मन इसे पूर्णता प्राप्त समझ रहा है । इस कार्य को जिन श्रद्धास्पद, स्नेही स्वजनों के कारण पूर्णता मिल सकी है । उन्हें स्मरण कर उनके प्रति अपने भावों की अभिव्यक्ति करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूं । सर्वप्रथम मैं अपने पूज्य गुरुवर आचार्य डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के चरणों में भाव-प्रसून समर्पित करता हूं, जिनके व्यक्तित्व की शीतल छाँह में मेरा विकास हुआ है । बी०ए०, एम०ए० की पढ़ाई से लेकर रिसर्च स्कालर बनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया में उनका प्रेरणादायी व्यक्तित्व ही मुझे प्रोत्साहित करता रहा है । बीस वर्षों बाद आज इस प्रबंध का प्रस्तुतिकरण भी उन्हीं के प्रोत्साहन, आशीर्वाद एवं

शुभेच्छाओं का परिणाम है। स्वामी रामचरण के ये शब्द मेरे भावों के प्राण बन रहे हैं --'शीश धरूं गुरुचरण तल'।

इस शोधकार्य के सिलसिले में मुझे शाहपुरा, भीलवाड़ा [राजस्थान] और इन्दौर [मध्यप्रदेश] की यात्राएं करनी पड़ी थीं। शाहपुरा और भीलवाड़ा इन दोनों स्थानों से स्वामी रामचरण का घना लगाव रहा है। शाहपुरा तो उनके पंथ का केन्द्र ही है। इन दोनों स्थानों की यात्रा मैंने सन् १९५३ में फूलडोल के अवसर पर की थी। उस समय सम्प्रदाय के आचार्यपीठ पर स्वर्गीय स्वामी निर्भय रामजी विराजमान थे और भण्डारी पद पर स्वर्गीय नानूराम जी थे, वर्तमान आचार्य पण्डित रामकिशोर जी और इन्दौर गोराकुण्ड रामद्वारा के संत एवं मेरे परमस्नेही मित्र श्री सन्मुखराम जी से भी यहीं सम्पर्क स्थापित हुआ था। पूज्य आचार्य श्री निर्भयराम जी एवं परमादरणीय भण्डारी जी श्री नानूराम जी के स्नेह भरे आशीर्वचन आज भी मेरे स्मृति-पटल पर अंकित-से हैं। उन लोगों को यह जानकर अपार हर्ष हुआ था कि मैं मूलाचार्य स्वामी रामचरण पर ग्रंथ लिख रहा हूं। आज जब अध्ययन पूर्ण हुआ है, दोनों ही महापुरुष इस संसार में नहीं हैं। मैं दोनों ही महापुरुषों के प्रति अपनी मौन श्रद्धा समर्पित करता हूं। मैं शाहपुरा में लगभग १५ दिनों ठहरा था। भण्डारी जी एवं पंडित रामकिशोर जी [वर्तमान आचार्य] की मुझपर विशेष कृपा थी। भण्डारी जी सदव मेरी चिन्ता करते एवं सुविधाओं पर दृष्टि रखते। उन्हीं की कृपा एवं पंडित रामकिशोर जी की प्रेरणा से मैं अणभैवाणी की प्राचीनतम प्रति [स्वरूपाबाई की पोथी] देख सका था। पण्डित रामकिशोर जी से बहुत समय तक पत्र-संपर्क बना रहा। वे बराबर मुझे अपने स्नेह एवं आशीर्वाद से प्रेरणा देते रहे। मेरे शोध-प्रबंध की पूर्णता पर उन्हें प्रसन्नता होगी। पण्डित रामकिशोर जी महाराज का मैं बड़ा कृतज्ञ हूं। इस अवसर पर मैं मुनिद्वारा भीलवाड़ा के संत श्री नैनूराम जी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं जिनकी कृपा से मैं कुहाड़ा की पावन भूमि का दर्शन कर सका था। मुनिद्वारे का दो दिनों का निवास आज भी मेरी स्मृति में है।

शोध-प्रबंध की पूर्णता दिलाने में शाहपुरा से कम महत्व इन्दौर का भी नहीं है। इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी मेरे मित्र हैं। उनकी प्रेरणा एवं स्नेह से मैंने

अब तक इन्दौर की तीन यात्राएं की हैं। संत नन्धुराम जी ने मुझे सर्वाधिक प्रेरित किया है और हर संभव सहयोग से इस प्रबंध की पूर्णता दिलाई है। गत जून में जब मैं इसी कार्य के निमित्त पुनः इन्दौर पहुँच गया तो उनके हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने उज्जैन तक से शोध-सामग्री मँगवाकर दी और मेरे लिए अनेक ग्रंथ पत्रों से ही एकत्र कर रखे थे। उनके स्नेह एवं सहयोग को धन्यवाद या आभार प्रदर्शित कर हल्का नहीं करना चाहता। मैं उनके अनुराग का कायल हूँ और क्या कहूँ शब्द नहीं मिलते। इसी सन्दर्भ में मैं उनके पूज्य गुरु स्वर्गीय नवनिध राम जी का भी स्मरण कर श्रद्धा-वनत हूँ जिनकी कृपा सदैव मुझ पर रही। गुरलीला विलास, परची, रामपद्धति आदि ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां उन्होंने मुझे पहली यात्रा में ही दे दी थी। ये सभी ग्रंथ उनकी पूजा की वस्तु थे, पर उन्होंने इन सबको मुझे सोल्लास दे दिया था। उनकी स्मृति का रूप इन ग्रंथों ने ले लिया है। इन्दौर छत्रीबाग के संत श्री कनीराम जी का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अपने सुझावों एवं समाधानों से उपकृत किया है। इनके साथ में उज्जैन के साधु श्री उम्मेदराम, श्री सरोवर राम जी आदि का भी आभारी हूँ। इन सभी का सहयोग मेरा संबल रहा है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर डाक्टर रामचन्द्र तिवारी ने समय-समय पर मुझे अपने अमूल्य सुझाव दिये हैं। उनकी प्रेरणा से मैं सदैव उत्साह ग्रहण करता रहा हूँ। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। डाक्टर तिवारी का स्नेह मेरी शोध-यात्रा का पाथेय रहा है। मेरे अनुज श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय एवं प्रिय शिष्य श्री सुमिरन शर्मा तथा श्री ब्रह्मानन्द सिंह की अभिरुचि, सेवाएं एवं शुभेच्छाएं भी इस अवसर पर स्मरणीय हैं। एतदर्थ ये लोग मेरे स्नेह के पात्र हैं। मैं अनुज श्री श्रीनिवास तिवारी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बड़े मनोयोगपूर्वक शोध-प्रबंध को टंकित किया है। अंत में मैं अपनी अच्छी-बुरी परिस्थितियों को धन्यवाद देते हुए भगवान तथागत की सौम्य प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक हूँ जिनकी छत्रछाया में इस शोध-प्रबंध का प्रणयन पूर्ण हुआ है।

बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कुशीनगर
मकर संक्रान्ति, संवत् २०३० वि०,
तदनुसार १४-१-१९७४

(माधवप्रसाद पाण्डेय)

# अनुक्रम

## अ नु क्र म

[ख] द्वितीय खण्ड : विचारधारा



[ग] तृतीय खण्ड : काव्यत्व

-≡≡≡0≡≡≡-

## प्रथम खण्ड : परिचय

प्रथम अध्याय : अध्ययन के सूत्र

द्वितीय अध्याय : जीवन वृत्त

तृतीय अध्याय : पंथ रामसनेही संप्रदाय

चतुर्थ अध्याय : रचनाएं

# प्रथम अध्याय

## अध्ययन के सूत्र

## प्रथम अध्याय

### अध्ययन के सूत्र

१- तासी कृत हिन्दुई साहित्य का इतिहास : अनु० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

स्वामी रामचरण की जीवनी एवं कृतियों के अध्ययन का संदर्भ-सूत्र सर्वप्रथम मुझे गार्सां द तासी लिखित 'इस्त्वार दल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' के हिन्दी अंश के अनुवाद की अनुक्रमणिका तैयार करते समय हाथ लगा। गुरुवर डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से यह अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस इतिहास ग्रंथ में तासी महोदय ने स्वामी रामचरण की जीवनी एवं उनकी रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। स्वामी जी के जीवनवृत्त से संबंधित निम्नलिखित सूचनाएं इस ग्रंथ में मिलती हैं :

१- स्वामी रामचरण रामसनेही हिन्दू संप्रदाय के संस्थापक एक वैरागी थे।

२- उनका जन्म सन् १७१६ में जयपुर राज्यान्तर्गत सोरसेवन नामक गांव में हुआ था। उन्होंने सन् १७५० ई० में अपना जन्मस्थान त्याग दिया था और घूमते फिरते उदयपुर राज्य के भीलवाड़ा नामक स्थान पर पहुंचकर दो वर्ष तक वहां निवास किया।

३- मूर्तिपूजा का विरोधी होने के कारण स्वामी रामचरण को महाराणा भीमसिंह ने ब्राह्मणों द्वारा प्रेरित होने पर कष्ट दिया जिसके कारण उन्होंने भीलवाड़ा का शीघ्र त्याग कर दिया।

४- भीलवाड़ा छोड़कर स्वामी जी शाहपुरा आये। शाहपुरा के शासक भीमसिंह ने उन्हें अपने दरबार में शरण देकर उनकी रक्षा की। वे सन् १७६७ ई० में शाहपुरा आ गए थे। भीलवाड़ा से उन्हें लाने के लिए सेवकों का एक समूह हाथियों समेत गया था। किन्तु स्वामी जी उन साधनों की सेवा अस्वीकृत कर पैदल ही चलकर शाहपुरा पहुंचे।

५- इसके दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १७५१ ई० में शाहपुरा में बस जाने के बाद उन्होंने अपने संप्रदाय की स्थापना की।

६- स्वामी रामचरण की मृत्यु के संबंध में तासी महोदय लिखते हैं कि आपने ७९ वीं वर्ष की अवस्था में, सन् १७९८ ई० के अप्रैल मास में मृत्यु को प्राप्त हुए।

तासी महोदय ने लिखा है कि भीलवाड़ा का सूबेदार देवपुर जाति का बनिया था, जो स्वामी रामचरण का कट्टर विरोधी था। उसने इन्हें जान से मार डालने के लिए एक सिंधी को भेजा था। मारने की नीयत से पहुंचा सिंधी स्वामी रामचरण के अलौकिक गुणों से प्रभावित हो गया और उन के चरणों पर गिरकर क्षमा-याचना की।

तासी ने अन्त में उनकी रचनाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि रामचरण जी ने छत्तीस हजार दो सौ पचास शब्दों या भजनों की रचना की है। देवनागरी लिपि में लिखे इन शब्दों या भजनों की भाषा प्रधानतः हिन्दी है जिसमें अरबी-फारसी और संस्कृत-पंजाबी शब्दों के मिश्रण मिलते हैं। तासी ने उपर्युक्त जानकारी कैप्टन वेस्मकट के उल्लेख से प्राप्त की है जिसे वेस्मकट महोदय ने कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी के फरवरी १८३५ ई० के जर्नल में प्रकाशित कराया था।

२- जर्नल आफ द एशियाटिक सोसायटी, फरवरी, १८३५

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जर्नल की यह जिल्द मुझे प्राप्त हुई थी। जर्नल के इस अंक में कैप्टेन जी०ई० वेस्मकट का एक लेख " Some account of a sect of Hindu Schismatics in western India, calling themselves Ramsanehis of freinds of God" प्रकाशित है। मेरी दृष्टि में उक्त लेख प्रथम महत्वपूर्ण सामग्री है जो स्वामी रामचरण, उनके द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय एवं उनके विचारों की जानकारी देता है। कैप्टेन वेस्मकट भारत के गवर्नर जनरल के वैयक्तिक सचिव के सहायक थे। उन्होंने शाहपुरा जाकर संप्रदाय संबंधी जानकारी एकत्र की थी। इस लेख के अन्तर्गत विभिन्न उपशीर्षकों में लेखक ने स्वामी रामचरण के जीवनवृत्त, सम्प्रदाय के संगठनात्मक स्वरूप, सम्प्रदाय के उत्सव फूलडोल आदि की विस्तार से चर्चा की है साथ ही शाहपुरा से प्राप्त हुए कविताओं की पाण्डुलिपि का अंग्रेजी अनुवाद भी जोड़ दिया है। इस अनुवाद में लेखक को कलकत्ता के बाबू काशीप्रसाद घोष

से सहायता मिली थी जिसके लिए उन्होंने आभार भी व्यक्त किया है।[१] बेस्मकट महोदय सम्प्रदाय के तत्कालीन महंत स्वामी नारायण दास जी से मिले भी थे। उन्होंने स्वामी जी से हुए वार्तालाप का संक्षेप में उल्लेख भी किया है। बेस्मकट ने शाहपुरा जाकर स्वामी नारायणदास जी से तीन बार भेंट की थी। इस संबंध में उनका यह कथन द्रष्टव्य है :-

"It may be right to mention fax the xuxkkkukkex in this place , that many of the reasons given for the institution of perticular rites were received from the chief of the Ramsanehis to whom I made three visits. He usually delivered himselfs in Sanskrit verse, which he afterwards explained in local dilects, for the instructions of his hearers."

-- Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

३- द निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री : डा० पी० डी० बड़थ्वाल
(हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)

संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपने शोध प्रबन्ध 'द निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री' के पृष्ठ ३०७ पर शाहपुरा के स्वामी रामचरण का उल्लेख रामसनेही पंथ के संस्थापक के रूप में किया है। इस पंथ का विकास अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। स्वामी रामचरण की वाणी का विशाल संग्रह डाक्टर बड़थ्वाल को बाद में प्राप्त हुआ था जिसमें कबीर की विचारधारा प्रतिध्वनित हुई है। कबीर के लिए स्वामी रामचरण के मन में

---

१- I have to acknowledge my obligations to Babu Kasi Prasad Ghos of Calcutta, for his courtesy in assisting me with a translation of these papers. He purposely rendered it as literal as possible, and I am not sure if it would not have been better had I left it in that form.

--Journal of the Asiatic Society, Feb, 1835, p. 78.

बड़ा आदर था -- "He faithfully rechose the ideas of Kabir whom he holds in ~~gram~~ great neverence."[1]

४- प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का चौदहवां वार्षिक विवरण
[सन् १९२९-३१ ई०] : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा प्रस्तुत की गई यह खोज-रिपोर्ट काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है। इस खोज रिपोर्ट के अनुसार स्वामी रामचरण रामसनेही पंथ के संस्थापक और नवल राम के गुरु थे। रिपोर्ट में उनके निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख मिलता है --

१- जिज्ञासा बोध [निर्माणकाल सं० १८४७ वि०]
२- विश्राम बोध [ ,, सं० १८५१ वि०]
३- ममता निवारण [ ,, सं० १८५२ वि०]
४- विश्वास बोध [ ,, सं० १८४९ वि०]
५- अमृत उपदेश [ ,, सं० १८४४ वि०]
६- रामचरण के शब्द
७- अणभै विलास [ ,, सं० १८४५ वि०]
८- रामरसायनि
९- सुख विलास [ ,, सं० १८४६ वि०]

रिपोर्ट में डाक्टर बड़थ्वाल ने लिखा है कि इनमें से अब तक कोई भी ग्रंथ खोज में नहीं मिला था। इसी रिपोर्ट के अनुसार 'विनोद' के नं० १०७५ पर इनके रचे पांच ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जो इस रिपोर्ट में १, २, ~~तथा~~ ४, ६, और ७ हैं। 'वाणी' नामक ग्रंथ की सूचना भी इसी रिपोर्ट में मिलती है। 'विनोद' में उल्लिखित "रामायलिका" ग्रंथ के रचनाकार स्वामी रामचरण के विषय में डा० बड़थ्वाल ने लिखा है कि ये रामचरण अयोध्या के महंत थे जो ठीक भी है।

---

1- The Nirgun School of Hindi Poetry, Dr.P.D.Barthwal,p.307.

खोज रिपोर्ट में डाक्टर बड़थ्वाल आगे लिखते हैं कि स्वामी रामचरण राजपूताने के शाहपुरा नामक स्थान के निवासी थे। 'अमृत उपदेश' एवं 'शब्द' नामक ग्रंथों की निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत करके उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि उनके गुरु का नाम कृपाराम या कृपाल राम था।

"सिर ऊपर सतगुरु तपै, कृपाराम जी संत।
रामचरण ता सरणि में, सेवो पायो तंत।"
-- अमृत उपदेश

\+ \+ \+

"सतगुरु संत कृपाल जी रामचरण सिष तासुके।
कारिज करि कारण मिले तुम गुरु रामजनदास के।"
--- शब्द

स्वामी रामचरण ने अपने सभी ग्रंथ ग्रंथों का आरंभ जिस प्रसिद्ध दोहे से किया है, उसका उल्लेख भी इस खोज रिपोर्ट में है।[१] इसी रिपोर्ट में आगे डाक्टर बड़थ्वाल ने 'राम रसायनि' से कुछ दोहे उद्धृत किये हैं।[२] इस उद्धरण के साथ उन्होंने यह आशंका व्यक्त की है कि क्या सचमुच इन ग्रंथों की रचना एक ही व्यक्ति ने की है। पर ग्रंथ के अन्त में -- इति श्री रामरसाइनि ग्रंथ रामचरणकृत सम्पूर्ण समाप्तं -- लिखित वाक्य से यह संदेह दूर होता है।

---

१- रमतीत राम गुरुदेव जी पुनि तिहूं कालके संत।
जिनकूं रामचरण की, वंदन बार अनन्त।

२- "सवद एक महाराज का नग मोताहल जोय।
ग्रंथ जोड़कर रामजन भानाजाद जु होय।
ये वाइक उधार करण कूं रामचरण जी भाखी।
राम रसाइनि रस का भरिया आप सबन कूं दाखी।
ताकी जोड़ ग्रंथ यह परगट रामजन वणवायो।
ज्ञान भगति वैराग जुगति मुक्ती पंथ बतायो।"

विवरणकार आगे लिखता है कि रामचरण जी की उनका शिष्य समुदाय `राम` नाम से भी अभिहित करता था । इसी संदर्भ में उसने स्वामी जी के शिष्य नवलराम जी `रचित "नवल सागर" का एक दोहा भी प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है जो इस प्रकार है :-

"राम गुरू उर में बसे अनन्त कोटि जन सीस ।
नवलो अनुचर रावरो मानूं सिमरत बीस ।

विवरण में `अणभै विलास` ग्रंथ की चर्चा स्वामी रामचरण के गुरु कृपाराम की मृत्यु-तिथि एवं स्वामी रामचरण की जन्मतिथि के संदर्भ में विवरणकार करता है । साथ ही `राम रसायन` की अन्तिम पंक्तियों से स्वामी रामचरण का निधन-काल भी ढूंढ निकालने में सफल हो गया है । डाक्टर बड़थ्वाल ने यहीं यह शंका उठाई है कि ग्रंथकर्ता ने अपना मृत्युकाल कैसे लिख दिया होगा ? यह संदिग्ध है । उनका यह अनुमान है कि यह उनके किसी शिष्य या प्रतिलिपिकार ने पीछे से जोड़ दिया होगा और उनका यह अनुमान सत्य प्रतीत होता है ।

डाक्टर बड़थ्वाल इसी खोज रिपोर्ट में स्वामी रामचरण के जन्मकाल के संबंध में निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत करते हैं --

"अठारे से साठ वर्ष मास फागुन वदि सातें ।
संत पधारे धाम सनीचर वार विख्यातें ।"

इन पंक्तियों से उन्होंने यह अर्थ निकाला है कि स्वामी रामचरण का जन्म संवत् १८०५ वि० के फागुन महीने की वदी ७, शनिवार को हुआ था । डाक्टर बड़थ्वाल के इस कथन से असहमत होते हुए मेरा निवेदन यह है कि धाम पधारने का अर्थ मृत्यु है, जन्म नहीं । पुनश्च, प्रकाशित `वाणी` के आरंभ में स्वामी रामचरण के दादा गुरु स्वामी संतदास जी की `वाणी` संगृहीत है । उसके अन्त में संग्रहकार ने एक कुण्डलिया लिखी है । शीर्षक के साथ वह कुण्डलिया यहां दी जाती है --

"स्वामी जी श्री संतदास जी परमधाम पधार्याजी समै का ख॥ कुंडल्या ॥

अठारा से साट वर्ष में संत भये निरकार ।
बुध फागुण तिथि सप्तमी वार सनीसरवार ।
वार सनीसर वार डार के अधम सरीरा ।

प्रथम ही मिल रहे जे संघट भरीयो नीरा ।
परापरे पवलीन था भिन्न दृष्टिरूप अपार ।
अठारा सै आठ वर्षा में संत भये निरकार ।"[1]

अतः यह स्पष्ट हो गया कि यह स्वामी संतदास जी की मृत्यु तिथि है। जाने कैसे डाक्टर बड़थ्वाल को यह तिथि स्वामी रामचरण की जन्मतिथि प्रतीत हुई। मैंने 'अणभै विलास' ग्रंथ की प्रकाशित प्रति का अवलोकन किया किन्तु डाक्टर बड़थ्वाल द्वारा उद्धृत पंक्तियां उसमें नहीं मिलीं। मुझे ऐसा लगता है कि किसी एक प्रतिलिपिकार ने अपने लिये 'अणभै विलास' की प्रतिलिपि की होगी और अंत में स्वामी संतदास एवं स्वामी कृपाराम की मृत्यु तिथियां भी लिख दी होंगी। डाक्टर बड़थ्वाल द्वारा उद्धृत स्वामी कृपाराम की मृत्युतिथि भी शुद्ध है पर 'अणभै विलास' से उद्धृत पंक्तियां[2] मुझे प्रकाशित 'अणभै विलास' में नहीं मिलीं। उद्धृत पंक्तियों के तथ्य संतदास जी की वाणी के संग्रह के अंत में उद्धृत पंक्तियों वाले ही हैं। अतः स्वामी कृपाराम की मृत्यु तिथि संवत् १८३२ भाद्रपद सुदी ५, शुक्रवार सही है।[3]

---

१- अ० वा०, पृ० ६२ [संतदास जी की वाणी]।

२- "बत्तीसे किरपाल भाद्रपद सुदि सुकर ।
छोड़े आप शरीर परमपद पहुंचे सुकर ।"
[प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का चौदहवां त्रैवार्षिक विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० १३८] उद्धृत पंक्तियां 'अणभै वाणी' के अंत में पृ० १०५६ पर अंकित हैं --- लेखक

३- "अथ स्वामीजी श्री संतदास जी के शिष्य स्वामी जी श्री कृपाराम जी परमधाम-पधारया जी समै का कवित॥
अठारा सै बत्तीस वर्ष भादू सुदी होई
छठ सुक दिन पहर ड्योढ़ उदोत सु सोई
करत कूंच किरपाल दर्स सबहीं कूं दीन्हीं
झूठी झंगी डार परमपद वास सु कीन्हीं
सरणी संत दयाल के नग्र दांतड़े धाम ।
साध सिष सेवग मिलै कहत रामही राम ।"
[स्वामी संतदास जी महाराज की वाणी, पृ० ६३]

डाक्टर बड़थ्वाल ने स्वामी रामचरण की भाषा और कविता के विषय में भी लिखा है। उनके अनुसार स्वामी जी की भाषा में राजस्थानी के अतिरिक्त फ़ारसी और अरबी के बहुत से शब्द आए हैं। इनकी रचना का सार गुरु महिमा का गान, संसार से विरक्ति और केवल राम से नाता है। उदाहरणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि भी करते गये हैं।

५- प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज [सन् १९३८-४०]

इस खोज विवरण में स्वामी रामचरण को रामसनेही पंथ का प्रवर्तक कहा गया है। इनके शिष्य रामजन थे जिन्होंने इनके ग्रंथ 'दृष्टान्त सागर' की टीका लिखी है। यह सूचना इस विवरण से प्राप्त होती है।

६- श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल्स, वाल्यूम II

[द कल्चरल हैरिटेज आव इंडिया]

इस खण्ड के अन्तर्गत श्री क्षितिमोहन सेन का 'द मिस्टिक्स आफ नार्दन इंडिया ड्यूरिंग द मिडिल एज' नामक लेख प्रकाशित है। इस लेख में विद्वान् लेखक ने स्वामी रामचरण का संतराम या रामचरण नाम से उल्लेख किया है जिनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत सूरसेन गाँव में हुआ था। उनकी जन्म-तिथि सन् १७१५ से सन् १७२० के बीच अनुमानित है। उनके शिष्यों को रामसनेही कहा जाता है। राम-सनेही मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते और भगवान की प्राप्ति के लिए प्रेमपंथ का अवलम्बन करते हैं।

७- मिस्टिक्स एसेथेटिक्स एण्ड सेण्ट्स आव इंडिया : जान कैम्पबेल ओमैन

जान कैम्पबेल ओमैन ने अपनी उक्त पुस्तक में स्वामी रामचरण को अठारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध का एक सुधारक कहा है। मूर्तिपूजा का विरोधी होने के कारण वे ब्राह्मणों द्वारा प्रपीड़ित हुए थे। उनके द्वारा स्थापित रामसनेही सम्प्रदाय में हिन्दुओं के सभी वर्गों एवं जातियों को प्रवेश की सुविधा थी। सम्प्रदाय के सभी सदस्य शुद्ध शाकाहारी होते हैं और उन्हें तम्बाकू आदि मादक पदार्थों के सेवन से वंचित रहना पड़ता है।

'राम' सम्प्रदाय के विशेष उपास्य हैं। दनिक उपासना में स्त्री-पुरुष दोनों भाग लेते हैं किन्तु दोनों को एक ही समय पर आराधना वर्जित है। लेखक ने सम्प्रदाय की उपासना पद्धति के संबंध में एक विचित्र जानकारी दी है जो संभावनाओं के सर्वथा विपरीत है। वह कहता है --

> " The religious services of the Ramsanehis are said to have a strong resemblance to those of Musulmans."[1]

वह राजपूताना के शाहपुर नामक स्थान को रामसनेहियों का प्रमुख पीठ कहता है।

८- ए हिस्ट्री आव हिन्दू सिविलाइज़ेशन डूरिंग ब्रिटिश रूल

वाल्यूम I, : प्रमथनाथ बोस

उक्त ग्रंथ के लेखक श्री प्रमथनाथ बोस ने रामसनेही सम्प्रदाय संबंधी सूचना के लिए श्री अक्षयकुमार दत्त के 'उपासक सम्प्रदाय' ग्रंथ को आधार माना है। वे नोट में लिखते हैं --

> " For information regarding the Ramsanehi sect I am indebted to Akshay Kumar Dutt's Upasaka Sampradaya."[2]

श्री बोस ने स्वामी रामचरण के विषय में निम्नलिखित सूचनाएं दी हैं :-

१- रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरण का जन्म सन् १७१६ ई० में जयपुर के सूरसेन नामक ग्राम में हुआ था।

२- वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे। गांव के ब्राह्मणों से तंग आकर उन्होंने घर छोड़ दिया और भारत के विभिन्न भागों का भ्रमण करते हुए उदयपुर राज्य में आकर बस गए। ब्राह्मणों द्वारा उभारे जाने पर उदयपुर के राजा ने स्वामी रामचरण को पीड़ा पहुंचाना आरंभ किया। रामचरण जी ने शाहपुर के राजा की शरण ली। राजा ने उन्हें निमंत्रित किया। दो वर्ष बाद उन्होंने अपने पंथ की स्थापना की। सन् १७९८ ई० में उनका देहावसान हो गया।

---

1- Mystics Ascetics and Saints of India. p. 133.

2- A History of Hindu Civilisation During British Rule, Vol. I, p. 131.

३- स्वामी रामचरण के १२ प्रमुख शिष्य थे। प्रत्येक शिष्य को आर्थिक एवं शैक्षिक व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंपे गए थे। एक भण्डारगृह का अधिकारी होता था, दूसरा सेवकों द्वारा भेंट में दिये गए वस्त्रों और कम्बलों की व्यवस्था का अधिकारी होता था। तीसरा पंथ के अन्य सदस्यों के आचरण पर दृष्टि रखता था। चौथा विशेष रूप से स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए चुना जाता था आदि।

४- यदि पंथ का कोई सदस्य गंभीर अपराध करता था तो उसे शाहपुरा लाकर उन्हीं बारह में से आठ सदस्यों की पंचायत द्वारा उसके मामले पर विचार किया जाता था। अपराध सिद्ध होने पर उसके सिर के बाल काट दिये जाते और उसे पंथ से बहिष्कृत कर दिया जाता।

५- साधु बनने के लिए नाम परिवर्तन और केश-मुण्डन आवश्यक है। दो मास से अधिक एक स्थान पर रहना उनके लिए वर्जित है।

६- रामसनेही साधुओं का प्रधान जो शाहपुरा की गद्दी पर आसीन होता है महंत कहा जाता है।

७- सभी जाति के लोग पंथ में प्रवेश पाते हैं।

८- रामसनेही मूर्तिपूजा के विरोधी हैं।

९- वे रामोपासक हैं।

१०- रामसनेहियों का उपासना-स्थल रामद्वारा कहलाता है। शाहपुरा के अतिरिक्त जयपुर, जोधपुर, नागौर, उदयपुर तथा अन्य स्थानों पर भी रामद्वारे हैं।

११- प्रातःकालीन उपासना महत्वपूर्ण होती है जिसमें सभी का सम्मिलित होना आवश्यक है। किन्तु सान्ध्योपासना में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं।

१२- फागुन के महीने में रामसनेही फूलडोल का उत्सव मनाते हैं। यह रामसनेहियों का वार्षिकोत्सव है किन्तु हिन्दुओं के परम्परागत त्यौहार फूलडोल से इन लोगों का फूलडोल महोत्सव बिल्कुल भिन्न है।[१]

---

१- कर्नल जेम्स टाड ने अपने ग्रंथ 'राजस्थान का इतिहास' में मेवाड़ राज्य के महत्वपूर्ण त्यौहारों का वर्णन किया है। फूलडोल के विषय में उनका निम्नलिखित कथन है

९- हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास : आचार्य चतुरसेन

आचार्य चतुरसेन लिखित इस इतिहास से मात्र इतनी जानकारी मिलती है कि रामसनेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामचरण राजपुताना में रहते थे। पहले ये मूर्ति पूजक थे। पीछे इन्होंने रामसनेही पंथ की स्थापना की। इनके उपदेश 'वाणी' नामक संग्रह में संकलित हैं।

१०- राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : पं० मोतीलाल मेनारिया

पंडित मोतीलाल मेनारिया ने अपने उक्त ग्रंथ के चौथे अध्याय में रामसनेही पंथ एवं स्वामी रामचरण के संबंध में संक्षिप्त जानकारी दी है। शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के अलावा खेड़ापा और रैण के रामसनेही सम्प्रदायों एवं उनके संस्थापकों क्रमशः हरिरामदास और दरियाव जी का संक्षिप्त परिचय दिया है। श्री मेनारिया जी ने स्वामी रामचरण एवं उनके द्वारा संस्थापित रामसनेही पंथ के संबंध में भी कतिपय और सूचनाएं इस प्रकार दी हैं :--

१- स्वामी रामचरण के अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से जानते हैं और उसी का ध्यान करते हैं।

२- रामसनेही साधु सिर्फ लंगोट बांधे रहते हैं और ऊपर से चादर ओढ़ लेते हैं।

३- ये लोग विवाह नहीं करते और किसी उच्च वर्ण के बालक को चेला बना लेते हैं। प्रथम शिष्य गुरु की गद्दी का अधिकारी होता है। बड़े शिष्य को छोटे शिष्य नमस्कार करते हैं और उन्हें गुरुसदृश आदर देते हैं। ये साधु रामद्वारों में निवास करते हैं और कथा-वाचन तथा भजन करते हैं।

---

पिछला शेष --- बात का प्रमाण है कि हिन्दुओं द्वारा परम्परागत ढंग से मनाया जाने वाला फूलडोल रामसनेहियों के फूलडोल से भिन्न है। टाड महोदय लिखते हैं --"फूलडोल - बरसात के आरंभ में इस त्योहार का उत्सव होता है। इस त्यौहार की शुरुआत तलवार की पूजा से होती है। यह पूजा प्रत्येक राजपूत के घर से लेकर राणा के महल तक होती है। इस त्यौहार को राजपूत लोग बड़े उत्साह से मनाते हैं और अपनी तलवारों की पूजा करते हैं।"

(कर्नल टाडकृत राजस्थान का इतिहास, हिन्दी संस्करण, पृ० ३०७)

४- वैसे सभी जातियों में इन लोगों के लिए आदर भाव है किन्तु अग्रवाल और माहेश्वरी बनियों की भक्ति इनके लिए विशेष होती है।

५- शाहपुरा का रामद्वारा रामसनेहियों का गुरुद्वारा है जहां प्रति वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र वदी ५ तक मेला लगता है।

६- स्वामी जी के जन्मस्थान, जन्मसंवत् तथा गुरु कृपाराम एवं उनसे इनके दीक्षित होने का उल्लेख भी मिलता है।

७- शाहपुरा में राजाधिराज रणसिंह ने इन्हें सम्मान किया और शाहपुरा में इनकी गद्दी स्थापित करवाई।

८- इनके २२५ शिष्य थे जिनमें से रामजन इनके उत्तराधिकारी हुए थे।

९- मेनारिया जी का अनुमान है कि इनकी वाणी में छन्दों की संख्या ८००० के लगभग है।

११- कबीर एण्ड हिज फालोअर्स : एफ० ई० के[1]

१२- ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर : एफ०ई० के[2]

श्री के महोदय के उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में रामसनेही सम्प्रदाय एवं उसके संस्थापक स्वामी रामचरण की संक्षिप्त चर्चा है।

१३-`कल्याण` का संत अंक

कल्याण के संत अंक में `श्री श्रीरामचरणजी रामसनेही` शीर्षक एक संक्षिप्त लेख प्रकाशित है। इस लेख के लेखक साधु श्री मेनूराम जी हैं। यह संक्षिप्त लेख इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें स्वामी जी के जन्मस्थान, जन्मसंवत् के अतिरिक्त इनके पिता एवं इनके वैरागी होने के पूर्व के नामों का उल्लेख है। आधुनिक वाङ्मय साधनों में यह मेरी जानकारी में पहला सूत्र है जिसके द्वारा विदित होता है कि इनका

---

१-Kabir and his followers : F.E. Keay.

२-A History of Hindi Literature : F.E. Keay.

जन्म श्री बखतराम की धर्मपत्नी के गर्भ से हुआ था और इनका नाम रामकृष्ण था।

स्वामी रामचरण के वैराग्य ग्रहण करने के पीछे जो ख्याति चली आ रही है उसका उल्लेख करते हुए लेखक लिखता है कि "जब आप बत्तीस वर्ष के हुए तब उसी समय इनके चरणों में वज्र का चिह्न देखकर एक ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गया और सोचने लगा कि ये तो कोई संत है। अबतक गुप्त क्यों है ? " फिर रामकृष्ण जी को स्वप्न में नदी की धारा में बहते हुए अज्ञात संत द्वारा बचाये जाने की बात भी लिखी हुई है। मेवाड़ के दांतड़ा नामक ग्राम में इनकी स्वामी कृपाराम जी से भेंट हुई थी। ये वही महात्मा थे जिन्हें रामकृष्ण जी ने स्वप्न में देखा था। कृपा-राम जी ने इन्हें भगवत-तत्व का उपदेश देकर इनका नाम रामचरण रख दिया था। इसी प्रकार गुदड़ वेश धारण कर २५ वर्ष तक गुफा में तप करने की बात भी नेनूराम जी ने लिखी है। इस लेख के लेखक के अनुसार स्वामी रामचरण जी ने छत्तीस हजार साखियों की रचना की जो अनुभवों से भरी हुई हैं तथा रामनाम महामंत्र के उपदेशों से पूर्ण हैं। लेख के अंत में मृत्यु संवत का भी उल्लेख है।

१४- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा०रामकुमार वर्मा

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने अपने इस प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ के पृष्ठ ४११ पर स्वामी रामचरण की चर्चा की है। डाक्टर वर्मा ने इनका आविर्भावकाल संवत् १७७५ वि० माना है, जबकि उनके प्रामाणिक जीवनी ग्रंथों में स्वामी जी का जन्म संवत् १७७६ वि० है। डाक्टर वर्मा ने स्वामी जी को पहले रामोपासक और मूर्ति-पूजा का विरोधी कहा है। स्वामी जी द्वारा संस्थापित रामस्नेही सम्प्रदाय के विषय में डाक्टर वर्मा लिखते हैं कि "रामसनेही मत मुसलमानी मत से बहुत कुछ मिलता है ...... दिन में पांच बार नमाज़ की तरह निराकार ईश्वर की आराधना होती है।"[१]

डाक्टर वर्मा के इस वृहत् इतिहास ग्रंथ में आलोच्य कवि के अध्ययन की दृष्टि से कुछ विशेष या नया नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत भ्रामक एवं गलत सूचनाएं मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है डाक्टर वर्मा ने जान कैम्पबेल ओमन के ग्रंथ --"मिस्टिक्स,एसेटि-

---

१- डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,पृ० ४११।

टिक्स एण्ड सेण्ट्स आफ इंडिया' से स्वामी रामचरण संबंधी जानकारी एकत्र की है। ओमन महोदय को रामसनेहियों का मुसलमान मत से प्रभावित होने का भ्रम होना संभव लगता है किन्तु डाक्टर वर्मा जैसे संत साहित्य के अध्येता से यह आशा नहीं की जाती।

मैंने स्वयं शाहपुरा में फूलडोल महोत्सव के अवसर पर उपस्थित होकर राम सनेही सम्प्रदाय की उपासना-विधि को ध्यानपूर्वक देखा है। किन्तु नमाज जैसी उपासना विधि मेरी दृष्टि में नहीं आई। रामसनेही सम्प्रदाय के एक मर्मज्ञ विद्वान् संत (अब सम्प्रदाय के आचार्य) पंडित रामकिशोर जी महाराज से मैंने जिज्ञासा की कि क्या पांच बार नमाज की भांति की उपासना पद्धति पंथ में प्रचलित थी ? उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया था।

१५- भारतीय अनुशीलन ग्रंथ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

(विभाग-२, मध्यकाल)

इस ग्रंथ में आचार्य क्षितिमोहन सेन का "मध्ययुग में राजस्थान और बंगाल के बीच साधना संबंध" शीर्षक लेख प्रकाशित है। इस ग्रंथ के २२ वें पृष्ठ पर सन्त राम या रामचरण के संबंध में दो-तीन पंक्तियों में उल्लेख मिलता है। सेन महोदय ने जयपुर के सूरसेन नामक ग्राम को स्वामी रामचरण का जन्मस्थान बतलाया है। उनके मठों का विस्तार गुजरात तक है और बंगाल में भी उनके भक्त कहीं-कहीं हैं।

१६- भारत का धार्मिक इतिहास : पं० शिवशंकर मिश्र

पंडित शिवशंकर मिश्र लिखित इस धार्मिक ग्रंथ इतिहास ग्रंथ में स्वामी रामचरण स्वयं उनके द्वारा संस्थापित राम सनेही सम्प्रदाय की जानकारी प्राप्त होती है :

१- जयपुर निवासी रामचरण एक रामानंदी साधु थे।

२- शाहपुरा में राज्याश्रय प्राप्त कर उन्होंने संवत् १८२४ वि० में रामसनेही पंथ की स्थापना की।

३- रामसनेही जन गुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं। स्त्रियां पति सेवा से भी बढ़कर गुरु-सेवा को प्रधान धर्म समझती हैं।

४- इनमें ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है।
५- रामनाम इनका महामंत्र है। 'रामरटन' से ही मुक्ति मिलेगी, ऐसा इनका विश्वास है।

१७- रामस्नेही धर्म-दर्पण : साधु मनोहरदास जी रामस्नेही

रामसनेही सम्प्रदाय के संत श्री मनोहरदास जी महाराज की 'रामस्नेही धर्म-दर्पण' नामक पुस्तक मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संग्रहालय में मिली थी। यह पुस्तक रामसनेही सम्प्रदाय के संबंध में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है। ग्रंथलेखक साधु मनोहरदास जी ने रामसनेही सम्प्रदाय का मूल रामानुज सम्प्रदाय को माना है। पुस्तक की भूमिका का यह अंश इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है :-

"विदित हो कि भारत प्रख्यात श्रीमद् रामानुज सम्प्रदाय से आविर्भावित श्री रामानन्द साधु सम्प्रदाय हुआ। इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आगे चलकर गलताजी [जयपुर राज्य] में श्री पेहारी महाराज तथा श्री अग्रदास जी महाराज बड़े प्रख्यात संत हुए। इन्हीं की शिष्य परम्परा में गूदड़ वेश धारी महात्मा श्री संतदास जी तथा उनके शिष्य श्री कृपाराम जी हुए। इन्हीं श्री कृपाराम जी महाराज के श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, शाहपुरा [मेवाड़] के मूल आचार्य श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज प्रगट हुए। आप परम निर्गुण गायक संत थे। आपकी समाधि स्थिति में जो-जो ब्रह्मानुभूतियाँ हुई वही अनुष्टुप श्लोकाकार संख्या प्रमाण में सवा छत्तीस हजार सरस 'अनुभववाणी' के नाम से प्रसिद्ध हुई है।"[१]

१८- उत्तरी भारत की संत परंपरा : पं० परशुराम चतुर्वेदी

पण्डित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' संत-साहित्य का गंभीर एवं पूर्ण अध्ययन है। अपने इस विशाल ग्रंथ में चतुर्वेदी जी ने निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी ~~स्वामी~~ रामचरण एवं संप्रदाय के विषय में अत्यंत संक्षेप में उल्लेख किया है।

---

१- साधु श्री मनोहरदास जी : रामस्नेही धर्म-दर्पण, पृ० १।

१- संत रामचरण का संक्षिप्त परिचय -- इस शीर्षक के अन्तर्गत विज्ञ लेखक ने स्वामी रामचरण के जन्मस्थान, जन्मतिथि, जाति एवं इनके पूर्व नाम का उल्लेख करते हुए ३१ वें वर्ष में स्वामी कृपाराम का स्वप्न में दर्शन प्राप्तकर उनकी खोज में निकल पड़ने की बात लिखी है। दांतड़ा ग्राम में उन्हें स्वामी कृपाराम का दर्शन मिला। वे स्वामी जी के शरणागत हुए। स्वामी कृपाराम जी ने इन्हें दीक्षित करके इनका नाम रामकृष्ण से रामचरण रख दिया। इसी में आगे स्वामी संतदास जी की मृत्युतिथि, स्वामी कृपाराम जी की मृत्युतिथि, स्वामी रामचरण द्वारा तपस्या करने की तिथि एवं अवधि का उल्लेख भी मिलता है।

२- मत -- इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्प्रदाय स्थापना का समय, देवी-देवताओं की पूजा का विरोध फलस्वरूप लोगों द्वारा उत्पीड़न की बात लिखी है। चतुर्वेदी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि 'रामावत' एवं 'रामानंदी सम्प्रदाय' का प्रभाव तपस्या के बाद जाता रहा और ये निराकार ईश्वर की उपासना में विश्वास करने लगे। इसी में निर्गुणराम के नामस्मरण की चर्चा के साथ लेखक 'नमाज की भांति पांच बार प्रार्थना' की बात भी कह गया है।

३- प्रेम-साधना -- संत रामचरण द्वारा प्रेम साधना की महत्ता के प्रतिपादन के संदर्भ में लेखक का कहना है कि, 'वास्तव में प्रेम को यह महत्व प्रदान करने के ही कारण इनके पंथ का नाम 'राम सनेही सम्प्रदाय' हो गया।'[१] स्वामी रामचरण रचित 'शब्द प्रकाश' की पंक्तियों को उद्धृत कर लेखक ने उनके द्वारा राम ब्रह्म की उपासना-पद्धति के स्वरूप की चर्चा की है।

४- मृत्यु व शिष्य -- इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय की सूचनाएं संकलित मिल जाती हैं :-

क- किसी राजकर्मचारी द्वारा स्वामी रामचरण की हत्या का षड्यंत्र। किन्तु हत्या करने के उद्देश्य से गये व्यक्ति पर स्वामी जी के कथन एवं व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना तदुपरांत उसके द्वारा क्षमा-याचना,

---

१- पं० परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१६।

ख- स्वामी जी की मृत्यु-तिथि का उल्लेख,

ग- उत्तराधिकारी का समय एवं नामोल्लेख,

घ- स्वामी रामचरण के प्रमुख एवं सामान्य शिष्यों की संख्या का उल्लेख,

ङ- प्रकाशित 'वाणी' एवं ग्रंथों का उल्लेख ।

५- अनुयायी

इस परिच्छेद में रामसनेही सम्प्रदाय के अनुयायियों से संबंधित चर्चा मिलती है :-

क- रामसनेही साधु गले में माला पहनते हैं और ललाट पर श्वेत चन्दन का तिलक लगाते हैं ।

ख- ये अहिंसा में पूर्ण विश्वास करते हैं । दीपक जलाकर उसे ढंक देते हैं जिससे कोई कीड़ा उससे न जल मरे । रात में खाना-पीना नहीं करते। "आधे अषाढ़ से आधे कातिक के समय तक ये अत्यन्त आवश्यक कार्य पड़ने पर ही घर से बाहर निकलते हैं क्योंकि उस समय कीड़ों के कुचले जाने की आशंका रहती है ।"[१]

ग- पंथ में जात-पांत का भेदभाव नहीं है । किन्तु पंथ में प्रवेश से पूर्व उन्हें महंत के पास परीक्षा देनी पड़ती है । वैरागी बनने के लिए ४० दिनों तक उन्हें शिक्षा दी जाती है ।

घ- बारह व्यक्तियों का समुदाय पंथ का संचालन करता है । उनमें से किसी के मरने पर योग्य व्यक्ति द्वारा उसके स्थान की पूर्ति कर ली जाती है ।

ङ- साधु बनते ही सिर के बाल शिखा छोड़कर कटा देते हैं । 'वंदेही'[२] और 'मोनी' साधुओं की दो कोटियां होती हैं ।

---

१-पं० परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१६ ।

२-वास्तव में यह 'विदेही' शब्द है । सम्प्रदाय में मोनी, विदेही और परमहंस साधुओं की तीन कोटियाँ हैं । मैं समझता हूं यह भ्रम उर्दू पुस्तक 'संप्रदाय' [लेखक दी०वी०रा्य] से इस शब्द के लेने से हुआ है -- लेखक ।

च- महंत के मरने पर उसके उत्तराधिकारी का चुनाव शाहपुरा में एकत्र साधुओं एवं गृहस्थों की सभा द्वारा योग्यता के आधार पर होता है।

छ- अंत में रामसनेही सम्प्रदाय की वंशावली भी दी हुई है।

ज- लेखक ने फुटनोट में प्रोफेसर बी०के० राय की 'सम्प्रदाय' पुस्तक का हवाला दिया है जो मिशन प्रेस, लुधियाना से सन् १९०६ में प्रकाशित हुई थी। पं० परशुराम चतुर्वेदी से, जब वे एक बार प्रयाग आए थे, मैंने उनसे प्रो० बी० के० राय और 'सम्प्रदाय' की चर्चा की थी। श्री चतुर्वेदी जी ने बतलाया कि प्रो० राय ईसाई थे और संदर्भित पुस्तक उर्दू में है।

झ- पुस्तक के पृष्ठ ६१९-२० पर रामसनेही सम्प्रदाय की वंशावली और स्वामी रामानंद जी की शिष्य परंपरा से इसका विकास भी दिखलाया गया है जो इस प्रकार है :-

स्वामी रामानन्द
|
स्वामी अनन्तानन्द
|
कृष्णदास पयहारी
|
अग्रदास
|
प्रेमदास
|
भराराम
|
नारायणदास
|
संतदास

उपर्युक्त वंशावली के अंतिम महात्मा स्वामी गंगादास जी के शिष्य स्वामी कृपाराम जी हुए। ये ही स्वामी कृपाराम जी रामसनेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य स्वामी रामचरण जी के गुरु थे। ये स्वामी कृपाराम जी दांतड़ा की वैष्णव गद्दी के महन्त थे। स्वामी रामचरण से अब तक की वंशावली इस प्रकार है :-

---

\+ निर्भयराम जी के बाद दर्शराम जी आचार्य हुए थे किन्तु उन्होंने आचार्य पद का परित्याग कर दिया। वर्तमान आचार्य स्वामी रामकिशोर जी हैं।

---लेखक।

१९- संतकाव्य : पं० परशुराम चतुर्वेदी

संतकाव्य ग्रंथ वस्तुतः संग्रह ग्रंथ है। इसमें संत कबीर से लेकर आधुनिक युग के संतों का परिचय एवं उनकी रचनाओं में से चुनकर कुछ कवितायें संकलित हैं। स्वामी रामचरण का संक्षिप्त परिचय एवं उनकी 'अणभै वाणी' से चुनकर कुछ अंश दिये गये हैं। आरंभ में एक अच्छी भूमिका भी है।

२०- द कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया : सं० हरिदास भट्टाचार्य

श्री रामकृष्ण जन्म शती प्रकाशन समिति द्वारा जन्म शती स्मारिका के रूप में इस ग्रंथ का प्रकाशन तीन भागों में सन् १९३७ में हुआ था। लगभग २००० पृष्ठों के इस ग्रंथ के दूसरे भाग में पृष्ठ २६४ पर आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा स्वामी रामचरण एवं उनके पंथ की चर्चा हुई है।[1] सन् १९५६ में इस ग्रंथ के नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण का प्रकाशन हुआ। अब सेन महोदय का यह लेख [illegible] में 'द मिस्टिक्स आफ नार्दर्न इंडिया' के नाम से संगृहीत हुआ।[2]

२१- वीर विनोद - भाग-२

इस इतिहास ग्रंथ में यद्यपि स्वामी रामचरण का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु फूलडोल महोत्सव की चर्चा अवश्य मिलती है। सम्प्रदाय के सातवें महंत हिम्मतराम जी द्वारा राणा शम्भुसिंह के आग्रह पर उदयपुर ~~रु~~ जाकर फूलडोल मनाना इस ग्रंथ के पृष्ठ २११७ पर वर्णित है। विनोदकार लिखता है --"विक्रमी फाल्गुन शुक्ल ७ [हि० १२९१ ता० ५ मुहर्रम, ई० १८७४ ता० २३ फेब्रुअरी] को शाहपुरा ~~आश्रम~~ के रामसनेही महंत हिम्मतराम अपनी सम्प्रदाय की रीति का फूल-डोल करने के लिए उदयपुर आये।"

इसी पृष्ठ पर फुटनोट में रामसनेहियों के फूलडोल पर्व का संक्षेप में उल्लेख मिलता है। लेखक लिखता है -- "शाहपुरा के ~~रामसनेहियों के~~ रामसनेही साधु

---

१- यह संदर्भ पीछे आ चुका है, दे० श्री रामकृष्ण सैंटिनरी मैमोरियल,वाल्यूम II

२- द कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, पृ० ३७७।

होली के दिन फूलडोल का उत्सव मनाते हैं। इस उत्सव पर दूर दूर से रामद्वारों के रामसनेही साधु आकर अपने महंत की हाजिरी देते हैं और उनको मानने वाले हजारों यात्री भी दर्शन करने को आते हैं। यह जलसा हर साल शाहपुरे में होता है, लेकिन इस वर्ष का उत्सव महाराणा साहिब की इच्छानुसार उदयपुर में किया गया।'

२२- सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानंद सरस्वती

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में रामसनेही सम्प्रदाय एवं स्वामी रामचरण की समीक्षा के नाम पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। पंथ एवं पंथ प्रवर्तक का उल्लेख करने के बाद लेखक ने खण्डन आरंभ कर दिया है। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने रामसनेही सम्प्रदाय का सही चित्र न देकर छीछालेदर करने का प्रयास किया है। एक उपेक्षाभरी दृष्टि से सम्प्रदाय को देखकर स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं --"थोड़े दिन हुए कि एक 'रामस्नेही' मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़कर 'राम राम' पुकारना अच्छा माना है।. . . . . परन्तु जब भूख लगती है तब रामनाम में से रोटी शाक नहीं निकलता।"[१]

राम के नाम स्मरण भाव पर खिल्ली उड़ाने के बाद स्वामी दयानन्द रामसनेहियों पर व्यंग्यात्मक आक्षेप करते हैं। "वे भी मूर्तिपूजा को धिक्कारते हैं परंतु आप स्वयं मूर्ति बन रहे हैं।"[२]

'सत्यार्थ प्रकाश' में रामसनेही सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का खण्डन तो हुआ ही है, संतों के चरित्र पर भी कीचड़ उछाला गया है। इस संबंध में उन्होंने लिखा है--"स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी को 'राम जी' के बिना आनंद ही नहीं मिल सकता था।"[३]

---

१- स्वामी दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३७१।

२- वही, पृ० ३७१।

३- वही, पृ० ३७१।

पंथ के सिद्धान्तों एवं संतो के आचरण के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने के बाद स्वामी महाशय ने पंथ प्रवर्तक स्वामी रामचरण के प्रति भी अनादर भाव के वचनों का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं --"अब इनका जो गुरु हुआ है रामचरण ....... वह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता।"[१]

'~~सत्य~~ सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा सम्प्रदाय एवं उसके प्रवर्तक के संबंध में लिखित विचारों का अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लेखक स्वस्थ समीक्षक नहीं है। उसे रामसनेही सम्प्रदाय में दोष ही दृष्टिगोचर हुए हैं। साथ ही पंथ संस्थापक स्वामी रामचरण के प्रति अनादर भाव व्यक्त करने के लिए उन्हें ग्रामीण, अनपढ़ आदि कहना किसी भी दशा में उचित नहीं। पर उनके मस्तिष्क की हीन भावना अपनी सीमा पार कर तब व्यक्त होती है जब उन्हें रामसनेही और रांडसनेही में कोई अन्तर ही नहीं प्रतीत होता।

स्वामी दयानन्द के इन विचारों से स्वामी रामचरण एवं उनके पंथ रामसनेही सम्प्रदाय के अध्ययन में कोई सहायता नहीं मिलती। हां, सम्प्रदाय की एक भद्दी तस्वीर, पंथ प्रवर्तक का एक विरूप चेहरा देखने को मिलता है। सम्प्रदाय के संबंध में ऐसी भ्रामक एवं गलत सूचनाएं स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे समाज सुधारक से नहीं अपेक्षित थी।

## २३- स्वामी रामचरण-- एक अनुशीलन : डा०अमरचन्द वर्मा

स्वामी रामचरण के जीवन एवं विचारों से संबंधित यह शोध-प्रबंध गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा पी०एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रंथ के प्रकाशक श्री छगनलाल भगवानदास जरीवाला एवं श्री लाभनाथ भूखणदास जरीवाला सूरत (गुजरात) हैं। यह शोधप्रबंध छः अध्यायों में लिखा गया है। लेखक डाक्टर अमरचन्द वर्मा ने स्वामी रामचरण की जीवनी, रचनाओं, सम्प्रदाय, विचार-

---

१- स्वामी दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३७२।

दर्शन आदि विभिन्न विषयों का अध्ययन परिश्रमपूर्वक किया है। इस अध्ययन के कतिपय स्थलों पर मैं डाक्टर वर्मा से सहमत नहीं हूं, फिर भी यह पुस्तक विषय के अध्ययन से सीधे संबद्ध है। मतभेदों के बावजूद भी मेरे अध्ययन में यह पुस्तक उपयोगी रही है। इस अध्ययन में डाक्टर वर्मा तटस्थता, सहृदयता एवं वैज्ञानिकता का दावा करते हैं। पुस्तक के 'प्राक्कथन' में 'इस अध्ययन की विशेषताएं' शीर्षक के अन्तर्गत दसवीं विशेषता की पंक्तियाँ इस तथ्य से संबद्ध हैं। वे लिखते हैं -- "प्रस्तुत प्रबंध के तथ्यों का अध्ययन करते समय पूर्णतः तटस्थ रहा गया है। किन्तु तथ्यों के विवेचन में सहृदयता बरती गयी है। अध्ययन को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का विनम्र प्रयास किया गया है।"[१]

२४-रामसनेही सम्प्रदाय : डाक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

डाक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी लिखित शोध प्रबंध 'रामसनेही सम्प्रदाय' गोरखपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी०एच०डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रंथ की जानकारी प्राप्त होते ही मैंने गोरखपुर विश्वविद्यालय के ग्रंथालय से सम्पर्क स्थापित किया। यह अप्रकाशित शोध प्रबंध तीनों रामसनेही सम्प्रदायों क्रमशः शाहपुरा, खेड़ापा और रैण के मूलाचार्यों तथा तीनों ही सम्प्रदाय के अन्य संत कवियों का संक्षिप्त विवरण तो प्रस्तुत करता ही है, रामसनेही सम्प्रदाय के स्वरूप एवं दर्शन पर भी प्रकाश डालता है। लेखक ने तीनों सम्प्रदायों में कोई भेद नहीं देखा है और तीनों को एक ही वृक्ष की तीन शाखाओं के रूप में निरूपित किया है।

इस संबंध में मेरा निवेदन है कि इन तीनों ही रामसनेही सम्प्रदायों का एक वृक्ष की शाखा जैसा कोई संबंध नहीं है। तीनों ही एक दूसरे से असम्बद्ध सम्प्रदाय हैं तथा तीन आचार्यों द्वारा अलग-अलग स्थानों पर स्वतन्त्र रीति से स्थापित किये गये हैं। यह एक संयोग ही है कि तीनों आचार्यों ने अपने अपने सम्प्रदाय का नाम रामसनेही रखा है। मैंने शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के अधिकारी संतों से

---

१- स्वामी रामचरण - एक अनुशीलन, प्राक्कथन, पृ० च।

जब तीनों सम्प्रदायों के आपसी संबंधों की बात पूछी तो उन लोगों ने ऐसे किसी संबंध को स्पष्टतया अस्वीकृत कर दिया । इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी ने मुझे बतलाया कि न तो शाहपुरा का रामसनेही सम्प्रदाय रैण या खेड़ापे में से किसी की शाखा है और न रैण या खेड़ापा के पंथ शाहपुरा की शाखा है ।

सन् १९५३ में फूलडोल पर्व के अवसर पर मैं शाहपुरा गया था । वहां मैंने दांतड़ा की वैष्णव गद्दी के महंत का आगमन देखा ।[1] एक दादू पंथी संत भी वहां दिखाई पड़े थे, किन्तु रैण या खेड़ापा के रामसनेही पंथों का कोई भी साधु वहां नहीं आया था । वैद्य केवलराम स्वामी ने 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' में इस संबंध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि --"नाम साम्य से जनसाधारण को ही नहीं, विद्वानों तक को एक सम्प्रदाय होने की भ्रान्ति हो जाती है ।"[2]

अतः मैं इस निष्कर्ष पर हूं कि तीनों सम्प्रदायों का अलग-अलग अध्ययन अपेक्षित है । कम से कम शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय का विशाल साहित्य तो कई खण्डों में विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखता है । समीक्षा के साथ-साथ सम्प्रदाय के संत कवियों द्वारा रचित ग्रंथों के पाठ-सम्पादन की समस्या है । फिर भी डाक्टर त्रिपाठी का यह शोधप्रबंध एक महत्वपूर्ण कृति है ।

अब विवेच्य कवि के अध्ययन में सहायक साम्प्रदायिक ग्रंथों की समीक्षा प्रस्तुत है ।

२५- गुरलीला विलास : जगन्नाथ

इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति मुझे गोराकुण्ड रामद्वारा, इन्दौर के संत श्री सन्मुखराम जी से प्राप्त हुई थी । इस हस्तलिखित गुटके में तीन पुस्तकें हैं --

---

१- स्मरणीय है कि दांतड़ा की वैष्णव गद्दी के पीठाचार्य स्वामी कृपाराम जी स्वामी रामचरण के गुरु थे । स्वामी रामचरण दांतड़ा गद्दी को गुरुगद्दी होने के कारण बड़ा सम्मान देते थे । दांतड़ा के आचार्य को सम्मान देने की यह परम्परा तभी से चली आ रही है । आज भी दांतड़ा के आचार्य के आगमन पर उन्हें शाहपुरा में ससम्मान आचार्य के समकक्ष आसन मिलता है -- लेखक ।
२- वैद्य केवलराम स्वामी : श्री रामस्नेही संप्रदाय, 'प्रकाशकीय', पृ० १ ।

१- रामपद्धति, २- गुरलीला विलास, ३- श्री दुल्हेराम जी महाराज की महिमा । इस हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह ग्रंथ के प्रतिलिपिकर्ता श्री नोनंदराम हैं जिन्होंने पौष कृष्ण १२, संवत् १६७६ वि० को इसकी प्रतिलिपि इन्दौर के गोराकुण्ड रामद्वारा में पूर्ण की ।

'गुरलीला विलास' जगन्नाथ माहेश्वरी द्वारा लिखित ग्रंथ है । श्री जगन्नाथ स्वामी रामचरण के शिष्यों में से एक थे । 'गुरलीला विलास' के अंत में ग्रंथकार ने ग्रंथ परिचय इस प्रकार दिया है --

> "साहिपुर सुखधाम राजकरै अभरेस नर्प ।
> जगन्नाथ सो नाम जात जकि मुमेसरी ।
> अठारा सै असाठ माघ सुध पंचमी ।
> ग्रंथ बनायो हाट बाट शनीवर जानिये ।
> गुरलीला ज विलास सुध माफक बरन्यां कछु ।
> जगन्नाथ अभ्यास किरपा सुत जानि ये ।
> ये है ग्रंथ बांचै सुणै हिरदै करै विचार ।
> रामभजन जन संग करै तो सिरतां लगे न बार ।"[1]

उपर्युक्त के अनुसार यह ग्रंथ शाहपुरा में निर्मित हुआ था । ग्रंथकार ने अपना परिचय 'जगन्नाथ मुमेसरी' और 'किरपा सुत' लिखकर दिया है अर्थात् उनके पिता का नाम किरपा था और वे मुमेसरी जाति के थे । ग्रंथ गुरलीला विलास की रचना उन्होंने माघ सुदी पंचमी, संवत् १८६० वि० शनिवार के दिन हाट में की थी । अंतिम दो पंक्तियों में ग्रंथ की महिमा लिखी हुई है ।

गुरलीला विलास में जगन्नाथ ने स्वामी रामचरण के जीवन की आद्यन्त कथा लिखी है । जीवन की आरंभिक कथा कवि ने कानों सुनी थी पर अन्त की उसकी अपनी आंखों देखी थी । --

> "आदि कथा श्रवणां सुनी निज निजरयां देखी अंत ।
> जगन्नाथ बरणी उभे सो सुणियो सुधवन्त ।"[2]

---

१- गुरलीला विलास की हस्तलिखित प्रति ।

२- वही ।

प्रामाणिकता

इस 'गुरलीला विलास' ग्रंथ का रचयिता जगन्नाथ सुमेरी स्वामी रामचरण के जीवनवृत्त के संबंध में लिखे गए विवरण की प्रामाणिकता के विषय में भी अन्त में लिखता है जिससे ग्रंथ की प्रामाणिकता में कोई संदेह नहीं रह जाता। ग्रंथकार के अनुसार यह गुरलीला अमृत की बूटी सदृश है जिसे उसने जैसा सुना व देखा था बुद्धि के अनुसार कह डाला -

"गुरलीला अमृत की बूटी।
सो हम भणी सुणी सब दीठी।"[1]

वह कहता है कि रामचरण महाराज १८५५वरस में शरीर त्याग निर्वाण में लीन हुए। यह सारी दुनिया जानती है। जगन्नाथ उस दिन वहां उपस्थित था किन्तु उस दिन लीला नहीं लिखी गई। यह लीला पांच वर्ष बाद लिखी गई --

"रामचरण महाराज जन, तन तज गये निरवाण।
अठारा सै पचपन बरस जाणै सकल जहान।
ता दिन क्ष लीला ना लिखी हाजर था जगन्नाथ।
पांच बरस पाछै लिखी जाको छ अवरज आथ।"[2]

जगन्नाथ ने इसी संदर्भ में लिखा है कि एक चतुर भाई ने जिज्ञासा की कि तुमने जन्म-कथा कान से सुनी है, स्वयं तुम नहीं जानते। इसलिए मेरे मन में शंका उत्पन्न हुई है। तुम इसका समाधान करो कि अस्सी बरस की बातें कैसे तुम्हारे हाथ लगी -

"जनम कथा कानों सुणी तुम नहीं जानत आप।
ऐसे मैं उर उपजी, ताको करो निसाफ।
असी बरस की बातां, कैसे आई हाथ।
ताको उत्तर अब कहूं सो बरणौं जगन्नाथ।"[3]

---

१- गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२- वही।

३- वही।

इस प्रश्न का उत्तर भी इसी सिलसिले में कवि ने दिया है --

"एक बार रामजन महाराज ने चाटसू में चौमासा किया । हम सभी रामसनेही दर्शनार्थ वहाँ गए । मार्ग में तीसरा विश्राम पारकर सोडा पहुँच गए । गुरुदेव की जन्मभूमि को हमने प्रणाम किया और उस नगर में दो पहर ठहरे । यह संयोग १८६० के वर्ष में बना था । वहाँ सभी गुरुदेव की आदि कथा कहने लगे । तभी वहाँ हम लोगों को एक शतवर्षीय व्यक्ति प्रेमपूर्वक मिला । उसने बीजावर्गी जाति की कथा कह सुनायी । उस वृद्ध पुरुष ने स्वामी जी के माता-पिता का नाम बतलाया और जिस घर में उनका जन्म हुआ था, उसे भी दिखलाया । उसने सभी बातें अलग-अलग बतलाईं और हमने उसे हृदयस्थ कर लिया ।[१]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की आदि कथा का जो वर्णन जीवनीकार जगन्नाथ ने किया है, वह प्रामाणिक है । जगन्नाथ ने स्वयं संवत् १८६० वि० में सोडा जाकर छानबीन की थी । वहाँ उन्होंने एक शतवर्षीय पुरुष से भेंट की जिससे उन्हें स्वामी रामचरण के आरंभिक जीवन-वृत्त की जानकारी मिली । स्वामी जी के जन्म-भवन को भी जीवनीकार ने अपनी आँखों देखा था । उनके पिता और माता का नाम भी उन्हें वहीं उसी शतवर्षीय वृद्ध मनुष्य से ज्ञात हुआ । इसके अतिरिक्त जीवन के शेष विवरण का आधार वह

---

१- जनमभूमि गुरुदेव की पल से करी प्रनाम ।
पहरदोय ता नगर में सबही कीयो मुकाम ।
बरस साठ के साल से ऐसो बण्यो संजोग ।
आदि कथा गुरुदेव की कहन लगे सब लोग ।
सौ बरसां को पुरस इक मिलियो हेत लगाय ।
बिजा बरगी जात की सब बिधि कही सुणाय ।

मात पिता का नाम बताया ।
जनम लीयो सो भवन दिखाया ।
सारी बात भिनीभिन कही ।
सो सब हम हिरदै धर लही ।

--- गुरुलीला विलास, छ० पृ० ।

स्वयं है। अत: मैं इस निष्कर्ष पर हूं कि इस ग्रंथ में लिखित स्वामी रामचरण का जीवन वृत्त प्रामाणिक है।

२६- ब्रह्मसमाधि लीन जोग : जगन्नाथ

'ब्रह्म समाधि लीन जोग' ग्रंथ स्वामी रामचरण की रचनाओं के संग्रह 'अणभै वाणी' के अन्त में पृ० १०७५ से १०८३ पर मुद्रित है। इस ग्रंथ के रचयिता स्वामी जी के शिष्य एवं जीवनीकार जगन्नाथ हैं। रचनाकार जगन्नाथ ने इस ग्रंथ के रचना-काल का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में इस प्रकार किया है --

"अठारा सै पचपन बरस, रवि चवदश वैशाख।
ग्रंथ सम्पूरण जगन्नाथ, सुनि जानो सुधि पाख।"[१]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ की रचना-समाप्ति वैशाख सुदी चतुर्दशी रविवार, संवत् १८५५ वि० को हुई थी। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि स्वामी रामचरण की मृत्यु वैसाख बदी पंचमी बृहस्पतिवार, संवत् १८५५ वि० को हुई थी, अर्थात् स्वामी जी के निधन के चालीसवें दिन यह ग्रंथ लिखकर पूर्ण हो गया था। सम्भव है कि स्वामी जी के ब्रह्मलीन होने के दिन से ही जगन्नाथ जी ने इस ग्रंथ का लेखन आरंभ कर दिया हो।

'ब्रह्म समाधि लीन जोग' में जीवनीकार ने स्वामी रामचरण का संक्षिप्त जीवन-चरित, क्रमश: जन्मसंवत्, जन्मस्थान, गृहत्याग, वैराग्यधारण करने से लेकर पंथ-स्थापन, शिष्य समाज, भीलवाड़ा-शाहपुरा, शाहपुरा के नरेश भीमसिंह, अमरसिंह, फालडोल, वाणी रचना एवं मृत्यु तक का विशद वर्णन किया है। जगन्नाथ जी स्वामी रामचरण के बहुत निकट सम्पर्क में थे। उन्होंने स्वामी जी के ब्रह्मलीन अवस्था की बड़े विस्तार के साथ चर्चा की है। ग्रंथ का अधिकांश वर्णन आंखों देखा हाल है।

स्वामी रामचरण के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन जी ने अपने ग्रंथ 'राम पद्धति' में स्वामी रामचरण के निधन-प्रसंग की चर्चा की है और इस संबंध में उल्लख

---

१- 'अणभै वाणी, पृ० १०८३।

उन्होंने जगन्नाथ रचित इस ग्रंथ `ब्रह्म समाधि लीन जोग` की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।[१] स्वामी रामचरण के अध्ययन में यह ग्रंथ भी अत्यन्त प्रामाणिक एवं उपयोगी है।

२७- रामपद्धति : स्वामी रामजन

ग्रंथ `राम पद्धति` प्रकाशित `अणभै वाणी` के अन्त में पृष्ठ १०७१ से ७५ पर मुद्रित है। इस लघुग्रंथ के रचयिता रामसनेही सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य स्वामी रामजन जी हैं। स्वामी रामजन स्वामी रामचरण के शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे। इस लघुग्रंथ में उन्होंने अपने गुरु की महिमा का गान किया है। एकाध स्थल पर उन्होंने स्वामी जी के जीवन का प्रसंग भी उपस्थित कर दिया है। जैसे स्वामी रामचरण की मृत्यु तिथि का स्पष्ट उल्लेख[२] एवं तत्संदर्भ में जगन्नाथ रचित `ब्रह्मसमाधि लीन जोग` ग्रंथ की चर्चा। किन्तु ग्रंथकार ने इस ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है। फिर भी इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ की रचना `ब्रह्मसमाधिलीन जोग` के बाद ही हुई है।

इस ग्रंथ में ग्रंथकार ने फूलडोल महोत्सव के अवसर पर स्वामी रामचरण के दर्शनार्थ नगरराज के उपस्थित होने की बात भी कही गई है।

"नगर लोग अरु नगरराज।
धनभाग कहुं यहां थे समाज।"[३]

---

१- जाकी रीत जो अनुक्रम्मसूं, जगन्नाथ कछु भाखी।
ब्रह्म समाधि लीन ग्रंथ जो, ताके मांही दाखी।
-- अ०वा० में संगृहीत `रामपद्धति` से, पृ० १०७४

२- रामहिं राम भई धुनिसारे,
संवत अष्टादश पचपन्ना,
बैसाख बदी की पांचै परगट,
गुरुवार किये जन गवना।" -- अ०वा० [रामपद्धति], पृ० १०७४।

३- वही, पृ० १०७३।

इस 'अणभैवाणी' संग्रह के अन्त में 'प्रह्लाद चरित' नामक लघु पुस्तक भी जुड़ी हुई है। फूलडोल के ही अवसर पर जब महाराज रामचरण जी सूर्य के समान सुशोभित सबको दर्शन देकर निहाल करते थे, उस समय इस 'प्रह्लाद चरित' का उच्चारण भी होता था। इस सभा को रामजन जी 'राम सभा' कहते हैं और इसमें नगर के नर-नारियों तथा राजा के उपस्थित होने की बात की पुष्टि भी करते हैं :--

"महराज आप आसण बिराज।
जहाँ फूलडोल समयो समाज।
दिवि रूप आप दीदार शोभ।
दर्शै कियां मिट जात क्षोभ।
... ... ...
जहाँ राम सभा भरपूर संत।
सब करैं भजन निज नाम तंत।
... ... ...
अरु रामसनेही बहुत वृन्द।
तहाँ आय बैठे नरेंद।
नगर लोग नर - नारिजेत।
सब चल आये दर्श हेत।
प्रह्लाद चरित करि हैं उचार।
जहाँ राम टेक जग को उधार।"[१]

"गुरलीला विलास" और "ब्रह्मसमाधि लीन जोग" में जगन्नाथ ने मृत्युतिथि का दिन और संवत् के साथ उल्लेख किया है पर स्वामी रामजन ने अपने इस राम पद्धति ग्रंथ में दिन, तिथि, संवत् के साथ पक्ष का भी उल्लेख कर दिया है।

"थे रामचरण महराज राज।
इम वपु त्यागन करिहि आज।

---

१- अ० वा० [रामपद्धति], पृ० १०७३।

है। जो जीवन की वास्तविक अनुभूतियों और स्पन्दनों को अंकित करने में पूर्णतः सक्षम है। हिन्दी साहित्य की यह दशा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मतानुसार सन् १९१३ ई० से सन् १९२० ई० तक का समयआलोचित स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति के अधिक सघन होकर छायावाद की विशिष्ट काव्य-शैली के रूप में परिवर्तित और परिणत होने का समय है। किन्तु छायावादी काव्य-शैली का सुस्पष्ट निर्माण सन् १९२० ई० के आस-पास में हुआ।[२२] इसी समय से स्वच्छन्दतावादी कवित्रय प्रसाद, निराला और पन्त के काव्य-वैभव के विकास और उन्मेष का काल माना जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से भारत का जो नव निर्माण हो रहा था उस समय भारतीय आत्मा अपने पुरातन संस्कारों के भार से पूर्णतः मुक्त नहीं हो रही थी। इसी कारण भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की रचनाओं में नवीनता के लक्षणों के होने पर भी पुरातनता की स्वीकृति स्पष्टतः परिलक्षित होती है। किन्तु सन् १९२० ई० से भारत में राजनीतिक स्वतंत्रता के लिये उन्मुक्त संघर्ष के प्रारम्भ होते ही साहित्य में भी,लगभग इसी समय से, नीति तथा मर्यादा की सीमाओं से अव्याहत और गंभीर एवं सुविकसित सांस्कृतिक मूल्यों से समन्वित स्पन्दनमय जीवन का चित्रण उपर्युक्त कवित्रय की रचनाओं में होने लगा, जिनके द्वारा जीवन की वह आकांक्षा उपस्थित हुई जो समस्त स्वतंत्रताओं और नयी मूल्य चेतनाओं के आधार पर प्रतिष्ठित है। बीसवीं शताब्दी के इस दूसरे दशक में कवियों की और विशद् परिवेश में स्वच्छन्दतावादी कवियों की रचनायें राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पीठिका पर विरचित होने लगीं इस युग की रहस्यवादी प्रवृत्तियों के प्रेरणा स्रोतों के रूप में सांख्य, वेदान्त, शैवागम, बौद्ध दर्शन, सूफी दर्शन आदि को स्वीकार किया जा सकता है यद्यपि अनुकरण में अधिक मौलिक व्यक्तित्वानुभूति के संयोग से एक विशुद्ध धर्म-संप्रदाय-विच्छिन्न आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण हो जाता है जिसके सम्बन्ध में जयशंकरप्रसाद जी के वक्तव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय

---

२२. अवन्तिका, जनवरी, सन् १९५४ ई०, पृ० १९१

हैं, वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है । यह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है । इसमें अपरोक्ष की अनुभूति, समरसता, तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदं से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है ।[२३] छायावादी युग की एक विशेषता यह भी है , इसमें विभिन्न चिन्तन धाराओं को समाहार का प्रयास किया है और दर्शन को सैद्धान्तिक चर्चाओं को एक व्यावहारिक भाव-भूमि देने का प्रयास किया है ।[२४] व्यक्तिवादी युग की इन विशेषताओं का समग्र स्वरूप और अज्ञात की जिज्ञासा से अनुप्राणित रहस्यवाद चिन्तन की सूक्ष्मता से संबंधित छायावाद और जीवन एवं साहित्य की प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की कामना से पल्लवित स्वच्छन्दतावाद का सम्पूर्ण समाकलन प्रसाद, निराला तथा पन्त की कृतियों में देखा जा सकता है । इन तीनों के लिये एक समन्वित संज्ञा के रूप में रोमांटिसिज्म अथवा स्वच्छन्दतावाद शब्द लिया जा सकता है । छायावाद अथवा विशुद्ध अविद्या में स्वच्छन्दतावाद या पलायनवाद नहीं है, वरन् विदेशी पराधीनता तथा पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहने वाले राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है ।[२५] जीवन की व्यक्ति विरोधी संकुलता और परंपराबद्ध सामाजिकता से खीझ कर नवयुग के कवियों ने बड़ी निर्भीकता के साथ व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यंजना की । जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी आत्म कथा का स्पष्टीकरण लिखा और निराला जी ने खुले जगत में स्वीकार किया कि 'मैंने' 'मैं' शैली अपनायी[२६] और पन्त जी ने 'उच्छ्वास, 'आंसू और ग्रन्थि में प्रणयानुभूति को अबाध रूप से अभिव्यंजना दी ।[२७] आधुनिक युग के तापों से उष्मा प्राप्त कर तीनों कवियों ने अपनी कृतियों में मानवतावादी

---

२३. काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ६८-६६ ।

२४. डा० प्रेमशंकर- काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ, आलोचना, २५ जनवरी सन् १६५६ ई०

२५. नामवर सिंह - छायावाद, पृ० १२ ।

२६. परिमल, अधिवास, पृ० ११७ ।

२७. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० १७

उदात्त प्रवृत्तियों को सांस्कृतिक पीठिका पर निरूपित किया है जिसमें भारतीय दर्शन का वैभव सन्निहित है, साथ ही अन्तर्दृष्टि विधायिनी कल्पना, सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति तथा उन अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिये सूक्ष्म कला का समावेश भी उनमें हुआ है। जीवन में प्रणय के नव-परिचय के क्षण की रहस्यमयता का परिचय प्रसाद जी देते हैं :-

नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष।
गूढ़ अन्तर का छिपा रहता रहस्य विशेष,
दूर जैसे सघन वन-पथ अन्तका आलोक,
सतत् होता जा रहा हो, नयन की गति रोक।[२८]

निराला जी स्नेह के उदय की मनोदशा का संक्षिप्त, पर मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत कर रहे हैं :-

दूर थी,
खिंच कर समीप ज्यों मैं हुई
अपनी ही दृष्टि में,
जो था समीप विश्व,
दूर दूर तक दिखा।
मिली ज्योति छवि से तुम्हारी
ज्योति छवि मेरी,
नीलिमा ज्यों शून्य से,
बंधकर मैं रह गयी।[२६]

पन्त जी प्रेयसी के साथ जो बातें हुई थीं उनका दुबारा स्मरण कर रहे हैं -

---

२८. कामायनी, वासना सर्ग, पृ० ८१
२६. अनामिका, 'प्रेयसी', पृ० ३,४।

पूर्व सुधि सहसा जब सुकुमारि ।
सरल-शुक-सी सुखकर-सुर में
तुम्हारी भोली बातें, कभी दुहराती हैं उर में,
अगन से मेरे पुलकित प्राण
सहस्रों सरस स्वरों में कूक,
तुम्हारा करते हैं आह्वान,
गिरा रहती है श्रुति - सी मूक ।[३०]

प्रसाद, निराला और पन्त के विषय में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी निम्नलिखित बातें कहते हैं, कविताओं के भीतर से जितना प्रसन्न अथच अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है, उतना न प्रसाद जी का है, न पन्त जी का ।[३१]

इन तीनों कवियों की रचनाओं में जीवन का एक नवीन उल्लास, नवीन सौन्दर्य बोध और प्रकृति के साथ नवीन रागात्मक सम्बन्ध पाये जाते हैं । स्वस्थ चेतना, भावना और सौन्दर्यदृष्टि की नवीनता के कारण इन लोगों की कृतियों में छायावादी काव्य की दीप्ति, यौवन तथा उन्मेष सर्व प्रथम दृष्टिगोचर होता है जिससे हिन्दी साहित्य में जीवन का एक नया स्वर गूंजने लगा । एक नवीन और चेतन काव्यलोक की सृष्टि होने लगी और बौद्धिक रागात्मक-चेतनाओं के समन्वय द्वारा जीवन का एक नया नारा घोषित होने लगा अर्थात् यहीं से हिन्दी साहित्य में रागात्मक आत्म-संस्कार की अविकल स्थापना होने लगी । यह एक प्रकार से अपने युग की अतिशय भावात्मक अभिव्यंजना थी । छायावादी काव्य की भावना और पंक्तियां दोनों में पुरातनता के प्रति विद्रोह का अर्थात् स्वच्छन्दता का और जो वैशिष्ट्य मिलता है, लाक्षणिकता, वचन भंगिमा, भावानुयायी पद-योजना, प्रतीक-विधान आदि प्रक्रियागत विशेषताओं के साथ सामन्ती रूढ़ियों से उन्मुक्तता, मनोवृत्त की अन्तर्मुखता, कल्पना-नियोजन की असाधारणता आदि विशेषताओं का जो समन्वय पाया जाता है - वह युगीन प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल है और जागरूक जीवन के सतत् गतिशील अन्वेषणों और प्रयोगों का एक नवीन किन्तु अकृत्रिम सोपान

---

३०. आंसू पल्लव, पृ० १४, १५ ।
३१. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० १७७ ।

है जिसमें निराला जी का स्थान अग्रणी है ।

## आधुनिक असमीया काव्य की पृष्ठभूमि :-

व्यक्ति अथवा समाज के माध्यम से किसी देश या जाति की सभ्यता, संस्कृति आदि विकासशील और साधारणीभूत मानवधर्म के चिन्तन को प्रचार करने वाला साहित्य शाश्वत तथा अमर बन सकता है । महान् साहित्य अपने आधुनिकत्व के प्रति अधिक सचेत रहता हुआ सनातन जीवन मूल्यों के बोध को प्रस्फुटित करता है । साहित्य सामयिक मूल्यबोध के साथ उसके आलोक में नयी मूल्य चेतना का विकास सनातन सांस्कृतिक परिवेश में करता है । साहित्य के लिये वर्तमान चिंतन जितना महत्वपूर्ण है उतना ही अतीत भी महत्वरखता है क्योंकि वर्तमान कवि का रचना-काल कला की आधार शिला होने के कारण अतीत और वर्तमान के समन्वय से ही साहित्य एक आलोक पूर्ण भविष्य का निर्माण करता है । मानव अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाता है और साथ ही परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने का नाना प्रकार का प्रयत्न करता है । मानव साहित्य भी उसकी समस्त प्रवृत्तियों तथा उसके जीवन के समस्त स्तरों का शाश्वत और संवेदनमय जीवन दर्शन के साथ उद्घाटन करता है । सत् साहित्य समस्त राष्ट्रीय और सांस्कृतिक औदात्य का प्रतिनिधित्व करता है । उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में आधुनिक असमीया साहित्य का आरम्भ हुआ था । इस समय असमीया के आधुनिक काव्य अधिकांशत: जीवन से अनविच्छिन्न न रहने के कारण और मानव के अन्तर की धड़कनों को अनुभूत कर पूर्ण संवेद्यता के साथ अभिव्यक्त न करने के कारण सामान्य कोटि का ही है । मानव अन्तर के संवेदनों, गूढ़तम आन्तरिक प्रवृत्तियों, स्पन्दनों आदि का कलात्मक उद्घाटन तत्कालीन असमीया साहित्य द्वारा नहीं हुआ है । उस समय के साहित्यकार मानव जीवन के नितान्त अन्तरंग क्षणों की सूक्ष्मतम अनुभूतियों को युग-बोध के साथ चित्रित नहीं कर सके हैं । मात्र साधारण वर्णनात्मक छोटी-छोटी कवितायें हैं ।

असमीया के आधुनिक काव्य का प्रारम्भ अंग्रेजों के असम आगमन से ही माना जाता है । सन् १८२६ ई० में अंग्रेज और ब्रह्म देश के बीच में इयाण्डाबु नामक स्थान पर एक राजनीतिक संधि हुयी थी जिसके अनुसार असम के अधिकारी बने अंग्रेज। अंग्रेजों के आगमन के साथ साथ ईसाई धर्म प्रचारार्थ ईसाई मिशनरी लोग भी असम आये थे और उनका प्रधान धर्म केन्द्र शिवसागर में ही बनाया गया था । बंगाल के श्रीरामपुर के मुद्रणालय से बाइबिल का असमीया रूपान्तर सन् १८३३ ई० में प्रकाशित हुआ था । इसके अनुवादक आत्माराम शर्मा थे और इसको असमीया के आधुनिक साहित्य का आदि ग्रन्थ माना जाता है । इसके बाद सन् १८३६ ई० में राबिन्सन साहब ने असमीया भाषार व्याकरण के नाम से असमीया का प्रथम व्याकरण अंग्रेजी में लिखा । उनके आदर्श से अनुप्राणित होकर असमीया लोग भी आधुनिक भाषा में असमीया का साहित्य-जगत् समृद्ध करने का प्रयत्न करने लगे । किन्तु सन् १८३६ से सन् १८७३ ई० तक असमीया के स्थान पर बंगला का प्रयोग असम की पाठशालाओं और कचहरियों में किया जाता था जो असमीया जाति तथा भाषा के लिए बहुत ही अनिष्टकर सिद्ध हुआ । बाद में बंगला को हटाकर फिर असमीया को स्थापित किया गया किन्तु बंगला और असमीया के बीच तभी से जो लड़ाई शुरू हो गयी वह आज तक चल रही है ।

अरुणोदय नामक मासिक पत्रिका के प्रकाशन से असमीया साहित्य प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। अरुणोदय ने सन् १८४६ ई० से सन् १८८२ ई० तक पूर्ण रूपेण असमीया जाति और भाषा की सेवा की । इसी युग के लेखकों को आधुनिक असमीया साहित्य के प्रकृत-निर्माता की उपाधि दी जा सकती है । अरुणोदय युग के ही आस-पास विश्वेश्वर वैदाधिप ने बेलिमारर बुरंजी और दुतिराम हाजरिका ने कलिभारत नामक दो ऐतिहासिक ग्रन्थ छन्दोबद्ध लिखे । अखिल भारतीय दृष्टि से सर्व प्रथम छन्दोबद्ध इतिहास असमीया भाषा में ही मिलता है । भाषा अप्रकृत और अस्वाभाविक होते हुये भी इसकी शब्द-योजना, उपमा आदि अत्यन्त विचक्षण और हृदयग्राही है । दोनों करुणा और भक्ति रस से परिपूर्ण हैं । इनमें असम के राजाओं के वर्णन के साथ-साथ राम और कृष्ण को प्राधान्य दिया गया है । पार्थिव राजक्षमता क्षणस्थाई है । उसको छोड़ कर

भगवद् भक्ति में मन को एकाग्र करना, अध्यात्मवाद और जड़वाद के मध्य सामंजस्य स्थापित करना ही इन दोनों इतिहासों का मूलोद्देश्य था । यूरोप और अमेरिका के ईसाई धर्म प्रचारकों ने अरुणोदय पत्रिका के द्वारा आधुनिक असमीया साहित्य का प्रारम्भ किया था किन्तु इसको दो कदम आगे बढ़ाया आनन्दराम ढेकियाल फुकन ,हेमचन्द्रबरुवा, गुणाभिराम बरुवा आदि व असमीया प्रेमी साहित्यकारों ने ही । अरुणोदय युग के साहित्य में असमीया जातीयतावाद, असमीया समाज की समस्या और असमीया लोगों की जीवन-यात्रा की विविध प्रणालियों की अभिव्यक्ति का अभाव था । अंग्रेजों का शासन आरंभ होने के साथ-साथ असम के एक विदेशी सभ्यता-संस्कृति और वहाँ की प्राचीन संस्कृति के बीच भावधारा, रीति-नीति, धर्म जीवन आदि की दृष्टि से एक संघर्ष का जन्म हुआ था किन्तु अरुणोदय युग में इन सब को उस समय की रचनाओं में स्थान नहीं मिला था । इसके स्थान पर उस युग की रचनाओं में ईसाई धर्म की रीति-नीति, धर्म मूलक निबंध और कहानी, देश विदेश के संवाद आदि को प्रमुख स्थान मिलता रहा । असमीया जाति के हृदय में देशात्म-बोध का जागरण, एकता का स्थान अथवा ईसाई धर्म के प्रचार के बिना समाज संस्कार करना उनका उद्देश्य नहीं था । उन लोगों का मूल उद्देश्य था ईसाई धर्म का प्रचार उसी समय असमी या समाज में स्वदेश-प्रीति और जातीयता-बोध का ज्ञान देने के कारण आनन्द राम ढेकियाल फुकन,हेमचन्द्र बरुवा, और गुनाभिराम बरुवा आदि दूरदर्शी लोगों का आविर्भाव हुआ । वास्तव में वे असमीया समाज को ईसाइयों के प्रचारधर्मी आक्रमण से बचाने में समर्थ हुये ।

'अरुणोदय' युग में प्रधानतः गद्य-साहित्य की ही रचना हुई थी । अंगरेज शासन और ईसाई धर्म के प्रचार के समय असमीया जाति और समाज पर अंगरेजी और बंगला भाषा तथा साहित्य का प्रभाव पड़ने लगा । असमीया काव्य जगत् में बंगाल के माइकेल मधुसूदन दत्त के 'अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग और आत्मनिष्ठ कविता की रचना एक नवीन परिवर्तन की सूचना है । इस युग की रचनाओं की विशेषता यह है कि असमीया और समाज में स्वदेशानुराग और जातीय चेतना

का उन्मेष उपलब्ध होता है। गुणाभिराम बरुवा, लम्बोदर बरा, कमलाकान्त भट्टाचार्य, भोलानाथ दास आदि की रचनाओं में जातीय अध:पतन का आक्षेप, पराधीनता की ग्लानि और जागरण के आह्वान की आवाज सुनायी पड़ती है।

असमीया साहित्य में 'जोनाकी' पत्रिका के माध्यम से एक नये युग का आरंभ हुआ। असम के कलकत्ता निवासी विद्यार्थियों ने सन् १८८८ ई० में असमीया भाषा और साहित्य की उन्नति और सुधार के लिये कलकत्ता में 'असमीया भाषार उन्नति साधिनी सभा' की प्रतिष्ठा की। 'जोनाकी' इसी संस्था की पत्रिका थी। जोनाकी-युग में असमीया साहित्य में पाश्चात्य रोमांटिक भावधारा का प्रवेश बंगला साहित्य और अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से होने लगा। जोनाकी युग की रचनाओं पर बंगाल के हेमचन्द्र बंधोपाध्याय, मधुसूदन दत्त, नवीनचन्द्र सेन, बिहारी लाल आदि कवियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। रोमांटिक से प्रभावित असमीया साहित्य में गीति-काव्य की रचना अत्यधिक होने लगी। लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा, चन्द्रकुमार आगरवाला, हेमचन्द्र गोस्वामी, रघुनाथ चौधुरी, हितेश्वर बर बरुवा आदि ने अपनी रचनाओं के द्वारा असमीया कविता और काव्य-जगत का पर्याप्त विकास किया। इस रोमांटिक जोनाकी-युग में ही असम के विविध क्षेत्रों में नाना परिवर्तन उपलब्ध होते हैं। असम में शिक्षा का प्रसार हुआ, राजनीतिक आन्दोलनों का जन्म हुआ, सामाजिक परिवर्तन का आरम्भ हुआ, प्राचीन आदर्श के स्थान पर नवीन आदर्श का प्रयोग हुआ और जीवन का मूल्य सम्पूर्णत: नवीन होने लगा। 'मानव प्रेम-अनुराग, देश प्रेम मूलक काव्य, सॉनेट, अमित्राक्षर छन्द, ऐतिहासिक उपन्यास, छोटी कहानी, आधुनिक नाटक, समालोचना, हास्य-व्यंग-रसात्मक साहित्य नूतन-नवन्यास आन्दोलन की सृष्टि है।[३२]

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम अंश में अंग्रेजी शासन के समय असमीया साहित्य पर पाश्चात्य सामाजिक और मानसिक चिन्तन धारा का अत्यधिक प्रभाव

---

३२ डा० महेश्वर नेओग- आधुनिक असमीया साहित्य, पृ० २०।

पड़ा था । 'अरुणोदय' और 'जोनाकी' पत्रिका के मध्य का समय ही आधुनिक असमीया काव्य की भूमिका का काल है । सन् १८७५ ई० में रमाकान्त चौधुरी कृत 'अभिमन्यु बध' काव्य और सन् १८८८ ई० में भोलानाथ दास कृत 'सीता हरन काव्य ' का प्रकाशन हुआ था । रमाकान्त चौधुरी और भोलानाथ दास ने ही सर्व प्रथम अपनी रचनाओं में अमित्राक्षर छन्द का (मुक्त छन्द) प्रवर्तन किया और भोलानाथ दास की 'कविता माला' और 'चिन्ता तरंगिनी' कविता संग्रह में सर्वप्रथम असमीया कविता में अंग्रेजी कविता की-शैली का प्रयोग किया गया है :-

................ ...... सहस्र सहस्र
शिलारूपी गज-माले आचरित देह
कोन स्थले, कोन स्थले, उच्च तरुराजि,
तृण-पत्र-लता वने शरीर सज्जित ।[33]

हिन्दी रूपान्तर

हजार हजार
पत्थर की गजमुक्ता है अजीब शरीर
कौन स्थान है, कौन स्थान है, ऊँचे वृक्षों पर,
तृण-पत्र-लता-वन से सुसज्जित शरीर ।

भोलानाथ दास के 'सीताहरण काव्य' के इस पद में बंगला के मधुसूदन दत्त के अमित्राक्षर छन्द (मुक्त छन्द) का व्यवहार परिलक्षित होता है ।

---

३३. भोलानाथ दास -सीता हरन काव्य, पृ० २३ ।

यूरोपीय विशेषत: अंग्रेजी साहित्य के आदर्श में असमीया काव्य-जगत् में चतुर्दशपदी कविता (सॉनेट), शोक गीत (एलिजी ), दीर्घ वर्णनात्मक कविता ( नरेटिव पोएम), साहित्यिक या अनुकरण धर्मी लोक गीत और व्यंग आदि कविता रूप काव्य जगत् में प्रयुक्त होने लगे ।[३४] आधुनिक असमीया काव्य के इस क्षेत्र में चन्द्रकुमार आगरवाला , लक्ष्मीनाथ-बेज बरुवा , हेमचन्द्र गोस्वामी, पद्मनाथ गोहाईं बरुवा , हितेश्वर बर बरुवा, आनन्द चन्द्र आगरवाला आदि कवियों की कृतियाँ उल्लेखनीय हैं । लक्ष्मीनाथ बेजन बरुवा, चन्द्रकुमार आगरवाला और आनन्द चन्द्र आगरवाला ने प्राचीन असमीया में प्रचलित गीत, गीतिकविता को नये भाव और अंगरेजी शैली के ढाँचे में सजाकर लोकगाथा की रचना की । धनबर अरु रतनी` रतनीर बिलाप और पाने सह ` ऐसी ही प्रसिद्ध गाथायें हैं ।

उग्र देशात्म-बोध के चिन्तन की कविताओं का स्रोत असमीया काव्य में `जोनाकी` युग से ही प्रवाहित होता रहा । कमलाकान्त भट्टाचार्य रचित चिन्तानल कवि के अन्तर में स्वदेश-प्रेम और जातीयता बोध की ज्वलन्त विचार धारा का निदर्शन है । वे उग्र पंथी देश प्रेमी थे । उनकी रचनाओं में असम के भव्य अतीत गौरव, अध:पतित और उत्पीड़ित , शोषित पराधीन असमवासी की दीनता, हीनता आदि का जीवन्त चित्रण विद्यमान है । असम के अतीत जातीय गौरव में कवि का अन्तर वेदना से विचलित हो उठता है और वह असम को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाने की आशा लेकर उसमें पुन: प्राण प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता है :--

---

३४. डा० सत्येन्द्रनाथ शर्मा - असमीया साहित्यैर इतिवृत्त, पृ० २४० ।

एइ शिलखनकरि कौने काटिछिल,
कारनो हातर इ पुरनि चिन ?
कौने बन्धिछिल शिलर आवास,
पमि वा सि जाति कंत हल लीन
जन्मिब सिदिना शतेक मैढचिनि
तुच्छ परि थका शिलरपरा,
कतगैरिवल्ढि जनम लभिब,
करिब पोहर भारत धरा ।[35]

हिन्दी रूपान्तर

यह पत्थर किसने चित्रित किया था,
किसके हाथ का यह प्राचीन चिह्न है ?
किसने पत्थर का आवास निर्माण किया था,
विलुप्त हुई कहाँ वह जाति आज ?
शत मैढजिनि जन्म लेंगे
छोटे से पड़े हुये पत्थर से,
शत गैरिबाल्दी जन्म लेंगे
भारत और पृथ्वी को उज्ज्वल करेंगे ।

कमलाकान्त की इसी परम्परा में ही अम्बिकागिरि राय चौधुरी और प्रसन्न-लाल चौधुरी का जन्म हुआ था । लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा की "आमार जन्मभूमि" और "और देश", "स्वदेश प्रेम" और स्वजाति प्रेम की प्रसिद्ध कवितायें हैं । अपना देश-प्रेम व्यक्त करने के लिये कवि गाता है :-

---

35. कमलाकान्त भट्टाचार्य-चिन्तानल, पाहरनि, पृ० ५३ ।

अ‍इमोर आपोनार देश, अमोर चिकुनी देश
एनेखन शुवला, एनेखन सुफला, एनेखन मरमर देश ।[३६]

हिन्दी रूपान्तर

अपना देश हमारा, सुन्दर देश हमारा,
ऐसा सुमधुर, ऐसा सुफलद, ऐसा प्यारा देश हमारा ।

असमवासी की पराधीन मनोदशा को भगा देने के लिये कवि और आगे कहता है :-

आमि असमीया नहओं दुखीया किवर दुखीया हम ?
सकलो आछिल सकलो आछे... नुगुनो नलओं गम...  ।
बाजक डबा, बाजक शंख, बाजक मृदंग खोल
असम आको उन्नति पथत जय आइ असम बोल ।[३७]

हिन्दी रूपान्तर

हम असमीया हैं, किसी का दु:ख नहीं, किसके लिये दु:खी होंगे ?
सब थे, सब हैं, नहीं सुनते, नहीं लेते खबर ,
ढोल बजाने दो, शंख बजाने दो, मृदंग बजाने दो
असम फिर उन्नति पथ पर, जय माता जी की जय बोलो ।

लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा की 'मोर देश' कविता वर्तमान असम का जातीय संगीत है । उनकी रचनाओं में अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति और आनुगत्य की चिन्ताधारा

---

३६. लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा, कदम कलि, मोर देश, पृ० ७० ।
३७. कदम कलि, आमार जन्मभूमि, पृ० ५३ ।

उपलब्ध है।" अंगरेजी साहित्य अंगरेजों की चिन्ताधारा, अंगरेजों के चरित्र और उनके शासन में वे पालित पोषित हुये।[३८] भारत के स्वतंत्रता-आन्दोलन और स्वाधीनता के बाद सभी भारतीय भाषाओं में नयाजीवन और नयी जागृति का आना स्वाभाविक है। स्वाधीनता प्राप्ति के साथ-साथ कवि की रचनाओं में भारत का नवीन युग आया और सुदूर भविष्य की आशा का सूर्य उदय हुआ। असम की प्रसिद्ध रहस्यवादी कवियित्री श्रीमती नलिनी बाला देवी भारत की स्वाधीनता से भावविभोर होकर लिखती हैं :--

भारतर स्वाधीनता।
अभिनव बातरि बिस्मय
अस्त्रहीन रक्तहीन
सत्यर महिमामय
साम्राज्यर चिरपराजय।[३९]

हिन्दी रूपान्तर

भारत की स्वतंत्रता
अभिनव आश्चर्य की घटना
अस्त्रहीन रक्तहीन
सत्य का महिमामय
साम्राज्य की चिर- पराजय।

श्रीमती नलिनी बाला देवी उच्चकोटि की कवियित्री हैं। और उनकी गणना हिन्दी की सुप्रसिद्ध रहस्यवादी कवयित्री मीराँबाई और श्रीमती महादेवी वर्मा की श्रेणी में की जाती है। उनकी रचनाओं में रहस्यवाद के परि

---

३८. स्मृति ग्रंथ, बेज बरुआर प्रतिभा, असम साहित्य सभा, पृ० ५६.
३९. परशमणि, स्वाधीनता, पृ० ६४

पूरक रूप में देश-प्रेम और असमीया तथा भारतीय नारी समाज की स्थितियों का वर्णन मिलता है। उनकी जनम भूमि शीर्षक कविता में कवयित्री के हृदय में सुप्त देश-प्रेम जाग्रत होता है। उनके लिये जन्म भूमि "स्वर्गादपि गरीयसी है और जन्म भूमि की सेवा करने से मानव-जीवन शत-धन्य होता है। जन्म-भूमि की सेवा करने से सांसारिक पाप दूरीभूत होते हैं और तीर्थ-यात्रा से भी अधिक पुण्य होता है। कवयित्री की आशा है कि वे इस जीवन में तो जन्म-भूमि की सेवा करेंगी ही; मृत्यु के पश्चात भी नदी, वायु, मेघ, धूल, सूर्य और चन्द्र होकर उनकी अपनी अपनी शक्तियों से जन्म-भूमि की सेवा और उपकार करेंगी :-

मेलिलों प्रथम चकु
तोमर कोलाते आइ
जनमर आदिम पुवात।
- - - - - - - - -
नदी है पखालिम
दुखनि चरणा निते
माटि है मिलिम बुकुट।[४०]

हिन्दी रूपान्तर

हे माता जी,
तुम्हारी ही गोद में जन्म के आदिम प्रातःकाल में मैंने आँखें खोलीं।

.......  .......

नदी होकर धो डालूंगी,
तुम्हारे दो चरण सदा
मिट्टी होकर मिलूंगी छाती पर।

---

४०. श्री मती नलिनी बाला देवी-संधियार सुर, जन्म-भूमि, पृ० ६२-६३।

रहस्यवादी कवयित्री को विश्वास है कि सांसारिक दु:ख-कष्ट, शोक-वेदना आदि क्षणास्थाई हैं और इस संसार से परे और एक संसार है जहाँ चिरन्तन सुख-शान्ति विराजती है और वहीं उनके परम प्रिय निवास करते हैं। अन्त में ऐसा एक दिनआयेगा जिस दिन सब सांसारिक आशा-निराशा, संशय-शोक, दु:ख - ताप विध्वंस होंगे और आत्मा और परमात्मा का चिर-मिलन होगा। रहस्यात्मक सत्ता की प्रेमी देवी की निश्छल उपासना का प्रभाव निम्नलिखित पंक्तियों में उपलब्ध है :-

अचंचल स्थिर, समाहित शुद्ध अन्तरर,
पूजा चिरन्तन -
एकाकार जीवन मरण,
भाषाहीन, आत्म निवेदन
एइपूजा चिर सुन्दरर।[४१]

हिन्दी रूपान्तर

है चिर सुन्दर,
अचंचल स्थिर, समाहित शुद्ध अन्तर की
पूजा चिरन्तन।
एकाकार जीवन-मरण,
भाषाहीन आशाहीन आत्म-निवेदन
यह पूजा चिर सुन्दर की।

अज्ञात अलौकिक प्रियतम की खोज करने वाले और आत्मा तथा परमात्मा के प्रकृति मिलन में चिर-सुख, चिर-शान्ति की कामना करने वाले

---

४१. श्रीमती नलिनी बाला देवी - परशमणि, पूजा, पृ० ११।

यतीन्द्रनाथ दुवरा की आत्मा की सारी प्रकृति उसी अलौकिक सत्ता की खोज करती हुई परिलक्षित होती है :-

सकलो प्राणीर तुमि प्राणर पुतला
तोमोतेई सार्थक जीबन
मृत्यु किनो ? हओ एक तोमार करुणा,
आतमार प्रफुल्ल मिलन ।[४२]

हिन्दी रूपान्तर

तुम सब प्राणी के प्राण की प्रतिमा हो,
तुम ही जीवन की सार्थकता हो,
मृत्यु क्या है ?
यह भी तुम्हारी ही एक करुणा है,
और आत्मा का प्रफुल्ल मिलन है ।

असमीया साहित्य में 'जोनाकी' युग से आज तक एक दार्शनिक स्रोत प्रवहमान है जिस काव्य-विधा में भारतीय दर्शन का सर्वात्मवाद, आत्मा की अविनश्वरता, जन्मान्तरवाद, कर्मफल, आदि की प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है । रहस्यवाद और अध्यात्मवाद की छाया से चन्द्रकुमार आगरवाला, ~~नलिनीबाला~~, नलिनीबाला देवी, दुर्गेश्वर शर्मा, रत्नकान्त बरकाकति, यतीन्द्रनाथ दुवरा आदि की रचनायें प्रतिबिम्बित हैं ।

असमीया काव्य-जगत् सूफी दर्शन और उमरखैयाम के दर्शन से भी अछूता नहीं रह गया । यतीन्द्रनाथ दुवरा के 'ओमरतीर्थ' और रघुनाथ चौधुरी

---

१. आोन सुर, मिलन, पृ० १५ ।

के 'कारबाला' इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं ।

जोनाकी-युग में कवि के हृदय में सांसारिक क्षण-स्थाई प्रेम शाश्वत स्वर्गीय प्रेम के रूप में प्रतिभाषित होता है । असमीया कवि की दृष्टि में प्रेम की शक्ति से ही भूमण्डल घूम रहा है और कमल भी खिलता है । उनकी दृष्टि में सांसारिक प्रेम भी शाश्वत स्वर्गीय प्रेम की ही अभिव्यक्ति है और प्रेम की परिणति मिलन नहीं है, बल्कि एक अज्ञात सत्ता के लाभ का प्रयत्नमात्र है । काल्पनिक प्रेमिका का कायिक वर्णन, विश्व-प्रकृति में प्रिया का दर्शन, विरह का गौरव आदि इस युग की कविता के प्रतिपाद्य विषय हैं । लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा की 'प्रियतमा', धनबर-रतनी' से आरम्भ होकर गणेश-गगै की 'पापड़ि' नामक कविता तक रोमांटिक प्रेम का धारावाहिक स्रोत असमीया के आधुनिक काव्य में, विद्यमान हैं । किन्तु अम्बिका गिरि राय चौधुरी और नलिनी बाला देवी का प्रेम आध्यात्मिकता में रूपान्तरित होकर रहस्यवादी बन जाता है ।

जोना की-युग के कवियों की कृतियों में सामाजिक समस्या का विवेचन और मानवता के आदर्श की प्रतिष्ठा पाई जाती है । राष्ट्र-व्यापी राजनीतिक समस्याओं से प्रभावित होने के कारण इन कवियों की सामाजिक विचार-धाराओं में बौद्धिकता का प्राचुर्य है और भावुकता की कमी है । समाज में व्याप्त सभी कुरीतियों से वे परिचित थे किन्तु सभी को वे अपनी लेखनी से प्रकाशित नहीं कर पाते थे । आधुनिक असमीया समाज में नारी को उच्च आसन देने में और नारी के द्वारा जातीय जागरण की प्रेरणा देने में 'जोनाकी' युग के कवि सिद्धहस्त थे । भोलानाथदास का सीताहरण काव्य, हितेश्वर बर बरुवा का 'तिरोतार आत्मदान' और युद्ध क्षेत्रत आहोम रमणी, 'चन्द्रधर बरुवा का कामरूपजीयरी' काव्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । इन सभी काव्यों में नारी का चरित्र प्रगतिशील और ऊँचा बनाने की चेष्टा की गयी है क्योंकि कवि को ~~मालूम~~ मालूम है कि नारी संसार चलाने के लिये ही नहीं है, समाज अथवा देश के

लिए भी उसका विशेष कर्तव्य है जिससे नारी भी पुरुष के समान महान्
और देवतुल्य बन सकती है ।

भारत में प्राचीन काल से आज तक देवदासी नामक एक नीच
प्रथा है । इस प्रथा के अनुसार बालिकाओं को देवता के नाम पर उत्सर्ग
किया जाता है और वे समाज च्युत होकर मन्दिर में रहती हैं । वे आजीवन
मानव स माज से अवहेलित और सेविका के रूप में देव-मन्दिर में रहती हैं ।
उसका सुन्दर और सजीव वर्णन अतुलचन्द्र हाजरिका की देवदासी, नलिनीबाला
देवी की देवदासी और देवकान्त बरुवा की 'देवदासी' नामक कविताओं में
उपलब्ध होता है :-

भुलर हुलेरे हना कलुषित गोलैछ जीवन ,
नितउ संध्या बेला तारे हव अर्थ बिरचन ।
अबिचार जगतर-नकरिबा तुमि अबिचार,
लबा हैने निधिणाई हृदयर षोड़शोपचार ।[४३]

हिन्दी रूपान्तर

भूलके कंटक से परिपूर्ण कलुषित है सारा जीवन,
सदा संध्या बेला में उसी का होगा अर्थ-विरचन ।
जगत् का अविचार है, किन्तु तुम न करोगे अविचार
लोगे घृनारहित हृदय से षोडशोपचार ।

'जोनाकी-युग असमीया काव्य का स्वर्णयुग था । इस युग में
प्रकृति का उन्मुक्त और भावुकतापूर्ण चित्रण करने के लिये अधिकांश कवियों
ने इतिवृत्तात्मक और चित्रात्मक शैली का ही उपयोग किया है । असम के
प्रत्येक कवि की रचनाओं में एक न-एक प्रकृति विषयक कविता मिलती अवश्य

---

४३. अतुलचन्द्र हाजरिका- दीपाली, 'देवदासी', पृ० २३ ।

है । रघुनाथ चौधुरी के प्रकृति चित्रण सौन्दर्याभिभूत स्वच्छन्द प्रेमी हृदय से उद्भूत सजीव और प्रांजल है । उनकी कृति 'गिरिमल्लिका', 'कैकेयी' और 'दहि-कतरा' प्रकृति-चित्रण की उच्च कोटि की रचना है । रघुनाथ चौधुरी असमीया काव्य-जगत् में विहगी कवि 'क' नाम से सुप्रसिद्ध हैं । डा० महेश्वर नेओग रघुनाथ चौधुरी के विषय में लिखते हैं कि चौधुरी साहब को 'विहगी कवि' की उपाधि प्रदान करने से वस्तुत: उनकी कविता के क्षेत्र को छोटा बना कर सीमित क्षेत्र के भीतर रखने की तरह होगा । उनको 'प्रकृति कवि' की उपाधि प्रदान करने से व्यापक प्रकृति सौन्दर्य व्यंजक कविता की चरम उपलब्धि बन जायेगी ।[४४]

जोनाकी-युग के प्रकृति-चित्रण में कवि के अपने हृदय की सौन्दर्य-माधुरी के द्वारा प्रकृति का बाह्य वर्णन, प्रकृति के शान्त स्निग्ध स्वरूप के प्रति आकर्षण, तापक्लिष्ट मानव-जगत् के साथ विरुद्धाचारण प्रदर्शन, प्राकृतिक पदार्थों पर सजीवता और मानवता का आरोप, प्रकृति में प्रिया के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब दर्शन, खण्ड सौन्दर्य के अन्तराल में अखण्ड, प्राकृतिक सौन्दर्य की उपलब्धि, प्रकृति में आत्म-सुख, दु:ख का आरोप आदि उपलब्ध होते हैं । रघुनाथ चौधुरी की कविता में प्रकृति की सभी विशेषतायें विद्यमान हैं -

लुइतर काणे काणे कहुंवार फुल
बताहत हालि-जालि
ढौवे ढौवे ढौ खेलि
तुषार धवल कान्ति करिछे बिपुल,
येन सुर-तरंगिनी पुलके आकुल । [४५]

---

४४. आधुनिक असमीया साहित्य, पृ० ५८
४५. असमीया काहिनी काव्यर प्रबाह, पृ० २०३ ।

हिन्दी रूपान्तर

ब्रह्मपुत्र के किनारे कहुवे के हैं फूल
हवा में हिलते-झूलते
लहरों में लहर बनकर
तुषार का धवल सौन्दर्य करते हैं विपुल
जैसे सुर- तरंगिनी पुलक में हैं आकुल ।

रघुनाथ चौधुरी के अतिरिक्त दुर्गेश्वर शर्मा, पार्वतिप्रसाद बरुवा, चन्द्रकुमार आगरवाला, भोलानाथ दास, हेमचन्द्र गोस्वामी, फाजिरुद्दीन आदि कवियों की रचनाओं में नदी, पर्वत और षटऋतुओं का सजीव और जीवन्तवर्णन विद्यमान है । पद्मनाथ गोहाई बरुवा अकलुषित और अकृत्रिम प्रकृति का स्वच्छन्द रूप चन्दनगिरि नामक कविता में प्रस्तुत करते हैं :-

खापे खापे उठियोंवा पर्वत शिखर
माजे माजे निजरार अमृत कल्लोल । [४६]

हिन्दी रूपान्तर

स्तर स्तर पर गठित है ऊँचे पर्वत का शिखर,
बीच बीच में है झरने की कल-कलह ध्वनि समधुर ।

आधुनिक असमीया साहित्य में महाकाव्य का अभाव-सा है । प्रकृत महाकाव्य वर्तमान युग में किसी ने लिखा नहीं । डा० सत्येन्द्रनाथ शर्मा के मतानुसार प्रकृत महाकाव्य आधुनिक असमीया साहित्य में अभी तक उपलब्ध नहीं है ।

---

४६. चन्दनगिरि-फुलर, चारौंकि, पृ० ४२ ।

हिन्दी रूपान्तर

दो दिन का खेल
स्वप्न का मेल
क्यों खोने जा रहे हो, प्यारे ?
उसकी कविता लिखता हूं
उसको स्वप्न में देखता हूं
फिर पूछते हो मैं कौन तुम्हारा ?

आधुनिक असमीया काव्य में अनूदित कवितायें भी बहुत मिलती हैं। अधिकांश अनुवाद अंगरेजी, फारसी, और बंगला से हैं। इस कार्य में आनन्द-चन्द्र आगरवाला, हितेश्वर बर बरुवा, दुर्गेश्वर शर्मा, रत्नकान्त बर काकति, डिम्बेश्वर नेओग, आनन्दचन्द्र बरुवा, देवकान्त बरुवा, सूर्य कुमार भूआ आदि प्रमुख हैं। आनन्द चन्द्र आगरवाला की 'जीवन संगीत' और डिम्बेश्वर नेओग की मल्लिका ' नामक कवितायें भाव, भाषा और छन्द की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट अनुवाद कही जा सकती हैं। हितेश्वर बर बरुवा का अंगिला और आनन्द चन्द्र बरुवा का सपोर्नेर सुर काव्य रूप में क्रमश: अंगरेजी और फारसी से अनूदित हैं।

अतीत का जय-गान, पराधीनता की ग्लानि और अवसाद, जातीय एकता का उदात्त आह्वान जौनाकी-युग के प्रमुख कवि लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा के समय में उद्भूत होकर कमलाकान्त भट्टाचार्य, विनंद्रचन्द्र बरुवा, डिम्बेश्वर नेओग, अतुलचन्द्र हाजरिका और अम्बिकागिरि राय चौधुरी की रचनाओं में जीवन्त रूप ग्रहण करते हैं। 'कमलाकान्त भट्टाचार्य का देश-प्रेम हृदयगत था किन्तु राय चौधुरी के जीवन में यही देश-प्रेम जीवन्त रूप धारण कर लेती है। उनकी

महाकाव्य के बहिरंग लक्षणों की दृष्टि से हितेश्वर बर बरुवा के 'कमतापुर ध्वंस', युद्ध क्षेत्रआहोम रमणी' , 'तिरोतार आत्मदान' और और दण्डीनाथ कलिता के 'असम संध्या' को महाकाव्य की श्रेणी में रखने में कोई बाधा नहीं है ।[४७]

'बिहु' असमीया जाति का जातीय उत्सव है । 'बिहु' 'रंगाली, भोगाली और कंगाली तीन प्रकार के हैं और प्रत्येक 'बिहु' का कार्य-काल और प्रक्रिया भी भिन्न भिन्न है । बिहु के बिना असमीया जाति और असमीया जाति के बिना 'बिहु' की कल्पना असंभव है । प्राचीनकाल से ही असमीया साहित्य में बिहु पर अनेक कविताओं की रचना होती रही है । बिहु विषयक कविताओं में नीलमणि फुकन की ' बिहुरशराइ , नलिनीबाला देवी की ' भोगाली बिहु', रंगाली बिहु, देवकान्त बरुवा की 'बिहुर पेपा' और अम्बिकागिरि राय चौधुरी की ~~बिहु सम्बन्धी कविता में उग्र आत्म~~ रंगालि बिहुर हाक आदि कवितायें प्रधान हैं । अम्बिकागिरि राय चौधुरी की बिहु सम्बन्धी कविता में जातीयता और देवकान्त बरुवा की कविता में उच्च आध्यात्मिकता द्रष्टव्य है :-

दुदिनर पाहरणि,
ताते सपोनब मणि
 हैसवाब खोज किया सोणा ?
तोरेइ कविता लिखों,
तोके सपोनत देखों,
 तये सोध मइ तोर कोणा ।[४८]

---

४७ असमीया काहिनी काव्यर प्रवाह, पृ० २०३
४८. सागर देखिछा, बिहुर पेपा, पृ० १८ ।

हिन्दी रूपान्तर

दो दिन का खेल
स्वप्न का मेल
क्यों खोने जा रहे हो, प्यारे ?
उसकी कविता लिखता हूं
उसको स्वप्न में देखता हूं
फिर पूछते हो मैं कौन तुम्हारा ?

आधुनिक असमीया काव्य में अनूदित कवितायें भी बहुत मिलती हैं। अधिकांश अनुवाद अंगरेजी, फारसी, और बंगला से हैं। इस कार्य में आनन्दचन्द्र आगरवाला, हितेश्वर बर बरुवा, दुर्गेश्वर शर्मा, रत्नकान्त बर काकति, हिम्बेश्वर नेओग, आनन्दचन्द्र बरुवा, देवकान्त बरुवा, सूर्य कुमार भूञा आदि प्रमुख हैं। आनन्द चन्द्र आगरवाला की 'जीवन संगीत' और हिम्बेश्वर नेओग की मल्लिका ' नामक कवितायें भाव, भाषा और छन्द की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट अनुवाद कही जा सकती हैं। हितेश्वर बर बरुवा का अंगिला और आनन्द चन्द्र बरुवा का समोर्नेर सुर काव्य रूप में क्रमश: अंगरेजी और फारसी से अनूदित हैं।

अतीत का जय-गान, पराधीनता की ग्लानि और अवसाद, जातीय एकता का उदात्त आह्वान जोनाकी-युग के प्रमुख कवि लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा के समय में उद्भूत होकर कमलाकान्त भट्टाचार्य, विनंद्रचन्द्र बरुवा, हिम्बेश्वर नेओग, अतुलचन्द्र हाजरिका और अम्बिकागिरि राय चौधुरी की रचनाओं में जीवन्त रूप ग्रहण करते हैं। 'कमलाकान्त भट्टाचार्य का देश-प्रेम हृदयगत था किन्तु राय चौधुरी के जीवन में यह ी देश-प्रेम जीवन्त रूप धारण कर लेती है। उनकी

आत्मा मुक्ति-युद्ध के आह्वान गीत से उच्छ्वासित होती थी ।[४६]

आधुनिक असमीया साहित्य को स्वच्छन्द बनाकर युगीन राष्ट्रीय वायु मण्डल में, उसे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जागरण के प्रतीक और मानवतावादी सिद्धान्तों के समर्थक का रूप प्रदान करने की चेष्टा राय चौधुरीजी ने ही सर्वप्रथम की थी ।

उपर्युक्त विवेचन राय चौधुरी के पूर्व के असमीया साहित्य से सम्बद्ध है । प्राचीनता और नवीनता का सामंजस्य कर युगीन मूल्य-बीज के साथ जन जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित काव्य की रचना करने वाले अन्य अनेक कवि भी हैं । उनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय यथार्थवाद,प्रगतिवाद और सर्वसाधारण पर आश्रित मानवतावाद और साम्यवाद है । पुरातनता सापेक्ष आधुनिकता की व्याख्या उनके उत्तरवर्ती साहित्यकारों में पायी जाती है । मानव की वर्तमान दशा और उसके भविष्यत् विकास का सक्रिय अनुभव और मानव जीवन के प्रति सजगता और संवेदनशीलता का विस्तार और विकास राय-चौधुरी की रचनाओं में पाया जाता है ।

---

## अध्याय- ३

## 'निराला' और राय चौधुरी' : जीवन और व्यक्तित्व

### निराला : जीवन और व्यक्तित्व

निराला का जन्म बंगाल प्रान्त के महिषादल राज्यान्तर्गत मेदिनी-पुर जिले में २६ फरवरी ( बसन्त पंचमी ) सन् १८९६ ई०[१] को हुआ था । उनके पिता पं० रामसहाय त्रिपाठी गढ़कोला गांव (जिला उन्नाव) के निवासी थे तथा महिषादल राज्य में सिपाहियों के ऊपर जमादार थे । बाद में वे राजकोष के संरक्षक नियुक्त हो गये । नौकरी के कारण वे महिषादल राज्य में रहते थे । यद्यपि निराला की मातृभाषा बैसवाड़ी थी किन्तु बंगाल में पिता के साथ रहने के कारण उनकी भाषा बंगला हो गयी । उनके बचपन का नाम 'सुर्जकुमार' तिवारी था जिसे उन्होंने बाद में बदल कर सूर्यकान्त त्रिपाठी कर दिया । बंगाल की शस्य-श्यामलाभूमि का और राजमहल के दृश्यों का प्रभाव निराला पर बचपन से ही ऐसा पड़ने लगा कि उनका अन्तर भावुक एवं तरल बनता गया । बाप के साथ कभी-कभी वह राजमहल की तरफ जाते, हर तरफ उनकी दृष्टि हरी हरी दूब के मैदान, सुन्दर फलों वाले पेड़ और फूल पर पड़ती । कमल, गुलाब, जुही की अराधानें सूर्यकुमार का दिमाग तर देतीं ।[२] जिसके प्रभाव से उपर्युक्त

---

१. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य-साधना (भाग १), पृ० १७ ।
२. डा० रामविलास शर्मा- निराला की साहित्य-साधना, पृ० १८ ।

समय पर जुही की कली का जन्म हुआ । निराला जी करीब ढाई साल के ही थे कि उनकी माता जी का देहान्त हो गया, परिणामस्वरूप उनको आजीवन माता के स्नेह-दुलार से वंचित रहना पड़ा । शिशु-हृदय में पड़ा यह प्रथम प्रहार अन्य अनेकानेक प्रहारों से प्रगाढ़तर छोटे-छोटे विश्वविदा का अनुभव करने और पीड़ित विश्व के प्रति समवेदना और सहानुभूति प्रदर्शित करने की संवेदनशीलता का मूलकारण बन गया । मातृविहीन पुत्र के प्रति पिता का अपार स्नेह अवश्य था, किन्तु , वे पुत्र के प्रति भी सिपाहियाना रौब ही दिखाते थे । साधारण भूल के लिये भी वे बड़े निष्ठुर होकर पुत्र को पीटने लग जाते थे ।[३] अधिक डाट-फटकार और मार-पीट से बालक ढीठ और विद्रोही बन जाता है । बालक निराला में उसी समय से विद्रोह की भावना जाग उठी । विद्रोह की भावना के साथ-साथ उनके हृदय में संकोच और सहनशीलता भी उत्पन्न हुई । माता के असामयिक निधन से उनमें उच्छृंखलता भी आयी ।[४] निराला जी का बचपन-महिषादल के राजपरिवार में बीता । निराला जी की मातृभाषा बैसवाड़ी थी और चारों ओर की भाषा बंगला थी । इसलिए बैसवाड़ी और बंगला का ज्ञान अपार था । विशुद्ध हिन्दी का ज्ञान तो बहुत ही सामान्य था जिसे विकसित कर उन्हें हिन्दी का महाकवि बनाने का श्रेय उनकी स्वर्गीय पत्नी मनोहरा देवी को है जिनके प्रति अपना आभार प्रदर्शित करते हुये निराला जी ने गीतिका की भूमिका में उन्हीं को ग्रन्थ समर्पित करते हुये लिखा है -- 'जिसकी हिन्दी के प्रकाश में ,प्रथम परिचय के समय,मैं आँखें नहीं मिला सका, लजाकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश,पिता के पास चला गया और उस हीन हिन्दी प्रान्त में,बिना शिक्षक के सरस्वती की प्रतियाँ लेकर

---

३. डा० रामविलास शर्मा - निराला, पृ० ६ ।

४. राजेन्द्र गौड़- महाप्राण निराला की प्रतिभा और व्यक्तित्व,सम्मेलन पत्रिका, भाग ४८ सं० २, ३४,पृ० ३८० ।

पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी । "उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया प्रकृति श्रीमती मनोहरा देवी को सादर.. । निराला जी की शिक्षा-दीक्षा महिषादल में ही हुई जहाँ उन्होंने संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी भाषायें सीखीं ।[५] निराला जी का अधिकांश शैशवकाल राजसी-ठाट-बाट के बीच व्यतीत हुआ । महिषादल का राज-परिवार उनको इतना चाहता था कि राजा के छोटे भाई उन्हें गोद भी लेना चाहते थे ।[६]

निराला जी व्यक्तिगत या सामाजिक क्षेत्र में कहीं किसी भी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं करते थे । बंधनों के प्रति विद्रोह निराला जी में बचपन से ही था, बैसवाड़े की भूमि तथा पौरुषमय पिता की देन भी कहा जा सकता है । इसी प्रवृत्ति ने उनके काव्य को बंधनों से मुक्त किया अर्थात् स्वच्छन्द बनाया और जिसे वे खुलकर घोषित करते थे :-

> अर्थ विकच इस हृदय-कमल में आ तू
> प्रिये ! छोड़ कर बंधनमय छन्दों की छोटी राह ।[७]

एक दिन सूर्यकुमार ने पिता से कहा, "तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते ? रामसहाय को शक हुआ कि उनके बेटे को किसी दुश्मन ने बरगलाया है ।............... उन्होंने लड़के को बहुत मारा, इतना मारा कि सूर्यकुमार बेहोश हो गए ।[८]

---

५. गंगाप्रसाद पाण्डेय- महाप्राण निराला, पृ० २७

६. वही , पृ० २६

७. निराला अनामिका, प्रगल्भ प्रेम, पृ० ३४ ।

८. डा० रामविलास शर्मा- निराला की साहित्य साधना, (भाग - १) पृ० २२ ।

इसी विद्रोह प्रवृत्ति के कारण उन्होंने नवीं कक्षा में ही स्कूली शिक्षा समाप्त कर दी । स्वयं कान्यकुब्ज ब्राह्मण होते हुये भी उस जाति की निरर्थक रूढ़ियों का खण्डन कर चोटी कटाकर, जनेऊ उतार कर, खान-पान के भेद-भाव की पूरी अवहेलना करके[९] अपनी प्रकृति सिद्ध विद्रोहात्मक प्रकृति का उन्होंने परिचय दिया था । ब्राह्मण समाज में प्रचलित आभिजात्य अभिमान के विरुद्ध निराला जी ग्रामांचल-निवासी चमारों और पासियों के प्रति स्नेह-पूर्ण व्यवहार करने लगे यहाँ तक कि ब्राह्मणों ने निराला जी से अपने को एकदम अलग कर दिया । दस पाँच कोस के अड़ोस-पड़ोस में निराला जी की वास्तविकता और म्लेच्छपन की बातें अफवाहों का धुआँ बन कर फैल गयीं । खानदानी घमण्ड और घोर आलस्य ही जिनकी विशेषता थी । ऐसे ब्राह्मणों का समाज निराला जी की निगाहों में रत्तीभर भी सम्मान का पात्र नहीं था ।[१०]

ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलांगार
खाकर पत्तल में करे छेद ,
इस विषय बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल ।[११]

इन पंक्तियों की भूमिका में रूढ़िवादिता के विरोधी निराला जी का दृढ़ मूल विद्रोह स्वत: सिद्ध है ।

निराला जी का विद्यारम्भ ११ वर्ष की अवस्था में हुआ था । १३ सितम्बर सन् १९०७ ई० को महिषादल स्कूल की कक्षा ८ सेक्शन बी में

---

९. डा० रामविलास शर्मा- निराला जीवन और काव्य परिचय, जन-भारती, निराला अंक, सं० २०२९ वि० ,पृ० ४०

१०. नागार्जुन- एकव्यक्ति - एक युग, पृ० ९६ ।

११. निराला- अनामिका, सरोज, स्मृति, पृ० १३२-१३३ ।

सूर्यकुमार का नाम लिखा दिया गया ।[१२] निराला जी का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में मनोहरा देवी के साथ हुआ जिनके स्नेह या प्रेरणा के बिना सूर्यकान्त कभी 'निराला' नहीं बन पाते । अभी उम्र बारह के आस-पास थी, ब्याह की कोई जल्दी नहीं थी, पर गांव के लड़कों का ब्याह इस उम्र तक कर दिया जाता था । डलमऊ के रामदयाल द्विवेदी के यहाँ बात पक्की हुई । लड़की की उम्र करीब ग्यारह साल थी ।[१३] मनोहरा देवी का अमर प्रणय प्रसाद पाकर निराला जी ने दार्शनिक की तटस्थता के साथ स्नेह-सौन्दर्य और दिव्य-रति की अभिव्यक्ति देते हुये हिन्दी साहित्य में युगान्तर उपस्थित करने वाली, मुक्त-छन्द में रचित अपनी स्वच्छन्दतावादी रचना जुही की कली सन् १६१६ ई० में प्रस्तुत की, किन्तु आचार्य महावीरप्रसाद ने उसे 'सरस्वती' में प्रकाशित नहीं किया और वापस कर दिया । निराला जी ने अन्तिम समय तक भाव, कल्पना, विषय, भाषा, शैली आदि सभी में पुरानी रूढ़ियाँ तोड़कर स्वच्छन्द कला की जो सृष्टि की है उसका आदिम स्रोत 'जुही की कली' में है । इस स्वच्छन्द काव्यधारा और मुक्त-छन्द के कारण निराला जी को साहित्य क्षेत्र में अनवरत संघर्ष मोल लेना पड़ा । किन्तु वे अन्त तक नहीं झुके ।

विवाह के बाद निराला जी फिर महिषादल आ गये और अपने शरीर को स्वस्थ बनाने के लिये खेल-कूद आदि में ज्यादा समय बिताना शुरू कर दिया । 'बंगला नाटक' तरुबाला' में सूर्यकुमार ने एक 'हिन्दुस्तानी' का पार्ट किया । नाटक, खेल कूद के साथ सूर्यकुमार ने अपने शरीर को सुदृढ़ और सुन्दर बनाने की ओर ध्यान दिया ।[१४]

---

१२. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग १, पृ० २१ ।
१३. वही, पृ० २४ ।
१४. वही, पृ० २४ ।

निराला जी के पिता रामसहाय त्रिपाठी का देहावसान सन् १६१७ ई० में गढ़कोला में हुआ । पिता के देहान्त के बाद युवक निराला को अनेक आघात एक के बाद एक करके, सहने पड़े । निराला पर मानो आपत्तियों की झड़ी सी लग गयी । सन् १६१८ - १६ ई० में निराला का पूरा परिवार ही मृत्यु के मुंह में समा गया ।[१५] सन् १६१८ ई० में रामकृष्ण त्रिपाठी और दूध-पीती बच्ची सरोज को छोड़कर इंफ्लूऐंजा के प्रकोप से काल-कवलित हो गयीं । इसके बाद एक एक करके चचेरे बड़े भाई,भाभी, चाचा और भाभी की दूध पीती बच्ची, सब महामारी के शिकार हो गये । घरके सभी बड़े सदस्यों के निधन के कारण निराला जी को मर्मान्तिक आघात पहुंचा । साथ ही उनको अपने दो बच्चों के साथ चाचा के चार बच्चों के पालन पोषण का भार अपने निर्बल कंधों पर उठाना पड़ा । २१ वर्ष की तरुणावस्था में अपनी कल्पना की देवी से बिछुड़ कर और इतना बड़ा पारिवारिक भार उठाने की विवशता के कारण निराला जी की प्रवृत्ति में उग्रता-जाग्रत हो गयी । निराला जी की कृतियों में उदात्त,निर्वैयक्तिक और निस्संग शृंगारिक भावना की जो अभिव्यंजना हुई है, उसका कारण स्नेह की प्रतिमा मनोहरा देवी की मृत्यु है ।

पारिवारिक भार और विपन्नताओं का सामना करने के लिए उन्होंने महिषादल राज्य में नौकरी कर ली । वहाँ उनकी तहसील -वसूल, जमा-खर्च, खत-किताबत,अदालत मोकदमा[१६] यही सब काम करना पड़ता था । किन्तु महिषादल के राजसी-वैभव का जीवन भी उनको अरुचिकर लगने लगा । परिणामत: वहाँ के अधिकारियों और राजा से न पटने के कारण उन्होंने

---

१५. गंगाप्रसाद पाण्डेय- महाप्राण निराला, पृ० ३१ ।

१६. गंगाप्रसाद पाण्डेय-महाप्राण निराला, पृ० ३१ ।

नौकरी से इस्तीफा दे दिया । बहुत सोच विचार के बाद अपना नया नाम रखा-'सूर्यकान्त त्रिपाठी'।

विद्रोह का प्रेरणा-स्रोत :-

निराला जी में समाज की प्रचलित परंपराओं के प्रति विद्रोह की भावना क्रमश: तीव्रतर होने लगी । पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरे विवाह के प्रस्ताव को उन्होंने न केवल अस्वीकार किया, वरन् गुस्से में अपनी जन्म-पत्री तक को फाड़ डाला । अपने पुत्र का विवाह, जो इनके नाना के द्वारा काफी दहेज पर तय हो चुका था, अस्वीकार कर दिया और उसे बिलकुल अपने ढंग पर कन्या पक्ष का भी व्यय भार वहन करते हुये उन्होंने सम्पन्न कराया । अपनी कन्या सरोज का विवाह भी उन्होंने प्रचलित प्रथाओं को तोड़ कर एक साहित्यिक से कराया । वहां पुरोहित का आसन स्वयं निराला को ग्रहण करना पड़ा । निराला का व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, काव्य आदि सबकी स्वच्छन्दता अर्थात् स्वतंत्रता चाहते थे । उनके लिये कोई बंधन सह्य नहीं था ।

महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के समय से निराला जी के विशेष कृतित्व का काल आ जाता है । वे सन् १९२८ ई० तक कलकत्ते में अनेक पत्र-पत्रिकाओं के साथ संपर्कित होकर अनेक प्रौढ़ रचनायें प्रस्तुत करते थे । निराला जी का सम्बन्ध समन्वय ,मतवाला,रंगीला, सरोज आदि पत्र-पत्रिकाओं के साथ था । उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व में मतवाला पत्र का विशेष उल्लेख होना चाहिये । रामकृष्ण परमहंस की साधना और स्वामी विवेकानन्द के वेदान्ती अद्वैतवाद, शक्ति -साधना और करुणा का जाग्रत स्वरूप निराला जी की विचारधार में पाया जाता है । आध्यात्मिकता और वेदान्त की व्यावहारिकता के प्रति निराला जी की अप्रतिम आस्था थी । यह उनके व्यक्तित्व के औदात्य की एक

विशेषता है । निराला जी की रचनाओं में अद्वैत दार्शनिक जो गम्भीर छाप पाई जाती है और उनकी महत् काव्य-शक्ति के रूप में दार्शनिक चेतना जो सिद्ध हुई है उसकी आधार भूमि "समन्वय" ही है ।

निराला जी को,साहित्य-संसार में विद्रोही कवि,स्वच्छन्द-छन्द के प्रणेता और काव्यत्व की गरिमा, प्रकर्ष और औदात्य से ओत-प्रोत कविता देवी के उपासक के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय "मतवाला" पत्र को और उसके संपादक एवं मालिक स्वर्गीय महादेवप्रसाद जी सेठ को है । छन्द की उन्मुक्तता या स्वच्छन्दता के कारण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जुही की कली" जैसी प्रौढ़तम रचना को"सरस्वती" में छापने से इन्कार कर दिया था और उन्होंने लिखा, आपके भाव अच्छे हैं, पर छन्द अच्छा नहीं, इस छन्द को बदल सकें तो बदल दीजिये ।[१७] "अनामिका" की भूमिका में द्विवेदी के इस वक्तव्य का उद्धरण दिया गया है जो पंचवटी प्रसंग पर उन्होंने कहा था जिससे निराला जी के मुक्त छन्द के प्रति उनकी अनास्था स्पष्ट होती है -- "हिन्दी वालों में ६० फीसदी इस छन्द को अच्छी तरह पढ़ भी न सकेंगे , पर चीज नयी है, अगर इसका आदर हो तो आगे भी इसी छन्द में लिखियेगा ।[१८] सुमित्रानन्दन पंत जी ने भी पल्लव की भूमिका में कवित्त के पुरुष गर्व से ओत-प्रोत व्यंजना-प्रधान लय-ताल समन्वित निराला के स्वच्छन्द या मुक्त छन्द के विरुद्ध कतिपय भ्रामक बातें कह दी थीं जिसके कारण निराला जी को पन्त जी और पल्लव नामक निबंध लिखना पड़ा । इसी युगान्तरकारी छन्द को और निराला जी की स्वच्छन्दता वादी रचनाओं को "मतवाला" ने पूर्णत: आश्रय दिया था । वास्तव में महादेव प्रसाद जी सेठ न होते तो निराला भी न आये होते ।[१९] श्री सेठ जी

---

१७. निराला- प्रबंध पद्म, पृ० ६५ ।

१८. निराला- अनामिका प्रथम की भूमिका ( प्रकाशन वर्ष, १९२३ ), पृ० १० ।

१९. निराला-अनामिका (नवीन) प्राक्कथन, पृ० ८

की ही शीतल छाया में कविवर सूर्यकान्त जी पनपे, पुष्पित एवं पल्लवित हुये। उनका 'निराला' नामकरण 'मतवाला' में आने पर ही हुआ। निराला जी के मुक्त-वृत्तों का हिन्दी साहित्य-जगत उठकर विरोध कर रहा था, किन्तु निराला जी सशक्त प्रतिभा के बल पर अव्याहत गति से आगे बढ़ रहे थे। निराला जी की स्वतंत्र प्रवृत्ति ने उनको 'मतवाला' में ही रहने नहीं दिया। 'मतवाला' के कार्य-काल में ही निराला जी की ऊर्जस्वी काव्य-प्रतिभा, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति और कल्पना को नवीन जीवन प्राप्त हुआ। सन् १९२४ ई० से १९२७ ई० तक निराला जी की रचनायें 'मतवाला' में प्रकाशित होती थीं। वास्तव में यही समय उनकी प्रतिभा के उत्कर्ष का समय था किन्तु सन् १९२७ ई० के बाद 'मतवाला' से निराला जी का निकट सम्पर्क छूट गया था। अस्थिरता, आर्थिक चिन्ता, शारीरिक और मानसिक रोगों और अन्याय-विरोधों के बीच उनका जीवन चल रहा था। सन् १९३० ई० के बाद निराला जी को अत्यधिक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिसके परिणाम-स्वरूप अर्थ प्राप्ति के उद्देश्य से उनको बाजार की जनता की रुचि के अनुकूल उपयोगी ग्रन्थ की रचना करनी पड़ी। इसी समय उनके भक्त ध्रुव, महाराणा प्रताप, भक्त प्रह्लाद, भीष्म आदि जीवनी-साहित्य, हिन्दी बंगला शिक्षक, श्रीरामकृष्ण वचनामृत आदि ग्रन्थ प्रकाश में आये। घोर आर्थिक संकट के कारण उन्हें अपने ग्रन्थों को बेच देना पड़ता था। शक्ति रहस्य के ज्ञाता अद्वैतवादी निराला जी निरन्तर जाति, धर्म, समाज, साहित्य आदि की जड़ मान्यताओं को ललकारते थे, उनको बाह्य और आन्तरिक संघर्षों को शाम करने वाला वातावरण उपलब्ध नहीं हुआ और उन्हें सदा विरोधों को ही सहन करना पड़ता था।

निराला जी की प्रकृति ही कुछ ऐसी उदार प्रकार की थी कि जीवन भर दुःख और अभाव की प्रताड़ना सहन करने पर भी वे मुक्त हस्त होकर दान देते थे। संचय का विचार किये बिना वे सब धन खर्च कर देते थे। करुणा और सहानुभूति की वे साकार मूर्ति थे। किताब महल से प्राप्त ३०० रुपये को

एक बूढ़ी भिखारिन को 'बेटा' कहने पर यह कहते हुये दे दिया, इसमें तीन सौ रुपये हैं । माँ । लो, कोई काम करके पेट चलाओ । अब भीख मत माँगना ।[२०] अपने हिस्से का भोजन निर्धन भिखारियों में बाँट देना उनका स्वाभाविक कार्य था ।[२१] दुलारेलाल भार्गव द्वारा खरीद कर दिया हुआ रेशमी कुर्ता अमीनाबाद के भिक्षुक को निराला जी ने अर्पित कर दिया था ।[२२] ऐसी अनेक घटनायें उनके जीवन में घटी थीं जो पीड़ित मानवता के प्रति उनकी संवेदनशीलता का परिचय कराती हैं । यह उदारता भी उनकी आर्थिक विपन्नताओं का कारण थी ।

लखनऊ के गंगा पुस्तक माला में निराला जी सन् १९२६ ई० में काम करने लगे और 'सुधा' नामक पत्र के संपादन में योगदान देने लगे । गंगा पुस्तकमाला के संचालक दुलारेलाल भार्गव ने निराला जी के कृतित्व के निर्माण में अत्यधिक सहायता प्रदान की । उनके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों की रचना लखनऊ में हुई । इन रचनाओं के प्रकाशन और बिक्री से उनकी आर्थिक कठिनाई हल हो सकती थी किन्तु उनकी उदारता, दानशीलता, और प्रकाशकों से अधिक न माँगने की वृत्ति और संगीत शिक्षा के लिये उनके पुत्र का लखनऊ आगमन और उसमें खर्च आदि के कारण उनकी आर्थिक परिस्थिति ज्यों की त्यों रह गयी । निराला जी इन सब कठोर समस्याओं के विरुद्धाचरण करते रहे, विचलित नहीं हुये । उनकी पुत्री सरोज की बड़ी करुण स्थिति में देहावसान हुआ [२३] और निराला जी के जीवन में यह दूसरा आघात था । पुत्री की मृत्यु से उनके मानसिक असन्तुलन और विक्षेप की भयंकर स्थिति का प्रादुर्भाव हुआ । सारी बिगड़ती हुई स्थिति के कारण उनकी अवस्था अत्यन्त चिन्तापूर्ण होती गयी ।

---

२० उमाशंकर सिंह-महाकवि का निरालापन, पृ० ७७ ।

२१. उमाशंकर सिंह-महाकवि निराला का निरालापन, पृ० ७४ ।

२२. वही, पृ० ३२ ।

२३. निराला-अनामिका, सरोज स्मृति, पृ० ११८ ।

सन् १६४१ ई० के पश्चात् निराला जी की मानसिक दशा और भी चिन्ताजनक हो गयी । वास्तविकता से दूर एक काल्पनिक स्थिति में अपने को डाल कर व्यवहार करने और बरतने की वृत्ति बढ़ती गयी ।[२४] वे निरन्तर भावावेश की स्थिति में स्वगत भाषण, भयंकर अट्टहास आदि अप्रत्याशित व्यवहार करते थे । वे रवीन्द्रनाथ ठाकुर से पारिवारिक सम्बन्ध जोड़कर बातें करते थे । पहलवान 'गामा' को हराने, चर्चिल, एडवर्ड अष्टम, एलिजावेथ, स्वामी विवेकानन्द आदि से वार्तालाप करने की भी अतिरंजित बातें करते थे । यह विक्षेप की दशा सन् १६४१ ई० में लखनऊ छोड़कर प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में आकर रहने के बाद से आरम्भ हो कर १५ अक्टूबर, सन् १६६१ ई० तक जब उनका महाप्रयाण हुआ, बनी रही । बीच बीच में विक्षेप की स्थिति उग्र होती गयी । किन्तु निराला जी की इस दशा को साधारण पागल की दशा नहीं कहा जा सकता । वे तब भी व्यावहारिक कार्यों में भाग लेते थे, सधे हुये खिलाड़ी के समान ताश खेलते थे । तब भी उनकी स्मृति शक्ति बनी रही और उनकी मार्मिक काव्य-रचना का क्रम नहीं टूटा ।[२५] उदाहरण के लिये सन् १६४५ ई० में प्रकाशित उनके अन्तिम गीत-संग्रह 'गीत-गुंज' को लिया जा सकता है जिसमें उनकी प्रणयि भावना, प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति अकुंठित आस्था आदि का प्रतिपादन परिमल गीतिका आदि प्रारंभिक काल की उत्कर्ष पूर्ण कृतियों की तुलना में औदात्य की दृष्टि से किसी भी मात्रा में कम नहीं हुआ है । यह कहना सर्वथा उचित है कि निराला जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में विक्षेप दशा का आंशिक प्रभाव ही पड़ा था ।[२६]

परतंत्र राष्ट्र में किसानों, मजदूरों और पीड़ितों की शोचनीय अवस्था को देखकर साम्राज्यवाद और सामन्तशाही, राजनीतिक और सामाजिक एवं अमीर तथा गरीब के बंधनों में आबद्ध राष्ट्र को दयनीय दशा में कराहते हुये पाकर निराला जी का क्रान्तिकारी, विद्रोही, मानवतावादी, कवि

---

२४. रमेशचन्द्र मेहरा-निराला का परवर्ती काव्य, पृ० २६ ।

२५. वही, पृ० २८

२६. वही, पृ० २६

कैसे मूक रह सकता था ? तब वे नस-नस में मानवता, राष्ट्रीयता और विश्व की सार्वजनीनता के विकास और आततायियों के विनाश के लिये गुरु- गंभीर घोष करने लगे :-

शेरों की मांद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार । [२७]

एक बार निराला जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में अपने गांव के जमीन्दार के अत्याचारों के विरुद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन चलाया था । मीटिंग पर मीटिंग करवाते रहे । किसानों को संगठित करने लगे । यह आन्दोलन लगान बन्द करवाने की प्रार्थना करने वाले किसानों का था । अपने गांव के प्राय: सभी किसानों को निराला जी सरकार के विरुद्ध विद्रोही बनाने में सफल हुये । [२८] यद्यपि निराला जी ने अपने जीवन में ऐसे राष्ट्रीय आन्दोलनों में अ राय चौधुरी की भांति सक्रियता-पूर्वक भाग नहीं लिया था, फिर भी उनकी राष्ट्रीय कविताओं में साम्राज्यवादियों के कुचक्रों को कुचल डालने की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति सर्वत्र मुखरित हुई है । भारत के क्षात्र धर्म को, राष्ट्र की दासता की बेड़ी काट डालने के लिये निराला जी ने इस प्रकार से प्रेरित किया है :-

और यदि एकीभूत शक्तियों से एक ही
बन जाय परिवार,

स्थिर न रहेंगे पैर यवनों के -
पस्त हौसला होगा
.................
आयेगी भाल पर, भारत की गई ज्योति,

---

२७. निराला-परिमल, जागो फिर एक बार (२), पृ० १८८ ।
२८. नागार्जुन-एक व्यक्ति-एक युग , पृ० ५४ ।

हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जायेंगे ।[२९]

राय चौधुरी;जीवन और व्यक्तित्व :-

जब पश्चिम के बम्बई शहर में भारतीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थीं तब पूर्व स्थित असम प्रान्त के काशीधाम बरपेढा में दिसम्बर सन् १८८५ ई० में अम्बिका गिरि रायचौधुरी का जन्म हुआ । इनका बाल्यकाल का नाम अम्बिकाचरण राय चौधुरी था । यही अंबिकाचरण राय चौधुरी के नाम से असम के राजनीतिक और सामाजिक आकाश को कंपा देने वाला प्रख्यात साहित्यकार हुआ ।[३०] उनके पिता कृष्णाराय चौधुरी श्रीमन्तशंकरदेव की वंश-परंपरा के थे । जो सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि कबीर के समकालीन थे । उनकी माता देवकी देवी महापुरुष शंकर देव के जीवन-चरित्र प्रणेता श्री रामचरण ठाकुर की वंशज और सुन्दरी दिया सत्राधिकार जितराम देवाधिकारी की पुत्री थीं ।[३१] राय चौधुरी जब सात वर्ष के थे तब उनके पिता जी का देहान्त हो गया और माता जी असहाय अवस्था में अकेले पांच बच्चों का पालन-पोषण न कर सकने के कारण बरपेढा छोड़कर अपने पितृगृह आ गयीं । राय चौधुरी का बाल्यकाल अपने मामा और माता जी के कठोर शासन में बीता था । सुन्दरी-दिया नामक स्थान बरपेढा के पास होने से राय चौधुरी का अध्ययन बरपेढा में ही आरंभ हुआ जहाँ प्राइमरी परीक्षा में वे छात्र-वृत्ति के साथ उत्तीर्ण हुये । गौहाटी असम की सारी विद्या का केन्द्र स्थान है और राय चौधुरी विद्याध्ययन में आगे बढ़ने की प्रबल इच्छा को पूरा करने की अभिलाषा से अपने फुफेरे भाई

---

२९. निराला-परिमल,महाराजशिवाजी का पत्र, पृ० २१६,२२० ।
३०. आरति हाजरिका-राय चौधुरीर जीवन संग्राम, पृ० ९० ।
३१. वही, पृ० ९० ।

हरमोहन के साथ गौहाटी आये । उस समय वे गौहाटी कचहरी में पेशकार थे ।[३२]
गौहाटी के सोना राम हाई स्कूल में उन्हों ने प्रवेश लिया किन्तु पढ़ नहीं सके ।
सन् १९०४ ई० के बंग-भंग आन्दोलन में योग प्रदान कर जन्म भूमि-सुरक्षा की
चिन्ता में पूर्णतया लग जाने के कारण उनकी पढ़ाई बंद हो गयी ।[३३] प्रेमी,
गायक और मल्लवीर राय चौधुरी की चिन्ताधारा पराधीन मातृभूमि की
दुर्दशा, उत्पीड़न मानव वेदना, राष्ट्र वेदना, विश्व वेदना, इत्यादि के रूप
में उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुई । उनकी कृतियों में विफल प्रेम और देश की
करुण अवस्था का सजीव वर्णन अप्रत्याशित वेदना और आघात के रूप में पाया
जाता है । शैशवकाल में पाने वाले घात-प्रतिघात राय चौधुरी में आत्म-विश्वास
और संघर्षों में अविचलित होने का जो साहस विकसित हुआ वही वेदना और
कठिनाइयों की गोद में पलने वाले राय चौधुरी में जीवन के अन्तिम क्षण तक
अचल-अटल, स्वस्थ, गम्भीर और ओजस्वी व्यक्तित्व का निर्माण कर सका । उनके
उदात्तम कवि-व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन
की कठिनाइयों का बहुत बड़ा हाथ रहा है ।

विद्रोह का प्रेरणा-स्रोत :-

अम्बिका गिरि राय चौधुरी जी बाल्यकाल से ही विद्रोही विचारों
के थे । मामा और माता के कठोर शासन से पितृ-हीन बालक के मनकी सुप्त विद्रो-
हात्मक भावनाएँ महापुरुष महात्मा गांधी का ईंधन पाकर जल उठी । सन्
१९२० ई० में राय चौधुरी जी ने महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय
भाग लिया था और गांधी जी के शिष्य वर्ग के साथ तीन साल के सख्त कारावास

---

३२. अम्बिका गिरि, राय चौधुरी स्मृति ग्रन्थ- असम साहित्य सभा, पृ० ९३ ।
३३. आरति हाजरिका : राय चौधुरीर जीवन संग्राम, पृ० ९० ।

से दंडित हुये ।[३४] जेल से मुक्त होने के बाद राय चौधुरी ने शतधार नामक पुस्तक की रचना की जिसका कथानक राजद्रोह पूर्ण था । अत: अंग्रेजी सरकार ने उन्हें पुस्तक जब्त करके राजद्रोही घोषित किया और फिर तीन महीने के लिए जेल भेज दिया गया । असमीया भाषा में सरकार द्वारा निषिद्ध यही प्रथम पुस्तक है । जेल से मुक्त होकर राय चौधुरी ने नलबारी के कालीचरण चौधुरी की आत्मजा कौशल्या देवी से विवाह किया । वे हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त करते समय ही सन् १८९६ ई० में बरपेढा से गौहाटी ब्रह्मपुत्र नदी में जब जहाज से आ रहे थे तभी पलाशबारी (विजयनगर) में असम के विद्रोही कवि और उनके गुरु कमलाकान्त भट्टाचार्य से उनकी भेंट हुई । उनके मन की विद्रोहात्मक और स्वदेश प्रेम-मूलक भावनायें प्रकट हुईं ।[३५] यही उनकी विद्रोहात्मक कार्य की स्थिति है ।

राय चौधुरी का कारावास उनके व्यक्तित्व के निर्माण में विशेषत: देश प्रेम और क्रान्ति की भावना जाग्रत करने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । यहीं उनका अंग्रेज विरोधी क्रान्तिकारी स्वरूप अभिव्यक्त होने लगा । विदेशी शासन के विरुद्ध राय चौधरी के हृदय में क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और वही भाव आजीवन अविराम गति से चलता रहा । अंगरेजों के विरोध के साथ साथ ही विदेशी सत्ता के कटु-व्यवहार का विचार किये बिना अपने ही राष्ट्र में फिरंगियों के अधीन रहने में गर्व का अनुभव करने वाले भारतीयों की हीन प्रवृत्ति और उनकी सामाजिक,साम्प्रदायिक और धार्मिक प्रथाओं के विरुद्ध आक्रोशपूर्ण उद्गार उनकी अन्य रचनाओं द्वारा आजीवन प्रकट होते रहें । इसीलिए उनको शासन, समाज,धर्म, राजनीतिक आदि के ठेकेदारों का क्रोधभाजन बनना पड़ा ।

---

३४. आरति हाजरिका-रायचौधुरीर जीवन संग्राम, पृ० ६१ .

३५. उपेन्द्र बरकट की :- अम्बिकागिरिर व्यक्तित्वर आभास, पृ० १५ ।

राय चौधुरी सन् १६१५ से १६१८ ई० तक डिब्रूगढ़ में रहे थे। वे वहां से प्रकाशित 'असम-बांधव' नामक पत्रिका के सह संपादक थे। डिब्रूगढ़ रेलवे मुद्रणालय से सन् १६१८ ई० में उनके आध्यात्मिक अतीन्द्रियवादी प्रमुख काव्य 'तुमि' और 'बीणा' का प्रकाशन हुआ था। इसी समय आप डिब्रूगढ़ में सरकारी हाई स्कूल में शिक्षक की नौकरी भी करते थे किन्तु किसी कारण उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। इसके बाद आप असम साहित्य सभा के संपर्क में आये और सन् १६४४ ई० में शिवसागर में आयोजित अधिवेशन की संगीत-शाखा के कार्यकर्ता रहे थे। सन् १६४४ ई० में असम साहित्य सभा के मार्घेरिटा अधिवेशन में वे अध्यक्ष निर्वाचित हुये और तीन साल तक अपना कार्यभार पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ संभालते रहे।[३६]

सन् १६२० ई० में राय चौधुरी जी गौहाटी में स्व० नवीनचन्द्र बर-दले के माध्यम से गांधी जी के संपर्क में आये और उनके एकान्त शिष्य बनने के साथ-साथ आप आधुनिक इटली के निर्माताओं-मैटजिनी, गैरिबाल्डी की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों, फ्रान्सीसी क्रान्ति और रूसी साम्यवादी क्रान्ति से अत्यधिक प्रभावित हुये। जन गणना के सिलसिले में उन्होंने सारे असम प्रान्त का भ्रमण किया और सारे असम में एक ही प्रकार की दयनीय परिस्थिति का अनुभव किया। उन्होंने देखा कि असम तथा शेष भारत में शक्ति और सामर्थ्य का अभाव है। भारत के अतीत गौरव का स्मरण कर उसकी तुलना में वर्तमान पतित और पीड़ित अवस्था की विगर्हणा को देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ और इस विशाल राष्ट्र पर अल्पसंख्यक अंग्रेजों को शासन करते देख कर राय चौधुरी को भारतवासियों के अज्ञान और अकर्मण्यता का परिचय मिला। असमवासी अपने जातीय गौरव, सांस्कृतिक औदात्य और वैभवमण्डित अतीत की शालीनता को विस्मृत कर चुके हैं।

---

३६. आरति हाजरिका - राय चौधुरीर जीवन संग्राम, पृ० ६२।

प्रह्लाद,नरक,बलि,भीष्मक,भास्कर,भगदत्त बाण,
रुद्र,लाचित,जया,गदा,चिला,नर-नारायण महान प्राण,
शंकर,सरस्वती,दामोदर,माधव कन्दलि,पुरुषोत्तम,
मोरे पौ-नातिर ज्ञान-वीरत्व गरिमारे ई अनुपम-
भारतर फूलबिल परिशोभि,आछों,मइ आछों ।[३७]

हिन्दी रूपान्तर

प्रह्लाद,नरक, बलि, भीष्मक,भास्कर,भगदत्त,बाण,
रुद्र, लाचित, जया, चिला और नर-नारायण का है महान् प्राण ।
शंकर,सरस्वती,दामोदर,माधव-कन्दलि पुरुषोत्तम,
मेरे ही पुत्र-पौत्र ज्ञान वीरत्व की गरिमा से होते हैं अनुपम ।
भारत के फूलबिल का शोभाकर मैं हूं, मैं हूं ।

पारस्परिक हिंसा-द्वेष की व्याप्ति ,साम्प्रदायित्व ,जातीय और धार्मिक कट्टरता के अनुकरण और जाति,कुल वर्ण, प्रान्त, भाषा आदि के आधार पर विषमताओं के विकास आदि के कारण उन्होंने अपने चारों तरफ एक ऐसी परिस्थिति का अनुभव किया जिसको सुधारना आसान नहीं । विदेशी शासक को उसकी वैज्ञानिक प्रगति और यंत्र-विज्ञान के विकास और कार्य-क्षमता के कारण अपने ऊपर शासन करने का अधिकार स्वयं देशवासियों ने दे दिया है । इस तरह की उपलब्धि के परिणामस्वरूप आप विद्रोही बन गये और उनकी स्वच्छन्द वृत्ति की यही पृष्ठभूमि है :--

मइ विप्लवी, मइ ताण्डवी
मइ काल- विजयी विप्लवी
मइ काल-विनाशी ताण्डवी ।[३८]

---

३७. राय चौधुरी- अनुभूति,मइ आछों-मइ आछों, पृ० ८० ।
३८. राय चौधुरी-अनुभूति- मइ विप्लवी मइ ताण्डवी,पृ० ६१ ।

हिन्दी रूपान्तर

मैं विप्लवी हूँ, मैं ताण्डवी हूँ,
मैं काल- विजयी विप्लवी हूँ।
मैं काल-विध्वंसी ताण्डवी हूँ।

राय चौधुरी की आत्मा अपनी राष्ट्रीय प्रगतिशील प्रवृत्तियों की सामाजिकता के पावन संस्कार और समृद्धिगत भावना के ओजस्वी समारोह के साथ अभिव्यक्त करने के लिये छटपटाती थी।

राय चौधुरी डिब्रूगढ़ से फिर गौहाटी चले आये और 'अरुणा' मुद्रणालय की स्थापना की, जिसकी सहायता से 'चेतना' पत्रिका का जन्म हुआ और राय चौधुरी जी स्वयं मुद्रणालय के सारे काम अपने हाथ से किया करते थे। पत्रिका उनके लिये अपनी विचार-धाराओं का सामाजिक रूप देने का साधन सा बन गयी। 'चेतना' के माध्यम से ही उनकी तीव्रता, मुखरता और आत्म-विश्वास की अभिव्यक्ति होने लगी। थोड़े ही समय में राय चौधुरी के राष्ट्र-प्रेम, जाति-प्रेम और मातृभाषा प्रेम की प्रगतिशील प्रवृत्ति से असम के बाहर और भीतर के लोगों का भली भाँति परिचय हो गया। किन्तु राय चौधुरी को अच्छी तरह न समझने के कारण कुछ नेता उनकी विद्रोह भावना को सांप्रदायिक संकीर्ण मानकर उन्हें समाजद्रोही कहा करते थे।

सन् १९०५ ई० में लार्ड कर्जन जब बंग-भंग करने का निश्चय किया तब राष्ट्र में सुलगती हुई विद्रोह की अग्नि भड़क उठी, सारे देश भर में स्वदेशी-प्रसार होने लगा। इस राष्ट्रीय आन्दोलन से भी राय चौधुरी अछूते न रहे। दिसम्बर सन् १९०६ ई० में कलकत्ते के कांग्रेस-अधिवेशन में राय चौधुरी ने असम के उस समय के कर्णधार नवीनचन्द्र बरदलै के साथ भाग लिया और उस अधिवेशन के तीन सिद्धान्तों- वन्दे मातरम्, असहयोग और स्वदेशी आन्दोलन से वे बहुत प्रभावित हुये। सन् १९०५ ई० में इनके बन्दिनी भारतमाता नाटक को राजद्रोहमूलक मानकर अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया। उसका निम्नलिखित गान गाते समय

ही पुलिस रंग मंच पर आयी और नाटक को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया :-

आर यंत आके दा-कुठार याठी
हाते हाते तुलि ल ,
नकरिबि भय,नाइ संशय
बुकुत साहस ल ।[३६]

हिन्दी रूपान्तर

सब अस्त्र शस्त्र हाथ में लेकर आओ ।
डरो मत , कोई भय नहीं है ।
मन की हिम्मत से आगे बढ़ो ।

राय चौधुरी की कवित्व शक्ति को अनायास ही प्रस्फुटित करने वाली शक्तियों में उनके जीवन की मौलिक कठिनाइयों का ही महत्वपूर्ण हाथ रहा है । अपनी पत्नी और पुत्र-पुत्री के साथ जीवन-यापन करने वाले राय चौधुरी को अनवरत आर्थिक कठिनाइयां सहनी पड़ीं । निराला की भांति उनकी उदारता भी उन्हें बराबर आर्थिक कठिनाइयों में रखती थी । अपने अस्त-व्यस्त जीवन में जब कभी उनको पैसे मिलते थे तब वे अपने परिवार के अभावों की चिन्ता किये बिना किसी अभावग्रस्त व्यक्ति को या प्रतिरक्षा पूंजी को दे देते थे । जब तक उनके पास पैसे रहते तब तक वे निर्धनों अथवा गरीबों को दिया करते थे । देशवासियों के हित की बात सोचते सोचते अपने बाल बच्चों के विषय में चिन्ता करने का समय उन्हें मिला ही नहीं । एक बार उन्होंने एक आंध्रदेशी अनाथ बालिका का पालन-पोषण कर उसे जीवन यापन योग्य बनाया था । राय - चौधुरी अत्यन्त सत् स्वभावी और भोले-भाले सज्जन थे । असत् साधनों से धन उपा-

---

३६. राय चौधुरी- बन्दों कि छन्देरे, याय याब प्राण, पृ० ६ ।

र्जन करना वे कभी स्वीकार नहीं करते थे । गौहाटी के एक नागरिक ने झूठी गावही देने के लिये उन्हें पाँच हजार रुपये देने का वायदा किया था किन्तु रुपये लेकर झूठी गवाही देना उन्हें मन्जूर नहीं था ।[40] बरपेढा में गरीब छात्र छात्राओं को सहायता देने के लिये उन्होंने पुअर फण्ड खोला था ।

धनाभाव के कारण उनकी पारिवारिक विपन्नताओं की कोई सीमा नहीं थी । स्त्री, पुत्र और पुत्रियों को सदा अर्थाभाव का शिकार बनना पड़ता था । धनाभाव में विविध दु:ख कष्ट पाने पर भी वे कभी किसी से धन उधार नहीं लेते थे या असत् उपाय सेधनोपार्जन नहीं किया करते थे । ऐसी ही अवस्था में उन्हें अपनी प्यारी पुत्री ""अनुपमा" को चिर विदा देनी पड़ी क्यों कि दूकान से दवा लेकर भी बाद में धनाभाव के कारण धोखा देने के दोषारोपण से बचने के लिये दवावापस कर दिया था ।[41] अपनी कुछ दिन मृत्यु के पहले आकाशवाणी के कवि सम्मेलन के योगदान से प्राप्त पचास रुपये और "देशेइ भगवान" नामक पुस्तक की बिक्री से प्राप्त धन उन्होंने प्रतिरक्षा-पूंजी में दान कर दिया था ।[42] अविराम संघर्षों और निरन्तर विरोधों का सामना करने वाले राय चौधुरी को सरकार तथा समाज की ओर से अनेक कष्टों को सहना पड़ा । सन् १६०४ ई० में राय चौधुरी बंगाल के प्रसिद्ध देश-प्रेमी खुदीराम वसु, बारीन घोष और उल्लासकर दत्त के प्रभाव में आये और असम में भी अंगरेज विरोधी एक संत्रास (एनार्किस्ट) दल का संगठन किया । सन् १६०६ ई० में गौहाटी-शिलांग मार्ग पर गौहाटी से ६ मील की दूरी पर अंगरेज अफसर सर वैमफील्ड फुलर की हत्या करने के अभिप्राय से इन्हों ने डाइनेमाइट का व्यवहार किया था किन्तु अपने संत्रास

---

४०. अम्बिकागिरि राय चौधुरी स्मृति ग्रन्थ, असम साहित्य सभा, पृ० २० ।
४१. आरति हाजरिका :- राय चौधुरीर जीबन संग्राम, पृ० ६३
४२. वही, पृ० ६४ ।

दल के सदस्य 'सुरेनदास गुप्त' के विश्वासघात के कारण षड्यन्त्र सफल न हो सका और सरकारी गुप्तचरों ने उनका पीछा किया । इस घटना के पश्चात् राय चौधुरी का जीवन गौहाटी में अशान्त रहा और सन् १६०७ ई० से १६१५ ई० तक बरपेढा में उन्हें पुलिस की नजरबन्दी में रहना पड़ा ।[४३] इन संघर्षों विरोधों और विपन्नताओं से उनके जीवन और साहित्य में कभी भी गति-रोध नहीं हुआ वरन् प्रगति ही होती रही । इसी संघर्षकाल में उनकी अप्रतिम कवित्व शक्ति की गरिमा और आत्मबद्ध अन्तर्मुखी साधना का काव्यमय स्वरूप निखर उठा । इसी अन्तराल में उनकी आध्यात्मिक रचनायें विशेषकर 'तुमि, बीमा और बेणु प्रकाश में आयीं । ये कृतियां बाह्य जीवन अर्थात् राष्ट्रीय प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति तक सीमित न रह कर विस्तृत कल्याण की भूमिका में अन्तर्दर्शन की प्रवृत्ति द्वारा बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता का समन्वय कर भाव समष्टि का चित्रांकन प्रस्तुत करती हैं । राय चौधुरी की मुक्त विद्रोहात्मक प्रवृत्ति,समरसतावादी और मानवतावादी चेतना,सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति, कामना, साम्यमूलक अद्वैतवाद पर आस्था, भारतीय संस्कृति की भूमिका पर आधारित रहस्यवादी प्रवृत्ति इत्यादि स्वच्छन्दतावादी तत्वों का समग्र और कलात्मक स्वरूप इस काल की कृतियों में स्पष्टत: पाया जाता है । उनकी 'तुमि', बीणा' और 'बेणु' जैसी उदात्ततम कृतियों में अद्वैतपरक दार्शनिक तटस्थता पायी जाती है । उनकी कृतियों में जीवन की वैयक्तिक ,सामाजिक और राष्ट्रीय विद्रोहों और स्वच्छन्दता वादी काव्य-कला के भीतर से विश्व-मानवतावाद की अनुगूंजन मुखरित हो रही है । इसका मूल कारण भारतीय अद्वैतवाद की स्वीकृति है ।[४४] साथ ही साथ व्यावहारिक जीवन के धरातल पर समन्वयात्मक अद्वैतवादी दार्शनिक एकता को प्रतिपादित करने वाले असम के श्रीमन्त शंकरदेव और उनके प्रिय शिष्य माधवदेव, बंगाल के रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि

---

४३. उपेन्द्र बरकट की :- अम्बिकागिरिर व्यक्तित्वर आभास, पृ० १३।

४४. हिम्बेश्वर ने ओग - तुमि कबिता, अम्बिकागिरि, व्यक्तित्वर आभास, पृ० १८

मनीषियों का महत्वपूर्ण प्रभाव है ।[४५] असमीया समाज ने उनकी विचारधारा और विद्रोहको न माना, यहां तक कि उनकी उदारता और विद्रोही प्रवृत्ति के कारण उन्हें जाति भ्रष्ट घोषित किया । डा० वाणीकान्त काकति जो असम के विख्यात साहित्यिक, समालोचक और भाषाविद् थे, राय चौधुरी को असम की बिगड़ी सन्तान कह कर पुकारते थे ।[४६] वे अपने परिवार की आर्थिक विपन्नताओं के कारण अत्यधिक परेशान थे । अन्य साहित्यिकों से उन्हें अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों -- विशेषकर भाषा, प्रकाशन भंगिमा और विद्रोहात्मक चिन्ता के कारण अच्छा व्यवहार न मिला जिससे उनकी 'चेतना' और 'डेका असम' पत्रिकायें बन्द करनी पड़ीं । सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक आन्दोलनों में सक्रियतापूर्वक जीवन के आदि से अन्त तक नितान्त यातनायें सहते हुये भाग लेने पर भी राय चौधुरी को वह सम्मान नहीं मिला जो सम्पन्न परिवार और परिस्थितियों में पलने वाले अन्य कवियों और राजनीतिवादों को मिला, बाद में डा० वाणीकान्त काकति भी राय चौधुरी के उच्चतर के साहित्यिक चिन्तन को देखकर 'नोवल पुरस्कार' उपयुक्त होने की कामना करते थे ।[४७]

आजीवन असमीया भाषा और जाति की आत्म-प्रतिष्ठा के लिये संग्राम करने वाले और आप्राण चेष्टा करने वाले अग्नि कवि, असम केशरी अम्बिका गिरि राय चौधुरी सन् १९६७ ई० के २ जनवरी को ६ बजकर ४५ मिनट पर गौहाटी के अपने निवास स्थान आत्म विकास भवन में नश्वर देह परित्याग कर स्वर्ग चले गये ।[४८] राय चौधुरी को किसी भी प्रकार का बंधन- चाहे वह

---

४५. तिलकदास- अम्बिका गिरि आरु ते और जीवन दर्शन, पृ० ११ ।
४६. उपेन्द्र बरकटकी- अम्बिका गिरिर व्यक्तित्वर आभास, पृ० १३ ।
४७. उपेन्द्र बरकटी - वही, पृ० १६
४८. आरति हाजरिका - राय चौधुरीर जीबन-संग्राम, पृ० ६४ ।

राजनीतिक हो, धार्मिक हो या सामाजिक हो - सह्य नहीं था । उनके भीतर राजनीति की उष्मा विधमान थी किन्तु, उनको राजनीतिक नेता बनाने के लिये नहीं, नि:स्वार्थी देश-प्रेम के रूप में थी है । समाज में वर्तमान खुशामद, उत्पीड़न, और शोषण के प्रति उनका क्षोभ भी अपार था । प्रबुद्ध राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का जागरण उनका वांछित ध्येय रहा ।

राय चौधुरी के व्यक्तित्व और कृतित्व में कोई अन्तर नहीं है, दोनों के बीच कार्य-कारण का सूक्ष्म और स्थूल का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । आधुनिक असम में सामाजिक जीवन में राय चौधुरी ही सबसे अधिक मौलिक उपादान संपन्न प्रतिभावान् पुरुष हैं । उनका व्यक्तित्व बहुमुखी था । आप एक साथ संगीतज्ञ, सुरशिल्पी, कवि,राजनीतिक चिन्तानायक, दार्शनिक और स्वेच्छा सेवक वाहिनी के जादूगरी संगठक थे ।[४६]

राय चौधुरी जी की सारी कृतियों में भारत के आध्यात्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक अतीत गौरव की भावना विस्तृत है और वे उच्च स्वर में भारत की वर्तमान स्वाधीनता की रक्षा का गीत गाते हैं :-

लाछितर देरे, शिवाजीर देरे ,
प्रतापर देरे शत्रु नाशेरे,
स्वाधीनता रक्षा करि चिर - अमर होवा ।[५०]

---

४६. उपेन्द्र बरकटकी- अम्बिका गिरिर व्यक्तित्वर आभास,पृ० १५,१६
५०.

## हिन्दी रूपान्तर

लाचित की भाँति, शिवा जी की भाँति,
प्रताप की भाँति, शत्रुओं को विनष्टकर
चिर अमर बनो, स्वतंत्रता सुरक्षा करो ।

---

## निराला औरराय चौधुरी के जीवन और व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और अम्बिका गिरि राय चौधुरी के जन्म स्थान, मातृभाषा और यत्किंचित समय का अन्तर होने पर भी, वे समान रूप से युग-द्रष्टा, युग निर्माता, मानवतावादी, स्वच्छन्दता-प्रेमी, क्रांतिकारी और महानकवि थे। उन्होंने अपनी मातृभाषा के माध्यम से अपने समाज में नव-चेतना को प्रवाहमान किया था। उनके सारे साहित्य में नैसर्गिक करुणा, पौरुषमय दर्प, तेजोमय उत्साह, विश्व-व्यापी उदारता आदि महत् गुणों का समन्वय हुआ है। उनके साहित्य में मुखरित होने वाली मानवतावादी विचार-धाराओं में प्रगतिवादी स्वर की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है और दार्शनिकता तथा रहस्यवाद का अप्रतिम सामंजस्य विद्यमान है। दोनों के जीवन नाना प्रकार से कठोर संघर्ष और सामाजिक घात प्रतिघात से परिपूर्ण थे और जिनका उनको विरोध करना पड़ा। इसी कारण उनके काव्यों से क्रान्ति की ज्वाला फूट निकली और ओजस्वी विद्रोह भावना मचल उठी है। इसमें उनके व्यक्तिगत जीवन की ही नहीं, समाज के अभिशप्तों तथा पीड़ितों की पुकार भी ध्वनित होती है। मानव-समाज में व्यक्तिगत तथा समष्टिगत विषमताओं को देखकर प्रतिक्रिया में दोनों कवियों ने क्रान्ति कीज्वाला धधकायी और जागरण का नव सन्देश दिया। मानव की वेदनाओं का गम्भीर अनुभव और अध्ययन कर सौन्दर्य और साधना के गीतों की दोनों कवियों ने एक ओर रचना की तो दूसरी ओर अपनी कृतियों द्वारा मानव-जाति की मूल वेदना को वाणी प्रदान की और साथ ही उग्र स्वच्छन्दता के साथ साम्राज्यवादिता, अत्याचार, उत्पीड़न, निरर्थक सामाजिक संस्कार-प्रियता आदि के बंधनों में घिरे हुये चारों दिशाओं के कटु वातावरण की प्रतिक्रिया में विराट और दुर्जेय पौरुष के प्रकृत स्वरूप को अभिव्यंजना दी। व्यक्ति और समाज के संघर्षों, पीड़ाओं, गलित परम्पराओं, बंधनों आदि के कारण दोनों कवियों का अन्तर्मन इतना पीड़ित और व्याकुल हुआ कि उनकी

सजग चेतना ने विश्व में निष्ठा का अजस्र स्रोत बहाया और विविध प्रकार की विषमताओं और अन्यायों को देख कर उनको जला डालने के महान् उद्देश्य को लेकर क्रान्ति की ज्वाला धधकाने का जीवन-व्यापी प्रयास किया । किन्तु इन सब की भूमिका समन्वयात्मक आध्यात्मिकता थी ।

निराला और राय चौधुरी के जन्म-समय, रचनाकाल आदि में साम्य पाया जाता है । निराला जी का जन्म बंगाल की महिषादल में सन् १८९६ ई० में वसन्त पंचमी के दिन हुआ और देहान्त १५ अक्टूबर सन् १९६१ ई० में इलाहाबाद के दारागंज मुहल्ले में हुआ । राय चौधुरी का जन्म सन् १८८५ ई० में दिसम्बर में आसाम के काशीधाम बरपेढा में हुआ और देहावसान सन् १९६७ ई० में दो जनवरी के दिन गौहाटी के अपने गृह आत्मविकास भवन में हुआ । इस प्रकार राय चौधुरी निराला से उम्र में १७ साल बड़े थे ।

निराला जी और राय चौधरी की रचनाओं का प्रारंभ करीब एक ही समय से हुआ था । निराला जी की पहली कविता 'जुही की कली' सन् १९१६ ई० में प्रकाशित हुई । इसके पश्चात् ही निराला जी का कृतित्व काल प्रारंभ होता है । राय चौधुरी के कृतित्व-काल का आरम्भ 'तुमि' के प्रकाशन से होता है । राय चौधुरी सन् १९१५ ई० से सन् १९१८ ई० तक तीन साल डिब्रूगढ़ में रहे थे । आप वहाँ 'असम बांधव' नामक पत्रिका के उपसंपादक थे और उसी समय सन् १९१८ ई० में आपका 'तुमि' नामक काव्य सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ ।

निराला और राय चौधुरी का जीवन- कालपराधीन और स्वाधीन भारत दोनों में व्यतीत हुआ था । ब्रिटिशकालीन भारत में भारतीय साहित्याकाश मुक्त होने की प्रबल आशा से परिपूर्ण था । भारत के स्वाधीन होते ही साहित्य-जगत् में नये-नये प्रयोगों तथा रचना प्रणालियों का जन्म हुआ । नयी-नयी विचार धाराओं और उनकी नवीन अभिव्यंजना-प्रणालियों का प्रचार होने लगा । छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, मानवतावाद आदि अनेक वादों की जब हिन्दी साहित्य-संसार में धूम मची हुई थी तब निराला का हिन्दी-साहित्य जगत में आगमन हुआ । निराला ने कालगत् वैविध्य और लम्बी अवधि के कारण,

भाव, विचार, कला और शिल्प में विस्तार, विविधता और प्रयोगात्मक के दर्शन किये हैं। निराला के कृतित्व में वैविध्य होते हुये भी आदि से अर्थात् 'परिमल' काव्य-संग्रह से अन्तिम कविता-संग्रह 'गीत गुंज' तक भावुकतापूर्ण आध्यात्मिकता का एक सूक्ष्म तंतु बराबर बना रहता है जो उनकी कृतियों में गंभीर समन्वय उपस्थित करता है। निराला जी की रचनाओं में कतिपय मूल-भूत प्रवृत्तियों को आद्यन्त देखा जा सकता है। मानवतावादी, विद्रोहात्मक आदर्शवादी प्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना की जागृति के नवीन आदर्शों और स्वच्छन्दतावादी और आध्यात्मिक सिद्धान्तों की परि-व्याप्ति न केवल निराला जी की रचनाओं में, किन्तु भारत के उत्तर पूर्व के असमीया कवि राय चौधुरी की रचनाओं में समान रूप से पायी जाती है जो स्थान, भाषा और परिस्थिति की विभिन्नताओं के होते हुये भी दोनों कवियों को बहुत निकट लाकर उपस्थित कर देती है। दोनों कवियों में स्थान आदि का अन्तर होने पर भी उनकी प्रवृत्तियों के साम्य का कारण उनके वातावरण की परिस्थितियों और प्रश्नों में दिखाई पड़ने वाली समानता ही है। दोनों कवियों के वैयक्तिक जीवन सम्बन्धी कठिनाइयाँ, उनके प्रति सामाजिक उपेक्षा और साहित्यिक नवीनता आदि में भी समानता विद्यमान है। उनके छायावाद, रहस्यवाद, अतीन्द्रियवाद, मानवतावाद, विद्रोह की भावना और स्वदेश तथा विश्व प्रेम में दैशिक अन्तर पड़ने से भी आन्तरिक साम्य की भावना चारों ओर फैली हुई है। इसके अतिरिक्त युगीन राष्ट्रीय परिस्थितियों का भी उन दोनों पर समान प्रभाव पड़ा है, दोनों पराधीन और स्वाधीन भारत के नागरिक थे, अपनी आँखों के सामने विविध प्रकार के राजनीतिक अत्याचारों, सामाजिक कुरी-तियों और उनकी प्रतिक्रिया में राष्ट्र में होने वाले राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आन्दोलनों को भी देख कर वे अतिशय प्रभावित हुये। यही कारण है कि निराला और राय चौधुरी दोनों राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण के उद्घोषक कवियों के रूप में समान स्तर पर दिखाई पड़ते हैं। राष्ट्रीय चेतना की जिन प्रबल शक्तियों और पराधीन राष्ट्र में तड़पने वाली जनता की जिन आशा-आकांक्षाओं,

महात्मागींधी, विवेकानन्द, अरविन्द , रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि महात्माओं, दार्शनिकों और देश-प्रेमियों के जिन व्यावहारिक और दार्शनिक तत्वों और जिन अद्वैती वेदान्त परक सिद्धान्तों के बीच उस समय देश गुजर रहा था उन सभी का प्रतिनिधित्व करते हुये इन दोनों कवियों के साहित्य का प्रणायन हुआ ।

राय चौधुरी के साहित्य की मूल भावना रहस्यवाद अतीन्द्रियवाद, मानवतावाद, स्वदेश तथा विश्व-प्रेम और विद्रोहात्मक प्रवृत्ति है । असम और असमीया भाषा का संरक्षण, संवर्धन और उन्नति उनके जीवन का महान् व्रत था । आपकी विचारधारा दो विषय प्रधान शाखाओं में विभक्त है -- आध्यात्मिक और राजनीतिक तथा सामाजिक ।

निराला और राय चौधुरी की व्यक्तिगत् और सामाजिक भावनाओं में दिखाई पड़ने वाली समानता का कारण युगीन विसंगत वातावरण की समानता ही नहीं, उनकी जीवन-व्यापी संघर्ष पूर्ण निजी परिस्थितियों में विद्यमान समानता भी है ।

निराला और राय चौधुरी में यदि कहीं असमानता दिखाई पड़ती है तो वह यही है कि राय चौधुरी ने जहाँ भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था वहाँ निराला जी ने राजनीतिक में सक्रियता-पूर्वक भाग नहीं लिया था । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि पराधीन भारत के अभिशप्त कवि निराला जी में राजनीति की उष्मा विद्यमान नहीं थी ।

सच्ची मानवता की सुरक्षा, नव निर्माण की उमंग सामाजिक, राज-नीतिक, साहित्यिक आदि समस्त बंधनों के प्रति विद्रोह, मानव कल्याण की कामना, भारतीय सांस्कृतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि में विकसित विश्व-प्रेम, निर्वैय-क्तिकता और जीवनमुक्तता, करुणा और सहानुभूति आदि निराला और

राय चौधुरी के व्यक्तित्व में पायी जाने वाली अभूतपूर्व समानतायें हैं। निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में डा० रामलाल सिंह की यह उक्ति राय चौधुरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर भी समान रूप से चरितार्थ होती है, "व्यक्तित्व की असाधारण परिव्याप्ति के कारण ही उनके साहित्य की पृष्ठभूमि में भारतीय दर्शन, ऐतिहासिक चेतना, सांस्कृतिक आत्मा, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति सभी एक जगह एकत्रित हो गये हैं।[५१] निष्कर्षत: निराला और राय चौधुरी दोनों युगान्तर कारी कवि, आत्मसम्मानी पुरुष और असाधारण संवेदनशील व्यक्ति थे।

---

५१. सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला का व्यक्तित्व, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४८, सं० २,३,४,पृ० ४०६।

अध्याय- ४

## निराला और राय चौधुरी: कृतित्व और काव्य-प्रवृत्तियां

नयी चेतना के पुरस्कर्ता निराला और राय चौधुरी की काव्य-प्रतिभा बहुमुखी थी। युग-मन की साधनावस्था में निगूढ़तम रूप में प्रविष्ट होकर नवीन जगत् के नव वैचारिक रूपों को आत्मसात करते हुये, भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर स्वच्छन्दतावादी विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों को समाजोन्मुख वेदान्तिक अन्वितियों के साथ अपने काव्यों के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले निराला और राय चौधुरी की कृतियों का, उनमें विवेचित प्रवृत्तियों के आधार पर, संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना इस अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है।

निराला और राय चौधुरी की समस्त कृतियों में उनकी व्यक्तिगत जीवनानुभूतियों की भूमिका पर विकसित सामाजिक चेतना का विस्तार, वर्गवादी, दलित और भौतिक विषमतापूर्ण विचार धाराओं और अत्याचारों से विपन्न यथार्थवादी कलाकार का वेदान्तिक स्पर्श से अनुप्राणित शाश्वत अभिव्यक्ति का सुगठित रूप आदि से अन्त तक पाया जाता है। दोनों कवियों की काव्य-धारा की दो दिशाये हैं - एक मानवोचित सहृदयता और स्वदेश प्रेम है, दूसरा-उदात्ततम दार्शनिक निर्वैयक्तिकता। क्रियात्मक दार्शनिकता की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित नवीन मानवतावादी आदर्श उनके काव्यों का आधार और अन्तिम परिणाम है। दोनों का काव्यादर्श न तो निवृत्तिमूलक है, न अधोगामी प्रवृत्तिमूलक। किन्तु जीवन के भौतिक और अध्यात्म पक्षों को समन्वित कर विश्व संस्कृति के औदात्य को नवीन युग-परिवेश में स्थापित करना उनकी काव्य-प्रतिभा की

दिशाओं में विद्यमान विविधता में एक अभिनव एकता है ।

## निराला का कृतित्व और काव्य-प्रवृत्तियाँ --

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार निराला जी की कृतियाँ-रहस्यवादी, राष्ट्रीय आख्यान प्रधान, लौकिक शृंगार प्रधान, चित्रण प्रधा नहीं । प्रवृत्ति विषयक दृष्टिकोण से कई प्रकार की हैं ।[१] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला जी के काव्य को तीन कोटियों में रखा है - बौद्धिक या दार्शनिक, विशुद्ध प्रगीत और आलंकारिक प्रधान । मेरे विचार से निराला जी की कृतियों की ग्यारह विभिन्न दिशायें हैं, जिनका हम आगे विभिन्न शीर्षकों में विवेचन कर रहे हैं ।

### १. व्यक्तिवादी या आत्मपरक रचनायें --

निराला जी की समस्त काव्य-कृतियों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उनका जीवन-दर्शन उपलब्ध होता है । 'सरोज स्मृति' उनकी एक ऐसी रचना है जिसमें उनकी जीवन-गाथा उनके समस्त सोपानों के साथ अभिव्यक्त हुई है और जिसमें उन्हों ने अपने जीवन की विफलताओं से उद्भूत आत्मवेदना और आत्म-ग्लानि को प्रकाशित किया है । इस कविता में जीवन-भर स्वार्थ समर में हारते रहने वाले और सामाजिक अंधरूढ़ियों के प्रति विद्रोह करने वाले द्रवणशील कवि निराला जी की वेदना, करुणा, सहानुभूति, आक्रोश, क्रोध आदि की अभि-व्यंजना हुई है । सारी कविता कवि की विवशता और विद्रोह का, करुणा और आक्रोशमय आख्यान है । जीवन की विविध संघर्षों की करारी चोट से विदीर्ण निराला जी के जीवन का सच्चा रूप और आत्मापरक काव्य 'सरोज - स्मृति' की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

---

१. डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय- निराला का साहित्य और साधना, पृ० ७०

मुझ भाग्यहीन की तू संबल
युगवर्ष बाद जब हुई विकल,
दु:ख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही ।[२]

और :-

धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर ।[३]

निराला जी की व्यक्तिपरक रचनाओं की प्रमुख विशेषता यह है कि उनके द्वारा स्वार्थ, संकीर्ण जीवन के संघर्ष पर अंध-विश्वासों के बन्धनों को तोड़-फोड़ कर, समस्त लांछनाओं को सहते हुये प्रतिस्पन्दित हो रहा है :-

प्राण संघात के सिन्धु के तीर मैं
गिनता रहूँगा न कितने तरंग हैं
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण ।[४]

निराला जी की परवर्तीकाल की रचनाओं में उनके जर्जरित तन, मन

---

२. निराला- अनामिका : सरोज स्मृति, पृ० १३७ ।
३. वही, पृ० १२२ ।
४. निराला -गीतिका, गीत,६२,पृ० ६७ ।

और जीवन की करुणा स्थिति का प्रतिपादन हुआ है। शारीरिक और मानसिक व्याधियों से पीड़ित और समाज से उपेक्षित कवि की करुणा रस पूर्ण आत्म-व्यंजना इन पंक्तियों में प्रकट हुई है :-

भग्न तन, रुग्न मन, जीवन विषण्ण वन।
क्षीण क्षण-क्षण देह, जीर्ण सज्जित गेह,
घिर गये हैं मेह, प्रलय के प्रवर्षण।
चलता नहीं हाथ, कोई नहीं साथ,
उन्नत,विनत माथ,दो शरण दोषरण।[५]

निराला जी के प्रार्थनापरक गीतों को भी आत्मपरक कृतियों की कोटि में रखा जा सकता है। उन गीतों में दलित और जर्जरित व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व - कल्याण की कामना मुखरित होती हैं। उसमें समस्त अंध - विश्वासों को नष्ट-भ्रष्ट कर एक विशुद्ध सात्विक विश्व समाज के निर्माण की अभिलाषा व्यंजित होती है ,साथ ही जन-जीवन के प्रति आसक्ति, व्यापक मानव करुणा की अनन्यता और दार्शनिकता के साँचे में ढाला हुआ आत्म-विश्वास भी प्रतिभाषित होता है :-

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा।
.......... ... ........
देख वैभव न हो नत सिर,
समुद्धत मन सदा हो स्थिर,
पार कर जीवन निरन्तर
रहे बहती भक्ति-वरुणा।[६]

---

५. निराला-आराधना,पृ० ६२ ।

६. निराला- अणिमा, पृ० ६ ।

निराला जी की 'गीतिका' , 'अर्चना' , 'आराधना' और अणिमा में अनेक प्रार्थनापरक गीत हैं और उनमें उनकी पुष्ट आत्म व्यंजना दर्शनीय है। 'परिमल , 'अनामिका के कुछ गीतों और तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा आदि के द्वारा निराला जी की व्यक्तिगत वेदनायें, संघर्ष, आत्म-विश्वास और उल्लासमयी कामनायें अभिव्यक्त हुई हैं।

२. हास्य, व्यंग्य और करुणापूर्ण रचनायें --

हिन्दी साहित्य में निराला जी की व्यंग्यात्मक रचनाओं का विशेष स्थान है। 'कुकुरमुत्ता' , उनकी सफल व्यंग्य-प्रवृत्ति का परिणाम है। इसके अतिरिक्त 'नये पत्ते' , बेला , गीतिका, अणिमा, गीत गुंज, आराधना, सांध्य काकली में व्यंग्य और करुणा विषयक विचारों का पुट मिलता है। कभी-कभी शब्दों के साथ यह खिलवाड़ मनका उल्लास प्रकट करता है, जैसे सांध्यकाकली की 'ताक्कम सिनवारि' अथवा 'वारि वन वनवारी' रचनाओं में किन्तु 'अणिमा' से 'आराधना' तक कविताओं में इस तरह की शब्द-क्रीड़ा सामान्यत: व्यंग्यपूर्ण हँसी की सूचना देती है और यह हँसी न्यूनाधिक मात्रा में करुणा-मिश्रित होती है।[७] निराला जी का सामाजिक व्यंग्य प्रथम दृष्टि में बड़ा आकर्षक और प्रभावपूर्ण मालूम पड़ता है :--

> पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रच कर उन पर
> कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन-स्वर
> हिन्दी-सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
> रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग।[८]

पैसे की लालसा और दूसरे प्रलोभनों के कारण तथा कथित नेताओं पर गीत लिखने वाले कवि और उनके गीतों को अमर साहित्य के नाम पर प्रश्रय देने वाली

---

७. डा० रामविलास शर्मा- निराला की साहित्य साधना, भाग २,पृ० २३५
८. निराला-अनामिका, बनबेला, पृ० ८८

साहित्य-संस्था के प्रति वे व्यंग्य करते हैं :--

मैं जीर्ण-साज बहु छिद्र आज,
तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन
मैं हूँ केवल पदतल-आसन,
तुम सहज विराजे महाराज ।[९]

'नये पत्ते' की कविता 'मास्को डायलाग्स'[१०] साम्यवादियों की संस्कारहीनता पर व्यंग्य है तो 'रानी और कानी'[११] में कवि मातृहृदय की कोमल वृत्ति का परिचय कराने के साथ समाज की उस व्यवस्था पर व्यंग्य भी करते हैं जिसमें लड़की के विवाह के लिये रूप की प्रमुखता रहती है, अन्य गुणों की नहीं ।

आराधना के गम्भीर गीतों के बीच कहीं 'कबीरदास की-सी उलटवासी है तो कहीं शब्दों के साथ खिलवाड़ है और ये परिस्थिति पर उनके व्यंग्यपूर्ण हँसी के सूचक हैं ।[१२]

ऊँट बैल का साथ हुआ है । कुत्ता पकड़े हुये जुआ है ।
मानव जहाँ बैल-घोड़ा है, कैसा तन-मन जोड़ा है ?[१३]

'कुकुरमुत्ता, नये पत्ते, और बेला में उपलब्ध अधिकांश कविताओं में व्यक्ति और समाज के सामाजिक दायित्व पर बल देने वाले व्यंग्य की मात्रा अधिकता है--

---

९. निराला - अनामिका, हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र, पृ० ११८ ।
१०. निराला - बेला, पृ० ६० ।
११. निराला - नये पत्ते, पृ० २५ ।
१२. वही, पृ० १५ ।
१३. डा० रामविलासशर्मा, - 'निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० २३५ ।

मैं कुकुरमुत्ता हूं,
पर बन्जाइन वैसे
बने दर्शन शास्त्र जैसे ।[१४]

भारतीय दर्शन में वेदान्त निराला की मन में सर्वोपरि है, इसलिये यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि यहाँ कुकुरमुत्ता के माध्यम से उन्होंने वेदान्त का उपहास किया है ।[१५]

अनामिका की 'दान' कविता में भिखारी के प्रति करुणा और पाखण्डी भक्त के प्रति व्यंग्य का सुन्दर निरूपण है । निराला -साहित्य में हास्य-व्यंग्य के सभी तत्त्व मौजूद हैं । ये खुलकर नहीं हंसते, क्रोध और शोक को दबाते हैं और यह दबाव अन्तर्मुखी व्यंग्य के रूप में प्रकट होता है । अन्तर्मुखी इस-लिये कि वह आक्रामक होकर व्यंग्य का प्रयोग नहीं करते, रक्षात्मक उद्देश्य से विरोधियों की कही हुई बात, नयी भंगिमा से दोहराते हुये, उसकी व्यर्थता सिद्ध करते हैं ।[१६] दर असल 'कुकुरमुत्ता' विषय - वस्तु, शिल्प, संघटन, भाषा-संरचना, व्यंग्य और हास्य, इन सभी दृष्टियों से एक सर्वथा विद्रोही, आधुनिक और महत्वपूर्ण कृति तो है ही, लैकिन उसका उससे भी बड़ा महत्व एक और कारण से है ।[१७] कुकुरमुत्ता 'नये पत्ते और बेला' में उपलब्ध अधिकांश कविताओं में व्यक्ति और समाज के सामाजिक दायित्व पर बल देने वाले व्यंग्य की मात्रा अधिक है । निराला जी के व्यंग्य के आधारभूत तत्त्व में - समाज में व्याप्त आर्थिक-वैषम्य, शोषण, मानव-मूल्यों का विघटन, मानव का मानव के प्रति अमानवीय व्यवहार, निजी जीवन के नाना प्रकार के संघर्ष आदि ।

---

१४. निराला-आराधना- पृ०,७२,७३
१५. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २,पृ० २२४
१६. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना,भाग २,पृ० २३१
१७. दूधनाथ सिंह-निराला :आत्म:हन्ता आस्था,पृ० २४८ ।

३. मानवतावादी,समाजोन्मुखी और प्रगतिशील रचनायें -

निराला जी व्यावहारिक वेदान्ती, अद्वैती तथा सम्पूर्ण विश्व में विभेदों में अभेद को देखने वाले द्रष्टा कवि थे। जब उन्होंने समाज को कृत्रिम अभावों का शिकार होकर तड़पते हुये और पूंजीपति-वर्ग को समाज का रक्त चूसते हुये देखा तो समाज की पंगुता और विद्रूपता के प्रति आक्रोशपूर्ण गीत, उनके अन्तर को चीर कर निकल पड़े। उनकी कृतियों में उनका सक्रिय विद्रोही स्वरूप प्रतिपादित हुआ है। उन्हों ने सामाजिक स्वार्थपूर्ण आडम्बरों को अनावृत किया, दंभियों को ठुकराया, अत्याचारियों की पोल खोली और शोषकों पर डटकर प्रहार किया। उनकी इच्छा परिपुष्ट मानव-समाज के नव-निर्माण की थी। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में करुणा और पौरुष का संगम हुआ है। उनमें भिखारी, विधवा, कृषक, श्रमिक और अन्य शोषित-पीड़ित समाज का करुण चित्रण है और सभी विषमताओं के विरुद्ध सशक्त क्रान्ति का आह्वान है।

निराला में सबसे प्रगतिशील तत्व है- मानव-प्रेम।[१८] वे समाज में विद्यमान दैन्य, अभाव,शोषण और लूट-पाट का अन्त करना चाहते थे और दीन-दलित व्यक्तियों को देखते ही उनकी करुणाशत-शत धाराओं में फूट निकलती थी। किन्तु उनके समाजवादी दर्शन में अनास्था, कुंठा और असंगतियों के लिये स्थान नहीं है। उनकी समाजोन्मुख कृतियों से उनका आत्म-विश्वासी हृदय झांक रहा है और साथ ही उनका यह अप्रतिम विश्वास भी प्रतिध्वनित हो रहा है कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जब मर्दित मानवता दानवता के भस्म पर पुनरुज्जीवित होगी, शोषक मिटेंगे, बंगलों, महलों, कल-कारखानों आदि पर किसी एक वर्ग का स्वत्व नहीं होगा, सारे समाज का अधिकार होगा। इन प्रगतिशील मानवतावादी और समाजोन्मुख रचनाओं की श्रेणी में निराला जी की

---

१८. डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय,निराला का साहित्य और साधना, पृ० ७६।

'कुकुरमुत्ता, नये पत्ते, बेला आदि रचनायें और अनामिका, परिमल, अर्चना, आराधना, अणिमा और गीतगुंज के समाजवादी गीत और समाजवादी तत्वों से अनुप्राणित प्रार्थना परक गीत आते हैं। विधवा, भिक्षुक, दीन, कण[१९], दान, तोड़ती पत्थर,[२०] धोहै के पेट में बहुलों को आना पड़ा[२१] आदि निराला के ऐसे अनेक गीत-प्रगीत हैं जिनसे उनकी सामाजिक करुणा और आक्रोश व्यंजित होता है। निराला जी का 'बादल राग'[२२] उनके विप्लवी व्यक्तित्व का परिचायक है जिसका ध्येय संकीर्ण और रूढ़िबद्ध जीवन में परिवर्तन, पुरिस्कार और गति लाना है। अति मानव की जो झलक प्रारंभिक रचनाओं में है, वह क्रमश: क्षीण होती जाती है, सामान्य मानवता का बोध और गहरा होता जाता है।[२३]

निराला जी की समाजोन्मुखी करुणा यथार्थवादी रचनाओं का आधार है-

> ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूंगा।
> अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
> तुम्हारे दु:ख में अपने हृदय में खींच दूंगा।[२४]

दरअसल निश्छल और पवित्र मानवीयता ही उनका - जीवन दर्शन है। उनकी कृतियों की राजनीतिक चेतना मनुष्य है। दु:ख-दर्द और अवमाननामें फंसा हुआ मनुष्य अन्याय और असत्य के विरुद्ध वे बेखटके हर जगह आवाज बुलन्द करते हैं। उनकी तीखी राष्ट्रीय चेतना और जन-मुक्ति के भीतर, यही मानवीय नैतिकता का भाव है।[२५] निर्धन, निम्नतम भारतीय जनता का जीवन संघर्ष यही निराला की

---

१९. निराला-परिमल, पृ० ११९, १२५, १३२, १६६।
२०. निराला - अनामिका, पृ० २२, ८१।
२१. निराला-नये पत्ते, पृ० २६
२२. निराला -परिमल, पृ० १५९, १६०, १६१, १६४, १६५
२३. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १६२
२४. निराला-अपरा, भिक्षुक, पृ० ६७
२५. दूधनाथ सिंह-निराला : आत्महन्ता आस्था, पृ० १६४।

मानवतावादी अन्तर्धारा है।[२६] उनका समाजवाद मानव-शक्ति पर अपार विश्वास रखता है, तभी वे घोषणा करते हैं :-

तु कभी न ले दूसरी आड़, शत्रु को समर जीते पछाड़।
सैकड़ों फलेंगे, फूलेंगे, जीवन ही जीवन भर देंगे,
झरने फूटेंगे, उबलेंगे, नर अगर कहीं तू बने पहाड़।[२७]

दु:ख और पराजय का ज्ञान, संघर्ष की कठिनाइयों और मार्ग के अव-रोधों का चित्रण, मनुष्य के धैर्य और उसकी वीरता की अभिव्यंजना, निराला के मानवतावाद की विशेषतायें हैं। उनकी देश-प्रेम तथा उनकी क्रान्तिकारी भाव-नाओं से, उनका मानवतावाद पूर्णत: सम्बद्ध है।[२८]

निराला जी की समस्त मानवतावादी प्रगतिशील, समाजोन्मुख और यथार्थवादी रचनाओं द्वारा विश्व-जीवन की दलित दशाओं, विभिन्न विषम-ताओं अंधविश्वासों आदि का चित्रण प्रस्तुत किया गया है जिसके मूल में निराला जी के सत्य का आग्रह है और एक ऐसे नव-समाज के निर्माण की कामना है, जहां वेदना का संसार मूर्च्छित पड़ा हो :-

मां, मुझे वहां तू ले चल। देखूंगा वह द्वार
दिवस का पार-मूर्च्छित हुआ पड़ा है जहां वेदना का संसार।[२९]

और जहां मात्र सत्य का अस्तित्व हो -

जीर्ण-शीर्ण जो, दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।[३०]

---

२६. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १६५
२७. निराला-बेला, पृ० ६३
२८. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १६६।
२९. निराला-परिमल, आग्रह, पृ० १५८ ।
३०. निराला - अनामिका, उद्बोधन, पृ० ६७।

४. राष्ट्रीय और विश्व-प्रेम सम्बन्धी रचनायें -

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के उभार का समय हिन्दी-साहित्य में कविवर निराला का अभ्युदय काल है । उनकी स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षा उनके साहित्य की मौलिक प्रेरणा है । हिन्दी में उनकी प्रथम प्रकाशित कविता जन्मभूमि पर है -" जन्म भूमि मेरी है जगन्महरानी [३१] । उनकी इस राष्ट्रीय चेतना का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि मातृभूमि उनकी पहली कविता है ।[३२]

उनके काव्यों में राष्ट्र-चेतना का स्पन्दन साकार रूप में परिलक्षित होता है । उनकी राष्ट्रीयता के विविध रूप देखे जा सकते हैं । कहीं राष्ट्र की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दुर्दशा पर उनका क्षोभ अभि-व्यक्त होता है, कहीं अतीत के वैभव मंडित भारत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव-गान, कहीं स्वाधीन और सुसज्जित समाज का चित्र खींचा गया है, कहीं राष्ट्र के बाह्य स्वरूप का चित्रण है, कहीं राष्ट्र एकता, स्वतंत्रता, कर्त्तव्यता आदि का प्रशस्ति-गान है और कहीं जनता की समस्याओं, अभावों और प्रश्नों का चित्रण और उनका समाधान प्रस्तुत है और साथ ही जन-मानस में से कायरता और दुर्बलता की नीच प्रवृत्तियों को उखाड़ कर उत्साह और जोश की भावना भरने का सक्रिय प्रयास है ।

भारत स्वाधीन हुआ किन्तु जिस स्वाधीन भारत का स्वप्न निराला देख रहे थे, वह साकार न हुआ । साहित्य में अवसरवादिता, चाटुकारिता की बाढ़ सी आ गई, उच्च वर्ग समृद्ध हुये निम्न वर्ग को दु:ख दैन्य से मुक्ति न मिली ।[३३]

---

३१. डा० रामविलास शर्मा- निराला की साहित्य साधना, भाग १, पृ० १४३

३२. दूधनाथ सिंह-निराला : आत्महन्ता आस्था, पृ० १७२

३३. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १४३ ।

मन्दिर में बन्दी हैं चारण,
चिघर रहे हैं वन में वारण ,
रोता है बालक निष्कारण,
बिना- सरण-सारण भरणी है ।[३४]

भारति,जय विजय करे,[३५] भारत ही जीवन, ज्योतिर्मय परम-रम्य, सर-सरिता, वन-उपवन[३६] आदि गीतों में भारत माता की भव्यमूर्ति का अंकण है । निराला जी की आस्था का आधार, उनके समस्त कर्मों का लक्ष्य है -- भारत ।......... निराला के चिन्तन में भारत और भारती एक दूसरे से अलग नहीं, इसी लिये उनमें द्रष्टा का आलोक और भक्त की विह्वलता है ।[३७]

निराला जी की राष्ट्रीय भावना उनकी विश्व-बन्धुत्व की भावना का ही अंश है । विश्व-प्रेम और विश्व-मैत्री से ओत-प्रोत भारतीय जीवन-दृष्टि उनकी रचनाओं में सर्वत्र पाई जा सकती है । प्रमाणस्वरूप हम निराला जी के प्रार्थनापरक गीतों को ले सकते हैं, जिनमें विश्व-कल्याण की कामना सर्वत्र परिलक्षित होती है :--

रंग रंग से यह गागर भर दो,
निष्प्राणों को रसमय कर दो ।
माँ, मानस के सित शतदल को
रेणु-गंध के पंख खिला दो,

---

३४. निराला-अर्चना, पृ० ६७
३५. निराला - गीतिका, पृ० ७३
३६. निराला-अणिमा, पृ० ५५
३७. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १४६

जग को मंगल मंगल के पग
पार लगा दो, प्राण मिला दो,
तरु के तरुण पत्र-मर्मर दो । [३८]

निराला जी का राष्ट्र-प्रेम विश्व-प्रेम का पर्याय है । उनके विश्व-प्रेम की व्यापकता इतनी है कि वह एक साथ सारी धरती और अनन्त आकाश को अपने में समेट लेती है ।

किरणों की गति से आ, आ तू गौरव गान,
एक कर दे पृथ्वी आकाश ।[३९]

निराला जी के राष्ट्रीय और विश्व-प्रेम सम्बन्धी गीत उनके काव्यों- 'परिमल', गीतिका, अनामिका, अर्चना, आराधना और अणिमा में अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं ।

५. शृंगारिक रचनाये -

निराला जी अनेक गीतों और कविताओं में प्रेम का वर्णन प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में हुआ है । 'उनके शृंगार' काव्यों में एक प्रकार की उदात्त भंगिमा के दर्शन होते हैं । रमणीयता के इस भाव से वह कभी वेदान्त का सामंजस्य स्थापित करते हैं, कभी उसे वेदान्त का समकक्ष अथवा उससे मुक्त मानते हैं ।[४०] निराला जी की 'गीतिका'[४१] के सखि बसन्त आया, स्पर्श से लाज लगी, 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली, 'मार दी तुझे पिचकारी ,

---

३८. निराला-आराधना, पृ० ८ ।
३९. निराला-अनामिका, उद्बोधन, पृ० ६९ ।
४०. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १९८
४१. निराला गीतिका, पृ० ५,३३,४६,६०,१०३ ।

लाज लगी तो आदि गीत,'अनामिका'[४२] की 'प्रेयसी' 'प्रेम के प्रति, प्रगल्भ प्रेम, 'चुम्बन ,' अनुताप आदि कवितायें और 'परिमल', 'गीतगुंज' और 'सांध्यकाकली' की कई कवितायें शृंगार विषयक हैं । इन कविताओं और गीतों में प्रकृति और मानव के शृंगारिक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं । इनमें शृंगार की विभिन्न भाव-दशाओं और सात्विक छवियों का सुमधुर अंकन हुआ है । निराला जी का शृंगारिक चित्रण संयमित,दार्शनिक और तटस्थतापूर्ण है । इनमें कहीं भी मानसिक दुर्बलता का परिचय नहीं मिलता । निराला जी की प्रारंभिक रचनाओं में शृंगार के संयोग और वियोग का चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है किन्तु क्रमशः उनकी आत्म-चेतना जब उदात्त स्वरूप लेने लगी तब मांसल शोभा और इन्द्रियाकर्षण का वर्णन होता गया है । परवर्ती शृंगारिक गीतों और कविताओं में निराला जी ने अपनी गम्भीर, प्रौढ़ और उदात्त आत्म-चेतना के अनुकूल नारी की शृंगारिक शोभा का वासनाहीन किन्तु दिव्य चित्र प्रस्तुत किया है । यद्यपि निराला जी के पूर्ववर्ती शृंगारिक गीतों और कविताओं में भी दार्शनिक निर्वैयक्तिकता की भूमिका है फिर भी कहीं-कहीं अभिधा में शारीरिक संवेदनों की अनुभूति होती है अर्थात् पार्थिव भावना का आभास मिलता है । यह प्रवृत्ति क्रमशः उदात्त और पवित्र होती गयी है और परवर्ती कृतियों -'अणिमा, अर्चना, आराधना में अलौकिक, दिव्य और अपार्थिव भावनाओं के रूप में प्रकट हुई है अर्थात् लौकिकता क्रमशः अलौकिकता में, प्रशान्त आध्यात्मिकता में परिणत होती गई हैं । यहाँ तक उनके परवर्ती शृंगारी गीतों की भावना उपासना गीतों के समकक्ष पहुंच गये हैं ।[४३] पूर्ववर्ती और परवर्ती गीतों में वर्णित शृंगारी भावनाओं के मध्य की विभाजन रेखा का परिचय प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित दो गीत लिये जा सकते हैं :-

---

४२. निराला -अनामिका, पृ० १,३१,३४, ४७, ४८ ।

४३. रमेशचन्द्र मेहरा- निराला का परवर्ती काव्य, पृ० १८७ ।

आया भर दूसरा ही स्पन्दन तब हृदय में अन्वेषण नयनों में
प्राणों में लालसा, समझ नहीं सका हाथ ।[४४]

और-

तनकी, मनकी, धनकी, हो तुम ।
नव जागरण, शयन की हो तुम ।
काम कामिनी कभी नहीं तुम,
सहज स्वामिनी सदा रही तुम,
स्वर्ग-दामिनी नदी बही तुम,
अनयन नयन-नयन की हो तुम ।[४५]

भक्त और ज्ञानी भवसागर से पार उतरने के बड़े-बड़े यत्न करते हैं, एक रास्ता आदि रस की निष्पत्तिका है । 'यमुना के प्रति' में इस मार्ग की चर्चा करते हुये निराला पुन: शृंगार साधना को ज्ञान और वैराग्य के समकक्ष ठहराते हैं,

वह स्वरूप-मध्याह्न तृषा का
प्रचुर आदि-रस, वह विस्तार
सफल प्रेम का, जीवन के वह
दुस्तर सर-सागर का पार ,[४६]

'गीतिका' में जो रमणी अपने प्रिय को 'तृप्ति-प्रेम-सर' कहती है वह 'यमुना के प्रति' , 'तुम और मैं' आदि रचनाओं में तृप्ति चाहने वाली महिलाओं की तरह प्रेममार्गी है । निराला जी की समग्र शृंगारिक रचनायें सर्वत्र उच्चकोटि का दार्शनिक अनुबन्ध लिये हुये हैं, अतएव उत्तेजना तथा स्थूल आकर्षण के स्थान पर वे आनन्द तथा उल्लास की अभिव्यंजना करती हैं ।[४७] इसके ज्वलन्त उदाहरण उनकी प्रारं-

---

४४. निराला- परिमल, स्मृति-चुम्बन, पृ० १९८
४५. निराला, अर्चना, पृ० १८
४६. निराला-परिमल, यमुना के प्रति, पृ० ५५

भिक रचनायें 'जुही की कली', 'जागृति में सुप्ति थी, 'शेफालिका[४८] आदि हैं जिनमें प्रकृति के माध्यम से परिपुष्ट स्थाई और स्वच्छन्द शृंगार अभिव्यंजित हुआ है, उच्छल यौवन की अकृत्रिम सौन्दर्य वृत्ति का मानवीय चित्रण हुआ है और नायक-नायिका की प्रेम क्रीड़ाओं के प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिक प्रणय, रहस्यानुभूति और ससीम के असीम में पर्यवसनान के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं ।

६. प्रकृति-चित्रण की रचनायें -:

निराला जी की कविताओं में आरम्भ से ही प्रकृति का सुन्दर चित्रण मिलता है । उन्हें प्रकृति चित्रण की प्रेरणा बाल्य-काल के महिषादल निवास और वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य से प्राप्त हुई थी । प्रकृति के रूप, ऐश्वर्य और स्वच्छन्दता ने निराला जी को इतना आकृष्ट किया है कि उन्होंने अपनी प्रारंभिक कविता 'जुही की कली' से लेकर 'सांध्य काकली' तक अनेक कविताओं में प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है । स्वच्छन्दता प्रिय कवि ने स्वच्छन्द प्रकृति में एक अभूतपूर्व आकर्षण का अनुभव किया, अत: उनकी कविताओं में प्रकृति के विभिन्न पदार्थों, ऋतुओं और विशेष रूप से जल वर्णन का चित्रण नाना रूपों में हुआ है । इसके प्रमाण में 'बादल राग', 'जुही धारा', 'जलद के प्रति' 'तरंगों के प्रति, प्रपात के प्रति, 'संध्या सुन्दरी', 'जुही की कली', [४९] 'ठूठ' 'नर्गिस'[५०] वर्षा[५१] आदि और 'बेला' और 'गीतिका' की अनेक कवितायें ली

---

४८. निराला-परिमल, पृ० १७१, १७३, १७५

४९. वही, पृ० १५६, १३४, ७८, ७६, १५३, १२६, १७१ ।

५०. निराला- अनामिका, पृ० १४३, १८६ ।

५१. निराला- नये पत्ते पृ० ६६ ।

५२. निराला- गीतगुंज, पृ० ५७ ।

जा सकती हैं। उनके अन्य संग्रहों की अनेक कविताओं में प्रकृति के कई स्वाभाविक चित्र उपलब्ध हैं :-

बौरे आम की भौंरे बोले।
प्रात की गात पात के तोले।
सरसाई समीर मधुवन की,
आंखों छवि आई आनन की,
आलस दूर हुआ, मन भाया,
चिड़ियों ने सुख के मुख खोले।[५२]

निराला जी की रचनाओं में आलंबनगत, मानव-भावाक्षिप्त, काव्य-प्रसाधन भय और पृष्ठभूमि निर्माता के रूप में प्रकृति-चित्रण मिलता है। निरालाजी दार्शनिक कवि हैं, अतएव मानव और प्रकृति में एक ही आध्यात्मिक स्पन्दन का अनुभव करते हुये निराला जी ने प्रकृति के रहस्यमय चित्रों का निर्माण किया है। प्रकृति में रहस्य दर्शन दार्शनिक कवि निराला जी के लिये आत्मानुभव का विषय है :-

कौन तम के पार ? ( रे कह)
अखिल पल के स्रोत, जल-जग,
गगन घन-घन-धार -(रे कह)।[५३]

निराला जी की कविताओं में उन्मुक्त सौन्दर्य की साकार और चेतन प्रतिमा, प्रकृति के अनेक उत्फुल्ल और ओजस्वी चित्र वर्तमान हैं। आंचलिक जीवन का चित्र और वहाँ की प्रकृति के प्रति निराला जी की आशक्ति 'देवी सरस्वती'[५४]

---

५२. निराला-गीतगुंज, पृ० ५७
५३. निराला गीतिका, पृ० १४
५४. निराला- नये पत्ते, पृ० ६५

शीर्षक कविता में दर्शनीय हैं । इसमें षड्ऋतु वर्णन प्रस्तुत करते हुये कवि ने प्रकृति और जीवन के सौन्दर्य की एकाकारिता को प्रतिफलित कर दिया है । सच्चे मायनों में उनका अपना कवि-जीवन ही ऋतुओं का फेरा है ।[५५] 'देवी-सरस्वती' कविता में भारत और सरस्वती का जो विराट चित्र उन्होंने खींचा है, वह उनकी जनपदीय धरती का प्रसाद है । लू और तपन की वैसी ही तीव्र अनुभूति यहाँ है, जैसी अन्यत्र । इस तपन की अनुभूति के कारण सरस्वती अपना भारत व्यापी प्रसार खो कर कुएं में समा जाती हैं :-

> तुम हो शीतल कूप - सलिल जामुन छाया-तल ,
> लदे आमके बागों से जीवन का सम्बल ।[५६]

अमर और मर, जीवन और मृत्यु दोनों के वर उसके हाथों में है । सच्चिदानन्द ब्रह्म की कल्पना से जीवन-मृत्यु वाली प्रकृति की धारणा भिन्न है । निराला साहित्य में जिसका बारबार स्तवन है, वह मायातीत नहीं, मायामय है, स्वयं माया है । वह पंच तत्वों से परे नहीं, पंच तत्वमय है, स्वयं उन पांचों तत्वों का मूल तत्व है । वह विशुद्ध ज्ञानमय नहीं, अज्ञानमय भी है, उसमें प्रकाश के साथ अंधकार, जीवन के साथ मृत्यु शृंगार के साथ वीभत्स भी है । निराला-काव्य में प्रकृति- अद्वैत दर्शन इस तरह चरितार्थ होता है ।[५७] निराला जी का समस्त काव्य कृतियों की आधार-शिला के रूप में बहुरंगिनी प्रकृति प्रत्यक्षत: विधमान रही है ।

७. भक्तिमूलक रचनायें :-

आजीवन सांसारिक दु:ख - कष्टों से संघर्ष करने वाले निराला जी की

---

१. ५५. दूधनाथ सिंह- निराला : आत्म हन्ता आस्था, पृ० ३२६

५६. निराला - नये पत्ते, देवी सरस्वती, पृ० ७३

५७. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १६२ ।

अनेक कृतियों में भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है। आध्यात्मिक आलोक से प्रतिभाषित नव-मानव और नव-समाज की सृष्टि करने की परमात्मा से याचना करते हुये निराला जी ने अनेक भक्तिमूलक कविताओं और गीतों की रचना की। कहीं उनकी भक्ति व्यक्तिपरक रूप में और कहीं मानवता के रूप में प्रकट होती है :-

> दुरित दूर करो नाथ, अशरण हूँ गहो हाथ।
> हार गया जीवन-रण, छोड़ गये साथी-जन,
> एकाकी, नैश-क्षण, कण्टक-पथ, विगत पथ।[५८]

प्रार्थना के इसी अमूर्त क्रम से निराला मातृ-वंदना की मूर्त और उज्ज्वल प्रार्थनाओं की ओर उन्मुख होते हैं। मातृ-वन्दना का यह प्रारम्भ 'परिमल' की 'आवाहन' कविता से माना जा सकता है। यह गीत सीधे-सीधे माँ काली की प्रार्थना है।[५९] 'परिमल' के आरंभ में प्रार्थना है :'जग को ज्योतिर्मय कर दो। यह संसार से ऊपर कहीं दिव्य-लोक में रहती हैं, इसलिए पृथ्वी पर अपने कोमल पद रखती हुई ऊपर से धीरे-धीरे उतरेंगी, हँसती हुई अपना पथ आलोकित करेंगी, संसार में नया जीवन भर देंगी।[६०]

निराला जी की भक्तिमूलक कविता, गीत, प्रगीत आदि में साम्प्रदायिक उद्वेग से रहित भक्ति की तरलता और गम्भीरता आदि से अन्त तक अविच्छिन्न रूप से पाई जाती है। वैसे निराला जी की सारी कृतियों में एकाध भक्तिमूलक गीत उपलब्ध है किन्तु उनकी परवर्ती कृतियों -'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' और सांध्य काकली' में अधिकांश विनय और प्रार्थना के गीत हैं।

---

५८. निराला - अर्चना, पृ० २२।
५९. दूधनाथ सिंह-'निराला : आत्महन्ता आस्था, पृ० ३३७।
६०. डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० २१४।

## ८. दार्शनिक, रहस्यवादी, एवं छायावादी रचनायें :-

निराला जी अद्वैतवादी दार्शनिक थे। ब्रह्मवादी दार्शनिकों की भाँति रूपात्मक चराचर जगत में उन्होंने ने ब्रह्म का आभास प्राप्त किया है। उनकी अनेक विचार-प्रधान दार्शनिक कविताओं में अद्वैतवादी दर्शन का विवेचन हुआ है जिन्हें अधिकांशत: 'परिमल', 'गीतिका', और 'तुलसीदास' में और विशृंखलित रूप में 'अनामिका', 'बेला' और 'सांध्य काकली' में देखा जा सकता है। आत्मा और परमात्मा के बीच में अद्वैतानुभूति, अद्वैती विचारधारा से अनुप्राणित मानवतावादी सिद्धान्त, भेद में अभेद की स्वीकृति, माया-विचार आदि का बौद्धिक विवेचन कलात्मक सौन्दर्य के साथ विश्व के प्रत्येक कंपन में ब्रह्म-सत्ता की अनुभूति करने वाले कवि निराला जी ने अनेक कविताओं में किया है। निराला के रहस्यवाद में जिज्ञासा और मिलन की अवस्था का वर्णन अधिक स है, जो कवि तत्वत: वेदान्ती है, आत्मा एवं परमब्रह्म की एकता में विश्वास करता है, जो चिन्मय अखण्ड ज्ञान राशि की ओर सतत् उन्मुख है।[६१] जिज्ञासा की स्थिति में दर्शन और रहस्य की ओर ले जाने वाली विभिन्न स्थितियाँ रहती हैं। जगत्, जीव और ब्रह्म की सत्ता के सम्बन्ध में विचार, कौतूहल, आनन्द का स्पष्टीकरण कवियों व दार्शनिकों द्वारा होता रहता है। अद्वैती निराला जी की जिज्ञासा इस कविता में प्रकट हुई है :-

> तुम ही अखिल विश्व में
> या यह अखिल विश्व है तुममें,
> अथवा अखिल विश्व तुम एक
> यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक ?
>
> .........................

---

६१. डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-निराला का साहित्य और साधना, पृ० १८३।

पाया है हाय न अब तक इसका भेद,
सुलझी नहीं ग्रन्थि मेरी, कुछ मिटा न खेद ।[६२]

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल-गति सुर-सरिता[६३] द्वारा बैताश्रित अनुभूति और आध्यात्मिक तन्मयावस्था की चरमानुभूति की बैला में 'अहं ब्रह्मा स्मि' की तात्त्विक स्वीकृति 'केवल मैं, केवल मैं, केवल मैं, केवल ज्ञान'[६४] द्वारा अभिव्यंजित होती हैं। दार्शनिक भावपरक उल्लेखनीय कवितायें हैं : 'परिमल' की 'माया', गीत, कण, 'जुही की कली', जागृति में सुप्ति थी, शेफालिका, 'पंचवटी प्रसंग' जागरण'[६५] और 'बैला' की बाहर मैं कर दिया हूँ... मृत्यु है जहाँ......... , क्या दुःख दूर'.........[६६] आदि। 'पंचवटी प्रसंग' निराला जी की प्रारंभिक रचनाओं में है। माया-विरोधी ब्रह्म के दर्शन सबसे पहले यहीं होते हैं। 'परिमल' की कुछ रचनाओं में पुरुष-देवता का स्मरण है, 'गीतिका' में प्राय: उसका अभाव है, 'अनामिका' में जहाँ-तहाँ फिर उसकी झलक मिलती है, 'अणिमा और 'बैला' की युद्धकालीन रचनाओं में वह काफी उभरता है, फिर स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 'अर्चना' में उसकी गरिमा कुछ कम हो गई है, 'आराधना' में और भी कम, 'गीत गुंज' और 'सांध्य-काकली' में यह गरिमा शून्यवत् है। निराला-साहित्य में ब्रह्म के वैभव का यह इतिहास काफी दिलचस्प है।[६७]

जिज्ञासा की अवस्था --

कैसे बजी बीन ? सजी मैं दिन-दिन ?

---

६२. निराला-परिमल, कण, पृ० १५७ ।
६३. वही, तुम और मैं, पृ० ८० ।
६४. निराला-परिमल, वसन्त समीर, पृ० ६४ ।
६५. निराला-परिमल, पृ० ६१, ६६, १५६, १७१, १७३, १७५, २१४, २४४
६६. निराला बैला, पृ० ५१। ५६, ५७ ।
६७ डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० १८२

हृदय में कौन जो छेड़ता बांसुरी,
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी,
लीन स्वर-सलिल में मैं बन रही मीन ।[६८]

निराला जी की रहस्यवादी कविताओं में चिन्तन और भाव-सरलता, आध्यात्मिकता और रागात्मकता का संश्लिष्ट रूप दर्शनीय है । 'जुही की कली' से लेकर राम की शक्ति पूजा तथा निराला की सबसे प्रसिद्ध छायावादी काव्य-कृतियाँ इसी अवधि की हैं ।[६९] छायावाद में इस विस्तृत सृष्टि-प्रसार में एक व्याप्त सूक्ष्म चेतना का भान होता है और रहस्यवाद में इससे आगे उस मूल-चेतना के साथ आत्मा का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, आत्मा के विरह व मिलन का वर्णन किया जाता है । इस प्रकार छायावाद को हम रहस्यवाद का प्राथमिक सोपान मात्र मान सकते हैं ।[७०] निराला जी ने शान्त और अनन्त के सूक्ष्म और अलौकिक प्रणय सम्बन्धकी सांकेतिक और प्रश्नात्मक भाषा में प्रस्तुत कर चिन्तन के विषय हृदय-ग्राह्य बना दिया है । वस्तुत: निराला जी का रहस्यवाद अद्वैत-दर्शन की रसात्मक अनुभूति है ।

## ६. सांस्कृतिक रचनायें -

निराला जी सार्वभौम भारतीय संस्कृति के उन्नायक कवि थे । उन्होंने राष्ट्र की पराधीनता की विकट बेला में भारतीय संस्कृति को धुंधला होता हुआ देखा । अपने समय में निराला जी ने विदेशी सभ्यता और संस्कृति को प्रचार के कारण भारतीय सांस्कृतिक सूर्य को तमसाच्छादित पाया । उस समय विदेशियों के

---

६८. निराला - गीतिका, पृ० १०४ ।
६९. डा० रामविलास शर्मा- निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० ७५ ।
७०. डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय-निराला का साहित्य और साधना, पृ० १८६ ।

हाथ भारत पराधीन था, भारतीयों की आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक दशा शोचनीय थी । भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक शक्ति लुप्तप्राय थी, भारतीय समाज, व्यक्तिगत,सामाजिक और जाति वर्ण अर्थात् विषमताओं का शिकार बना हुआथा । जड़ता, कृत्रिमता और विलासिता चारों ओर फैली हुई थी । उस समय पुन: भारतीय आध्यात्मिक सांस्कृतिक के आलोक से समस्त वातावरण को आलोकित करने का महत्वपूर्ण कार्य निराला जी ने अपनी अन्यान्य कविताओं विशेषकर आख्यानक काव्य 'तुलसीदास' के द्वारा किया है । उनका आख्यान प्रधान मनोवृत्ताश्रित काव्यं तुलसीदास' वस्तुत: सांस्कृतिक काव्य ही है । उसे दीर्घ सांस्कृतिक प्रगीत भी कहा जा सकता है । भारतीय समाज की विषम-अवस्था का चित्र 'तुलसीदास' की निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :-

भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिङ्मण्डल ।

.......................

भारत के उर के राजपूत
उड़ गये आज वे देवदूत
जो रहे शेष, नृप वेश-सूत बन्दीगण ।[७१]

आशावादी कवि निराला जी ने एक पूर्ण सांस्कृतिक प्राण और ज्ञानालोक से आलोकित नव समाज के निर्माण की भी कल्पना की है :-

जागो जागो आया प्रभात ,
बीती बीती वह अन्धरात ,
भरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल ।।[७२]

---

७१. निराला-तुलसीदास, गीत १, पृ० ३०, १४
७२. वही, गीत ६३, पृ० ५७

सांस्कृतिक अध: पतन की बेला में आशापूर्ण कवि 'प्राची दिगन्त-उर में पुष्पकल रवि-रेखा[७३] को विकीर्ण होते हुये देख रहे हैं, जो वस्तुत: सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रयाय है । अध्यात्ममूलक मानवतावाद पर आधारित सार्वभौमिक मानव-सांस्कृति या भारतीय संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने का कार्य निरालाजी की रचनाओं द्वारा हुआ । सांस्कृतिक रचनाओं की कोटि में उनकी समस्त कृतियों को लिया जा सकता है । विशेष रूप से उनकी समाजोन्मुख, राष्ट्रीय, मानवतावादी, भक्तिमूलक और दार्शनिक कृतियों में से उनकी विशुद्ध सांस्कृतिक चेतना ही मुखरित हो रही है । अपनी विकट और असांस्कृतिक युग परिस्थितियों के प्रति जागरूप कवि निराला का सम्पूर्ण साहित्य भारतीय सांस्कृतिक जागरण का प्रतिनिधि-साहित्य है ।

१०. गीतात्मक रचनायें --

निराला जी के गीतों में भी कविता की तरह उनकी उज्ज्वल राष्ट्रीय विचारधारा,काव्य-अभिव्यंजना से मुक्ति के प्रयास और विकास , निजत्व की समीपतम पहचान की अभिव्यक्ति ही केन्द्रीय भाव है । उनके गीतों में भी अनेक रंग हैं । आलोचना की सुविधा की दृष्टि से निराला जी के गीतों का अध्ययन हम विभिन्न वर्गों में कर सकते हैं :--

(१) राष्ट्रीय गीत-सन् १६२० ई० में गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता का संघर्ष अंगरेज सरकार के विरुद्ध में शोषण और उत्पीड़न से भारतवासी की रक्षा करने के लिये असहयोग आन्दोलन के नाम से सारे भारत में आरम्भ हुआ । भारत माता की जय , गांधी जी की जय' के नारों से भारतीय वायु मण्डल परिपूर्ण था और क्या नगर, क्या गांव ,सभी जगह राष्ट्रीय गीतों की धूम थी ।

---

७३. निराला तुलसीदास,गीत १००,पृ० ६१

निराला जी की क्रान्ति विषयक विचार धारा में भारत की परतन्त्रता से मुक्ति का आह्वान मिलता है। राष्ट्रीय चेतना की मौलिक शैली उनकी रचनाओं के प्रारम्भ से ही विद्यमान है। भारत की पराधीनता और मुक्ति की समस्या के प्रति वे सदा सचेत थे। उनकी इस राष्ट्रीय चेतना का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि 'मातृभूमि' उनकी पहली कविता है।

भारति, जय विजय करे
कनक-शस्य- कमलधरे।
लंका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे।[७४]

और-

वन्दूं पद सुन्दर तव,
छन्द नवल स्वर-गौरव।
जननि, जनक-जननि-जननि,
जन्मभूमि - भाषे।[७५]

निराला जी के राष्ट्रीय गीतों में एक नयी प्रेरणा, जागरण तथा बोधिनी शक्ति का संचार होता है जिससे पराधीन और प्रताड़ित भारत प्रगतिके पथ पर चलने के कारण उनसे अनुप्राणित होता है और जिसके फलस्वरूप अन्त में भारत में एक नई राष्ट्रीयता कायम हो सकती है।

(२) प्रेम सम्बन्धी गीत - निराला जी के प्रेम सम्बन्धी गीतों का केन्द्रीय भाव सुख, आत्मतोष की तन्मयता, पावनता और निष्कामता की उच्छल

---

७४. निराला-अपरा, भारती वन्दना, पृ० ११
७५. वही-वन्दूं पद सुन्दर तव, पृ० ३५

अनुभूति है । "कविता के द्वारा आत्म-मुक्ति का श्रेष्ठतम उदाहरण आधुनिक युग में निराला जी के अलावा और दूसरा नहीं मिलता ।[७६] निराला जी के प्रेम-सम्बन्धी गीत उनके जीवन की महत्वपूर्ण धाराओं का फल है जो उनके लिये महान् तत्व-स्वरूप थे । प्रेम की पूर्णता की अनुभूति सर्वप्रथम 'अनामिका' की 'प्रेयसी' नामक कविता में अभिव्यक्त हुई है । निराला जी के प्रेम-सम्बन्धी गीतों में शारीरिक महत्व से मन के आह्लाद की अनुभूति को श्रेष्ठत्व प्राप्त होता है । यहीं से वे अपने अलक्ष्य रसस्रोत से सम्पूर्ण प्रकृति, समस्त जीवन और सारे संसार को आप्लावित करके स्वयं निष्काम हो जाते हैं । आह्लाद से निष्कामता तक की यही यात्रा उन्हें अन्तत: आत्म-मुक्त करती है । यह आत्म-मुक्ति ही निराला के प्रेम-गीतों का सूक्ष्म भाव-संवेदन है ।[७७] निराला जी के कुछ प्रेमगीतों आह्लाद, सुख, आत्म-तोष, पावनता, निष्कामता और आत्म-मुक्ति की प्रधानता के अलावा दु:खभाव से भी परिपूर्ण हैं :-

> आँसुओं से कोमल द्वार-भर
> स्वच्छ निर्झर-जल-कण से प्राण
> सिमट सट-सट अन्तर भर-भर
> जिसे देते थे जीवन-दान ।[७८]

(३) आत्म-साक्षात्कार का गीत - निराला जी के आत्म-साक्षात्कार गीतों का मुख्य-स्वर अवसन्नता के आन्तरिक और बाह्य जीवन की कटु अनुभूतियों का प्रतिफलन मात्र है । उनके मन का आन्तरिक व्यक्तित्व और बाहरी जीवन के तीव्र संघात उनके मन में उदास और अवसन्न अवस्था की सृष्टि करते हैं जो आत्म-

---

७६. दूधनाथ सिंह- निराला : आत्म हन्ता आस्था, पृ० १७४ ।
७७. वही, पृ० ३६ ।
७८. निराला-परिमल, स्मृति, पृ० १०३ ।

साक्षात्कार के रूप में प्रकाशित होता है । निराला के आत्म-साक्षात्कार से सम्बन्धित गीतों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं --१. निराला जी के प्रथम गीतों में उनके रचनात्मक संघर्ष प्रतिबिम्बित होते हैं, और दूसरे गीतों में दैवी तथा सांसारिक विपत्तियों के भाव संवेदन की अभिव्यक्ति हुई है । उनका उच्छल, पवित्र और समृद्ध गर्व परिमल के ध्वनि नामक कविता में अभिव्यक्त हुआ है :--

अभी न होगा मेरा अन्त ।
अभी-अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसन्त-
अभी न होगा मेरा अन्त ।[७९]

पराजय, अवसन्नता, उदासीन, अपमान की प्रक्रिया में निराला जी की रचनाओं में एक कारुणिक आत्मा-जर्जरता मिलती है :-

निशिदिन तन धूलि मे मलिन
क्षीण हुआ छन-छन मन छिन-छिन ।
व्यर्थ हुआ जीवन यह भार
देखा संसार, वस्तु, वस्तुत:, असार,
भ्रम में जो दिया, ज्ञान में लो तुम गिन-गिन । [८०]

आत्म-साक्षात्कार के गीतों की अन्तिम परिणति कारुणिक आत्म-जर्जरता में हुई है । निराला जी मृत्यु और शरणागति की स्थिति पर कदम रख कर चलते हैं ।

---

७९. निराला-परिमल, स्मृति, पृ०१०३
८०. वही, ध्वनि, पृ० ११३

(४) मृत्यु गीत- निराला जी की मृत्यु विषयक दृष्टि अतिशय आधुनिक और अतिशय पुरातन दोनों का सम्मिश्रण है । मृत्यु मानव- जीवन की अन्तिम सीमा और अन्धकारमय दुःख-यातना को समाप्त कर देने वाली स्थिति है । उनकी कविता का मूल उद्देश्य मृत्यु द्वारा जीवन को समाप्त करने के प्रयत्न को असफल करके जीर्ण देह के दुर्ग-शिखर पर अपनी अपराजेय मूर्ति की स्थापना है । मृत्यु के पराभव और लज्जा- अपमान के घने होते ही उसको आलोकित करने वाला प्रकाश उन्हें फूटता हुआ दिखाई देता है ।[८१] निराला जी आसन्न मृत्यु के समय अपने स्वजनों की सहायता चाहते हैं । उनका विश्वास था कि मृत्यु के बाद भी सांसारिक प्रेम-प्रीति, अनुपम सौन्दर्य के अनुभव आत्मा के साथ जायेंगे । इसीलिये वे मृत्युंजय रूप की सुन्दर कल्पना करते हैं । उनका 'स्मरण में बचा जीवन भी मृत्यु की नीली रेखा' में विलीन हो जाता है -

आग सारी फुक चुकी है,
रागिनी वह रुक चुकी है,
स्मरण में है आज जीवन ,
मृत्यु की है रेख नीली ।[८२]

'निराला के मृत्यु गीतों में नैराश्य के काले रंगों की बाढ़ सर्वत्र छायी हुई है ।[८३]

मैं रहूंगा न गृह के भीतर
जीवन में रे मृत्यु के विवर ।
यह गुहा, गर्त्त प्राचीन, रुद्ध
नव दिक्-प्रसार, वह किरण शुद्ध

---

८१. दूधनाथ सिंह-निराला : आत्म हन्ता आस्था, पृ० ८१,८२
८२. निराला-सांध्य काकली, पृ० ८२
८३. दूधनाथ सिंह-निराला : आत्म हन्ता आस्था, पृ० ८६

है कहाँ यहाँ मधु-गंध लुब्ध
वह वायु विमल आलिंगनकर ?[८४]

मृत्यु के मधुर स्वर के आह्वान में भी अवसान की कालिमा ही मुख्यत: उनकी रचनाओं में व्याप्त है। उसका स्वर, उसका संगीत निराला जी अलग ढंग से पहचान लेते हैं,

मधुर स्वर तुमने बुलाया
छद्म से जो मरण आया।[८५]

आत्म-क्षय की उसी तीखी अनुभूति का परिणाम उनके ये गीत हैं।.......
सारा दायित्व प्रतिदान, प्रतिभा, शरीर व आत्मा, प्रेम और घृणा तथा यश और सम्बन्ध [८६] उनके गीतों में अभिव्यक्त हुआ है।

(५) ऋतु गीत - निराला जी की रचनाओं में ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर, हैमन्त, तथा वसन्त ऋतुओं का सुन्दर वर्णन है। निराला का सर्वाधिक आकर्षण वर्षा-ऋतु के प्रति था। "अनामिका" से लेकर "सांध्य काकली" तक उनके सभी संग्रहों में वर्षा-ऋतु की कवितायें बिखरी पड़ी हैं। वर्णन और इतिवृत्त की अ व्यापकता से ऋतु-प्रसंग को निराला अनुभूति के संवेगात्मक क्षणों के प्रसार तक खींच ले आते हैं। चाहे सुख, समृद्धि, उल्लास या उत्तेजना के विस्फोटक क्षण हों या अवसाद, खिन्नता, उदासी, अवसान या तिरोहित होने के छीलते हुये शान्त-क्षण, निराला उन्हें पारंपरिकता और गतानुगतिकता से अलग सर्वथा निजी रूप में ऋतुओं के माध्यम से जीते हैं। इसलिये उनके ऋतु-वर्णन को आलम्बन या

---

८४. निराला-गीतिका, पृ० ६३
८५. निराला- अर्चना, पृ० ६६

उद्दीपन में बांधना नामुमकिन है । वह या तो जीने को फिर से पाना है या अवसान का बार-बार अनुभव करना है ।

निराला जी ने ग्रीष्म ऋतु पर कोई कविता या गीत की रचना नहीं की है । मात्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर की 'बैशाख' नामक कविता का हिन्दी रूप है और वह 'अनामिका' में 'ज्येष्ठ' नाम से संगृहीत है । इसके अतिरिक्त एक-दो कविताओं में ग्रीष्म का खण्ड-चित्रण हुआ है :--

उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द-चिनगी छा-गई
प्राय: हुई दुपहर-
वह तोड़ती पत्थर । [८६] ।

नये पत्ते की 'सैल' और 'देवी सरस्वती' कविता में ग्रीष्म का आंशिक चित्र निराला ने प्रस्तुत किया है :--

जेठ की दुपहर, दिवाकर प्रखरतर
जली है भू, चली है लू भासकर । [८८]

निराला जी ने शरद, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं का चित्रण वसन्त और वर्षा ऋतु के पूरक रूप में ही किया है । उनकी सारी रचनाओं में शरद् ऋतु विषयक ५।६ कवितायें हैं । 'नये पत्ते' में 'कैलाश में शरत' नामक एक कविता सर्व प्रथम मिलती है यह भी ऋतु विषयक नहीं है, मात्र इस कविता में एक यात्रा का

---

८७. निराला- अनामिका, तोड़ती पत्थर, पृ० ८१
८८. निराला-नये पत्ते, सैल, पृ० ४२

वर्णन है । शरद् ऋतु की दूसरी कविता 'आराधना' की 'ओस पड़ी', शरद आयी है ।[८९]

हेमन्त ऋतु पर भी निराला ने कोई स्वतंत्र कविता नहीं लिखी । मात्र 'नये पत्ते' की 'देवी सरस्वती' शीर्षक कविता में षट् ऋतु-वर्णन के साथ हेमन्त-चित्र प्रस्तुत किया गया है :--

सरसों के पीले पुष्पों की साड़ी पहने
अलसी के नीले फूलों की रेखा जिसमें
स्निग्ध पवन में शस्य-शीर्ष से उठी हुई तुम ।[९०]

निराला जी ने शिशिर ऋतु पर केवल चार कवितायें लिखी हैं । 'गीतिका' में वर्णित कविता के प्रथम चरण में 'नील-कमल' कलिकाओं' के थर थर कांपने का, द्वितीय चरण में वन-देवी के हृदय-हार से हर सिंगार की कलियों के झरने का और तृतीय चरण में विरह परी-सी खड़ी स्त्री का चित्र है :--

बह चली अब अलि, शिशिर-समीर ।
कांपी भीरू मृणाल वृन्त पर
नील कमल कलिकायें थर-थर,
प्रात-अरुण की करुण अश्रु भर,
लखती अहो अधीर ।[९१]

UNIVERSITY L... 7 JUL 19.. ALLAHABAD.

निराला जी की वसन्त विषयक अठारह कवितायें प्राप्त होती हैं । ये कवितायें 'परिमल' से लेकर 'सांध्य काकली' तक बिखरी पड़ी हैं । 'अनामिका' के

---

८९. निराला-आराधना, पृ० २३
९०. निराला-नये पत्ते, देवी सरस्वती, पृ० ७२
९१. निराला-गीतिका, पृ० १०

गीत -"वसन्त की परी के प्रति" में वसन्त के माध्यम से वसन्त विषयक रचनाओं का आह्वान किया है। इस तरह का आह्वान "परिमल" की कविता वसन्त समीर" और "वासन्ती" में भी अभिव्यक्त हुआ है। "निराला जी के मन को निरन्तर पीड़ित करने वाला अवसाद, उनके अन्दर की खिन्नता, निराशा और गहरी उदासीनता, मृत्यु की करुणा अनुभूति, वसन्त के निर्बाध उल्लास में तिरोहित हो जाते हैं।[९२] निराला जी की वसन्त विषयक श्रेष्ठतम प्रकाशित कविता में अनुभूति का निदर्शन इस प्रकार का है :-

> अभी न होगा मेरा अन्त।
> अभी अभी ही तो आया है
> ....................
> मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,
> इसमें कहाँ मृत्यु
> है जीवन ही जीवन।
> ....................
>
> अभी पड़ा है आगे सारा यौवन,
> स्वर्ण-किरन कल्लोलों पर बहता रे यह बालक-मन, [९३]

वसन्त की सारी बिम्ब-मालायें उनके भीतर से होकर ही बाहर आती हैं और फिर उनके लहलहाते जीवन-वन में समा जाती है।[९४] निराला जी वर्षा वर्णन में इतने तन्मय, स्थिरचित्त, शान्त और स्थिर प्रकृति के बन जाते हैं कि उनकी ऋतु-प्रार्थना प्रकृत स्वरूप दिखाकर सत्य पर स्थिर हो जाती है। वर्षा-

---

९२. दूधनाथ सिंह- निराला : आत्महन्ता आस्था, पृ० २७६

९३. निराला-परिमल, ध्वनि, पृ० ११३,११४

९४. दूधनाथ सिंह - निराला : आत्म हन्ता आस्था, पृ० २८१

वर्षा-वर्णन में इतने तन्मय, स्थिरचित्त,शान्त और स्थिर प्रकृति के बन जाते हैं कि उनकी ऋतु-प्रार्थना प्रकृत स्वरूप दिखाकर सत्य पर स्थिर हो जाती है । वर्षा-ऋतु सम्बन्धी उनकी प्रथम कविता, 'जलद के प्रति' है । निराला जी ने ही बादल के क्रान्तिकारी रूप को विप्लवी रूप प्रदान किया है । उसे एक सर्वनाश-कर्ता, भय-उत्पादन करने वाले के रूप में नहीं, बल्कि असद्-शक्तियों के विनाश का वाहक बनाया गया है । उन्होंने बादल के विनाशकारी रूप को एक सार्वजनिक मंगल की रचनात्मक दिशा की ओर मोड़ दिया है :-

> आतंक जमाने वाले ।
> कंपित जंगम, -नीड़-विहंगम,
> ऐ न व्यथा पाने वाले ।
> भय के मायामय आंगन पर
> गरजो विप्लव के नव जलधर ।[६६]

निराला जी के जीवन का उल्लास, सुख-समृद्धि, विकास की आकांक्षा, वरदान की अनुभूति और निश्छल ,पवित्र, प्रार्थना-परक आह्वान, उत्कट, असीम नैराश्य, आत्म-स्वीकृति, पावनता की अनुभूति, भीषण मनस्ताप, विप्लवी मुद्रा, विराट् लोक-मन आदि, उनकी विराट रचनायें जीवन की तेजस्विता के बिम्ब मात्र हैं ।

(६) प्रपत्ति भाव के गीत - निराला जी की सम्पूर्ण गीत रचना का एक बृहत् भाग भक्ति, प्रार्थना, शरणागति या प्रपत्ति की भावनाओं से परिपूर्ण है । प्रार्थना की क्षीण ध्वनि सर्वप्रथम उनके 'परिमल' की 'माया' नामक कविता में दिखाई देती है :-

> या कि लेकर सिद्धि तू आगे खड़ी
> त्यागियों के त्याग की आराधना ?[६७]

---

६६. निराला -परिमल,बादल राग,(२) पृ० १६२ ।

६७. वही, माया, पृ० ६३ ।

निराला जी के प्रपत्ति-भाव विषयक गीतों में उनकी सांसारिक असफलता और अन्धकार से मुक्ति और अमूर्त्तता प्रकाश में आयी है। निराला अपने इन प्रपत्ति-भाव के गीतों में भी दैन्य, आत्म-क्षय, भय और कारुणिक जर्जरता से पुन: आस्था, विमुक्ति, आत्म-शक्ति, निष्कामता और नि:संशय मन: स्थिति की ओर लौटते हैं।[६८]

निराला जी की प्रारंभिक प्रार्थनाओं में व्यक्तिगत मुक्ति से समष्टि-गत मुक्ति का अधिक महत्व दिखाई पड़ता है। वे सम्पूर्ण प्रकृति, सारे मानव-जीवन, सारे राष्ट्र के जीवन को पूर्ण मुक्ति देने के परम इच्छुक हैं। अपने नैराश्य के अंधेरे के बीच में सारे संसार को ज्योतिर्मय देखना चाहते हैं। इसीलिए प्रारंभ में ही सूर्य और ऊषा की प्रार्थना करते हुये दिखाई देते हैं। उनकी मुक्ति की प्रार्थना निजी और सार्वजनिक दोनों का समन्वय है —

> जग को ज्योतिर्मय कर दो।
> प्रिय कोमल-पद-गामिनि! मन्द उतर-
> जीवनमृत तरु-तृण-गुल्मों की पृथ्वी पर,
> हंस-हंस, निज पथ आलोकित कर
> नूतन जीवन भर दो।
> जग को ज्योतिर्मय कर दो। [६६]

निराला जी की मातृ-वन्दना में जननि, भारति और माँ शब्दों का विविध प्रयोग आता है। इनमें बंगाल की दुर्गा या शक्ति की आराधना के प्रभाव स्वरूप मान सकते हैं किन्तु इनमें सरस्वती की प्रार्थना भी है :-

---

६८. दूधनाथ सिंह-निराला : आत्महन्ता आस्था, पृ० ३३८।
६६. निराला-परिमल, प्रार्थना, भूमिका, पृ० २३

भारति, जय विजय करे ।
कनक-शस्य कमल धरे । [१००]

और —

वर दे, वीणावादिनी वर दे ।
प्रिय स्वतंत्र-रव, अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे । [१०१]

निराला जी ने इन गीतों में भारती या सरस्वती और भारत माता दोनों को एक कर दिया है । श्यामा, भारति और जननि शब्दों के बीच में एक अपराजेय और अखण्डित गति प्रवाहित है और वह गति है निराला जी की पराधीनता भारत-माता को स्वतंत्रता देने वाली महान् शक्ति देश-प्रेम । निरालाजी के मातृ-वन्दना-सम्बन्धी गीतों का हम निम्नलिखित उप-वर्गों में अध्ययन कर सकते हैं :--

१. शक्ति की आराधना सम्बन्धी प्रार्थना
२. भारत-माता की वन्दना सम्बन्धी प्रार्थना
३. सरस्वती की उपासना सम्बन्धी प्रार्थना
४. सरस्वती और भारत-माता के समन्वितरूप की प्रार्थना
५. जननी सम्बन्ध वाली प्रार्थना ।

निराला जी के मातृ-वन्दना सम्बन्धी गीतों में शक्ति-पूजा की अनु-प्रेरणा का होना संभव है । जननी शब्द को सम्बोधन के रूप में दुर्गा, भारत-माता या सरस्वती किसी भी पक्ष में आरोपित किया जा सकता है । निराला जी

---

१००. निराला-गीतिका, पृ० ७३ ।
१०१. निराला-गीतिका, पृ० ३ ।

का जननी सम्बोधन अमूर्त और प्रतीकात्मक है । उनकी प्रार्थनाओं से शरणागति की भूमि निकाली जा सकती है :-

> अगनित आ गये शरणों में जन, जननि ।
> सुरभि सुमनावली खुली मधु ऋतु अवनि ।[१०२]

'अनामिका' की 'वीणावादिनी'[१०३] 'गीतिका की' 'वर दे' 'भारति'[१०४] और 'सांध्य काकली' की 'हाथ वीणा, समासीना'[१०५] कवितायें इसी का उदाहरण हैं ।

११. दीर्घ कथात्मक रचनायें -- निराला जी की लम्बी कवितायें पंचवटी प्रसंग, 'यमुना के प्रति', 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'शिवाजी का पत्र, और 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' में किसी - न - किसी रूप में दूरवर्ती या निकट अतीत का कोई न कोई पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक-आख्यान विद्यमान है । 'सरोज स्मृति' में पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक-आख्यान विद्यमान होते हुये भी निराला जी और उनकी प्रिय पुत्री 'सरोज' का सुन्दर विवरण अथवा इतिवृत्त विद्यमान है । निराला जी की इन कविताओं का महत्त्व यह है कि उन्होंने निजी रचनात्मक जीवन का आत्म-प्रक्षेप करके पूरे इतिवृत्त के माध्यम से नये, मौलिक और अनुभूत अर्थ- प्रसंग का सृजन किया है । पौराणिक, पारम्परिक, सन्दर्भगत, इतिहास-सिद्ध आख्यानों के साथ-साथ निराला ने इन कविताओं में एक नये अर्थ का संचार किया है । उनमें अपने समय की सामाजिक, नैतिक, ऐतिहासिक समस्याओं और निर्णयों को प्रतिष्ठित करने का जो प्रयत्न दिखाई देता है वह अपना-साक्षात्कार के प्रयत्न से अधिक प्रबल नहीं । सारी कवितायें प्रकारान्तर में आत्म-चरितात्मक ही हैं । 'राम की शक्ति पूजा में राम-कथा तो कम है किन्तु निराला जी के रचनात्मक संघर्ष, संचय और आत्म-

---

१०२. निराला जी- गीतिका, पृ० २०

१०३. निराला-अनामिका, पृ० ३३

१०४. निराला-गीतिका, पृ० ३,७३

बलिदान की कहानी अधिक । 'तुलसीदास' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' में भारतीय संस्कृति के विनाश और अंधकारमय अवस्था की चिन्ता के स्तर पर एक सूक्ष्म एकान्विति है । अपनी पराजय,एकाकीपन, रचनात्मक संघर्ष की जो कथा 'सरोज स्मृति' में है, 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' के पश्चिमीय युवक की उपेक्षा और प्रतारणा में वही संकेत दुहराया गया है ।

निराला जी के पहली इतिवृत्तात्मक कविता 'पंचवटी प्रसंग है ।[१०६] पूरी कविता पाँच भागों में विभक्त है और काव्य-नाटक की शैली में लिखी गयी है । प्रथम खण्ड में राम और सीता के सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन का वर्णन है । द्वितीय खण्ड में लक्ष्मण जी एक भक्त के रूप में दिखाई देते हैं । तृतीय खण्ड में शूर्पनखा का आत्मलाप है । चतुर्थ खण्ड में निराला जी ने राम के मुख से लक्ष्मण को ब्रह्मज्ञान, वेदान्त और अद्वैतवाद की शिक्षा दिलवायी है । पंचम खण्ड में शूर्पनखा के नाक-कान काटने का प्रसंग है ।

निराला जी की 'यमुना के प्रति' एक लम्बी सम-मात्रिक कविता है । कविता में श्रीकृष्ण के पौराणिक प्रसंग लीलाओं का स्मृतिवाचक प्रश्न है किन्तु उसका उत्तर या समाधान नहीं मिलता । कविता की भाषा का शब्द-लास्य दर्शनीय है । कविता में निराला जी यमुना नदी के प्राचीन सुवर्णमय समृद्धिशाली काल, ऐश्वर्यपूर्ण लीलाओं की महानताओं की स्मृति का स्मरण बार-बार करते हैं । कविता की कथा एक ही प्रकार की पूर्णपुरातन की है और चारों ओर स्मृति-मक्खियाँ गुंजार करती रहती हैं :--

> वह सहसा सजीव कंपन-द्रुत
> सुरभि-समीर, अधीर विधान ,
> वह सहसा स्तंभित वक्षः स्थल, टलमल पढ़, प्रदीप निर्वाण ।[१०७]

---

१०६. निराला-परिमल, पंचवटी प्रसंग, पृ० २२१ ।

१०७. निराला-परिमल, यमुना के प्रति, पृ० ५२ ।

'महाराज शिवा जी का पत्र' मुक्त-छन्द में, पत्र-शैली की एक लम्बी कविता है। पत्रकार शिवाजी की वीरता, अपने उद्देश्य और हिन्दू-जाति की संस्कृति से परिचित है। उनके लिये भारतीय संस्कृति ही हिन्दू संस्कृति है, सनातन धर्म है, हिन्दुत्व है। वे मुसलमानों को भारतीय संस्कृति का विनाश-कर्ता मानते हैं। वे हिन्दू-जाति की गिरी हुई दशा पर अत्यन्त दु:खित है और वे उसी को 'तुलसीदास' नामक कविता में जो रहे शेष नृप- वेश सूत बन्दीगन,[१०८] कहते हैं। इस पत्र के सम्बोधित व्यक्ति जयसिंह हैं जिनके अतीत की, चारित्र्य की, शूर-वीरता की याद निराला जी के मुख से दिलवाते हैं :-

> और है विकर्षणामय
> सारा संसार हिन्दुओं के लिये।
> धोखा है अपनी ही छाया से
> ठगते वे अपने ही भाइयों को
> लूटकर उन्हें ही वे भरते हैं अपना घर।[१०९]

निराला जी की 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' एक और लम्बी कविता है। यह प्रशस्ति काव्य है और 'सेवा-प्रारम्भ' का विस्तृत रूप है।[११०] कविता निराला के 'समन्वय काल' की गुरु-भक्ति से उऋण होने का प्रयत्न है। उन्होंने अपने को एक पश्चिमीय उपेक्षित प्रताड़ित युवक के रूप में रखा है। वे प्रेमानन्द के चरित्र से ही अपने आत्म-चरित्र को एकान्वित करते हैं, वही कविता का सबसे मार्मिक स्थल है। डा० रामविलास शर्मा ने निराला जी की जीवनी में उनके सन्यास की बात उठायी है, उसका संकेत इस कविता की अंतिम पंक्तियों में मिलता है :-

---

१०९ निराला-परिमल, शिवाजी का पत्र, पृ० २१६।

११०. निराला-अनामिका, सेवा प्रारम्भ, पृ० १७४।

पश्चिमीय जन वह मन्दिर के बाहर रहा ।
स्वामी जी ने चलते समय कहा कि
मैं वहीं हूं बाहर खड़ा हूं जी ।
लौटे जब स्वामी जी
साथ युवक हो गया मंत्र-मुग्ध प्रेम से ।
वासना से मुंह फेरा, सदा को चला गया ।[१११]

'राम की शक्ति पूजा' ने ही निराला जी को हिन्दी साहित्य-संसार में महत्व का स्थान दिया है । कविता के शब्द कौशल, ओजस्विता, प्रगाढ़ संश्लिष्ट शिल्प और कथन-संक्षिप्तता की बहुत प्रशंसा हुई है । राम की शक्ति पूजा' निराला जी की वीर रस पूर्ण अमर कृति है । कविता स्वयं सम्पूर्ण लंकाकाण्ड की संक्षिप्ततम और सुन्दरतम अभिव्यक्ति है । वह अपनी संक्षिप्तता के कारण भी एक प्रबंधकाव्य है और निराला के प्रबंध - स्थापत्य का अद्वितीय नमूना है । कविता में अलंकारों, रसों, मानवीय भावनाओं, उद्दीपन, आलम्बन, रीतियों का अद्भुत समन्वय हुआ है । उसकी मूल कथा असत् शक्तियों पर सत् की विजय का सफल निर्वाह है । कविता की संक्षिप्त कथा इस प्रकार की है :--

राम की शक्ति पूजा में निराला जी ने राम और रावण के युद्ध का सुन्दर वर्णन किया है । रावण से युद्ध करते हुये लगातार अपने मजबूत अस्त्रों को असफल होते देख, राम खिन्न हो जाते हैं । उन्हें पराजय की शंका घेर लेती है । उनकी सारी सेना और सैनिक अधिकारी उनके इर्द-गिर्द, उनकी खिन्नता में हिस्सा लेते हुये स्तब्ध बैठे हैं । राम को सीता से प्रथम मिलन की बात याद आती है । वे फिर विजय की आकांक्षा से उद्वेलित होते हैं, लेकिन यह जान कर कि शक्ति की अधिष्ठात्री रावण के साथ है, उनकी आंखों से दो बुन्द आंसू टपक पड़ते

---

१११. निराला-अणिमा, प्रेमानन्द महाराज, पृ० ८०

हैं। उन आंसुओं को लक्ष्य करके स्वामीभक्त हनुमान अत्यन्त उत्तेजित हो कर आकाश में चढ़ जाते हैं और सूर्य को निगलने के लिए तत्पर होते हैं। अपनी माँ की डांट खाकर वे नीचे उतर आते हैं और फिर वैसे ही राम के चरणों में बैठ जाते हैं। फिर माँ की डांटखाने के पश्चात् जाम्बवंत की सलाह पर राम शक्ति की आराधना में लगते हैं और युद्ध चल रहा है। अन्तिम दिन दुर्गा उनकी परीक्षा लेने के लिये पूजा का अन्तिम कमल उठा ले जाती हैं। राम उसे न पाकर पहले तो खिन्न होते हैं, फिर अपनी माँ द्वारा दिया गया नाम 'राजीवनयन' उन्हें याद आता है। वे अपना एक नेत्र पूजा में चढ़ाकर आराधना पूरी करना चाहते हैं। प्राचीन कहानियों की तरह जब राम अपनी आँख निकालने के लिये तीर हाथ में लेते हैं तो उनकी परीक्षा पूरी होती है। स्वयं दुर्गा उनका हाथ पकड़ क लेती हैं और उन्हें विजय का वरदान देकर उनके बदन में समा जाती हैं।

'राम की शक्ति पूजा' में चित्रित राम और वाल्मीकि के राम में समानता है। क्योंकि रावण के विनाश की मुख्य प्रेरणा इन दोनों स्थलों पर सीता ही हैं। किन्तु तुलसीदास के 'रामचरित मानस' में सीता तो मात्र निमित्त हैं। रावण का विनाश पूर्व-निश्चित है। इसमें बंगाल के कृत्तिवासी रामायण का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

'राम की शक्ति पूजा' निराला जी की प्रमुख प्रतीकात्मक रचना है। राम के माध्यम से उनकी राष्ट्रीय पराधीनता से मुक्ति की चिन्ता प्रतिभाषित होती है। राम की विजय और सीता की मुक्ति भारतीय राष्ट्र-मुक्ति और राष्ट्रीय मर्यादा की रक्षा ही नैतिकता है। यह राष्ट्रीय-मुक्ति किसी महान् नेता के द्वारा ही संभव है और मुक्ति की बलि वेदी पर उनका सब कुछ समर्पित कर देना अत्यन्त आवश्यक है। देश-प्रेम और राष्ट्रीय मुक्ति के लिये शारीरिक तथा मानसिक शक्ति एवं सामर्थ्य जरूरी है। निराला जी ने जिसके लिये शक्ति की आराधना का पक्ष लेते हैं।

'तुलसीदास' कविता में भारतीय ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन परोक्ष रूप में निराला जी ने किया है । भारत के सांस्कृतिक अंधकार की चिन्ता से ही कविता का प्रारम्भ होता है । इसके साथ-साथ निराला जी ने निजी आत्म-साक्षात्कार का अर्थ और अधिक स्पष्टता और गहराई से समाविष्ट किया है । भारत की हिन्दू-संस्कृति समाप्त हुई है । भारतवेत्वारों और नैतिक पराजय के बादल आ गये हैं । जिनको दूर करने के लिये शक्ति आवश्यक है । किन्तु शारीरिक शक्ति के द्वारा काम नहीं होगा , ओजस्वी वाणी के द्वारा भारतीय संस्कृति को अंधकार से मुक्त कराने हेतु तुलसी-दास का आगमन हुआ । निराला जी ने 'तुलसीदास में' भारत के अध:पतन, उसके सांस्कृतिक अंधकार, आर्य-संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति की विजय से उत्पन्न खिन्नता का वर्णन किया है । वे भारत के अतीत गौरव, वैभव और शौर्य का स्मरण करते हैं और भारत की सम्पूर्ण जाति का पराक्रम नष्ट हो जाने से अत्यन्त दु:खी होते हैं । इसी विनष्ट शौर्य का प्रतिपादन सांस्कृतिक अंधेरे में हुआ है । भारत के भौतिक,बौद्धिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पतन का चित्रण निराला जी ने 'तुलसीदास' के दसवें छन्द तक किया है । निराला जी के सारे निर्णय, सारी उत्फुल्लता, सारा आवेग तुलसी के माध्यम से व्यक्त होता है । तुलसी की ओजस्वी वाणी, मौलिक वाग्मिता और गहरे अध्ययन से और जीवन एवं संस्कृति के परिशीलन से ही भारतीय जनता की आशा, विश्वास और आस्था को नव-जीवन प्राप्त होगा ।

'सरोज स्मृति' में निराला जी का जीवन संग्राम, साहित्यिक समर, सामाजिक कटु आलोचना और वात्सल्य प्रेम विद्यमान है । इसमें निराला जी ने वर्णन-विजय को प्रतीकात्मक रूप में नियोजित न करके प्रत्यक्ष रूप में रखा है । यह कोई ऐतिहासिक अर्द्ध-ऐतिहासिक या लोक-आख्यान पर आधारित इतिवृत्त नहीं है । वस्तु स्तर के आधार पर यह एक आत्म-चरितात्मक कविता है । किन्तु कवि के जीवन-मृत्यु का एक मार्मिक-प्रसंग ही इसका इतिवृत्त है । 'अपनी कविता

की अपने समकालीन पाठकों,संपादकों से अस्वीकृति, कवि की मौलिकता, भाषा और उसके विद्रोही रूप पर तरह-तरह के आक्षेप, आर्थिक विपन्नता, एकाकीपन सभी प्रत्यक्ष और साफ हैं ।[११२]

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में भी व्यर्थ व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द ,
पर संपादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंक्ति - दो में उत्तर ।[११३]

'सरोज स्मृति' में दुख-भारत-जर्जर, निराशा, आहत और टूटे हुये निराला के दर्शन होते हैं । कविता का अन्त महा-निराशा के महाप्रान्त में होता है :-

दु:ख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।[११४]

कविता दु:ख -अंधकार की सहज-स्वीकृति और पीड़ा द्वारा आच्छन्न हो जाने की स्वाभाविक स्वीकारोक्ति है । यह कविता कवि की अतीत स्मृति, मृत्यु की असीम करुणा, भावावेग, सामाजिक अवमानना, साहित्यिक उपेक्षा को एकत्र संगठित अनुभूति की अभिव्यक्ति की अद्वितीय नमूना है । निराला जी की 'सरोज स्मृति' ही हिन्दी साहित्य में एक मात्र कवि का जीवनी परक लोकगीत है । इतिवृत्तात्मक कविताओं के कथ्य तथा इतिवृत्त से भारत के सांस्कृतिक उत्थान, राष्ट्रीय मुक्ति के रूप, कवि का निजी रचनात्मक संघर्ष, प्रतिभा और तेजस्विता के विजय की उद्घोषणा प्रकट होती है ।

---

११२, दूधनाथ सिंह-निराला, आत्महन्ता,आस्था, पृ० १६६ ।
११३, निराला-अनामिका, सरोज स्मृति, पृ० १२६ ।
११४, वही, पृ० १३७ ।

राय चौधुरी का कृतित्व और काव्य-प्रवृत्तियां :-

राय चौधुरी की समस्त कृतियों को निम्नलिखित ग्यारह विभिन्न दिशाओं में विवेचित किया गया है :-

१. व्यक्तिवादी या आत्मपरक रचनायें --

राय चौधुरी की समस्त काव्य-कृतियों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में उनका-जीवन-दर्शन उपलब्ध है। कवि का जीवन, व्यक्तिगत और सामाजिक अभिज्ञता ही काव्य का मूल उत्स है। छल-कपट से दूर रह कर चारों दिशाओं से विश्वास की कामना करने वाले राय चौधुरी का व्यक्तित्व उनके काव्यों में मुखरित हुआ है। समाज की अवहेलना, मानव की शारीरिक और मानसिक दासता, व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व में व्याप्त समस्त विषमताओं और अन्यायों के प्रति विद्रोह करने के कारण आजीवन राय चौधुरी जी अकेले ही लड़ते थे। उनके व्यक्तिगत जीवन की गति-विधियों का परिचय कराने के साथ ही उनके देश-भक्त, परदु:खकातर और दार्शनिक-व्यक्तित्व का भी आभास उनकी आत्मपरक रचनायें देती हैं। जीवन के निरन्तर संघर्षों और पीड़ाओं से उनकी आत्मशक्ति को शाश्वत गति और प्रेरणा प्राप्त हुई हैं। इसलिये उनकी रचनाओं में संवेदनजन्य अहं का स्वरूप आत्मनिष्ठ, आत्मानुराग आदि का प्रतिफलनहोकर अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचनाओं में कहीं भी असन्तोष की आत्मतोषवाली स्वीकृति परिदर्शित नहीं होती। राय चौधुरी जी की व्यक्तिपरक कविताओं में जीवन के कठोर आघातों से जर्जर, आत्मा की ग्लानि और क्रन्दन है, वैयक्तिक दु:ख-कष्टों, पीड़ाओं और संघर्षों से मुक्ति पाने की आकुल अभिलाषा है। निम्नलिखित पंक्तियों में राय चौधुरी के व्यक्तिगत दु:ख तथा वेदना प्रकट हुई है :-

मह हम यथ व्यथार गराकी,
आनले आरु नाथाकिब बाकी,

शृष्टि-पटल मह्हे केवल हम वेदनाशाली ।[११५]

हिन्दी रूपान्तर

मैं बनूंगा सब व्यथाओं का स्वामी,
नहीं रहेगा कुछ और अवशिष्ट ,
संसार में मैं ही सबसे वेदना-क्लिष्ट ।

राय चौधुरी के जीवन में संघटित होने वाली घटनाओं, उनकी विकास परम्पराओं, दार्शनिक अनुचिन्तन मार्गों और उनके विचारों और मान्यताओं के प्रगतिशील तत्वों का चिन्तन 'भूमि' , 'वीणा' 'अनुभूति' और वेदनार उल्का' की कुछ कविताओं में हुआ है । 'वेदना विजय' , 'जीवनर सा' , जीवनर प्रयोजन ', 'मह बिप्लवी- मह ताण्डवी', गढा करि मोक भाङुवार, 'मह आछों-मह आछों, मोरेइ हब जाय,' मोर आनन्दमय अभिषेक , अव्यर्थबान, दृढ़पन, या-या सकलो शुचि या, 'और' जाग बेथा मोर जाग,[११६] आदि 'अनुभूति' कविता संग्रह की कविताओं में राय चौधुरी के जीवन की रुचि-अरुचि और आशा-निराशा की अभिव्यंजना हुई है । 'जागबेथा मोर जाग' कविता में कवि सांसारिक दु:ख-कष्टों, वेदना-ग्लानि आदि के प्रति उदासीन होकर अपने मन की खिन्नता को निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त करते हैं :--

जाग तैनेहले जाग व्यथा मोर
आकाश-पताल बुराइ जाग,
जटाइ जकुला, क्लेद-टानि तोल
नव-सृष्टिर अमल भाग ।।[११७]

---

११५. राय चौधुरी-अनुभूति, वेदना विजय, पृ० ६६

११६. राय चौधुरी- अनुभूति, पृ० ६५,४८,६३,६१,६५, ७८, ८३, ८६, ४,५,६६,७०

११७. वही, जाग बेथा मोर जाग, पृ० ७२

हिन्दी रूपान्तर

जागो तब जागो मेरी व्यथा
आकाश-पाताल डूबकर जागो ।
हटाकर जड़ता और मलिनता
नव और स्वच्छ सृष्टि का सृजन करो ।

राय चौधुरी की आत्मपरक कविताओं की विशेषता यह है कि उनमें उनके व्यक्तित्व के गहन और मार्मिक अनुभव, आस्था और आश्वासन स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुये हैं ।

राय चौधुरी के व्यक्तिगत जीवन में आन्तरिक वेदना की गंभीरता और प्रचण्डता उनकी 'वेदना विजय' और 'सृष्टिर उत्स' [११८] नामक कविताओं में सुस्पष्ट रूप से प्रकट हुई है । विश्व की समस्त वेदनाओं को, उत्फुल्ल मन से अपने अन्तर में समा लेने की प्रबल आकांक्षा ही कविता का आत्मबल है । उनकी आत्मपरक रचनाएं व्यक्तिगत वेदना, संघर्ष, शक्ति और उल्लास की प्रतीक्षाओं से परिपूर्ण हैं । समवेदना के तरल तत्वों से ओत-प्रोत मानवता रूपायित हुई है और देश-प्रेम से अनुप्राणित होकर सारी रचनाओं को गम्भीरतम बना दिया गया है ।

## २. हास्य व्यंग्य और करुणापूर्ण रचनायें --

हास्य-व्यंग्य और करुणापूर्ण रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राय चौधुरी को सामाजिक, वर्गगत और आर्थिक विषमता का अत्यन्त अनुभव था । परिणामस्वरूप उनके अन्तर में समाज के दलितों, शोषितों, पीड़ितों और उपेक्षितों के प्रति सक्रिय सहानुभूति जाग्रत हुई थी और उनके प्रगाढ़ स्वदेश-प्रेम तथा संस्कृति के बीच में वह व्यंग्य के रूप में कभी करुणा और कभी कठोर होकर

---

११८. राय चौधुरी-बीणा, पृ० २७ ।

फूट निकली थी । आलोक वंचित मानव- समाज को चेतना प्रदान करने के प्रयास में करुणा, सहानुभूति और आवेश के साथ व्यंग्य परक शैली में आवेश-पूर्ण और उद्बोधक वाणी का प्रयोग कर क्रान्ति और प्रगति की पुकार मचायी :-

> बहु लोक कय, मह हैनो एटा
> मस्तधुमा राजनीतिक,
> काव्य-कला-साहित्यतके, मोर हैनो राप
> राजनीतिक अत्यधिक ।[११६]

हिन्दी रूपान्तर

> लोग सदा कहते हैं
> मैं हूँ एक धुरंधर राजनीतिक,
> काव्य-कला-साहित्य से मेरा अनुराग
> राजनीति में अत्यधिक ।

'राय चौधुरी' की देश-प्रेम मूलक रचनाओं में विश्व-जीवन की असहाय अवस्थाओं, जातीय मतभेदों, ऊँच-नीच की भावनाओं, आर्थिक विषमताओं, आदि का यथार्थ चित्रण व्यंग्य परक शैली में मिलता है । उन अधिकांश रचनाओं को यथार्थोन्मुख व्यंग्यपरक कोटि में लिया जा सकता है । राय चौधुरी ने 'अनुभूति', बेदनार उल्का';बन्दो कि छन्देरे' नामक कविता संग्रहों की कई कविताओं में भारतीय संस्कृति आदि की पराभूत दशा, विदेशियों के हाथ में पड़कर वेदना की तीव्र ज्वाला में जलने वाली देशमाता,उनकी सन्तानों की दुर्गति का यथार्थ और व्यंग्यपरक, साथ ही करुण चित्रण प्रस्तुत किया है । स्फुट कविताओं में राय चौधुरी ने विषम सामाजिक यथार्थ की विद्रूपता पर व्यंग्यपरक शैली के सहारे कठोर और तीव्र व्यंग्य किया है,

---

११६. राय चौधुरी-बेदनार उल्का, मह जीबन नीतिक-मानबनीतिक, पृ० ७५ ।

देश-प्रेमिकर पिंधि मुखा
    खेलौं किमान चतुर खेल,
रांग-पितलक सोणा करा
    देश-विदेशर पातौं मेलाह ।[120]

हिन्दी रूपान्तर

देश-प्रेम की नकाब पहन कर
खेलोगे कितना चतुर खेल,
रांग और पीतल को सोना बनाकर
देश-विदेश का करोगे मेल ।

३. मानवतावादी, समाजोन्मुखी और प्रगतिशील रचनायें --

राय चौधुरी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से तथाकथित भारत की सामाजिक दुरवस्था, नैतिक पतन, धार्मिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक तथा आर्थिक पराधीनता, आर्थिक विषमता आदि समाज के विभिन्न गर्हित पक्षों का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में किया है । उनके जीवन में राजनीतिक और सामाजिक संघर्षों, जाति-वर्णगत विषमताओं, आर्थिक संकटों का और प्रादेशिकता का अत्यन्त कठोरता के साथ संघटन हुआ था । राय चौधुरी जी ने मानवतावादी विचारधारा का अपने 'डेका-डेकैरिर बेद' नामक ग्रन्थ में सुविस्तृत रूप से वर्णन किया है । उनकी मानवतावादी, समाजोन्मुखी और प्रगतिशील रचनाओं में उनका विद्रोही और क्रान्तिकारी स्वरूप प्रशंसनीय है । समग्र देशवासी और मानवजाति की सेवा ही उनके जीवन का प्रमुख ध्येय, नीति और उद्देश्य था । इस मनो-

---

१२० राय चौधुरी-बन्दौ कि छन्देरे, एहतो मह्यू जेल दिया भाइ, पृ० २७

भावना की झलक उनकी समस्त कृतियों में बिखरी पड़ी है । "मह जीबन नीतिक, मानब नीतिक, असीम अपार महामानवीय, जीबन-सेवाइ मो प्रतीक"[१२१] में उनकी महामानवीय विचारधारा और मानव-सेवा के तत्व मिलते हैं । राय - चौधुरी जी एक कविता में आत्मा, देश और मानवता के पारस्परिक संघर्ष के विषय में कहते हैं :-

माटियेइ देश देशेइ आत्मा,

माटि-देश गले आत्म नाइ,

सेइ आत्म लटि-घटि हले

एरि गुचि याय मानबताइ ।[१२२]

हिन्दी रूपान्तर

मिट्टी ही देश है, देश ही आत्मा

मिट्टी-देश के बिना नहीं रहती आत्मा,

उस आत्मा की परिश्रान्ति से

भाग जाती है मानवता ।

राय चौधुरी की समाजोन्मुख प्रगतिशील विचारधाराओं का परिणाम मानब समाज का सदासर्वदा उन्नयन करता है । मातृ-भूमि की उद्गति और सेवा के लिये सब देशवासियों में धर्म, जाति, वर्ण आदि के संकीर्ण भेदाभेद के भाव नहीं होने चाहिये :-

आहा पंजाबी, आहा मद्राजी, बिहारी, उरिया, बंगाली,

आहा गुजराती, सिंधि, माराठी, राजस्थानी, भोट, नेपाली,

---

१२१. राय चौधुरी-बेदनार उल्का, मह जीबन-नीतिक-मानव नीतिक, पृ० ७५

१२२. वही, जीयार युंजत ज्यी ह, पृ० ३६ ।

भारत मातार चैनेही दुहिता पूब-प्रान्तर असमी आइ,
दिछे सकलौ कै उदार कौलात सुख-शान्तिरै थाकिब ठाइ । [१२३]

हिन्दी रुपान्तर

आओ पंजाबी, मद्रासी, बिहारी, उड़िया, बंगाली,
आओ गुजराती, सिंधी, मराठी, राजस्थानी, भौट नैपाली,
भारत-माता की प्यारी पुत्री पूरब-प्रान्त की असमी माई,
देती है जगह सबको उदार गोद में सुख-शान्ति से रहने की ठाईं ।

राय चौधुरी जी ने मानव-समाज की उन्नति और उपनिवेशों की स्थापना के बारे में भविष्यवाणी भी की थी । मनुष्य की महान् शक्ति इस पृथ्वी में ही सीमित न रह कर दूसरे ग्रह-उपग्रहों में भी विस्तारित होगी । उनकी मानवतावादी विचारधारा बढ़ती हुई जनसंख्या की मंगलकामी थी :-

बीर दापेरे ग्रहान्तरत
तेज महू० है गै,
पारिलेहे उपनिवेश
स्थापन करि लब,
मानब जातिर मान-गौरब
नित्य नतुन हब । [१२४]

हिन्दी रुपान्तर

सशरीर वीर शक्ति से ग्रहान्तर में
उपनिवेश स्थापन करने से

---

१२३. राय चौधुरी-बेदनार उल्का, आहा मोर बुकुलै, पृ० ७३

१२४. राय चौधुरी-अनुभूति, मानबायतन, पृ० ५४,५५

मानव जाति का मान-गौरव
नित्य नवीन होगा ।

अन्त में राय चौधुरी जी ने मानव-जाति के कल्याण हेतु भगवान् से प्रार्थना की है और उनकी कामना थी कि विश्व की समग्र मानव-जाति मैत्री की एक ही डोरी से बांध रखा जाय ।

४. राष्ट्रीय और विश्व प्रेम सम्बन्धी रचनायें --

राय चौधुरी जी की कृतियों में उदात्त राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतना का मधुर स्वर स्वतंत्र सुनाई पड़ता है । उनकी राष्ट्रीय भावना विराट् और आत्म-गौरव से परिपूर्ण है और भारत की गौरवशालिनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर स्थित है । अतः उनके मानस पट की अभिधा के क्षेत्र में राष्ट्र की सीमित परिधि तक और ध्वनि के क्षेत्र में समस्त विश्व-प्रसार तक मान्य है । राय चौधुरी का राष्ट्र-प्रेम विश्व-प्रेम का परिपूरक है ।

राय चौधुरी जी की राष्ट्रीय और विश्व-प्रेम सम्बन्धी रचनाओं में से 'बन्दी कि छन्देरे' और 'स्थापन कर -स्थापन क र' की सारी कवितायें और 'बीणा', 'अनुभूति' नामक कविता संग्रह की बीस कवितायें प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त विश्व-कल्याण की ईश्वर या देवी से प्रार्थना करते हुये विरचित स्तोत्र गीत इस वर्ग में आते हैं । राय चौधुरी के राष्ट्रीय गीत और देश-प्रेममूलक कविताओं में भारत की प्राकृतिक सुषमा और उदात्त संस्कृति का गौरवगान है । पराधीन भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन, भारत के अतीत और वर्तमान गौरव के विषय, देश के लोगों में व्याप्त रहने वाली समस्याओं, जाति-कुल-धर्मगत विषमताओं प्रान्तीयता की संकीर्णता, दासता की अज्ञानपूर्ण स्वीकृति, आर्थिक परतंत्रता भावात्मक और सांस्कृतिक एकता की विस्मृति आदि का चित्रण और समाधान के उपाय का उल्लेख है । भारतवासियों में एकता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व,

समानता,उत्साह आदि तत्व भरने का प्रयास है और अतीत भारत के गौरव-मण्डित रूप-चित्रण द्वारा जन-गण में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण का सुन्दर प्रयत्न है ।

बन्दी कि छन्दै' कविता-संग्रह की जाग जाग जाग' नामक कविता में उन्होंने भारत के पौराणिक काल से स्वतन्त्रोत्तरकाल तक के गौरव का स्पष्ट और उपदेशात्मक वर्णन किया है :-

जाग तिनि शताब्दी पिटि खाँच थोवा जातीय आत्म-अभिमान,
जाग द्वापर-सत्य-त्रेता मुखरित मृत्यु-विजयी साम-गान ,
जाग कारबाला भूमि, कुरुक्षेत्र,राम-रावणामय इतिहास,
जाग शुक, बशिष्ठ,विश्वामित्र,बाल्मीकि, मनु,वेदव्यास,
जाग बराह, मिहिर,खना,लीलावती,कालिदास, भवभूति ,माघ[१२५] ।

हिन्दी रूपान्तर

जागो तीन शताब्दी का सुसमृद्ध जातीय आत्म-अभिमान ।
जागो द्वापर-सत्य-त्रेता मुखरित जो मृत्यु-विजयी साम-गान ।
जागो कारबाला-मरु कुरुक्षेत्र और राम-रावण का इतिहास ।
जागो शुक-वशिष्ठ,विश्वामित्र,वाल्मीकि,मनु वेदव्यास ।
जागो वराह-मिहिर,खन्ना ,लीलावती,भवभूति,माघ,कालिदास ।

राय चौधुरी जी के देश-प्रेम के दो स्तर हैं - विदेशी शासन को भारत से बहिष्कृत कर भारत को स्वतंत्र रूप प्रदान करने की विचार धारा और स्वाधीन भारत की सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, विषमताओं को देश-प्रेम के अविच्छेद्य अंग का स्वरूप मानकर उनको सुधारना । वस्तुत: राय चौधुरी जी

---

१२५. राय चौधुरी- बन्दीकि छन्दै,जाग जाग जाग , पृ० २४

उग्रपन्थी ,देश-प्रेमी थे और उन्हें मानवता पर अक्षुण्ण आस्था थी । विश्व बन्धुत्व के भारतीय दर्शन पर आधारित तत्वों के विकास और परिवर्द्धन पर उन्हें अप्रतिम विश्वास था ।

राय चौधुरी जी का विश्व-प्रेम भारतीय अध्यात्मवाद पर आधारित और महामानवतावादी सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है । वे उसी अध्यात्म तत्व की उर्जस्विता को पृथ्वी पर प्रेम के स्वरूप में अवतीर्ण करना चाहते हैं। इसी लिये वे विविध पशु-पक्षी को ही नहीं सागर, पर्वत,नदी आदि को भी अपने समाज के अंग रूप में स्वीकार कर सर्वत्र प्रेम रूपी परम् ब्रह्म की आभा का ही आभास पाते हैं :-

यैलिया विफाले चाओं,
प्रेमकेहे देखा पाओं,
असीमर बिराट अंचल
रंजित प्रेमत। [१२६]

हिन्दी रूपान्तर

जब जहां में देखता हूं ।
प्रेम ही प्रेम परिलक्षित होता है ।
असीम के विराट् अंचल
सदा प्रेम में रंजित होता है ।

राय चौधुरी जी के राष्ट्र-प्रेम की अन्तिम परिणति विश्व-प्रेम है ।

---

१२६, राय चौधुरी-तुमि, पृ० ४२ ।

५. शृंगारिक रचनायें --

राय चौधुरी जी ने लौकिक शृंगार अथवा प्रेम की शाश्वत, अनादि तथा अलौकिक माना है। उन्होंने सांसारिक मानव-प्रेम को उच्च भूमि पर संचरित होने वाली रागात्मक जीवन-चर्या को पार्थिव जीवन में अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग बताया है। आत्मा और परमात्मा को मिलाने वाली प्रकृति को वे स्वीकार करते थे। उन्होंने अपनी कृतियों में शृंगार के वासनात्मक पक्ष को खण्डित कर अतीन्द्रियवाद का स्थापन किया --

'वीणा और अनुभूति' नामक कविता संग्रह की अधिकांश कवितायें शृंगारिक है। उनकी सारी रचनाओं में शृंगारिक तत्वों का अर्थात् सम्भोग और विप्रलम्भ की विविध प्रकार की दशाओं तथा स्वरूपों का संश्लिष्ट चित्रण हुआ है। विरह और मिलन का पुष्ट और सशक्त चित्रण होते हुये भी उन्होंने मिलन पर अधिक आशा का संचार किया है। उनकी रचनाओं में भावनागत दुर्बलता, वासना की गंध और अश्लीलता का संस्पर्श नहीं है।

राय चौधुरी जी की 'तुमि' शृंगार-प्रधान रहस्यवादी काव्य रचना है। इस काव्य में वे स्वयं नायक हैं और 'तुम' या 'राणी' नायिका है। कवि का मन और प्राण विरह-व्यथा से अत्यन्त व्याकुल हो उठा है और वे संसार की सारी चीज़ों के भीतर 'तुम' रूपी भगवान् के स्वरूप का दर्शन करते हैं :--

येतिया यिफाले चाओं,
प्रेमदेहे देखा पाओं,
असीमर विराट अंचल
रंजित प्रेमत । [१२७]

---

१२७. राय चौधुरी - तुमि, पृ० ४२।

हिन्दी रूपान्तर

जब जहां मैं देखता हूं ।
प्रेम ही प्रेम परिलक्षित होता है ।
असीम के विराट् अंचल
सदा प्रेम में रंजित होता है ।

किन्तु कवि ने मिलन का आवेशपूर्ण सर्वव्यापी स्वर अभी तक सुना नहीं और वे आवेगपूर्ण स्वर में गाते हैं :-

मिलन आवेग सुर,
बियापि श्मान दूर
नुशुनिलौं, करुणाबिन्दुर
नापालौं आश्रय ? १२८

हिन्दी रूपान्तर

सुना नहीं सर्वव्यापी आवेगपूर्ण मिलनकासुर
जो रहता है करुणापूर्ण बिन्दु का आश्रय इतनी दूर ।

राय चौधुरी जी के 'तुमि' काव्य में शृंगार का स्थूल, पुष्ट और स्वच्छन्द चित्रण प्रस्तुत किया गया है, किन्तु दार्शनिक, देश, प्रेमी कवि राय चौधुरी का शृंगार सर्वत्र संयमित और तटस्थ है । उनके भौतिकतापूर्ण शृंगार चित्रण में यत्र-तत्र ऐन्द्रियता का आभास प्राप्त होने पर भी सर्वत्र अस्खलित औदात्य से अनुरंजित निर्वैयक्तिकता परिलक्षित होती है । उनके 'तुमि' काव्य का प्रथमांश का भौतिक शृंगार रूप को तथा प्रतीकों के माध्यम से अलौकिक और अभौतिक बन जाता है तो अन्तिमांश का शृंगार चित्रण भक्ति की प्रधानता और तटस्थ

---

१२८राय चौधुरी- तुमि, पृ० ४२

भावात्मक चित्रण के कारण आध्यात्मिक और अलौकिक बन जाता है। उनके अनासक्त और अस्खलित व्यक्तित्व के कारण उनकी शृंगारिक रचनाओं में उच्चतर भाव-संवेदन और अपार्थिव भावना का योग स्पष्टत: परिलक्षित होता है। विशुद्ध मानस-भूमि पर पहुँचे हुये राष्ट्र-प्रेमी कवि के शृंगारिक चित्रण ऐन्द्रियता से बहुत दूर रहते हैं। वे एक विशिष्ट दिव्यता लिये हुये हैं। उनके द्वारा कवि की भक्ति और रहस्यात्मक अनुभूतियों की अभिव्यंजना हुई है और उनमें दार्शनिक तटस्थता और सात्विकता की ज्योति है।

६. प्रकृति चित्रण की रचनायें :-

राय चौधुरी जी की अनेक रचनाओं में प्रकृति और उनका रागात्मक संबन्ध प्रतिफलित होता है। प्रकृति को स्वच्छन्द -सजीव और सचेष्ट देखने वाले राय चौधुरी जी ने उसके नाना रूपों का चित्रण किया है। उनकी रचनाओं में प्रकृति की पौराणिकता के रूपों के अतिरिक्त और स्वच्छन्द रूप मिलता है। उनमें प्रकृति अलंकार-सामग्री के रूप में आयी है। राय चौधुरी जी ने देश-प्रेम, रहस्यवाद और अपनी मानसिक स्थिति को व्याप्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लिया है किन्तु उनकी प्रकृति आत्मा और परमात्मा के बीच रहनेवाली, पौराणिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों की " माया " की प्रतीक नहीं है। उन्होंने प्रकृति चेतना का अनुभव किया, अलौकिक और अदृश्य ब्रह्म सत्ता के दर्शन किये और उसी की शक्ति से अनुप्राणित किया। अतः राय चौधुरी को सारी प्रकृति ब्रह्म ज्योति में आलोकित दिखाई पड़ती है। उनके समस्त प्रकृति चित्रणों में दो प्रकार के चित्रण प्रमुख हैं - प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण और अलौकिक सत्ता का अप्रस्तुत विधान। वस्तुत: राय चौधुरी जी ने व्यक्तिगत जीवन के समस्त संघर्षों की विभीषिकाओं और अपने मनके रहस्यात्मक मनोभावों को प्रकट करने के लिये प्रकृति की अशेष सौन्दर्य-राशि को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। उनकी प्रमुख कृतियों - "तुमि", "अनुभूति" "बेदनार" उल्का", - में विश्व, सूर्य, वसन्त, आग्नेयगिरि, सागर, गुलाब, चन्द्रमा, बिजली, बादल, ग्रह, उपग्रह नक्षत्र आदि प्राकृतिक शक्तियों का कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

राय चौधुरी जी ने प्रकृति-चित्रण में जीवात्मा और परमात्मा के बीच में प्रकृति-विपर्यय की अवस्थिति के कारण भी मनुष्य के पुरुषत्व और प्रकृति की संहति विद्यमान है। उन्होंने प्रकृति के विचित्रमय सौन्दर्य में परम-तत्व के सौन्दर्य की प्रतिछवि देखी है। उनकी रचनाओं में प्रकृति की विचित्र-सौन्दर्यता असीम में मिल गयी है। विश्व की सारी प्रकृति के उदार सौन्दर्य से प्रभावित होकर कहते हैं :-

तुमि शारदीय चन्द्रमार
बह्‌ अधा रुपाली जोनाह,
तुमि गाभरु फुलनिखनि
सुगंधेरे आंचल भराइ।
तुमि बिजुलीर हांहिखिनि
मुमुकीया लाइ बिलाइछ
तुमि आकाशर रामधनु
जुइ ज्वालि बिरही मनत।[१२६]

हिन्दी रुपान्तर

तुम निर्मल शरत् काल के चन्द्रमा की
स्निग्ध, शीतल, विस्तृत शुभ चांदनी हो।
तुम यौवनपूर्ण फुलवारी के आंचल को सुगंध से परिपूर्ण करती हो।
तुम बिजुली की हंसी और प्रमोद की झांकी हो।
तुम आकाश का इन्द्रधनुष हो
विरही हृदय में आग जलाने वाले हो।

---

१२६. राय चौधुरी-तुमि, पृ० १६

राय चौधुरी परम आनन्द प्रकृति-जगत् में खोज निकालते हैं। मनुष्य समाज का सौन्दर्य मिलने के पश्चात्-जगत् के विविध वस्तु और दृश्यों के भीतर परम पुरुष का सौन्दर्य कवि के सम्मुख प्रस्फुटित होता है। प्रकृति-जगत् विश्व-ब्रह्माण्डका अविच्छेद्य अंग है और विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अणु-परमाणु में चिर सुन्दर का रूप विद्यमान है। प्रकृति जगत भी आनन्द में विभोर हो उठा है और उसके साथ-साथ राय चौधुरी भी आनन्द में पाट हो उठते हैं और उन्हें परम पुरुष के साथ मिलन और पूर्वजन्म के महा-वसन्त की कथा की याद आती है।

७. भक्तिमूलक रचनायें --

राय चौधुरी जी साहित्यिक जीवन के आरंभ से ही भक्तिरस पूर्ण गीत और कविता लिखतेरहे हैं। उनके कुछ भक्ति-गीतों और कविताओं में जीवन के संघर्षों से परित्राण और विजय पाने के लिए परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

उनकी भक्तिपरक रचनाओं में उनके प्रगाढ़ देश प्रेम के फल-स्वरूप भारत-माता की मुक्ति और भारतवासियों की उन्नति स्पष्ट रूप में प्रस्फुटित हुई है। इस श्रेणी के भारतमाता के प्रति उनके भक्ति-गीत बन्दों कि छन्देरे प्रथम और सर्वप्रधान है। इसकेअतिरिक्त, 'अनुभूति', 'बन्दो कि छन्देरे' और 'वीणा' में पन्द्रह भक्ति मूलक गीत और कवितायें हैं। इन सभी गीतों और कविताओं से प्रतिध्वनित होने वाला तथ्य यही है कि राय चौधुरी जी अपनी आत्मा की अटल गहराइयों से एक महान् भक्त थे और उनकी भक्ति में ज्ञान और अनाशक्ति का संगम है। राय चौधुरी जी का भक्त मत आध्यात्मिक स्तर तक उठा हुआ रहता है, किन्तु इस आध्यात्मिकता में भौतिक आकांक्षाओं के स्थान में उदात्तता दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में उनकी भक्ति में देश-प्रेम का मुख्य स्थान है। उनकी भक्ति आध्यात्मिक उन्नयन का पर्याय है। उसमें साम्प्रदायिक उद्वेगों का अभाव, ऊर्ध्वोन्मुखी भक्ति का उन्मेष, सगुण-निर्गुण-समन्वय-कारिणी आलोक दृष्टि का प्रसार और परमात्मा अन्वेषण करने वाली

आकुल भावुक अनुभूति है जो आध्यात्मिक सत्यानुभूति का रूपान्तर है ।

राय चौधुरी जी के भक्ति मूलक गीतों की प्रमुख विशेषतायें हैं - उन्होंने भगवान से विलुप्त होने की अभिलाषा कभी नहीं की, केवल भगवान से सम-मर्यादा प्रतिष्ठा करने की प्रबल इच्छा प्रकट की है । वे उनके पास जितना है सभी को भगवान् के नाम पर न्योछावर कर देने के लिए तैयार हैं किन्तु इतना करने से ही भगवान् ने अहंकार के मारे कवि को दर्शन दिया नहीं । इस लिये हमारे कवि भगवान् के विरुद्ध विद्रोह घोषणा करते हैं :--

तोमार लगत आजि मइ
मद्दारण कारिकों घोषणा,
आछे यदि शकति तोमार ,
मिलनर लै उन्मादना, आहा आगुवाइ ।[130]

हिन्दी रूपान्तर

तुम्हारे विरुद्ध आज मैंने
महारण कर दिया घोषणा ।
यदि तुम्हें शक्ति है
मिलन से उन्मत्त होकर आ जाना ।

किन्तु कवि का यह विद्रोह प्रेमास्पद के द्वारा प्रेमास्पद के प्रति दिखाने वाला क्षणस्थाई और कृत्रिम अभिमान के समान है । रायचौधुरी के भक्ति मार्ग में वैष्णवी प्रपत्ति का विशेष स्थान है । उनकी भक्ति में आत्मा की प्रपत्तिपरकता का सुपुष्ट परिचय प्राप्त होता है । ईश्वरत्व की अटूट आस्था में अचल राय

---

१३०. राय चौधुरी- अनुभूति, आत्मोन्मेष, पृ० १२

-चौधुरी का अन्तर उनकी सभी भक्ति परक रचनाओं में मुखरित है ।

८. दार्शनिक, रहस्यवादी एवं छायावादी रचनायें -

राय चौधुरी जी की चिन्ताधारा अद्वैती थी । गीता का कर्म ज्ञान और उपनिषद् का ब्रह्मज्ञान उनका जीवन-दर्शन था । उन्होंने स्वयं प्रकाश चिन्मय परम ब्रह्म का ही अस्तित्व विश्व की समस्त वस्तुओं में पाया । अनेकता में एकता की स्वीकृति करने वाले राय चौधुरी जी ने माया का खण्डन किया है, जिसके कारण आत्मा-ब्रह्म-विमुख हो जाती है । राय चौधुरी जी की बौद्धिकदार्शनिकता जो अद्वैतवादी सिद्धान्त पर आधारित है, उनकी विश्व-व्याप्त एक सर्वात्म-सत्ता की रहस्यात्मक अनुभूति, व्यापक मानवतावादी, विचारधारा और व्यक्तिगत सुख-दु:ख के समष्टि ,सुख-दु:ख में विलीन होने की प्रवृत्ति का आधार है । राय चौधुरी जी का अद्वैतवाद लोक-बाह्य नहीं है, उनकी राष्ट्रीय चेतना आध्यात्मपरक समाजवादिता की प्रेरणा पर प्रतिष्ठित है । राय चौधुरी जी जीवन के प्रत्येक स्पन्दन में पराशक्ति की सूक्ष्म गतिका अनुभव करते हैं और आत्मा-परमात्मा के अभेद ज्ञान के कारण विश्व की विविधता में एकता का अनुभव कर अनेक कविताओं में `सोऽहं` तत्व का प्रतिपादन करते हैं । वे न केवल पशुओं, पक्षियों और वृक्षों में वरन् विश्व के प्रत्येक - परमाणु में भी परमब्रह्म के अस्तित्व का अनुभव करते हैं ।

राय चौधुरी जी की अद्वैतवादी बौद्धिकदार्शनिकता के विचारों से सम्बन्धित कृतियां `तुमि` , `अनुभूति` की `सृष्टितत्व`, `विश्व-दोलन` , `तन्द्रा-भंग` , रहस्यधार, `तत्वभेद` , मोर आनन्दमय अभिषेक, `वेदनार उल्का` की कर्म-गीतिका`, `कामेइ जीवन`, `आत्मबोध - तत्व` आदि और `बीणा` की कुछ कवितायें हैं ।

राय चौधुरी जी बौद्धिक दार्शनिकता रहस्योन्मुख अनुभूति में भी परिणत हुई हैं । उनकी कुछ कृतियों में दार्शनिक अद्वैतवाद आत्मा और परमात्मा के भावात्मक अद्वैतवाद की धारा बनकर नि:सृत हुआ है और जहां वह धारा रहस्य-

वाद की संज्ञा ग्रहण करती है। अनन्त और अशरीरी चेतना के प्रति शान्त और सशरीरी चेतना की सूक्ष्म और अलौकिक प्रणयानुभूति अर्थात् रहस्यवादी भावना का संप्रेषण भाषा के प्रतीकात्मक रूपाकारों में राय चौधुरी की कुछ रचनाओं में हुआ है अर्थात् अद्वैत वादी दार्शनिक का कवि-हृदय रहस्यवादी की अनुभूति परक शैली में प्रस्फुटित हुआ है। विश्व-प्रकृति के प्रत्येक अणु-परमाणु में प्रत्येक स्पन्दन में किसी अज्ञात रहस्यसत्ता का आभास पाकर प्रस्फुटित होने वाले भावुक अद्वैती कवि ने चिन्तन के विषय को अनुभूति और प्रेम साधना का विषय बना कर प्रस्तुत किया है। चिन्तन प्रधान रहस्यवाद के तीन महत्वपूर्ण आयामों, जिज्ञासा, विरह और मिलन की कलात्मक और रागात्मक अभिव्यंजना उनकी कुछ रचनाओं में द्रष्टव्य है :--

सहाय-स्पन्दन हीन क्षुद्र ए जीवन,
समुखत देखि किवा अजाना रतन,
सुख-शान्ति काति करि
नाना बाट धरि धरि,
मिछाते भरमि मरे अनन्त जगत्,
पूर्ण रूपे आछे किन्तु हियार माजत।[१३१]

हिन्दी रूपान्तर

सहाय-स्पन्दन हीन मेरा यह है क्षुद्र-जीवन
सम्मुख मैं देखा मैंने किसी अज्ञात रतन।
सुख-शान्ति न्योछावर कर
विविध पथ पर चलकर
व्यर्थ ही अनन्त-जगत् भ्रमण करता है
किन्तु पूर्णरूप से हृदय के मध्य में है।

---

१३१. राय चौधुरी- तुमि, पृ० ३३

राय चौधुरी जी की रचनाओं में चिन्तन प्रधान, भाव प्रधान और प्रेम प्रधान ये तीनों रहस्यवाद के स्तरों का समन्वय संघटित हुआ है। उनका काव्य 'तुमि' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इस काव्य में प्रेम प्रधान रहस्यवाद के - जिज्ञासा, विरह और मिलन के तीनों आयामों के दर्शन कवि सांसारिक अतीन्द्रियवादी प्रेम-मार्ग में करते हैं। आत्मा और 'तुमि' रूपी परम ब्रह्म का रागात्मक तादात्म्य संघटित कराना ही 'तुमि' काव्य का प्रतिपाद्य विषय है। प्रतीक विधान द्वारा आध्यात्मिक जिज्ञासा जनित विरहानुभूति और आत्मा और परमात्मा के अभेद सम्बन्ध का विवेचन सांकेतिक और कलात्मक ढंग से 'तुमि' काव्य में किया गया है। राय चौधुरी जी के भाव-प्रधान रहस्यवाद की पृष्ठभूमि उनका अद्वैतवादी दर्शन ही है।

६. सांस्कृतिक रचनायें -

राय चौधुरी जी की सांस्कृतिक विचार धारा असमीया संस्कृति के धरातल पर आधारित एवं सर्व भारतीय भित्ति पर सुसंगठित है। पराधीन भारत में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारत की प्राचीन समन्वयात्मक संस्कृति विलुप्त-प्राय हो रही थी। भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता का ह्रास होने लगा था। संगठन और निर्माण की शक्तियां नष्ट हो रही थीं। विविध प्रकार की वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक और जाति वर्णगत विषमतायें सारे देश में व्याप्त होकर देश को कमजोर बना रही थीं। इस विषम राष्ट्रीय समस्या के वातावरण में भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्य में राय चौधुरी जी ने अपना सक्रिय योगदान दिया था। राय चौधुरी जी ने प्राचीनतम असमीया तथा भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को लेकर उनको नवीन और युगानुकूल बनाने की कोशिश की थी। मूलतः राय चौधुरी जी के सांस्कृतिक आदर्श व्यक्ति से विश्व तक को अपने में समेटे हुये हैं।

उनकी सांस्कृतिक रचनाओं की विशेषता यह है कि उनमें समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए अध्यात्मपरक मानवतावाद के तत्वों से अनुप्राणित

सार्वभौमिक मानव संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने का सन्देश है । राय चौधुरी जी की सांस्कृतिक कृतियां उनके देश-प्रेम और मानवतावादी विचार-धाराओं की परस्पर परिपूरक हैं । उनकी खल दैत्यक करा अचल' 'शुनिबि भाइ ।' देशर कथा कओं ,'मइ आछों मइ आछों,'गीत','रङगाली बिहुर हाक' , बिहु अमादन, रङ्गालीक मात जीबन रङ्गौरे' आदि कवितायें सांस्कृतिक रचनाओं की कोटि में आती हैं । राक्षसी शक्तियों के कारण दलित ,मर्दित और क्षत भारतीय संस्कृति को पुनरुज्जीवित करना उनके काव्य का मूल उद्देश्य है । राय चौधुरी जी के काव्य'तुमि' के प्रथम, द्वितीय और तृतीय परिच्छेद में जो वर्णन है उसको अतीन्द्रियवादी तत्वों के साथ सांस्कृतिक रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है । क्यों कि वह भारतीय संस्कृति के आधार पर प्रतिपालित है । निम्नलिखित कविताओं में संगीत, कला और संस्कृति का सुन्दर निदर्शन मिलता है :--

संगीत-सुधा वृष्टि,
उथलि उठक सुरर सिंधु सुरैरे लहरि लहरि तुलि
भागि-छिगि थका ताल- मान बोर फुलाम लयत उठक फुलि ।[१३२]

हिन्दी रूपान्तर --

संगीत की सुधा की वृष्टि
उत्फुल्लित हो सुर-सिंधु के सुर की लहरों से
छिन्न-भिन्न ताल-मान सब एक लय में होकर परिपूर्ण ।

राय चौधुरी जी प्रसिद्ध गीतकार और सुर-शिल्पी थे । उन्होंने गीत परम्परा में वैष्णव युग के बरगीत का सुर और लय, आधुनिक असमीया के बिहु

---

१३२. राय चौधुरी-अनुभूति, सुरी दैत्य,पृ० १ ।

गीत और संस्कृति का समन्वय करने का प्रयास किया था। उनकी बिहु-गीत में असमीया संस्कृति की परम्परा को नव-जीवन और पुनरुत्थान प्रदान करने की उग्र कामना विद्यमान है :-

कर्मोद्दमी, आलस्यहारी महा जीवनर
महाशीर्वादर निर्माल्लि,
एटात महामरण, आनटीत महा-जीवन ,[१३३]

हिन्दी रूपान्तर

महाजीवन के कर्मोद्दमी आलस्यहारी
महा आशीर्वाद की है कान्ति
एक में है महाप्राण, दूसरे में है महाजीवन की प्राप्ति

रायचौधुरी जी अपनी सांस्कृतिक रचनाओं के अन्त में समग्र स्वार्थ त्याग कर समस्त भारतीय जातीय ऐक्य संस्थापन और संवर्धन करने की उच्च ध्वनि से भारत की जनता को प्रोत्साहित करते हैं :-

आजि सुनील-सेउज एटा हइ यौवा
नतुन युगर रङ्गालि बिहुर नतुन स्वस्सुर,
नीच स्वार्थ परि उदि हौवा
जातीय जीवन ऐक्य तानेरे कराहि पूर ।[१३४]

हिन्दी रूपान्तर

आज हमारे रंगाली बिहु का दिन है ।
अनन्त आकाश का सुनील रंग

---

१३३. राय चौधुरी-बेदनार उल्का, रङ्गालि बिहुर डाक, पृ० ६७
१३४. राय चौधुरी-आहा-मोर बकुले, पृ० ७३

नवीन युग के नवीन सुर-मिलन का पर्व है ।
नीच-स्वार्थ परता के पाश से रिक्त होने वाले
जातीय जीवन के ऐक्यतान से पूर्ण है ।

१०. गीतात्मक रचनाएं --

देश-प्रेमी राय चौधुरी जी गीतकार, संगीतज्ञ और सुर-शिल्पी थे । आधुनिक असमीया कवियों में सर्वप्रथम राय चौधुरी जी की कृतियों में ही संगीत के ताल-मान-लय से युक्त कविताएं मिलती हैं जिनको गीतात्मक रचनाएं कहा जा सकता है । उनकी गीतात्मक रचनाओं पर असमीया वैष्णव युग के बरगीत का प्रभाव परिलक्षित होता है । इसका मूल कारण यह है कि उनकी माता जी ने उनको बाल्यकाल में अच्छी तरह बरगीत सिखाया था । परिणामस्वरूप 'जयद्रथ बध' नामक गीति-नाट्य का जन्म हुआ :--

महामानवीय मिलन बेदीत,
बरगीत गा-बरगीत गा ।[१३५]

हिन्दी रूपान्तर

महामानवता की मिलन-वेदी पर
बरगीत गाओ-बरगीत गाओ ।

राय चौधुरी जी के समस्त गीतों के अनेक भेदोपभेद किये जा सकते हैं ।

(१) राष्ट्रीय गीत - सन् १९०५ ई० की बात है कि बंगाल से देश-प्रेम मूलक संग्राममुखी संगीत का प्रवाह सारे देश में फैल रहा था । बंगाल के 'मुकुन्ददास' नामक एक स्वदेश-प्रेमी और विद्रोहकारी संगीतज्ञ असम आये थे ।

---

१३५. राय चौधुरी- बन्दो कि छन्देरे, ओम तत्सत्, पृ० ४

राय चौधुरी जी पर उस बंगाली सज्जन का और 'प्रभावती' नामक एक मणिपुर की बालिका के नृत्य-गीत का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'मुकुन्द दास' के देश-प्रेम संबंधित गीतों और नाटकों से प्रभावित होकर राय चौधुरी जी ने 'बन्दिनी भारत माता' (१९०९) और कल्याणमयी (१९१०) गीत-नाट्य की रचना की थी किन्तु दोनों को अंग्रेज सरकार ने विद्रोहात्मक मानकर जब्त कर लिया था। दोनों नाटकों से दो गीत नीचे उद्धृत किये जाते हैं :--

यार यत आछे दा-कुठार-याठी
हाते हाते तुलि ल,
नकरिबि ~~~ भय, नाइ संशय,
बुकत साहस ल'। [१३६]

हिन्दी रूपान्तर

सब अस्त्र-शस्त्र हाथ में लेकर आओ।
डरो मत, कोई भय नहीं है।
मन की हिम्मत से आगे बढ़ो।

राय चौधुरी जी के 'बलभाइ आगुवाइ' गीत को भारतीय जातीय संगीत के रूप में चुना गया था किन्तु असमीया और रायचौधुरी जी का दुर्भाग्य है कि अन्त में 'बलाभाइ आगुवाइ' स्वाधीन भारत का जातीय संगीत नहीं बन सका। [१३७] वास्तव में यह गीत उग्र जातीयतावादी चिन्ताधारा से परिपूर्ण और भारत के सौन्दर्य के वर्णन से समृद्ध गीत है --

---

१३६. राय चौधुरी-बन्दिनी भारत माता का गीत- बन्दो कि छन्देरे, पृ० ६

बलाभाइ । आगुवाइ-
अति उच्च, अति उन्नत, अति सुन्दर ठाइ
..................... ...........
जीवन-मरण पण करि पौवा पव धरि धरि भाइ ।
बला भाइ आगुवाइ ।[१३०]

हिन्दी रूपान्तर

आगे बढ़ो भाई, आगे बढ़ो,
अत्यंत उच्च, अत्यंत उन्नत, है अत्यन्त सुन्दर स्थान ।
जीना और मरना ही जीवन का होगा मुख्य प्रण ।

(२) प्रेम सम्बन्धी गीत — राय चौधुरी जी के प्रेम सम्बन्धी गीतों का मूलभाव पारलौकिक तथा देश-प्रेम है । उनके प्रेम सम्बन्धी गीत और कविता की विचारधारा रहस्यवादी दार्शनिक धरातल पर प्रतिष्ठित हैं । उनके इन गीतों में विरह और मिलन दोनों का चित्र परिलक्षित होता है । राय चौधुरी जी ने विश्व-दोलन' 'सुरी-दैत्य' आदि गीतों में प्रेम और विरह का चित्रण प्रतीकात्मक रूप में किया है । साथ ही मानव-जीवन के इन्द्रियासक्त प्रेम को आह्लाद की निष्कामता और आत्म-मुक्ति की जिज्ञासा के साथ चित्रित किया गया है । उनके कुछ गीत आह्लाद, सुख-दु:ख ,आत्म-तोष,निष्कामता और देश तथा आत्मा की मुक्ति के अतिरिक्त दु:ख व कष्ट से परिपूर्ण हैं —

बजाइ बिजय डंका
आबाहन राणीक जनाम,
बिरह वेदना गंगा
अधों-उर्ध्व बुराइ बोवाम ,[१३१]

---

१३० . राय चौधुरी-बन्दो कि छन्देरे, बला भाइ आगुवाइ, पृ० १३
१३१ . आरति हाजरिका-राय चौधुरीर जीवन संग्राम, पृ० ७८६

हिन्दी रूपान्तर

विजय की ध्वनि से
निमंत्रण करूंगा रानी को,
विरह की गंगा में
प्रवाहित करूंगा वेदना को ।

राय चौधुरी जी प्रेम-गीतों में प्रेम की पात्री को 'रानी' कह कर पुकारते हैं और इसका कारण है -उनके जीवन का व्यर्थ प्रणय । उनकी रचनाओं में कभी वे अपनी प्रेमिका के पास झुके नहीं । कवि विरह-जर्जर अवस्था में भगवान् के प्रति सरल और कातर प्रार्थना भी करते हैं ।

(३) आत्म-साक्षात्कार विषयक गीत - इस प्रकार के गीतों में व्यक्तिगत और सामाजिक तीव्र संघात की अनुभूतियों की उदास और अवसन्न अवस्थाओं का प्रकाशन हुआ है । इन गीतों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है - देश की पराधीनता के विरुद्ध संग्राम विषयक तथा देश-प्रेम, दैवी एवं सांसारिक विपत्ति विषयक । उनका उज्ज्वल,पवित्र और मानवतावादी स्वरूप 'जीबनर कौचोवा गीत गाओ' नामक गीत में उपलब्ध है :--

सकलोत कै जी बन सत्य
ताक बादे एको सत्य नाइ ।[१४०]

हिन्दी रूपान्तर

इन सबसे जीवन है सत्य ।
उससे अधिक कुछ सत्य नहीं ।

---

१४०. राय चौधुरी-वेदनार उल्का, पृ० ५१

राय चौधुरी जी की कृतियों में इस कोटि के चौदह गीत उपलब्ध हैं और सभी गीतों में अपनी विशिष्टता, तात्पर्य और मौलिकता विद्यमान घ है। उनके आत्म-साक्षात्कार के गीतों में व्यक्तिगत जीवन की अभिव्यक्ति के माध्यम से भारतीय सामाजिक पराजय, अपमान और कारुणिक आत्म-जर्जरता का चित्र मिलता है। राय चौधुरी के आत्म-साक्षात्कार के गीतों की अन्तिम परिणति देश और समाज को उद्दीप्त करने वाली उग्र आत्मध्वनि है।

(४) मृत्युगीत - मृत्यु सांसारिक-जीवन की अन्तिम सीमा है और अंधकारमय दु:ख-सुख, पाप-पुण्य आदि कर्म से छुटकारा दिलानेवाली अवस्था है। राय चौधुरी जी प्रकृत वीर और मृत्युंजय पुरुष थे। मृत्यु से वे कभी डरते नहीं थे। वे तो मृत्यु के पश्चात् भी देश सेवा करने की अभिलाषा करते थे। इसलिए राय चौधुरी की रचनाओं में प्रत्यक्ष रूप में मृत्यु का वर्णन नहीं है। बारह-तेरह कविताओं में मृत्यु का साधारण वर्णन मिलता है। वे गाते हैं :-

ज्वलिछे ज्वलिछे बिमान लँघि
शत्रु-बिनाशी मृत्युंजयी
महा-संग्रामी यज्ञर हुताशन ,[१४१]

हिन्दी रूपान्तर

जल रहा है आकाश का कर अतिक्रमण ,
बहु-विनाशी, मृत्युंजयी, महा-संग्रामी यज्ञ का हुताशन।

राय चौधुरी जी ने याय् याब प्राण' और 'मातिछे मृत्यु - भारीष मातेरे' नामक गीत में अपने निर्भीक मन की गर्वपूर्ण स्थिति का स्पष्ट क वर्णन करने में पूर्ण सफल हुए हैं। उनके काव्य में मृत्यु-भय, नैराश्य, मृत्यु के मधुर

---

१४१. राय चौधुरी- बेदनार उल्का, मृत्युंजयी महासंग्रामी यज्ञ०, पृ० ४८

स्वर के आह्वान भी अवसान की कालिमा नहीं है । उसका संगीत ~~नैरन्तर्य~~ राय चौधुरी जी अलग ढंग से पहचान लेते हैं :-

मातिछे मातिछे मिलन-संखे
मृत्यु भरौवा मातेरे
चला आगुवाइ शत्रु दंभ
चूर्णित करा दायेरे ।[१४२]

<u>हिन्दी रूपान्तर</u>

पुकार रहा है
मिलन-शंख के मृत्युपूर्ण स्वर से ,
आगे बढ़ो शत्रु के गर्व को
विनष्ट करने वाली गति से ।

(५) ऋतु गीत-राय चौधुरी जी की रचनाओं में वसन्त, शरद् और वर्षा ऋतुओं का सुन्दर वर्णन है किन्तु प्रकृतिगत विस्तृत वर्णन नहीं है । उनका सर्वाधिक आकर्षण वसन्त ऋतु के प्रति था । 'तुमि' में वसन्त ऋतु का सात बार, शरद् ऋतु का तीन बार और वर्षा का एक बार उल्लेख मिलता है । इस काव्य में उनके मन को निरन्तर पीड़ित करने वाला अवसाद, खिन्नता, निराशा, गहरी उदासीनता, मिलन-विरह और वसन्त के निर्बाध-उल्लास में तिरोहित हो जाते हैं ।

देखुआइ प्रकृतिर
रस भरा गुपुत अन्तर ,

---

१४२, राय चौधुरी-मातिछे मृत्यु-भरौवा मातेरे, पृ० ७

सोवराइ दिया क्यि
स्मृति सेइ महा बसन्तर ।[१४३]

हिन्दी रूपान्तर

प्रकृति के रस पूर्ण गुप्त अन्तर का आकर्षण
उस महा वसन्त की स्मृति का स्मरण
क्यों मुझे देती हो ?

राय चौधुरी जी के वर्षा और ग्रीष्म वर्णन में समग्र प्रकृति-जगत्, नदी, पर्वत,सागर,वर्षा के बारिस से प्लावित हो जाता है । उनमें ग्रीष्म के प्रचण्ड उत्ताप का वर्णन है और उसी गरम में बादल आता है और जोर से पानी बरषने लगता है और सारी पृथ्वी ठण्डी हो जाती है । राय चौधुरी के ग्रीष्म और वर्षा का वर्णन प्रतीकात्मक है ।

उनका शरद् ऋतु-वर्णन वसन्त ऋतु के पूरक रूप का है । 'तुमि' काव्य के तृतीय परिच्छेद में नारी-शरीर के अन्दर ऋतु को मूर्त्त करने के प्रयास का चित्रण है । राय चौधुरी जी ने यहां स्त्री के अनुपम,पवित्र ,निच्छल और शांति-निर्मल सौन्दर्य की सर्जना की है :-

तुमि शारदीय चन्द्रमार
बह अहा रूपाली जोनाइ,
तुमि गाभरु फुलनिखनि
सुगोंधेरे आंचल भराइ ।[१४४]

---

१४३. राय चौधुरी-तुमि, पृ० २३
१४४. वही, पृ० १६ ।

हिन्दी रूपान्तर

तुम निर्मल शरत् काल के चन्द्रमा की
स्निग्ध-शीतल-विस्तृत चाँदनी हो ।
तुम यौवन पूर्ण फुलवारी के सुगन्ध से आँचल को भराती हो ।

(६) प्रपत्ति भाव के गीत - राय चौधुरी के विद्रोही जीवन का प्रारम्भ उनकी देश-भक्ति, प्रार्थना, शरणागति अथवा प्रपत्ति की भावनाओं से हुआ था । प्रार्थना की उदात्त ध्वनि उनके 'बन्दो कि छन्देरे' नामक गीत में सर्वप्रथम दिखाई देता है । उनके कविता-संग्रह 'बीणा' , बन्दौ कि छन्देरे और 'बेदनार उल्का' में प्रपत्ति भाव के कई गीत हैं । राय चौधुरी जी के प्रपत्ति विषयक गीतों में माधव देव के काव्य 'नाम घोषा' के आत्म निवेदन का भाव विद्यमान है ।

नाथ कि आछे कि दिम तयु बेच चेनेहर
किहेरे जनाम एइ प्रेम हृदयर
तोमार हृदय तुमि लवा केनेके ?[१४५]

हिन्दी रूपान्तर

हे नाथ,

मेरे पास तुम्हें देने को क्या है ?
कैसे बताऊँ अपने अन्तर का प्रेम
अपना अन्तर तुम कैसे समझोगे ।

उनकी प्रार्थनापरक कृतियों में कहीं-कहीं नैसर्गिक सौन्दर्य चेतना के बीच भक्ति रस का पुट मिलता है :-

---

१४५, राय चौधुरी-बीणा, पृ० २७

निलाम निशार माजे कि गहीन गान
उरि याब खोजे मोर आकुल उदार प्राण ।[१४६]

हिन्दी रूपान्तर

निस्तब्ध निशा का है कैसा गंभीर गान,
उड़ जाना चाहता है मेरा आकुल उदार प्राण ।

राय चौधुरी जी के गीतों के विषय में डा० हीरेण गोहाइ का कथन है, ऐसे यथार्थ शिल्प की सृष्टि के पश्चात् हमें अम्बिकागिरि राय चौधुरी के गीतों में एक नवीन स्वर सुनने को मिलता है जो भग्न स्वर वक्ता का सुर है, प्राक्तन व्यंजना और सूक्ष्म मूर्छना के स्थान पर जठरता, वागाडम्बरता और अन्यमनस्कता की प्रचण्ड ध्वनि है ।[१४७] डा० हीरेण गोहाय ने राय चौधुरी जी के गीतों पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतों का प्रभाव ही स्वीकार किया है, किन्तु श्री विश्वलोक मित्र ने राय चौधुरी पर रवीन्द्र का प्रभाव अस्वीकार किया है ।[१४८] डा० महेश्वर नेओग के अनुसार भी राय चौधुरी जी के गीत रवीन्द्र के प्रभाव से मुक्त हैं ।[१४९] राय चौधुरी जी के समग्र गीतों के छन्द और रचना प्रणाली की ध्वनि विशिष्टत: उनकी अपनी लेखनी का सृजन है ।

राय चौधुरी जी के गीतों में भगवान् के सौन्दर्यमय, मंगलमय, प्रेममय रूप के प्रत्यक्षीकरण, भगवत् करुणा लाभ की मानसिक व्याकुलता और उपयुक्त गंभीरता का समावेश हुआ है ।

---

१४६. राय चौधुरी-बीणा, पृ० ३६ ।
१४७. अम्बिकागिरि आरु मानवायतान, असमबाणी-सन् १९६२ , ८ जनवरी
१४८. राय चौधुरी आरु रवीन्द्रनाथ:काव्य धारात एभुमुकिल-असमबाणी, सन् १९६२ , १७ आगस्त
१४९. असम साहित्य सभा-अम्बिकागिरि राय चौधुरी स्मृतिग्रन्थ, पृ० १५८

(११) दीर्घ कथात्मक रचनायें — राय चौधुरी जी की दीर्घ कवितायें 'कर्म गीतिका', 'स्थापन कर -स्थापनकर' ;'मह आह्वी-मह आह्वी', 'मह बिप्लवी-मह ताण्डवी, या-या सकलो गुर्व या , 'श्रीमन्तशंकर प्रशस्ति' और 'वेदना विजय' हैं । निराला जी की दीर्घ कविताओं में पौराणिक, ऐतिहासिक और लोक-आख्यान विद्यमान हैं किन्तु राय चौधुरी जी की दीर्घ कविताओं में ऐसा कोई पौराणिक, ऐतिहासिक और लोक-आख्यान विद्यमान नहीं है । 'बेदना बिजय' राय चौधुरी जी की पुत्री 'अनुपमा' की अकाल मृत्यु पर रचित शोक-गीत है । श्रीमन्त शंकर प्रशस्ति' असमीया साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि, धर्मगुरु और समाज संस्कारक श्री शंकरदेव की प्रशंसा मूलक कविता है । 'कर्म गीतिका' गीता के कर्म योग प्रधान जातीयतावादी कविता है । अवशिष्ट कविताओं में उग्र जातीयतावाद और भारत के अतीत गौरव और उच्च संस्कृति का ऐतिहासिक वर्णन विद्यमान है ।

'बेदना-बिजय' में पौराणिक, ऐतिहासिक और लोक-आख्यान विद्यमान होते हुये भी उसमें स्वयं राय चौधुरी जी और उनकी प्रिय पुत्री ''अनुपमा' का सुन्दर विवरण अथवा इतिवृत्त विद्यमान है । 'श्रीमन्तशंकर प्रशस्ति' पौराणिक नहीं है, किन्तु ऐतिहासिक और लोक-आख्यान प्रधान लोक नायक के जीवन का वर्णन है । शेष दीर्घ कवितायें घटना-प्रधान, वर्णन-प्रधान या इतिवृत्त प्रधान हैं । इन कविताओं में राय चौधुरी जी ने जीवन और देश का आत्म-प्रक्षेप करके पूर्ण कलात्मक इतिवृत्त के माध्यम से नये, मौलिक और अननुभूत अर्थ-प्रसंगों का सृजन किया है ।

राय चौधुरी जी की 'कर्म गीतिका'[१५०] शीर्षक कविता में कवि के अन्तर का कर्म-दर्शन स्पष्ट रूप से प्रतिभाषित हुआ है । यह कविता कवि के जीवन के विविध अनुभव और जातीय मनोभाव की प्रतिच्छवि है । राय चौधुरीजी

---

१५०. राय चौधुरी- बेदनार उल्का, पृ० ५

के चिन्तन और जीवन का सिद्धान्त इस कविता में दिखाई पड़ता है :-

यि कामतेइ मानबतार मुक्त - बिकाश शुभ्र इय,
यि श्रमतेइ मरुर बुकत जीबन-रसर प्रबण बय,
यि सेवातेइ मुमूर्षतात प्राण-कल्लोल उच्छलित,
सेइ काम-श्रम-सेइ सेवातेइ इह पर तह उल्लासित,
कामत धर श्रमत धर,
सेवार जीबन महत् कर ।[१५१]

हिन्दी रूपान्तर -

जिस काम से मानवता का विकास मुक्त और उज्ज्वल होता है ।
जिस श्रम से मरु की गोद में जीवन-रस का प्रवण बहता है ।
जिस सेवा से मुमूर्षता का प्राण-कल्लोल तरंगित होता है ।
उस काम से, उस श्रम से, उस सेवा से यह संसार उल्लासित होता है ।
काम करो, श्रम करो,
सेवा का जीवन महत् करो ।

कर्मोद्यम, आत्म-चेतना, मर्यादा, ज्ञान, नीच स्वार्थ और दूसरे के शरणापन्न होने से स्वाधीन जाति की समस्या का अन्त नहीं होगा । जन्म-भूमि की मिट्टी, पानी, वायु, प्रत्येक अणु-परमाणु से हमारा जीवन गठित और परिवर्धित होता है, इसलिये जन्म-भूमि को प्यार करना और उसकी उन्नति करना सभी देशवासियों का प्रधान कर्त्तव्य है । कर्म ही मानव-जीवन का सबका मूल और कर्म के द्वारा ही देश के दु:ख-दारुण्य, उत्पीड़न, आलस्य, दासत्व आदि का विनष्ट करके जन्म भूमि को संसार की संस्कृति की गति में महान् बना कर मान-

---

१५१. राय चौधुरी- कर्मगीतिका, पृ० ७

वता की गौरव वाणी प्रचार करने का प्रमुख पथ है ।

राय चौधुरी जी की जन्म-भूमि, प्राणोत्कर्ष स्थान असम की क्षीण और दुर्बल अवस्था में उनका मानव-हृदय जाग्रत हो उठता है और "स्थापन कर-स्थापन कर"[१५२] शीर्षक कविता में असम को नवीन पथ पर प्रतिष्ठा करने को समग्र देशवासी को उदात्त स्वर में आह्वान करते हैं । इस कविता में राय चौधुरी जी का मातृ-भाषा-प्रेम प्रतिभाषित होता है । कवि मातृ-भाषा की दुरवस्था में अत्यन्त मर्माहत होते हैं और मातृ-भाषा की रक्षा और संवर्धन के लिये समग्र देशवासी को कहते हैं :-

> तोर भावर बाहन, ज्ञानर बाहन,
> धर्मार्थकाम-मोक्ष बाहन ,
> मातृ-भाषार सोनर आसन,
> स्थापन कर-स्थापन कर । [१५३]

हिन्दी रूपान्तर

> तेरे भाव का वाहन, ज्ञान का वाहन,
> धर्मार्थ काम-मोक्ष का वाहन,
> सोने के आसन पर मातृ-भाषा को
> स्थापन करो, स्थापन करो ।

मातृ-भाषा में देश की अतीत गौरव की कहानी, प्रेम-विरह, आशा-निराशा, सुख-दुःख, आवेगानुभूति आदि की कथा लिखी रहती है और भाव आदान-प्रदान का मुख्य माध्यम मातृ-भाषा है, इसलिए मातृ-भाषा की सेवा में जीवन बिताना आबाल-वणिता का काम है ।

---

१५३, राय चौधुरी- स्थापन कर, पृ० १

राय चौधुरी की 'मइ आछौं - मइ आछौं'[१५४] कविता में असम कैसे अतीत से आज तक राजनीतिक और अर्थनीतिक नाना संघात सहन कर अपने प्राकृतिक सम्पद और सौन्दर्य के साथ संसार में विराजमान हैं उसी का वर्णन है। असम का अतीत समुज्ज्वल था और इस असम में ही अनेक वीर-भक्त, देश-प्रेमी कवि साहित्यिक आदि का जन्म हुआ था किन्तु आज उस असम का नाम इतिहास से विलुप्त होने का उपक्रम हुआ है। वर्तमान असम एक अवहेलित, उत्पीड़ित और शोषित स्थान के रूप में भारत के पूर्वांचल में अवस्थित है। देश प्रेमी कवि असम की वर्तमान परिस्थिति पर दु:ख अनुभव करते हैं और असम की दुरवस्था की कथा प्रकट करते हैं। कवि असम के अतीत गौरव और वीरत्व के विषय उदात्तस्वर में कहते हैं :--

> "यि कालत प्राय गोटेइ भारते मोगल-सेवात सपिले प्राण
> कोनोवे पलाले निज देश एरि, लै अखाद्य कोनोवे घ्राण,
> लभि दासत्व-बटा जमिदारी बिजाति पदत नमाले शिर,
> मयेहे लैतिया मुचरि मोगल भारतर नाम राखिलों थिर।[१५५]

हिन्दी रूपान्तर

> जब समग्र भारत ने मुगल की सेवा में अर्पण किया था प्राण,
> कोई भागा था अपना देश छोड़कर, लेकर अखाद्य का घ्राण,
> पुरस्कार के कारण विजातीय जमिन्दारों के दासत्वों में नत किया थाशिर,
> मैं ही केवल मुगल को पराजित कर भारत का नाम किया था स्थिर।

---

१५५. राय चौधुरी- अनुभूति, पृ० ६२।

संस्कारकामी राय चौधुरी जी के विप्लवी मन की ज्वलन्त प्रभा विस्फुरित हुआ है -" मह बिप्लवी-मह ताण्डवी"[१५६] शीर्षक कविता में । समाज की दुर्नीति, शठता, प्रवंचना आदि में कवि का अन्तर विप्लवकारी और संग्राममुखी हो उठता है और उनकी मानसिक स्थिति को इस कविता में प्रकट करते हैं । राय चौधुरी का विद्रोह सर्वमुखी और सर्वत्र विराजमान, क्रियाशील है । कवि पृथ्वी के जल-स्थल आकाश-विश्व के मनोजगत् , सृष्टि की गति मानवता के नारकीय गर्व आदि सभी में विप्लव करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं । किन्तु कवि के विद्रोह की विशेषता है उनके मन में स्वार्थ का स्थान नहीं , देश के स्वार्थ, हिंसा आदि विषमताओं को दूर कर पृथ्वी में ही सीम और असीम का संयोग करना ही उनके विद्रोह का मूल उद्देश्य है ।

तोल तेनेहले, तोल ताण्डब,
बिराट बिपुल महा-बिप्लब-
प्रथमे निजर अहं- सिंधु मन्थनकरि-नारकीय कलुष-क्लेद
ध्वंसि, बिनाथि, तोल जीवनाहत पुण्य लबनु करि अहमिका छेद ।
तार लगे लगे सीम-असीमर संयोजनार साफटो गछकि रुचि ,
निर्मूल कर, सृष्टि कलाक कलुषित करि नरक यि आछे पंचि । [१५७]

हिन्दी रूपान्तर

हे ताण्डव ,
विराट विपुल महा विप्लव मचाओ ।
सर्व प्रथम गर्व-सिंधु को मंथन कर
नारकीय कलुष-क्लेद विध्वंसकर
गर्व को नाश कर, जीवन में पुण्य-नवनीत
उसके साथ सीम-असीम की संयोजना को स्थिर करो,
निर्मूल करो मानवता को कलुषित करने वाले सृष्टि-कला को ।।

---

१५६. राय चौधुरी-अनुभूति, पृ० ६१

१५७. वही, मह बिप्लवी-मह ताण्डवी, पृ० ६४,६५ ।

अद्वैत दर्शी राय चौधुरी जी ने उनकी 'या-या सकलो गुचि या'[१५८] नामक कविता में 'मैं' शैली के द्वारा आत्मा और परमात्मा के अखंडता का तात्विक वर्णन किया है । आदि अन्तहीन, शाश्वत परमात्मा का स्वरूप बताते हुये वे कहते हैं :--

मयै मोर सीमा, अपार असीम,
आदि-अन्तहीन, निबिड़ नीलिम
मयै मोर शाश्वत-बित्त । [१५६]

<u>हिन्दी रूपान्तर</u> -

मैं ही हूँ मेरी सीमा, अपार, असीम,
आदि हीन-अन्तहीन, निविड़ नीलिमा ।
मैं ही मेरा शाश्वत-वित्त हूँ ।

राय चौधुरी की इस कविता में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का दार्शनिक वर्णन[१५६] तात्विक दृष्टि से किया गया है । कविता के प्रथमांश में 'मैं रूपी' आत्मा के स्वरूप का और अन्त में आत्मा परमात्मा की अभिन्नता दर्शाया गया है :-

मोरे शून्यत उज्वलिल मोरे चन्द्र-सूर्य-तारकाराजि
मोरे परशत अग्नि उगारि बज्र-बिजुली उठिल गाजि,
मोरे भ्रूकुटिते ग्रहोपाग्रहर ठेका ठेकि लागि उरिल धुलि ।
सेइ धूलिटेह मोरे परशत नतुन सृष्टि उठिल फुलि । [१६०]

---

१५६।१ राय चौधुरी- या-या सकलो गुचि या, पृ० ६६
१५६।२ वही, अनुभुति, या-या सकलो गुचि या - पृ० ६८
१६०, राय चौधुरी- वही, पृ० ६६

हिन्दी रूपान्तर

मेरे शून्य में चन्द्र-सूर्य-और अगणन तारे प्रज्वलित होते हैं।
मेरे स्पर्श में आग वमन कर वज्र-बिजली गरजती है।
मेरे संकेत से ग्रहोपग्रह में ठोकर खाकर धूल की उत्पत्ति होती है।
उस धूल में ही मेरे स्पर्श से नवीन सृष्टि का जन्म होता है।

इस कविता में भी विद्रोहात्मक विचारधारा विद्यमान है। आत्मा-परमात्मा का अभिन्न अर्थ होने से भी आत्मा अकेले न्याय सत्य की प्रतिष्ठा के लिए परमात्मा के बिना युद्ध करती रहेगी।

राय चौधुरी 'श्रीमन्त शंकर प्रशस्ति'[१६१] कविता में केवल युग के कवि-साहित्यिक, उनकी विचारधारा और संस्कारमूलक काम का चित्र प्रस्तुत करते हैं। राय चौधुरी जी ने इस कविता में असमीया ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का वर्णन परोक्ष रूप में किया है। कविता का प्रारम्भ असम तथा भारत की सांस्कृतिक चिन्ता से होता है :-

मानव-हार्दिक धर्मनीति बिबर्जित
बीभत्स कापालिक भौतिक, दुर्नीति,
प्रवृत्तिर खलमुखी उन्माद उल्काइ
सामाजिक निका-शान्ति पुर करि धाइ
पैशाचिक आस्मतलुन तुलिले येतिया ,[१६२]

---

१६१. राय चौधुरी-अनुभूति, श्रीमन्त शंकर प्रशस्ति, पृ० १०७
१६२. वही, श्रीमन्त शंकर प्रशस्ति, पृ० १०७।

हिन्दी रूपान्तर

मानव हार्दिक धर्मनीति से विवर्जित
वीभत्स -कापालिक भौतिक दुर्नीति
प्रवृत्ति की लालची उन्माद उल्का
सामाजिक विमल-शान्ति पूर्ण कर
मूल पैशाचिक आस्फालन करते हैं ।

भारत की सभ्य हिन्दू-संस्कृति समाप्त हुई है । भारत के चारों ओर नैतिक पराजय का बादल आ गया है जिसको दूरिभूत करने के कारण आध्यात्मिक शक्ति आवश्यक है । राजनीतिकशक्ति की पराजय हुयी, ओजस्वी वाणी के द्वारा असमीया संस्कृति को अंधकार से मुक्त करने के कारण श्रीमन्त शंकरदेव का आविर्भाव हुआ उनकी साधु-वाणी से असमीया समाज को संगठित ,संतुलित और संसकार सिद्धि की कोशिश की । राय चौधरी जी ने इस कविता में असम की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अध:पतन और शंकर देव के द्वारा उसके संस्कार कार्य का वर्णन किया । शंकरदेव की साधु-उपदेशात्मक वाणी, वाग्मिता, पौराणिक रचना से असमीया समाज तथा साहित्य का नवीन जीवन प्राप्त हुआ:-

तंत्र-मंत्र-याद-यंत्र खेदिया उच्छेदि
नामामृत बरषिला ब्रह्माण्डकभेदि ।[१६३]

हिन्दी रूपान्तर

जन्तर-मंतर को हटाया उन्मूलन कर
नामामृत की वृष्टि आयी ब्रह्माण्ड भेद कर ।

---

१६३. राय चौधुरी- अनुभूति, श्रीमन्त शंकर प्रशस्ति, पृ० १०६

प्राचीनकाल से ही भारतीय सभ्यता का अन्यतम लक्ष्य साम्यवाद है। भारतीय साम्यवाद आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित पवित्र और स्थायी है। भारतीय साधना और शिक्षा का मूल तत्व साम्यवाद के सिद्धान्तों पर शान्ति राज्य का प्रतीक है। साम्यवाद प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों का आध्यात्मिक उद्भावन मात्र है। राय चौधुरी जी की इस कविता में साम्य-वाद का तत्व मिलता है :-

> कुकुर-चाण्डाल, गदर्भरो आत्माराम,
> सबाको एकैटा जानि करिबा प्रणाम।[१६४]

हिन्दी रूपान्तर

> कुत्ता,चाण्डाल,गर्दभ की आत्मा में भी है राम,
> सबको एक मान कर करो सदा प्रणाम।

राय चौधुरी जी की 'बेदना बिजय' १६५ कविता में अपने जीवन संग्राम, सामा-जिक व्यंग्य आलोचना और निर्धनता का परिचय विद्यमान है। 'बेदना-बिजय' में कोई ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक या लोक-आख्यान पर आधारित इतिवृत्त नहीं है, कथावस्तु की दृष्टि से यह एक आत्म चरितात्मक कविता है। किन्तु कवि का जीवन-वृत्त का एक मार्मिक और दु:खद प्रसंग ही इस कविता का इति-वृत्त या वर्णन है। कवि की मौलिकता और विद्रोही भावधारा से आक्षेप आर्थिक विपन्नता और मानसिक और दैहिक वेदना पर विजय करना इसका सार मर्म है, -

---

१६४. राय चौधुरी-अनुभूति, श्रीमन्त शंकर प्रशस्ति, पृ० १०६
१६५. वही, पृ० ६५

हिछा भरि मोर परक तोमार कर्कश बदाकार,
मइ बेदना-बिजयी हांहिर फुलेरे करि लम जातिष्कार ।[१६६]

हिन्दी रूपान्तर

मेरे हिया पूर्ण हो तुम्हारी कर्कश-कुत्सितता से
मैं वेदना-विजयी ग्रहण करूंगा आनन्द और पवित्रता से ।

निराला और राय चौधुरी मूलत: अध्यात्मपरक मानवतावादी, अद्वैती कवि हैं और दोनों की रचनाओं की पृष्ठभूमि में भारतीय दर्शन, ऐतिहासिक मीमांसा, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक उपलब्धियां, समाज को नवरूप देने वाली परिकल्पनायें और विद्रोहात्मक चिन्तन समान रूप से विद्यमान है । इसी कारण उनकी कृतियों में समानता मिलती है और उसी के आधार पर विषय और प्रवृत्ति की दृष्टि से दोनों की काव्य-कृतियों को समान रूप से ग्यारह प्रकार से स्थूल शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है । उनकी कवितायें गद्य के वृत्तान्त और कविता के भावोद्वेग को समेटने और समन्वित करने के प्रयास से प्रेरित हैं ।

काव्य-प्रवृत्तियों का तुलनात्मक विवेचन --

निराला और राय चौधुरी की समान काव्य-प्रवृत्तियां --निराला और राय चौधुरी सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर देश की जनता की मानसिक स्थिति के साथ सहयोग करते थे और उनका उत्कर्ष और हृदयोन्मेष कर रहे थे । दोनों कवियों का मानसिक निर्माण श्रद्धा, विश्वास, सरलता, भावुकता और वस्तु-जगत् की सुख-दुखात्मक स्थिति से हुआ था । दोनों सामाजिक मूर्तिमत्ता और मानसिक सूक्ष्मता से बने थे । दोनों में भाव-स्पन्दन और जीवन दर्शन प्रमुख थे ।

---

१६६. राय चौधुरी-अनुभूति, वेदना बिजय, पृ० ६७

भावलोक की मार्मिकता और कर्म-लोक की वास्तविकता का सम्मिश्रण उन्हें उपलब्ध था। दोनों की रचनाओं में नयी जीवन-दृष्टि नूतन विचारधारा, नवीन भावोन्मेष और साहित्यिक विद्रोह की भावना-समान रूप से वर्तमान हैं।

निराला और राय चौधुरी की भावात्मक और बौद्धिक चेतनायें सम्मिलित रूप से उद्बुद्ध हैं। राष्ट्र-प्रेम,समाज नीति, राजनीति, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में संकीर्णता व्याप्त थी। उसकी प्रतिक्रिया निराला और राय चौधुरी की रचनाओं में प्राप्त होती हैं। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति, आर्थिक शोषण, और स्वतंत्र भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों के विरुद्ध राष्ट्र में संघर्ष और विद्रोह की जो गतिशील प्रवृत्तियां विद्यमान थीं उनको निराला और य राय चौधुरी की कृतियों में वाणी प्राप्त हुई। विशुद्ध सात्विक भाव, वर्तमान युग की पीड़ा, वैषम्य, दु:ख-दैन्य के प्रति सहानुभूति और आक्रोश, भविष्य की सुख-शान्ति और कल्याण-कामना, व्यष्टि-उन्नति द्वारा समष्टि-उन्नति, समष्टिगत मानवता की कामना, जीवन की अति भौतिकता के प्रति विद्रोह, आध्यात्मिक चेतना का उन्मेष, आशावादिता इत्यादि तत्व निराला और राय चौधुरी की कृतियों से मुखरित हो रहे हैं। कभी उनकी कृतियों में राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष पाते हैं तो कभी उदात्त विश्व-मानवतावाद का उद्‌बोधन। कभी उनमें दार्शनिकता की चिन्तनशीलता पायी जाती है तो कभी अद्वैतवाद की भूमिका पर आत्मा और परमात्मा के भावात्मक ऐक्य की कहानी। उनकी कृतियों में उपलब्ध होने वाली इन विविध प्रवृत्तियों के मूल में विशुद्ध मानवतावाद पर उनकी अटल आस्था विद्यमान है। उनकी कृतियां उस बादल की भांति हैं जो जीवन से निकले, शून्य में छा जाय और फिर जीवन बनकर पृथ्वी पर उतर आये, अर्थात् उनकी पृष्ठभूमि एक महान् भारत की राजनीतिक,सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक अवस्था है जो भारत की प्राकृतिक वस्तुओं से पालन-पोषण हुआ है।

निराला और राय चौधुरी की समान काव्य प्रवृत्तियाँ :-

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन - निराला और राय चौधुरी दोनों ने काव्यों के भाव पक्ष और शिल्प पक्ष में, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को ग्रहण किया है। दोनों कवि क्रमश: हिन्दी और असमीया के माध्यम से अपने चारों ओर की उत्पीड़नमयी घटना और जनता के रोष को लक्षणा एवं व्यंजना के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे थे। दोनों कवियों में परम्पराबद्ध नियमों और रूढ़ियों से स्वतंत्र रहकर स्वत: प्रवृत्त भावावेग पर बल देने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसी कारण दोनों कवि समान रूप से अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं :-

निराला -

नव गति नव लय ताल छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्रख,
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर नव स्वर दे।[१६७]

और राय चौधुरी -

'कि कविता लिखों मइ।
सान्त्वना लओं काक कि कइ?
दारुण ज्वलन चेराइ येनिबा
लिखिलोंवे किबा कबिता बुलि।[१६८]

हिन्दी रूपान्तर

कैसी कविता लिखता हूँ मैं?
सांत्वना पाता हूँ क्या कहकर?

---

१६७. निराला-गीतिका, गीत, १, पृ० ३।
१६८. राय चौधुरी- बेदनार उल्का, कि कबिता लिखोमइ, पृ० १।

प्रचण्ड-ताप सहन कर
लिखता हूं कुछ कविता में ।

निराला और राय चौधुरी इन दोनों कवियों की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति अथवा विषय और शैली के मूल रूप में यूरोपीय स्वच्छन्दतावादी कवि शैली, वर्ड्सवर्थ,कीट्स, ब्लैक आदि का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में पाया जा सकता है । दोनों अपनी अपनी भाषा में, उनकी प्रतिक्रिया के रूप में , अपनी परिस्थिति के अनुकूल मौलिक रचनायें करने लगे । दोनों बाह्य अभिव्यक्ति-से निराश होकर आत्मबद्ध अन्तर्मुखी साधना करने लगे जिसमें कल्पना और व्यक्ति की संवेदना की प्रमुखता रहती है । उनकी प्रतिक्रियावादिता और स्वतंत्र चेतना के कारण रूढ़िगत विचारधारा और काव्य शैली के विरुद्ध विद्रोह और क्रान्ति-कारी विचार स्पष्ट होते हैं ।

प्रत्यक्ष को अध्यात्म से जोड़कर संश्लिष्ट वस्तु- दृष्टि द्वारा उनकी रचनाओं में कल्पना शक्ति पर आधारित जो वस्तु नियोजित की गयी है वह उनकी स्वच्छन्द-प्रवृत्ति की परिचायिका है । उनके काव्य बदलती हुई संस्कृति के नये मानदण्डों की कलात्मक अभिव्यक्ति करते हैं । जीवन के नवीन अनुभवों ,नयी परिस्थितियों और उनकी संभावनाओं को लेकर वे नये भाव-लोक की सृष्टि करते हैं ।

निराला और राय चौधुरी दोनों कवियों की रचनाओं में स्वच्छन्दता-वादी की लगभग सभी प्रवृत्तियां स्पष्टत: विद्यमान हैं । नवीन सौन्दर्य बोध, सहज-मानवता प्रेम, उन्मुक्त सौन्दर्य, प्रेम की प्रतिष्ठा, विद्रोहात्मक आदर्शवाद, वैय-क्तिक भावातिरेक, सजीव और स्वच्छन्द प्रकृति के प्रति आकर्षण, समाज के कृत्रिम नियमों और विधानों के विरुद्ध विद्रोह, दृश्य जगत् में अलौकिक अथवा अज्ञात प्रियतम की अनुभूति, व्यष्टि,समष्टि-सौन्दर्य का बोध, नवीन अभिव्यंजना

प्रक्रिया आदि इन दोनों कवियों की कृतियों की विशेषतायें हैं जो उनको स्वच्छन्दता वादी कवि घोषित करती हैं। दोनों की स्वच्छन्दता का अर्थ कोई अनैतिक प्रपत्तिपरकता नहीं है। सामाजिक न्याय और व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावनाओं का हृद्गत् मार्मिक अनुभूतियों के साथ मनोवैज्ञानिक सामंजस्य है और राग संस्थान की नैसर्गिक भाव-प्रक्रियाओं की अभिव्यंजना ही उनकी स्वच्छन्दता है।

कीट्स, बायरन, वर्ड्सवर्थ आदि कवियों की भाँति निराला और राय चौधुरी को भी स्वच्छन्द,सजीव और सचेष्ट प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट पाते हैं। इन दोनों कवियों के पूर्व किसी भी कवि ने हिन्दी और असमीया में कल्पना और भावना के उद्दाम आवेग और प्रवाह के साथ उन्मुक्त सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण प्रस्तुत नहीं किया था। किन्तु इन दोनों के प्रेम वर्णन में, रूप और स्नेह की महिमा तो है ही, साथ ही साधना की तटस्थता भी है। दोनों पर व्यष्टि-समष्टिगत वेदना का प्रभाव अधिक था। सौन्दर्य और प्रेम के वर्णन में भी ऐन्द्रियता को अतीन्द्रियता में, वासना को पावक में, व्यष्टि हृदय को समष्टि चेतना के सागर में परिणत कर दिया गया है। दोनों के प्रेम-सौन्दर्य चित्रणों में लौकिकता का आभास है, किन्तु मूल में अनन्त नियन्ता शक्ति का अविचल प्रकाश है। विशुद्ध सौन्दर्य की अनुभूति, दृश्य-जगत् के प्रति भाव-पावन स्नेह, वस्तु, सौन्दर्य से परे किसी दूसरी अप्रतिम सौन्दर्य राशि की कल्पना आदि तत्वों को उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। इसके प्रमाण में निराला जी की जुही की कली ,जागृति में सुप्ति थी', 'शेफालिका' आदि कविताओं की और राय चौधुरी जी के 'तुमि' काव्य को लिया जा सकता है। दोनों काव्य में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की सांस्कृतिक योजना विद्यमान है और युगीन प्रभाव के प्रति संवेदनशीलता है।

जीवन के सभी पक्षों में समस्त बन्धनों से मुक्ति की कामना,व्यष्टि के प्रति आदर भाव और विश्व समष्टि को एक सूत्र करने वाली विशुद्ध मानवतावादी भूमि का निराला और राय चौधुरी के काव्यों की प्रधान विशेषतायें हैं।

आदर्शमूलक समाजवादी क्रान्ति का स्वर भी दोनों की कृतियों में सुनाई पड़ता है। दोनों कवि भारतीय अध्यात्मवादी व्यावहारिक वेदान्त तत्व से पूर्णतः प्रभावित हैं, यह दोनों की अन्याय के विरुद्ध विद्रोही प्रवृत्ति का आधार भी है। स्वच्छन्दतावाद के परम उदात्त आदर्श एकता को स्वीकार कर निराला जी का स्वच्छन्दतावादी हृदय शताब्दियों से जकड़े हुये मन-कपाट को खोलकर वहाँ नव्य की स्थापना करना चाहता है, पुरानी जड़ व्यवस्था की प्रतिक्रिया में इसी प्रसंग में निराला जी घोषित करते हैं :-

मानव मानवसे नहीं भिन्न
निश्चय : हो श्वेत, कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न,
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक,
हो कोई सर।[१६६]

निराला और राय चौधुरी की धार्मिक सहनशीलता, सगुन-निर्गुण का समन्वय, मानवतावादी अध्यात्मवाद पर आस्था, रहस्यवादी अभिव्यंजना, अभूतपूर्व संवेदनशीलता आदि उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के परिचायक हैं।

निराला और राय चौधुरी के काव्यों में कल्पना अभिन्न अंग के रूप में विद्यमान है। कल्पना के द्वारा वे उन्मुक्त आकाश में विचरण करने का सुख लेते हैं। कल्पना ही उनकी स्वतंत्रता, विद्रोह, आनन्द आदि का प्रतीक है। इसी कल्पना के द्वारा वे सम्पन्न अतीत के पास पहुंचते हैं और भविष्य के स्वर्णिम स्वरूप के निर्माण में समर्थ होते हैं। दोनों कवियों के लिये कल्पना राग

---

१६६. निराला-अनामिका, सम्राट् अष्टम एडवर्ड के प्रति, पृ० १६।

शक्ति और बोध- शक्ति दोनों हैं । इसी कल्पना के द्वारा निराला के हृदय में यमुना[१७०] को देख कर सैकड़ों स्मरण-चित्र उठते हैं और अतीत गौरव के प्रति स्नेह और प्रश्न उसी सम्पन्न वातावरण को लौटा लाने की आकुलता जाग्रत होती है ।

निराला जी की इस कल्पना की अतिशयता के समान राय चौधुरी के राष्ट्रीय गीतों में भी कल्पना का उद्दाम वेग पाते हैं । यह तथ्य उनकी 'मानवायतन'[१७१] शीर्षक कविता में स्पष्ट देखा जा सकता है । कल्पना की अतिशयता के कारण ही दोनों कवि रहस्योन्मुख बने । इसी कल्पना-शक्ति के कारण नवीन सूक्ष्म इन्द्रिय बोध उनमें जाग्रत हुआ । इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं —निराला जी का 'तुलसीदास' और उनकी 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'प्रेयसी', कण, 'तुम और मैं' आदि कवितायें जिनमें प्रकृति वर्णन, प्रेम चित्रण और रहस्य सत्ता का वर्णन विद्यमान है । और रायचौधुरी की 'तुमि', 'अनुभूति', 'बीणा' और अनेक रहस्योन्मुख कवितायें इस श्रेणी में आती हैं । कल्पना का आवेग उनके काव्य की प्रेषणीयता को तीव्र बनाता है, जो स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है ।

निराला और राय चौधुरी दोनों के काव्यों में शिल्प पक्षीय दृष्टिकोण से भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त होता है । उन दोनों के काव्यों में विवेचित वस्तुओं को देख कर इस बात की स्वीकृति दी जा सकती है कि उन दोनों पर उस युग का सारा परिवेश हावी हो चुका था । युग की सम्पूर्ण परिस्थितियां उन दोनों की विद्रोहीवाणी द्वारा अभिव्यंजित हुई हैं । साथ ही उन दोनों में अपनी-अपनी काव्यानुभूति अर्थात् संवेदनमयता की अभि-

---

१७०. निराला-परिमल, यमुना के प्रति, पृ० ४३ ।
१७१. राय चौधुरी- अनुभूति, पृ० ५३

व्यंजना के लिये नवीन छन्दों, नवीन भाषा और नवीन शैली का प्रयोग किया है । निराला और राय चौधुरी परम्पराबद्ध वस्तुओं का परित्याग कर युग की विभिन्न भावधाराओं, आदर्शों और प्रवृत्तियों को काव्य में उतारने लगे तो उनको अपनी-अपनी भाषा के साहित्यों की पुरातन अभिव्यंजना शैली के विरुद्ध भी विद्रोह करना पड़ा, क्योंकि उनको वह सम्पूर्ण रूप से अपने उन्मुक्त विचारों का वाहन करने में अक्षम दिखाई पड़ी । अत: दोनों कवियों ने भाव-लय और भाव-प्रवाह के अनुसार बड़ी स्वच्छन्दता से प्रगीत मुक्त को, प्रलय ताल युक्त गीतों और लोक-गीतात्मक शैलियों का प्रयोग किया है जिसके कारणउनको तत्कालीन प्राचीन परम्परा के अनुयायी पंडितों, राजनीतिक नेताओं और साहित्यकारों का बड़ा विरोध सहना पड़ा । वास्तव में गतिमान और उन्मुक्त जीवन के तथ्यों को अभिव्यक्ति देने वाले निराला जी और राय चौधुरी जी ने प्रगीत मुक्तकों की गीतात्मक शैली को अपना कर परम्परा से अपनी मुक्ति की, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की संगीतमय घोषणा की है । दोनों कवियों के काव्यों के नवीन प्रतीक विधान, लाक्षणिक प्रयोग, नवीन रूप-विधान, ओजस्वी और ललित भाषाओं की प्रांजलता आदि साहित्यिक क्षेत्र के नये-पुराने बन्धनों, परम्परागत रूढ़ियों के विरोध में उनकी प्रतिक्रिया अर्थात् स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का पुष्ट परिचय कराते हैं । दोनों ने संगीत और काव्य को, गीत और प्रगीत को, मुक्तक तथा आख्यानक शैली को एक साथ ग्रहण कर अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को अभिव्यक्त किया है । निराला और राय चौधुरी के काव्यों में मुक्त या स्वच्छन्द छन्दों का प्रयोग किया गया है जिसे कतिपय विद्वान् वाल्टह्विट मैन का बौद्धिक प्रभाव मानते हैं ।

आत्मा की अनुभूति और आत्मस्थ भूमि पर स्वीकार कर दोनों कवियों ने कल्पनाओं और भावनाओं से ओत-प्रोत गीतों में अनुभूति के सूक्ष्मतम सत्य को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । संक्षिप्त में दोनों स्वच्छन्दतावादी कवि हैं । दोनों के अधिकांश छन्द, लय और सुर से आवेष्ठित हैं । उनमें तुकबन्दी का कृत्रिम आग्रह किंचित् भी नहीं है, वर्डसवर्थ का सौन्दर्यबोध,

कालरिज की दार्शनिकता, शैली की क्रान्तिप्रियता, कीट्स की कल्पनाश्रितिश्यता, विलियम ब्लेक की रहस्यवादिता, ब्राउनिंग की संगीतप्रियता, वाल्ट ह्विटमैन की मुक्त-छन्द प्रणाली- इन सबका समन्वित, पर मौलिक रूप निराला और राय चौधुरी के काव्यों में पाया जाता है।

## समाजवादी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन -

निराला और राय चौधुरी जीवन की सामाजिक विषमताओं को ध्वंस करके विश्व-मंगल का मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं। दोनों के सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि एक ही है - अध्यात्मपरक मानवतावाद। इनके द्वारा विश्व-परिवार की कल्पना को साकार रूप दिया जा सकता है। भौतिक उन्नति उनका काम्य नहीं है - किन्तु वे आध्यात्मिक भूमिका पर भौतिक उन्नति करना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि आत्म-प्रकाश से भौतिक कलुषता दूर हो जायेगी। सारे विश्व में एक शुद्ध मानवता की प्रतिष्ठा ही उनका काव्यादर्श है। दोनों केवल सिद्धान्तपरक ही नहीं हैं, संघर्ष निरत जीवन की व्यवहारिकता से भी अनुप्राणित हैं। निराला जी ने विवेकानन्द के सिद्धान्तों के तीन प्रमुख तत्व करुणा, शक्ति और सेवा- को स्वीकार किया है और राय चौधुरी जी असम के वैष्णव युग के द्वितीय प्रधान भक्त कवि माधव देव के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। दीन-दलित-पतित जन समुदाय के प्रति अपार करुणा-स्रोत उनकी रचनाओं में बहता है। इसी से अनुप्राणित हो कर सशक्त सेवा-क्षेत्र में दोनों कवि अग्रसर हुये। वर्ग-संघर्षमूलक समाजवाद से और आगे चलकर दोनों कवि शुद्ध मानवतावाद की पृष्ठभूमि पर समानता-स्वतंत्रता, और भाईचारे भाव के महत्तम आदर्शों को समाज में स्थापित करना चाहते हैं। दोनों कवि अद्वैती, सत्यं शिवं सुन्दरम् रूप के परिवेश में और अध्यात्मवादी चेतना की विराट् पार्श्वभूमि पर विशुद्ध भारतीय परम्परा को स्वीकृत करते हुये शक्ति, करुणा और सेवा के माध्यम से क्रियात्मक और उदात्त समाजवादी सिद्धान्तों का समर्थन करते हैं।

जीवन के सभी व्यावहारिक क्षेत्रों से जुड़े रह कर क्रान्ति का आह्वान और नव समाज का निर्माण करने की कामना करने वाले निराला जी समाज के अपेक्षाकृत अधिक निकट हैं। राय चौधुरी का अधिकांश जीवन भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते हुये बीता, इसी कारण निराला जी की अपेक्षा समाज के यथार्थ का मार्मिक चित्रण राय चौधुरी में कम पाया जाता है। निराला जी ने व्यावहारिक जीवन के सभी पक्षों का व्यंग्यमूलक कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। राय चौधुरी में परिलक्षित विद्रोह की वर्चस्विता अधि-कांशतः सैद्धान्तिक हैं। निराला जी की विद्रोह-प्रवृत्ति व्यावहारिक जीवन के साथ चलती है।

निराला और राय चौधुरी के समाजवादी सिद्धान्त और उनका आधार एवं आधेय समान है। अद्वैतवाद और करुणावाद से परिप्लावित अध्यात्मवादी समाजवाद ही निराला और राय चौधुरी दोनों को मान्य है।

विद्रोहात्मक भावनाओं का तुलनात्मक अध्ययन --

समाज की गलित और रूढ़िवादी परम्परा, राजनीतिक पराधीनता और व्यक्तिगत दबाव आदि के कारण मानव-जीवन में विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है जो समय पर फलती-फूलती विराट रूप धारण कर लेती है। मानव मन में सुप्त विद्रोह की भावना साहित्यिक क्षेत्र में परोक्ष रूप से और राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से प्रस्फुटित होती है। निराला जी और राय चौधुरी जी की रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा व्यक्तिगत क्रान्ति की भावनाओं का सुन्दर समन्वय हुआ है। राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह निराला और राय चौधुरी के व्यक्तित्व में जन्मजात थे और इसी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के कारण दोनों कवियों ने अल्प समय में ही विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर दिया था। राय चौधुरी सम्पूर्ण रूप से राजनीतिक विद्रोही व्यक्ति थे जिन पर बंगाल के खुदीराम, सुभाष आदि महान् देश-प्रेमियों के विद्रोह का और समन्वयवादी लेनिन का प्रभाव परिलक्षित होता है।

निराला जी के काव्यों में सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों और बन्धनों के विरोध में ललकार और क्रान्ति विद्यमान है। व्यक्तिगत और सामूहिक धरातल पर स्वाधीनता के संघर्ष उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। पुरानी जड़-समाज-व्यवस्था के घुटते हुये वातावरण की प्रतिक्रिया में निराला जी की विद्रोहात्मक प्रवृत्ति उनके काव्य में विद्यमान है। स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास-मार्ग में बाधा डालनेवाली सामाजिक परिस्थिति के विरुद्ध निराला जी का नकारात्मक दृष्टिकोण उनके वैयक्तिक भावातिरेक का परिचायक है। उनके काव्यों में स्वातंत्र्य और क्रान्ति की भावना की अभिव्यंजना उनकी व्यक्तिवादिता का परिणाम है। इसका पुष्ट प्रमाण उनका शोक-गीत 'सरोज स्मृति' है जिसमें कवि को अपने पिता होने की निरर्थकता विदित होती है और उन्हें इस बात की ग्लानि होती है कि वे पुत्री के लिये कुछ भी नहीं कर पाये :-

'धन्ये! मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित कर न सका।
जाना तो अर्थागमोपाय, पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।[१७२]

दूसरों के अश्रुओं में अपनी व्यथा का संधान पाने वाले निराला जी सर्वदा रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते रहे। वे हिन्दी-काव्य-जगत् में विद्रोह के पुरोधा थे। उन्होंने साहित्यिक, सामाजिक और अन्य सभी क्षेत्रों में परम्परागत रूढ़ियों पर, बंधनों पर प्रहार किये, उन्हीं के कारण साहित्यिक क्षेत्र में चारों ओर क्रान्ति की गर्जना गूंज उठी।

राय चौधुरी चिन्ता और कर्म दोनों क्षेत्रों में विद्रोही थे। भारतीय समाज में प्रचलित दुर्नीति, प्रतारणा, प्रबंध, शोषण आदि के कारण राय-

---

१७२. निराला- अनामिका, सरोज स्मृति, पृ० १२२।

चौधुरी का अन्तर दु:ख से परिपूर्ण हो उठता है और वे उनसे समाज की मुक्ति की कामना करते हैं । उनका विद्रोह केवल भारत के भीतर ही सीमित नहीं है, वरन् जगत् के दलित, शोषित और उपेक्षित नर-नारायण की मुक्ति का विश्व-परिव्याप्त विद्रोह है । राय चौधुरी का विद्रोह विश्व-ब्रह्माण्ड विस्तृत स्वर्ग-मर्त्य को एकाकार करने का विद्रोह है :-

ब्रह्माण्डर मेरु प्रकंपि दापिछे दारुण ताण्डव मोर
नभो महानील छिराछिर करि
प्रलय-भंगि उठे तार चरि
स्वर्ग-मर्त्य रसातल रेखा
मोछारि मुछारि करि दिले एकाकार ।[१७३]

हिन्दी रूपान्तर

ब्रह्माण्ड के मेरु कंपाकर जागा है ताण्डव मेरा
आकाश-पाताल हिला कर
प्रलय की भंगिमा उठती है ऊपर
स्वर्ग-मर्त्य रसातल की रेखा
कर दिया एकाकार ।

निराला और राय चौधुरी की रचनाओं में सामाजिक विषमता के प्रति क्षोभ, नव निर्माण की आशा, सामाजिक, राजनीतिक आदि बन्धनों के प्रति उग्र विद्रोह की भावना विद्यमान है । विद्रोह की दृष्टि से

---

१७३. राय चौधुरी-अनुभूति, पृ० ६१

निराला और राय चौधुरी दोनों समान क्रान्तिकारी थे, मात्र निराला परीक्षा विद्रोही थे और उनकी क्रान्ति उनकी कृतियों में मुखरित है। किन्तु राय चौधुरी उग्र क्रान्तिकारी थे और वे प्रत्यक्ष रूप में अंगरेजों का विरोध करते थे, परिणाम स्वरूप उनको कई बार जेल जाना पड़ा। दोनों कवियों की जन्म और मृत्यु क्रान्ति के भीतर ही हुई थी।

मानव, राष्ट्र तथा विश्व-प्रेम का तुलनात्मक अध्ययन --

निराला और राय चौधुरी, दोनों ने मानव के बाह्य पार्थिव आवरण के भीतर विद्यमान आत्मिक दिव्यता के दर्शन किये हैं। दोनों के जीवन में अनेक परेशानियां, निराशायें, वेदनायें आयीं उनको प्रकाशित करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु उनकी कल्पनातीत वेदनाओं ने उनके अन्तर को विशद ही नहीं, गंभीर भी बनाया और वे मानव-मन की गंभीरता में इसी कारण पैठ सके तथा उनसे आत्मीय सम्बन्ध जोड़ सके। दोनों कवियों के वैयक्तिक जीवन की आसक्तियां और विपत्तियां, उनके मन की सात्विक उदात्त भावनाओं में अन्तलीन हो गयीं। इस भावना ने समस्त विश्व को अपने में पाया और उसके लिये कोई पराया नहीं है। दोनों कवियों की आत्मा जीवन की समग्रता में व्याप्त हो चुकी थी, उनके लिये सम्पूर्ण दिशायें खुली रहती थीं। दोनों कवियों की सजग अन्तश्चेतना मुक्ति और शान्ति की उदात्ततम वृत्तियों को आत्मसात् किये हुये थीं। दोनों का मन सचराचर विश्व के साथ एकाकार और एक रस हो गया था। दोनों दार्शनिककवि थे और अद्वैत दर्शन दोनों को मान्य था। जीवन की नश्वरता और माया-बद्धता का उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान था। मानवता पर उन्हें अटूट आस्था थी। मानवता की अमरता और उदात्तता पर सम्पूर्ण विश्वास था।

निराला और राय चौधुरी दोनों विश्व से अपनी आत्मा और परमात्मा का एकत्व अनुभव करने वाले अद्वैती हैं। इसी कारण उनका विश्वप्रेम

सिद्धान्त,प्रसार, संप्रदाय इत्यादि की सीमाओं में आ नहीं सकता, वह तो स्वयं एक दर्शन है। दोनों ने विश्व-प्रेम के महान् आदर्श को बाधित करने वाली राजनीतिक, सामाजिक,साम्प्रदायिक, धार्मिक यहां तक कि राष्ट्रीय संकीर्णताओं का भी विरोध किया और समस्त जाति-वर्णगत भेद-भावों को मिटा कर समस्त विश्व में एक ऐसा मानव-समाज स्थापित करने के लिए अपनी-अपनी रचनायें प्रस्तुत कीं। दोनों कवियों के विश्व-प्रेम का पात्र केवल मानव नहीं, सम्पूर्ण विश्व है, जिसमें पशु-पक्षी और वृक्ष भी सम्मिलित हैं। उन दोनों की कामना थी कि पृथ्वी और आकाश परस्पर मिल जायें, सारी सृष्टि में स्नेह, समता आदि तत्व व्याप्त हो जायें। इसी कारण निराला कहते हैं :-

पुनर्वार गायें नूतन स्वर, नवकर से दे ताल,
चतुर्दिक छा जाय विश्वास।

.....................

विश्व की नश्वरता कर नष्ट,
जीर्ण-शीर्ण जो,दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।

.....................

भर उद्दाम वेग से बाधाहर तू कर्कश प्राण
दूर कर दे दुर्बल विश्वास,
किरणों की गति से आ, आ तू ,गौरव गान,
एक कर दे पृथ्वी आकाश।[१७४]

---

१७४. निराला-अनामिका,उद्बोधन, पृ० ६८,६६

राय चौधुरी इसी दृष्टि से कहते हैं :-

> एहटो नह्य हाँहि -धेमालिर भागर जुरौवा गान,
> ह ये आकाश-पाताल एकाकार करा अग्नि-बीणार तान[१७५]।

हिन्दी रूपान्तर

> यह तो नहीं हँसी-खेल के थकित आराम का गान ।
> यह है आकाश-पाताल के ऐक्य की अग्नि-वीणा की तान ।

और -

> बिलास-क्लेदर बीभत्सताक,
> कामता रूकर भयाबहताक,
> सेवा तियागेरे करि बिह्वल
> मानबता कर उज्ज्वल ।[१७६]

हिन्दी रूपान्तर

> विलास-क्लेद की वीभत्सता को
> लालच-कामता की भयंकरता को
> सेवा-त्याग से करो व्याकुल,
> मानवता को करो उज्ज्वल ।

दोनों विश्व समुदाय के किसी भी अंश को निर्बल, अशक्त अथवा अविकसित देखना नहीं चाहते । इसीलिए पराधीन भारत की स्थिति पर उनकी वेदना और उसके उत्थान की कामना उनके काव्य में मुखरित हुई है । उनका

---

१७५. राय चौधुरी-बन्दो कि छन्देरे, पृ० १० ।
१७६. राय चौधुरी -बेदनार उल्का, पृ० ३० ।

विश्वास है कि भारत के सशक्त होने पर ही विश्व का समूचा विकास सत्य होगा । साथ ही वे समाज के प्रत्येक अंग को विकासोन्मुख पाना चाहते हैं । इसीकारण विशेषतया भारत की और सामान्यत: सारे जग की पराधीन और दलित जनता के उत्थान की अनिवार्यता पर दोनों कवियों ने बल दिया है । जर्जरित रूढ़ियों के बन्धनों से दुर्दशाग्रस्त, विगलित जनता को स्वाभाविक विकास के अवसर प्रदान किये जायें तो विश्व-समाज बलिष्ठ होगा और उसका दुगुना अथवा सर्वांगीण विकास होगा- ऐसा इन दोनों कवियों का विश्वास है ।

संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि निराला और राय चौधुरी दोनों कवि अपने-अपने निजी संघर्षों की भयानक ज्वाला और पीड़ाओं को अन्तर में छिपाये हुये आत्म-ज्ञान से द्वंद्वातीत हो गये और इस कारण अहं-प्रेरित अपनत्व का भ्रम छोड़कर विश्व के साथ समभाव के अनुभवों का आकलन करते गये । वास्तव में निराला और राय चौधुरी दोनों ने विश्व के संवेदनमय स्पन्दनों पर प्रेम की अमृत-धारा बहायी है । विश्व-प्रेम ही दोनों कवियों की कृतियों की पार्श्व भूमि है और वही उनका गन्तव्य भी है ।

## प्रकृति-चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन --

रूप, वैभव, स्वच्छन्दता और विराटता से ओत-प्रोत विश्व-प्रकृति में और उसकी प्रत्येक गति में अदृश्य और अलौकिक सूक्ष्म सत्ता का अनुभव करने वाले निराला और राय चौधुरी का प्रकृति-प्रेम स्वाभाविक है और आध्यात्मिकता की भित्ति पर निखरा हुआ है । ब्रह्म-तत्व के विवर्त-स्वरूप में विद्यमान समस्त चराचर प्रपंच के सौन्दर्य का दोनों कवियों ने अनुभव किया है और समस्त जगत् को ब्रह्म मय माना है । निराला और राय चौधुरी ने प्रकृति में चेतनता का अनुभव किया है उनके सम्मुख विस्मयकारी सौन्दर्य और आकर्षक हाव-भाव के साथ सजीव प्राणी की भांति गतिशीलप्रकृति आती है । दोनों कवि प्रकृति की

क्रियाओं और दृश्यों में मानवीय वृत्तियों का दर्शन करते हैं। जड़ प्रकृति की अन्तश्चेतना से दोनों कवियों का आत्मिक परिचय प्राप्त होता है।

निराला जी चन्द्रमा और धरती के स्नेह-मिलन का कलात्मक चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत करते हैं --

वक्ष पर धरा के जब,
तिमिर का भार गुरु,
पीड़ित करता है प्राण,
आते शशांक तब हृदय पर आप ही,
चुम्बन-मधु ज्योति का, अंधकार हर लेता ।[१७७]

राय चौधुरी की कल्पना में विश्व-व्यापी सूर्य की अनन्त रश्मियों का स्पर्श पा कर प्रेयसी धरती कर्त्तव्य-व्यस्त हो उठती है और स्नेह-धारा में मुग्ध हुई वह पड़ी रहती है। सूर्य का भी धरती के प्रति अपार स्नेह है और इसी कारण वह धरती को अपलक देख रहा है और अपने कर-स्पर्श से उसे मुग्ध कर लेता है :--

आकाश दीप्त बेलि
बीजलीबा प्रचंड बेगत,
कर्त्तव्य-हुंकार मारि
सबलित करिछा जगत ।[१७८]

---

१७७. निराला-अनामिका, रेखा, पृ० ७३।
१७८. राय चौधुरी- सुमि, पृ० २५।

हिन्दी रूपान्तर

आकाश का दीप्तिमान सूर्य
प्रचण्ड गति से आगे बढ़ता है,
कर्त्तव्य-पथ के स्वर से
संसार को विस्मित करता है ।

इस प्रकृति-चित्रण में राय चौधुरी का जड़ प्रकृति के साथ घनिष्ट रागात्मक सम्बन्ध स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।

धरती जब अंधकार के गुरु-भार से आक्रान्त होती है तो उसके प्राण पीड़ित होते हैं तब अपनी मधु ज्योति से स्पर्श से शशांक धरती का वह भार हर लेता है और प्राणों को शान्त करता है । दोनों कवियों के इन चित्रों में विद्यमान अभूतपूर्व वस्तुगत, वर्णगत और कल्पनागत साम्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । दोनों के इस प्रकृति-चित्रण के मूल्य में अध्यात्म-तत्व का भी भी आभास प्राप्त होता है । अनन्त के कर-स्पर्श से शान्त के प्रफुल्लित और तन्मय होने का भाव भी इन चित्रों से प्राप्त किया जा सकता है । प्रकृति के मानवीकरण और प्राणवत्ता की अनुभूति के मूल में उनकी सर्वात्मवाद या अद्वैत-वाद की ही स्वीकृति विद्यमान है । दोनों कवियों ने प्रकृति के नित नवीन सौन्दर्य की अनुभूति और परिकल्पना की है । निराला और राय चौधुरी दोनों कवियों का जीवन प्रकृति के खुले प्रांगण में बीता । उनकी प्रकृति परक तन्मयता, जीवन प्रकृति-चित्रण उन्मुक्त प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य को नहीं, अन्त-श्चेतनागत सौष्ठव और वैभव को भी उद्घाटित करते हैं । दोनों के काव्य में प्रकृति के शुद्ध, भावाभिव्यक्त और अलंकारिक चित्र विद्यमान हैं । उनके काव्य में प्रकृति चित्रण शुद्ध या आलम्बन के रूप में पाया जाता है । उनके काव्य में विशेष साम्य यह है कि दोनों के प्रकृति-चित्रणों में दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं - एक प्रकृति में रहस्य दर्शन की प्रवृत्ति है तो दूसरी प्रकृति की चेतना की अनु-

भूति । निराला का प्रकृति चित्रण राय चौधुरी की अपेक्षा अधिक विस्तृत और गंभीर है । दोनों अद्वैतवादी हैं, अत: दोनों ने प्रकृति में रहस्यात्मकता और चेतना का अनुभव किया है । दोनों के प्रकृति-चित्रण में देश-काल संस्कृतिगत विशेषतायें विद्यमान हैं और दोनों ने भारत की प्राकृतिक श्री-सुषमा के अनेक गौरवपूर्ण चित्र खींचे हैं । दोनों के काव्य में जड़ प्रकृति स्वच्छन्द, सजीव, सचेत, सचेष्ट और आलोकपूर्ण हो कर निखर उठी है ।

आध्यात्मिक मान्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन --

निराला और राय चौधुरी के काव्य की मूल चेतना आध्यात्मिक हैं । दोनों ने ब्रह्म तत्व के साक्षात्कार के लिये ज्ञान-मार्ग और शुद्धज्ञान तक पहुंचने के लिये भक्ति और योग को साधनों के रूप में स्वीकार किया है । निराला और राय चौधुरी ने ईश्वर के नाना रूपों का उल्लेख किया है और उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित की है, किन्तु इससे उनके मूलभूत अद्वैतवादी स्वरूप का खण्डन किया या विरोध नहीं हो जाता । वे दोनों समन्वयवादी कवि हैं । किन्तु उनका झुकाव अद्वैतवाद की ओर अधिक है । दोनों ने भक्ति- ज्ञान और योग ब्रह्म-प्राप्ति के साधनों के रूप में स्वीकृति दी है ।

दोनों कवियों ने निराकार ब्रह्म-सत्ता को ही आत्मा के मूल और पर्यवसान के रूप में स्वीकार किया है । दोनों कवि अद्वैती बन कर जीव-ब्रह्म के मध्य भेद पैदा करने वाली माया का खण्डन करते हैं । "दोनों ने" तुम और मैं" शैली में ब्रह्म और जीव के अंशांशी भाव और आधार- आधेय भाव को अभि-व्यक्त किया है । उन दोनों ने उदात्ततम ज्ञान की प्राप्ति के सोपानों के रूप में भक्ति और साधना को स्वीकार किया है । राय चौधुरी ने साधना के फूल" और "साधना की मध्य रात्रि" [१७६] कह कर योग-साधना के द्वारा

---

१७६ - राय चौधुरी- तुमि, पृ० ६४,६५

कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्वमुखी बना कर सहस्रार चक्र में ले जाने और ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति करने का विवेचन किया है तो निराला जी की 'राम की शक्ति पूजा' में योग-साधना तथा 'पंचवटी प्रसंग' में अद्वैत - सिद्धि के लिये योग की आवश्यकता पर बल दिया है -

जागता है जीव तब,
योग सीखता है वह योगियों के साथ रह,
स्थूल से वह सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता,
मन, बुद्धि और अहंकार से है लड़ता जब
समर में दिन दूनी शक्ति उसे मिलती है।[१८०]

निराला और राय चौधुरी भारतीय वेदान्त दर्शन के ज्ञाता थे। राय चौधुरी ने गीता, उपनिषद् आदि का अध्ययन किया है और उनके दार्शनिक तत्वों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। 'निराला जी के मन में भारतीय दर्शन के प्रति आस्था राम कृष्ण मिशन के संपर्क से तीव्र हुई। रामकृष्ण मिशन ने 'परिमल' के कवि को अद्वैतवाद दिया। [१८१] अध्ययन के क्षेत्र में दर्शन निराला का सबसे प्रिय विषय जान पड़ता है। वे एक सचेष्ट दार्शनिक और सबल बुद्धिवादी हैं।[१८२]

निराला और राय चौधुरी के काव्य में प्रपत्ति परक वैष्णवी भक्ति आद्यन्त देखी जाती है। आध्यात्मिक उन्नयन के लिये दोनों भक्ति को श्रेष्ठ मार्ग मानते हैं। दोनों कवि सगुणोपासक सन्त भक्त के रूप में आते हैं और उनकी

---

१८०. निराला-परिमल, पंचवटी प्रसंग (४), पृ० २३४
१८१. डा० रामविलास शर्मा-निराला, पृ० ५१
१८२. गंगाप्रसाद पाण्डेय-महाप्राण निराला, पृ० ३२६

कृतियों में प्रपत्तिपरक (आत्म निवेदनमय) वैष्णवी भक्ति का रागात्मक विश्लेषण बहुधा पाया जाता है उनके काव्यों में "अहिर्बुध्न्य संहिता" में विवेचित प्रपत्ति भाव के छहों अंगों का प्रतिपादन हुआ है, किन्तु साम्प्रदायिक उद्वेग अथवा सैद्धान्तिक प्रचार व समीक्षा के रूप में नहीं, वरन् तरल आर्त हृदय की पुकार के रूप में। भावपीड़ित निराला का आर्त क्रन्दन परमात्मा की सेवा में इस प्रकार सुनाई पड़ता है --

विपुल काम के जाल बिछाकर,
जीते हैं जन जन को खाकर
रहूँ कहाँ मैं ठौर न पाकर,
माया का संहार करो हे।[१८३]

परमात्मा के प्रति भक्त राय चौधुरी की दीनता निम्नलिखित कविता में प्रकट होती है :--

नाथ। कि आछे कि दिम तयु बेच चेनेहर
किसेरे जनाम एइ प्रेम हृदयर
तोमार हृदय तुमि लबाकेनेके ?[१८४]

हिन्दी रूपान्तर

हे नाथ,
मेरे पास तुम्हें देने को क्या है ?
कैसे बताऊँगा अपने हृदय का प्रेम
तुम्हारा हृदय तुम कैसे समझोगे।

---

१८३. निराला-अर्चना गीत-७, पृ० २३
१८४. राय चौधुरी- बीणा, पृ० २८।

भक्ति की चरम सीमा में दोनों कवि अपनी लघुता और परमात्मा की महानता का ज्ञान पाकर परमात्मा के चरणों में द्वयता और अहन्ता का परित्याग कर त्याग-समर्पण कर देते हैं, यही भक्ति की सफलता है । निराला जी का आत्म समर्पण इन पंक्तियों में है :-

तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान । [१८५]

राय चौधुरी जी आत्म निवेदन कर कहते हैं :-

नाटनि परिछै अन्तरर प्रेम
किहेरे दिम नो आंजलि
मिठा मिठा कथा नपरे मनत
कि दरे मातौंनो नाथबुलि । [१८६]

हिन्दी रूपान्तर

अन्तर में है प्रेम का अभाव
किससे करूंगा प्रेमालाप,
मिठी कथा की नहीं याद
कैसे बुलाऊँ कह कर नाथ ।

दोनों कवि समन्वयात्मक भक्त थे और उनकी भक्ति किसी साम्प्रदायिकता से मुक्त थी । निराला और राय चौधुरी की कृतियों में आत्मा-परमात्मा ,

---

१८५. निराला , गीतिका, गीत- ४४, पृ० ४६

१८६. राय चौधुरी- बीणा, पृ० ३५ ।

जगत,माया, मुक्ति, भक्ति, योग, ज्ञान आदि अन्यान्य आध्यात्मिक तत्वों की विवेचना उपलब्ध होती है । दोनों ने आदि दैविक भावना के सहारे आध्यात्मिकता तक पहुँचने का मार्ग बताया है अर्थात् भक्ति से ज्ञान की ओर, रूप से अरूप की ओर, गुण से निर्गुण की ओर जाने का मार्ग भारतीय दार्शनिक परम्परा में प्रस्तुत किया गया है । निष्कर्षत: निराला और राय - चौधुरी दोनों दार्शनिक, रहस्यवादी, अद्वैती,भक्त एवं अनाशक्त ज्ञानी पुरुष थे।:-

दार्शनिक मान्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन :--

निराला और राय चौधुरी सैद्धान्तिक दृष्टि में अद्वैतवादी हैं और व्यावहारिक दृष्टि में अद्वैतता की भूमि पर विशुद्ध मानवतावादी हैं । द्वैतता का आभास देने वाले इस प्रपंच में दोनों दार्शनिक कवि अद्वैतता का अनुभव करते हैं और यह भी अनुभव करते हैं कि माया ही द्वैताभास का कारण है । इसके प्रमाण उन दोनों की 'तुम' और मैं ' शैली में रचित कवितायें हैं ।[१८७] अविद्या-माया का खण्डन करने वाली उनकी कवितायें[१८८] शंकरअद्वैत के प्रति उनकी गहन आस्था की परिचायिका हैं ।

निराला और राय चौधुरी में शून्यवाद और शक्ति सम्प्रदाय की स्वीकृति पाई जाती है और उनका समावेश अद्वैत दर्शन में हो जाता है । प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में दोनों शक्ति के उपासक थे । विविध उपायों से दोनों ने

---

१८७. (अ) निराला - परिमल, तुम और मैं, पृ० ८०

( आ ) राय चौधुरी-भूमि काव्य के कुछ अंश ।

१८८. ( अ ) परिमल,माया, पृ० ६१ ।

(आ) राय चौधुरी-तृप्ति, पृ० ४६ ।

शक्ति का स्तवन किया है। किन्तु जहाँ राय चौधुरी जी की शक्ति उपासना प्राचीन शाक्त परम्परा पर आधारित है जिस पर रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द की शक्ति-उपासना की परोक्ष छाया भी पड़ी है वहाँ निराला जी की शक्ति-साधना बंगीय शक्ति-उपासना परम्परा से गृहीत हैं और विशेष रूप से स्वामी विवेकानन्द की शक्ति-साधना पर आधारित हैं। तत्वतः दोनों में समानता है। एक ओर अद्वैती राय चौधुरी की विश्व-कल्याण-कामना इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है :-

निरपेक्षित, उत्पीड़ित, दलित पतित,
शोषण-मुर्च्छित पृथ्वीर बिध्वस्त मानब।
थिय हौबा शत्रुजयी आत्म-चेनात,
नव-सृष्टि जागि उठा आत्म-बेदना।[१८९]

हिन्दी रूपान्तर

अस्पृश्य, उत्पीड़ित, दलित, पतित,
शोषित, मूर्च्छित पृथ्वी का विध्वस्त मानव
स्थिर रहेगा शत्रुंजयी आत्म-चेतना पर,
नव सृष्टि जाग उठेगी आत्म-वेदना पर।

तो दूसरी ओर ब्रह्मवादी निराला जी की स्नेह-धारा इस प्रकार निःसृत होती है :-

मानव न रहे करुणा से वंचित
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता-जल के
यहाँ वहाँ पृथ्वी में सब देशों में छल के।[१९०]

---

१८९. राय चौधुरी-अनुभूति, अभ्युदय, पृ० ५६।
१९०. निराला-अणिमा, भगवान् बुद्ध के प्रति, पृ० २४।

निराला और राय चौधुरी ने अद्वैत और अव्यक्त गीत के द्वारा मानव सेवा करने की कोशिश की है, इसीलिये वे पलायनवादी नहीं हैं। सच्चे अर्थ में वे जीवन के प्रति जागरूक मानवतावादी और आध्यात्मपरक अद्वैतवादी पुरुष हैं।

रहस्यवादी तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन :-

निराला और राय चौधुरी केवल अद्वैती दार्शनिक ही नहीं, रहस्यवादी भी हैं। दोनों कवियों की रचनाओं में ब्रह्म-सत्ता के प्रति जिज्ञासा, मिलन की आतुरता और तादात्म्य की अनुभूति का अर्थात् रहस्यवाद के त्रिविध सोपानों का काव्यगत विवेचन उपलब्ध होता है। जब विश्व प्रकृति में व्याप्त अदृश्य सत्ता में वे प्रियतम का दर्शन करते हैं तब उन्हें तादात्म्य की आनन्दानुभूति प्राप्त होती है। रहस्यवादी की इन्हीं स्थितियों का समूचा कलात्मक विवेचन निराला जी की अनेक कविताओं में हुआ है। उनकी आत्मा की मूक जिज्ञासा कौन तम के पार ? ( रे कह ), अखिल पल के स्रोत ,जल जग, गगन घन-घन-धार ( रे कह )[१६१] से ध्वनित होती है। उनकी आत्मा की विरह-जन्य व्याकुलता अधिक बढ़ती है, तब जाकर अन्त में प्रेम-साधना द्वारा विरहिनी आत्मा को प्रियतम् (ब्रह्म) का परिचय प्राप्त हो जाता है, उसका अहंकार विगलित हो जाता है। आत्म-समर्पण द्वारा उसका प्रियतम् के साथ तादात्म्य हो जाता है, तब समग्र विश्व में प्रिय ही प्रिय, श्याम ही श्याम दिखाई पड़ते हैं :-

गगन गगन है गान तुम्हारा
धन धन जीवनयान तुम्हारा। [१६२]

---

१६१. निराला- गीतिका, पृ० १४

१६२. निराला-अर्चना, गीत, १०३, पृ० ११६

राय चौधुरी विश्व-प्रकृति की समस्त सत्ताओं में परमब्रह्म का स्वरूप देखते हैं। उन्हें जब प्रकृति के विभिन्न रूपों में अगोचर सत्ता की अनुभूति होती है तब वे उस रहस्यानुभूति की अभिव्यंजना चित्रमयी भाषा में, अनेक प्रतीकों के माध्यम से करते हैं। दोनों का रहस्यवाद प्रकृति मूलक, प्रेममूलक और दार्शनिक विधाओं के अन्तर्गत आता है। राय चौधुरी रहस्यानुभूति के सहारे अपने परमब्रह्म को जगत् के नाना रूपों में इस प्रकार पाते हैं :-

भूचर, खेचर, जीब-चराचर,
धातु-उद्भिद, पशु-पक्षी नर,
प्रत्येकटी अणुकणार
पारस्परिक तृप्ति पोवार
पात्रटीवेइ तार कारणो पूर्ण-भगवान्। [१६३]

हिन्दी रूपान्तर

भूचर, खेचर, जीव-चराचर,
धातु, वृक्ष, पशु, पक्षी, नर,
प्रत्येक अणु-परमाणु का
पारस्परिक तृप्ति प्राप्ति का
पात्र ही उसका पूर्ण भगवान् स्वरूप है।

निराला जी को कण कण में परमसत्ता का आभास होता है :-

जिधर देखिये, श्याम विराजे
श्याम कुंज, वन, यमुना श्यामा,

---

१६३. राय चौधुरी-अनुभूति, प्रयोजनर भगबानेइ पूर्ण भगबान, पृ० ८७

श्याम गगन, घन-वारिद गाजे ।
श्याम धरा, तृण-गुल्म श्याम हैं ।[१९४]

दोनों कवि संसार के अणु-परमाणु में परम सत्ता का अनुभव करते हैं । यह 'सर्वं ब्रह्ममयं जगत्' के दार्शनिक तत्व की रहस्यवादी अनुभूति है । निराला के 'श्याम' और राय चौधुरी के 'तुमि' और 'राणी' नाम सम्बोधनों को रहस्यवादी कवि की भाषा में परमब्रह्म के प्रतीक के रूप में स्वीकार करना चाहिये । दोनों कवियों की 'तुम और मैं' शैली की कवितायें दोनों के दार्शनिक रहस्यवाद की परिचायिका हैं । निराला की पंक्ति :-

तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी-कविता ।[१९५]

और राय चौधुरी की पंक्ति :-

मइ रंम तोमात, तुमि मोत रबा
रंम सनासनि है । १९६

हिन्दी रूपान्तर

मैं तुम्हारे भीतर रहूंगा, तुम मुझमें
रहूंगा मिल-जुल कर ।

में आत्मा और परमात्मा के अंश-अंशी भाव वाले अद्वैत दर्शन की कलापूर्ण और काव्यात्मक अभिव्यक्ति देखकर दोनों के काव्यों की समान केन्द्र-भूमि का परिचय

---

१९४. निराला-गीत गुंज, गीत १२, पृ० ७१ ।
१९५. निराला-परिमल, तुम और मैं, पृ० ८०
१९६. राय चौधुरी-अनुभूति, आमंत्रण, पृ० ३८ ।

पाते हैं। कहीं-कहीं निराला जी का रहस्यवाद साधनात्मक और शुद्ध दार्शनिक रूप ले लेता है। जिसकी झलक 'तुलसीदास' में मिल जाती है। निराला जी का रहस्यवादी स्वरूप जहाँ व्यापक है वहाँ राय चौधुरी का रहस्यवाद व्यापक होने के साथ-साथ वर्णन-शैली में सीमित है। निराला जी का रहस्यवाद आध्यात्मिक वर्णनों से विशेष संबंध रखता है उसमें बुद्धि द्वारा किया हुआ आध्यात्मिक चिंतन प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है।[१६७] किन्तु राय चौधुरी जी का रहस्यवाद प्राय: सर्वत्र भावनात्मक और प्रेमात्मक है और उसमें चिन्तन पक्ष से अधिक अनुभूति पक्ष प्रबल है।

निष्कर्ष रूप में निराला और राय चौधुरी दोनों के काव्यों में दिव्य प्रेम की स्थापना है और समष्टि सौन्दर्य-बोध की कल्पना है। दोनों के रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा के भावात्मक अद्वैतवाद की ही कहानी अंकित है और क्यों न हो जब दोनों कवियों का अन्तरंग जगत् और उनकी निजी संवेदनायें समान हैं।

राष्ट्रीय भावनाओं का तुलनात्मक अध्ययन --

निराला और राय चौधुरी की राष्ट्रीय कविताओं और गीतों का अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष यह निकलता है कि दोनों कवियों की रचनायें राष्ट्रीय आदर्शों और मानवीय तत्वों से संवलित हैं। दोनों कवि भारत-माता की भव्यमूर्ति का सुमधुर चित्र खींचते हैं और भारत को माता कहकर पुकारते हैं। भारत की प्राकृतिक सुषमा का गौरव-गान दोनों ने अपने गीतों में किया है।

---

१६७. डा० विश्वनाथ गौड़-आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद, पृ० १५०

भारत-माता की भव्य-मूर्ति का स्तवन करते हुये दोनों राष्ट्र-कवि गरिमापूर्ण अतीत की ओर जब दृष्टिपात करते हैं तो पराधीन भारत की ओर वर्तमान भारत की दुर्दशा दोनों के हृदय को छेद डालती है । वे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिपार्श्व में उद्बोधन और जागरण का क्रान्तिगान करने लगते हैं और यह विश्वास करते हैं कि जन-गण के बीच नवचेतना का जागरण होने पर एक बंधन-विहीन स्वाधीन समाज भारत में स्थापित हो जायेगा । वे उन्मुक्त भविष्य के प्रति आस्थावान भी हैं और कल्पना से भविष्य के सुखमय समाज को उसकी स्थापना के पूर्व ही खड़ा कर देते हैं । पराधीन भारत की दुरवस्था के प्रति अपनी वेदना अभिव्यक्त करने तक दोनों कवि सीमित नहीं थे । दोनों कवियों को विश्वास है कि भारत एक दिन अवश्य स्वाधीन होगा और जाति-वर्णगत भेद-भावों को छोड़कर सारा भारत स्वतंत्र होकर अपनी उन्नति करेगा, वहाँ ऊँच-नीच , पुरुष-स्त्री सबके समान अधिकार होंगे । शुद्ध और पवित्र स्नेह का वातावरण व्याप्त होगा । पराधीनता की भयंकर वेला में ऐसी कल्पना करना प्रकृत कवि और सिद्धों के लिये ही संभव है । दोनों कवियों के जीवन-काल में ही उनका स्वप्न और कल्पना वास्तविकता में परिणत हुई थी । दोनों कवियों की रचनाओं में भारत के टूटे और दयनीय जीवन के प्रत्येक अभिशाप को साहस के साथ विरोध किया है और दैवी आपत्तियों और साहित्यिक जीवन की निराशाओं का शिकार होने पर भी उदात्त मानव समाज की कल्पना की है । वे भारतीय समन्वयवादी अध्यात्मवाद को आत्मसात् कर लेने में समर्थ भी थे । गीता, उपनिषद् आदि के कर्मयोग और वेदान्त दर्शन के उपासक के रूप में उसका अभिनव रूप प्रदान कर नव जागरण के क्षेत्र में वे उपयोग करते थे ।

राय चौधुरी की निम्नलिखित पंक्तियों में :-

> बिश्व-बियपि बिमल-शुद्ध सेवार शिकनि दि,
> ह औक असम भारतर गुरु, भारत उठक जी ।[१६८]

---

१६८. राय चौधुरी-अनुभूति, आबाहन, पृ० ४५

हिन्दी रूपान्तर

विश्व को मिलेगा विमल-विशुद्ध सेवा की शिक्षा
असम होगा भारत का गुरु, भारत उठेगा होकर जिन्दा ।

निराला जी की :-

सत्य है मनुष्य का, मनुष्यत्व के लिये ,
बन्द हैं जो दल अभी किरण-संपात से खुल गये वे सभी ।[१६६]

में भारतीय आध्यात्मवाद, उसके उन्नायकों, समकालीन दार्शनिकों और राष्ट्र-भक्तों के सिद्धान्त ही काव्य के रूप में उभर आये हैं ।

भिन्न भाषी कवि होते हुये भी एक राजसत्ता और एक परिस्थिति के भीतर प्रतिपालित कवि निराला और राय चौधुरी की राष्ट्रीय विचारधारा में साम्यता मिलती है ।

राष्ट्रीयता के विराट् और विस्तृत स्वरूप - निराला और राय-चौधुरी की कृतियों में आद्यन्त स्पन्दित होता है । भारतीय समाज में रहने वाले पारस्परिक वैषम्य और भेद-भावों को कुचलकर एकता के साथ स्वच्छन्द जीवन चलाने का सन्देश वे देते थे और श्रद्धा-भावना की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखते थे । उनका देश-प्रेम, जातीय और राष्ट्रीय एकसूत्रता के आधार पर, अन्तर्राष्ट्रीय मानव-साम्य का एक अंग बन सकता है ।

---

१६६. निराला-अणिमा, उद्बोध, पृ० ३७

# अध्याय — ५

## निराला और राय माधुरी के काव्यों में भाव एवं कलापक्ष

### निराला जी के काव्य में भावपक्ष

१. रस-नियोजना :—

निराला जी की कृतियों की रस-निष्ठा अप्रतिम है । उनमें बौद्धिक चिन्तन पक्ष और संवेदनशील भावपक्ष का सामंजस्य हुआ है । परिमल की में 'जुही की कली' और गीतिका की 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे', 'खेली होली' में उन्होंने न उन्मुक्त शृंगार का वर्णन प्रस्तुत किया है तो 'स्पर्श से लाज लगी'[१], 'तुम और मैं'[२] में दार्शनिक और रहस्यवादी भूमिका में रहते हुये जीव और ब्रह्म के पारस्परिक स्नेह-सम्बन्ध का चित्रण किया है । 'बादल-राग', 'आवाहन' 'जागो फिर एक बार'[३] में ओजस्वी भाषा में दर्पपूर्ण वीर-रस की योजना की है तो 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन', 'दिल्ली', 'तोड़ती पत्थर' 'सरोज स्मृति'[४]

---

१. निराला - गीतिका, पृ० ३३

२. निराला-परिमल, पृ० ७०

३. वही, पृ० १५६, १३७, १७७

४. वही, पृ० १०६, १२५, १३२

५. निराला- अनामिका, पृ० ५८, ८१, १२१

में करुणा और शान्त रसों से ओत-प्रोत काव्य का निर्माण भी किया है। निराला जी की 'गीतिका', 'अर्चना', 'आराधना', 'अणिमा', 'गीत गुंज' आदि के अनेक प्रार्थनापरक गीतों में भी करुणा और शान्त रस के अतिरिक्त भक्ति रस की भी समन्वय हुआ है। इस प्रकार निराला जी के काव्यों में प्रमुख रूप से शृंगार रस के दोनों पक्षों का तथा वीर, शान्त और करुणा रस के परिनिष्ठित रूप का नियोजन हुआ है। उनकी प्रारम्भकालीन कविताओं में शृंगार और वीर रस का प्राधान्य है तो परावर्ती रचनाओं में करुणा और शान्त रस की प्रमुखता है। आचार्य वाजपेयी जी के मतानुसार 'निराला के काव्य में रस उनकी सांस्कृतिक चेतना की उपज है। यदि वह सांस्कृतिक चेतना सुदृढ़ न होती तो वे विभिन्न रस भूमियों में जाकर किसी एक की भी मार्मिक अवतारणा न कर पाते। यह कहना कठिन होगा कि उनमें किस रस की प्रधानता है। जैसे प्रकृति की ही कोई वस्तु विकसित होती हुई विभिन्न रूप धारण करती है, उसी प्रकार उनका कवि-व्यक्तित्व आगे बढ़ा है। उनमें वीररस की भी योजना है। उनमें सुन्दरतम शृंगारिक तत्व भी जुड़े हैं। उनके अन्तिम समय के गीत मूलतः शान्त और करुणा रस से सम्पृक्त हैं। उनके काव्य को किसी रस विशेष की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।[६] इन चार प्रमुख रसों के अतिरिक्त निराला जी की परवर्ती यथार्थोन्मुख व्यंग्य-प्रधान रचनाओं में उन्नत प्रकृति के हास्य रस का भी कलात्मक नियोजन हुआ है।[७]

निराला जी के काव्य की सुन्दर रस नियोजन क्षमता का प्रमुख कारण उनकी द्विधारहित सांस्कृतिक चेतना और अस्खलित व्यक्तित्व ही है।

---

६. रमेशचन्द्र मेहरा- निराला का परवर्ती काव्य से उद्धृत, पृ० २४६

७. निराला-कुकुर मुत्ता, नये पत्ते, बेला।

इन रसों में यदि कोई रस निराला जी के काव्य में आद्यन्त उपलब्ध है तो वह शान्त रस ही है।

> सहज-सहज कर दो, सकल-कलश रस भर दो।
> ठग ठग कर मन को, लूट गये धन को
> ऐसा असमंजस, धिक जीवन-यौवन को, निर्भर हूं, वर दो।
> जगज्जाल छाया, माया ही माया,
> सूझता नहीं है पथ, अंधकार आया, तिमिर भेदकर दो[८]।

इन कविताओं में वैराग्य और निर्वेद नामक स्थायी भाव से निस्पन्न शान्त रस का परिपाक दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त निराला जी के काव्य में शृंगार रस के दिव्य तथा वासनाशून्य रूप का भी उज्ज्वल चित्रण दर्शनीय है जिसे भक्ति रस की मान्यता प्रदान करने वाले मधुर रस की संज्ञा से अभिहित करते हैं। कान्तभाव से भगवद् भक्ति करने वालों के अतीन्द्रियवादी प्रेम उद्गार भी आलम्बन के अलौकिक होने के कारण लौकिक शृंगार की कोटि में नहीं आते, मधुर रस की कोटि में आते हैं। गीतिका के कई गीतों में प्रिय परमात्मा की भक्ति के कारण मिलनाकांक्षा से चलने वाली एक भक्त-आत्मा का अन्तर्द्वन्द्व पूर्ण, साथ ही आत्म समर्पणमय चित्र प्रस्तुत होता है जो शृंगारमयी मधुर भक्ति और मधुर रस का पुष्ट निदर्शन है :-

> मौन रही हार, प्रियपथ पर चलती, सब कहते शृंगार।
> शब्द सुना हो, तो अब लौट कहां जाऊं?
> उन चरणों को छोड़ और शरण कहां पाऊं?
> बजे सजे उर के इस सुर के सब तार-
> प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार।[९]

---

८. निराला- अर्चना, गीत- ६०, पृ० ७६

९. निराला- गीतिका, गीत ६, पृ० ८

निराला जी की परवर्ती व्यंग्यात्मक रचनाओं - कुकुर मुत्ता, बेला, नये पत्ते आदि में वैयक्तिक अवसाद और सामाजिक वैषम्यों के कारण उनका तीक्ष्ण और गंभीर संवेदन रसात्मक स्वरूप लिये प्रकट हुआ है। रस की दृष्टि से इन रचनाओं को हास्यरस प्रधान माना जायेगा। यहां यह कह देना असमीचीन नहीं होगा कि पूर्णतः व्यंग्यपरक रचनाओं में निराला जी की दृष्टि जीवन और समाज की विषमता, विद्रूपता और कुरूपता की ओर गयी है और हास्य-पूर्ण रचनाओं में उनके मार्मिक और गम्भीर भाव-संवेदन की भूमिका स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। 'कुकुरमुत्ता' हास्य रस प्रधान है और स्फाटिक शिला व्यंग्य प्रधान है। 'कुकुर मुत्ता' में भी समाज के कुरूप दृश्यों की ओर निराला जी की दृष्टि गई है। उसमें उनकी वृत्ति भावात्मक गहराई तक पहुंची है, अतः वहां रसात्मकता की अवतारणा संभव हुई है। 'कुकुर मुत्ता' हास्य-रस-प्रधान रचना है, किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि ऐसी रचनाओं के मूल में निराला जी के आन्तरिक अवसाद की धारा प्रवहमान है। निराला जी के इस प्रकार के परवर्ती काव्य को लक्ष्य करके ही जिनसे हास्य-व्यंग्य का स्वरूप सामने आता है, डा० रामविलास शर्मा कहते हैं, ऐसा शिष्ट व्यंग्य, सच्ची अन्तर्व्यथा से निकला हुआ, जो पढ़ते हुये सहृदय को प्रभावित कर सकें, साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है[१०]। इस प्रकार रस नियोजन की दृष्टि से निराला जी की कृतियों में शृंगार, वीर, करुण, हास्य, शान्त और भक्ति रसों का परिनिष्पन्न रूप पाया जाता है। साथ ही यह भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है कि उनकी कृतियां भावतन्मयता, ठोस दार्शनिकता और अद्वैत भावानुमोदित भक्ति की भूमिका पर स्थित हैं, अतः उनमें शान्त रस की व्यापकता आद्यन्त परिलक्षित होती है। निराला जी की रसनियोजन-प्रक्रिया विशेषकर शृंगार रस निष्पत्ति की प्रक्रिया सर्वत्र विराट्, संयमित, तटस्थ है और निर्वैयक्तिकता के साथ ही निराला जी के अस्खलित व्यक्तित्व की परिचायक हैं।

---

१०. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० १२५।

२. प्रतीक विधान –

निराला जी की काव्य-कला की उत्कृष्टता भाव-चित्रों का पुनरुत्सृजन करने वाले प्रतीकों के विधान में पायी जाती है । डा० रामअवध द्विवेदी के शब्दों में प्रतीक किसी पदार्थ का चित्र नहीं खींचता, केवल संकेत द्वारा उसकी विशिष्टता अथवा उसके प्रभाव इंगित करता है ।[११] निराला जी के प्रतीक जो व्यक्त माध्यम से अव्यक्त का संकेत व्यक्त करें, साधन रूप में ग्रहण करते हुये करते हैं ।[१२] उपर्युक्त कथन के पुष्ट प्रमाण हैं । उनके प्रतीकों से उन्मेषपूर्ण और आवेगमयी अनुभूतियों का सम्यक् प्रतिपादन होता है । उनकी सूक्ष्मतम अनुभूतियाँ प्रतीकों की सहायता से ही संवेद्यता के उच्चतम स्तर पर अभिव्यंजित हो पाती हैं । निराला जी के प्रतीक विभिन्न प्रकार के हैं, कुछ उनके दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त करते हैं तो कुछ समाज पर व्यंग्य और प्रहार करते हुये जनवादी स्वर को मुखरित करते हैं ।

निराला जी की कई ऐसी रचनायें हैं जिनमें प्राकृतिक पदार्थों के प्रतीक ग्रहण करके उनके द्वारा उदात्त आध्यात्मिक विचारों की कलात्मक अभि-व्यंजना की गई है । इसके ज्वलन्त प्रमाण उनकी दो प्रमुख रचनायें – 'जुही की कली और शेफालिका' हैं । इन दोनों में प्राकृतिक पदार्थों 'कली और मलय' एवं 'शेफालिका और गगन' का शृंगार चित्र प्रस्तुत करते हुये सांकेतिक रूप से जीव-ब्रह्म के अनन्य सम्बन्ध को अभिव्यक्त किया गया है :–

> चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
> हेर प्यारे को सेज-पास,
> नम्रमुख हँसी-खिली, खेल रंग, प्यारे-संग ।[१३]

---

११. साहित्य-रूप, पृ० २७३

१२. डा० जगदीश गुप्त-काव्य बिंब, समस्या और स्वरूप, नई कविता, अंक ७, पृ० १६६ ।

१३. निराला-परिमल, जुही की कली, पृ० १७२ ।

और -

शोक-दु:ख-जर्जर इस नश्वर संसार की क्षुद्र सीमा
पहुँचकर प्रणाय-द्वार, अमर विराम के, सप्तम सोपान पर
पाती प्रेम-धाम, आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
सुबह की आली, शैफाली भर जाती है।[१४]

'जागृति में सुप्ति थी' में भी प्रकृति के ही प्रतीकों की सहायता से जीवन की क्लान्ति और ब्रह्मलीनता के आनन्द की अभिव्यक्ति हुई है। वहाँ जागरण क्लान्ति का प्रतीक है तो स्वप्न आनन्द का :-

जड़े नयनों में स्वप्न खोल बहुरंगी पंख विहग से
सो गया सुरा-स्वर प्रिया के मौन अधरों में
दग्ध एक कंपन-सा निद्रित सरोवर में।
..............................

थक कर वह चेतना भी लाजमयी, अरुण-किरणों में समा गयी
......................

जागरणक्लान्ति थी।[१५]

इन पंक्तियों में माया-बंधन से विनिर्मुक्त होकर ब्रह्म-तादात्म्य की ओर उन्मुख होने वाली आत्मा का पुष्ट संकेत उपलब्ध होता है।

निराला जी की रचना 'खेवा'[१६] में सागर, नैया और खेवनहार क्रमश: विश्व, जीवन और परमात्मा के प्रतीक बन कर आये हैं। अध्यात्म तत्व की सूक्ष्मता, अलौकिकता और प्रच्छन्नता की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकों की भी शरण लेनी पड़ती है, रहस्यात्मक अनुभूतियाँ अभिधा में बंध नहीं पाती। इस

---

१४. निराला-परिमल, शैफालिका, पृ० १७५-१७६।
१५. वही, जागृति में सुप्ति थी, पृ० १७३-१७४।
१६. वही, खेवा, पृ० ३०।

दृष्टि से निराला जी के प्रतीक आध्यात्मिक तत्व के संप्रेषण में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुये हैं। अद्वैतवादी सिद्धान्त से सम्बन्धित उनकी कविता "तुम और मैं" "मैं" "तुम" और "मैं" क्रमश: परमात्मा और आत्मा के प्रतीक बन कर आये हैं। "प्रेयसी" में माया-बन्धन से पंकिल होकर देह को कलुषित करने वाली आत्मा के प्रतीक के रूप में "प्रेयसी" का चित्रण हुआ है और ब्रह्म-तत्व से विलग होकर विश्व में आने वाली और अन्त में सत्य-ज्ञान से उत्प्रेरित होकर माया-बन्धन से मुक्तावस्था में रहस्यमयी सत्ता में तन्मय होने वाली प्रेयसी आत्मा का सुन्दर चित्र भी खींचा गया है। इस प्रतीकात्मक चित्रण के उदाहरण के रूप में निम्नांकित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं :-

प्रणय के प्रलय में सीमा सब खो गयी.......
देखती हुई सहज, हो गयी मैं जड़ीभूत, जगा देह-ज्ञान,
फिर याद गेह की हुई........... ।

........ .......................... ....

बीता कुछ काल, देह-ज्वाला बढ़ने लगी,
नन्दन-निकुंज की रति को ज्यों मिला मरु, उतर कर पर्वत से निर्झरी भूमि पर
पंकिल हुई, सलिल-देह कलुषित हुआ ।

....... ................

गृह-जन थे कर्म पर। मधुर प्रभात ज्यों द्वार पर आये तुम,
नीड़-सुख छोड़ कर मुक्त उड़ने को संग, किया आह्वान मुझे व्यंग्य के शब्द में,

......... ........ ... ... ... ... ... ... ... ... ... ...... ...... .....

पहचाना मैंने, हाथ बढ़ाकर तुमने गहा, चल दी मैं मुक्त, साथ। [१७]

---

१७. निराला-अनामिका, प्रेयसी, पृ० ४,५,६,७,८,६।

प्रेम के उद्दाम प्रवाह में बहने वाली प्रेयसी आत्मा की प्रतिकृति बनकर प्रस्तुत हुई है, इसमें कवि की रचना शक्ति, अनुभूति के साथ अन्त: संगठन का परिचय प्राप्त होता है। इस कविता में प्रयुक्त "प्रलय, सीमा, पर्वत, निर्भर, गेह की याद, देह-ज्वाला, सलिल-देह कलुषित हुआ, नीड़ सुख, मुक्त उड़ना, चल दी मैं मुक्त साथ" इत्यादि शब्दों और वाक्यांशों से अलग-अलग प्रतीकात्मक अर्थ भी विदित होता है, साथ ही कविता अपनी सम्पूर्णता में भी सांकेतिक आध्यात्मिक तत्त्व की अभिव्यंजना करने में पूर्णत: सफल है। निराला जी का विप्लवी बादल न केवल उनके चिर विप्लवी व्यक्तित्त्व का प्रतीक है वरन् युगीन विप्लवमय जीवन-व्यापी संघर्ष का प्रतीक है। निराला जी की राम की शक्ति पूजा का रावण असामाजिक और असांस्कृतिक मन: प्रवृत्ति का प्रतीक है और राम उसकी विपरीत मन: प्रवृत्ति के। राम-रावण-युद्ध जीवन और जगत् में, साथ ही मानव के अन्तर्जगत् में चलने वाले सत्य और असत्य के संघर्ष के प्रतीक हैं। निराला जी की प्रौढ़तम रचना "तुलसीदास" की प्रतीक-योजना बहुत ही सुगठित है। उक्त काव्य का प्रारंभ और अन्त क्रमश: संध्या और प्रभात के वर्णनों के साथ होता है जो भारतीय संस्कृति के पतन और पुनरुत्थान के प्रतीक हैं। उसकी सारी घटनायें प्रतीकात्मक हैं। काव्य के दोनों पात्रों "तुलसीदास" और "रत्नावली" में होने वाले मानसिक संघर्षों और आध्यात्मिक परिवर्तनों ने भी उनको प्रतीकात्मक बना दिया है।

निराला जी की सामाजिक चेतना का स्वर मुखरित होने वाली रचनाओं में भी प्रतीकों की सुपुष्ट योजना हुई है। वर्तमान सामाजिक विषमताओं और विभीषिकाओं के प्रति चुभता हुआ व्यंग्य कसने वाली रचना "कुकुर मुत्ता" इसका प्रमाण है। इसमें कवि ने "कुकुर मुत्ते और "गुलाब" को क्रमश: सर्वहारा और पूंजीवादी वर्ग का प्रतीक माना है। उच्च वर्ग या कैपिटलिस्ट-वर्ग के प्रतीक "गुलाब" के प्रति तीखा व्यंग्य कसा गया है :--

अबे सुनबे गुलाब, भूल मत गर पायी खुशबू रंगो आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट[१८]।

गुलाब का प्रतिद्वन्द्वी कुकुर मुत्ता निम्न वर्ग या सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बन कर आया है जिसका स्वरूप इस प्रकार है :-

और अपने से उगा मैं, बिना दाने का चुगा मैं,
कलम मेरा नहीं लगता, मेरा जीवन आप जगता।[१९]

'कुकुर मुत्ता' उन साम्यवादी नेताओं का भी प्रतीक है जो अपने समर्थन में वेदों से लेकर आज तक की ज्ञान राशि को अपने चश्मे से देखते हैं.......... नवाब साहब का 'कुकुर मुत्ता' के प्रति आकस्मिक प्रेम उस उच्चवर्ग के बौद्धिक विलास का प्रतीक है जो हवा के साथ रुख बदलने का अवसरवादी दृष्टिकोण रखते हैं[२०]।

निराला जी की 'गर्म पकौड़ी'[२१] बौद्धिकता प्रधान नये विचारों और नई परिस्थितियों का प्रतीक है और 'थोड़े के पेट में बहुतों को आना पड़ा'[२२] वर्तमान वैज्ञानिक और बुद्धिपरक जगत् में साम्राज्यवादी शोषण का प्रतीक उपस्थित करता है। 'निराला जी का प्रतीक-विधान भावनात्मक तारतम्य के साथ लयात्मक चेष्टा से भी सन्निविष्ट है।[२३] भावनाओं की तीव्रता को व्यक्त करने की जो क्षमता निराला जी के प्रतीकों में है वही उनकी सफलता का मूल आधार है। प्रतीक निराला-काव्य में सत्यान्वेषण का सबल साधन

---

१८. निराला-कुकुर मुत्ता - , पृ० ३९
१९. निराला- कुकुर मुत्ता, पृ० ४०
२०. प्रो० सिन्दूर विरिक-जन भारती, निराला,अंक,संवत् २०१९,पृ० १४६,१५०
२१. निराला ,नये पत्ते, पृ० ४४
२२. वही, पृ० २६
२३. धनंजय वर्मा- निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ० २०६ ।

रहा है ।[२४] इस प्रसंग में यह कहना नितान्त आवश्यक है कि निराला जी ने प्रतीकों के सहारे चित्रण को प्रधानता नहीं दी है, किन्तु भावनाओं की सबल अभिव्यक्ति को ही उन्होंने प्रतीकों का मुख्यतम कार्य स्वीकार किया है ।

३. बिम्बवाद :-

बिम्ब शब्द मानस-प्रतिमा का पर्याय है । मनुष्य के जीवन में बिम्ब अथवा कल्पना का बड़ा महत्त्व है । परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मन में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमायें भी रहती हैं । निराला जी के अनेक गीतों में ऐसे भिन्न बिम्ब की प्रतिछाया दिखाई देती है । जिस बाग में कुकुर-मुत्ता उगा है, उसमें फूल बहुत से हैं, उनके नाम कई पंक्तियों में गिनाये गये हैं, किन्तु चिड़ियों में केवल बुलबुल का नाम लिया गया है, इसलिये कि बाग नवाब का है, बाकी सब चिड़ियां हैं :-

चहकते बुलबुल, मचलती टहनियां,
बाग चिड़ियों का बना था आशियां ।[२५]

कोयल का स्वर जहां पावन है, पक्षियों का कलरव जहां मृदुल और मनोरम है, वह यथार्थ बोध की जगह रूढ़िवादी कल्पना अधिक है । केवल बाद के गीतों में रूढ़ि से हटकर निराला बागों में गूंजता हुआ कोयल का वास्तविक स्वर सुनते हैं :-

कुंज कुंज कोयल बोली है ।
स्वर की मादकता घोली है ।[२६]

---

२४. प्रो० सिन्दूर विरिक-जन भारती, निराला, अंक १, संवत् २०१६, पृ० १५०
२५. निराला-कुकुर मुत्ता, पृ० ३८
२६. निराला : अर्चना, पृ० ६१

निराला के काव्य में रूप-रस-गंध के बोध परस्पर परिवर्तनशील हैं। अंधकार दिखाई देता है तो ध्वनिमय होने से सुनाई भी देता है। पेड़ों में नये पत्ते आये, निराला को लगा कि डालियों से नये स्वर फूट रहे हैं। आकाश में इन्द्र धनुष के रंग दिखाई देते हैं, वे भी स्वर हैं। निराला वास्तव में सुनते कुछ नहीं हैं, कल्पना से चित्र को सजा रहे हैं। आकाश ही रूप बदलकर धरती, जल, प्रकाश आदि बनता है, आकाश का गुण शब्द भी उसी प्रकार रूप बदल रस, गन्ध बन सकता है अथवा रूप, रस, गन्ध में शब्द सुना जा सकता है। निराला जी ने समुद्र की बहुत स्थानों में चर्चा की है किन्तु समुद्र दूर देखा जा सकता है, उसकी लहरों का गर्जन सुना जा सकता है, उसका जल पिया जा नहीं सकता।

निराला जी के काव्य में प्रकृति के सुखद और दु:खद दोनों रूप विद्यमान हैं। "पंचवटी प्रसंग" में राम के आगमन से प्रकृति सरस हुई है किन्तु वह त्रास का कारण मात्र थी। "तुलसीदास" में निराला जी ने लिखा है कि मनुष्य के मानसिक प्रयत्न द्वारा प्रकृति को सुखद बनाने का प्रयास मिलता है।

निराला जी के काव्य जगत् में दो प्रकार के वन हैं, एक वह "विजन वन" जिसमें "जुही की कली" सोती है, दूसरा वह गहन कानन जिसे पार करता हुआ मलयानिल उस तक पहुंचता है :--

> वन-वन उपवन-उपवन
> जागी छबि खुले प्राण।[२७]

यह वही वन है जिसमें "जुही की कली" सो रही थी। दूसरा वह वन है जिस पर दिनमणिहीन आकाश से उतरता है :--

---

२७. निराला-गीतिका, पृ० ६

उतर रहा अब किस अरण्य पर
दिन मणि-हीन अस्त आकाश । [२८]

निराला की चेतना इन्द्रियबोध के अनेक स्तरों पर सक्रिय होती है, अनेक प्रकार के बोधों को एक ही अनुभव में समेट लेती है । उनमें तीव्रता पैदा करके उनके अलगाव की सीमायें मिटा देती हैं । निराला मानव और प्रकृति में व्याप्त उसे जीवन-मरण की सामान्य क्रिया की पहचान करते हैं । "निराला का रूप-गन्ध - रस-बोध पेंचीदा है । वर्णगन्ध बन जाता है, गन्ध स्वर, स्वर अग्नि । वे प्रकृति और मनुष्य में एक ही जीवन-मृत्यु की प्रक्रिया का अनुभव करते हैं, वे चेतना में तरंगें उठते दिखा कर उसे रूप-स्पर्श-बोध के स्तर पर उतार लाते हैं । उनका मूर्ति-विधान खण्ड-सत्य प्रस्तुत न करके मानव-प्रकृति का संश्लिष्ट यथार्थ-गहराई से चित्रित करता है । [२६]

बिम्ब-कला की दृष्टि से निराला ने मुख्यत: गत्यात्मक-अनुरणात्मक तथा साहचर्य परक बिम्बों का विधान किया है, जिससे अर्थ को स्पष्टता मिली है । अनुरणात्मक-गत्यात्मक बिम्ब - विधान का उदाहरण 'बादल राग' की निम्नलिखित पंक्तियों में व्याप्त होता है :-

धंसता दल-दल, हंसता है नद खल-खल
बहता, कहता, कुल-कुल, कल-कल, कल-कल । [३०]

यहाँ घोर वृष्टि के करारों पर टूटते हुये अरार, धंसती-दहलदलाती जमीन,

---

२८. निराला-परिमल, यमुना के प्रति, पृ० ५०
२६. रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० ३३६
३०. निराला-अपरा, पृ० ४६ ।

खल-खल हंसता नद-प्रवाहों, वृष्टि की बौछार के कारण नद से कुल-कुल, कल-कल की उगरती स्पष्ट ध्वनि अर्थ का मार्मिक भावन कराती है । चाक्षुष और श्रौत दोनों प्रकार की संवेदनाओं के कारण अर्थ-बोध कहीं तीव्र हो जाता है । 'राम की शक्ति पूजा' की 'ले लिया हस्त लक-लक करता वह महाफलक' में भी 'लक-लक' की गत्यात्मकता के कारण महाफलक का जो बिम्ब उभरता है वह अर्थ को तत्क्षण ग्राह्य बना देता है । 'सरोज स्मृति' की --

उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील ।[३१]

पंक्तियों में 'टलमल' की गत्यात्मकता भी ऐसा ही बिम्ब उभार कर सद्यः अर्थ-प्रत्यक्ष करा देती है । 'गीतिका' के 'कण-कण कर कंकण, प्रिय किण-किण रव किंकिनी' वाले पद में अनुरणनात्मकता द्वारा जो श्रौत बिम्ब दर्शाया गया है उससे भी अर्थबोध को सहजता, तीव्र गूंज-अनुगूंज प्राप्त होती है ।

साहचर्यपरक बिम्ब-विधान का उदाहरण 'अनामिका' की 'बहुत दिनों बाद खुला आसमान' कविता है । इसमें एक-पर-एक जितने बिम्ब उठाये गये हैं वे सबके सामान्य जीवन में अनुभूत हैं । खुलता आसमान, निकलती धूप, खुश होता जवान, दिखती दिशायें -- इनके सबका पुराना साहचर्य है । इस कविता में नर-क्षेत्र के अन्तर्गत मनुष्य, मनुष्य के अन्तर्गत पशु, पशु के अन्तर्गत गाय, भैंस, भेड़ तथा चराचर क्षेत्र के अन्तर्गत आसमान, निशा, धूप, पनघट के जितने बिम्ब प्रकट हुये हैं, उन सब से पाठकों के विशाल वर्ग का अविच्छिन्न साहचर्य है । कवि का यह साहचर्य-मूलक बिम्ब -विधान अर्थ को सीधे भावन के समतल पर उपस्थित करता है, जिसमें पाठक भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों की गलियों में घूमने लगता है ।

---

३१. निराला-परिमल, पृ० १७६

निराला जी के काव्य में कलापक्ष :-

१. छन्दोविधान :-

निराला जी ने पुरातन बन्धनमय छन्दों को अनुपयोगी पाकर परम्परा विहित और लय समन्वित छन्द अर्थात् मुक्त छन्द की अवतारणा की। 'मुक्त-छन्द' निराला जी की क्रान्ति की चरम सीमा है और इस कारण रूढ़िप्रिय व्यक्तियों का विरोध उन्हें सहना पड़ा। भारतीय सांस्कृतिक भूमिका पर स्थापित यह नया छन्द विधान परवर्ती कवियों द्वारा बड़ी ही सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया गया। निराला जी के चार प्रकार की रचनायें उपलब्ध हैं -- (१) सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें, (२) विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें (३) मुक्त छन्द की कवितायें और (४) उर्दू छन्द - विधान पर आधारित कवितायें। निराला जी के संगीताश्रित गीतों और गीतिकाव्यों को छोड़ कर उनकी शेष सभी रचनायें इन चार वर्गों के अन्तर्गत आ जाती हैं।

(१) सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें -

'परिमल' के प्रथम खण्ड में उपलब्ध इन कविताओं को छन्दबद्ध रचनायें कहा जा सकता है। निराला जी ने स्वयं कहा है कि इनके लिये 'हिन्दी के लक्षण - ग्रन्थों के द्वारपालों को 'प्रवेश निषेध' या ' भीतर जाने की सख्त मुमानियत है' कहने की जरूरत शायद न होगी'।[३२] इन रचनाओं के चारों चरणों में समान मात्रायें होती हैं और अन्त्यानुप्रास भी मिलते हैं :-

---

३२. निराला-परिमल की भूमिका, पृ० ८

ग्रीष्म काल के मृदु रवि-कर-तार ,
गूंथा वर्षा जल-मुक्ता हार,
शरद् की शशि माधुरी अपार
उसे भर दैती धर ध्यान,
सिक्त हिम कण से छन छन बाल
शीत में कर रखा अज्ञात ,
वसन्ती सुमन सुरभि भर प्रात,
बढ़ाया था किसका सम्मान ।।[३३]

उपर्युक्त छन्द के प्रत्येक चरण में समान रूप से १६ मात्रायें हैं और प्रथम तीन चरणों और द्वितीय तीन चरणों में अन्त्यानुप्रास है । साथ ही तुक भी मिलता है । इसे १६ मात्राओं वाले संस्कारी जाति के पद्धरि छन्द के अन्तर्गत रखा जा सकता है । यद्यपि सभी चरणों के अन्त में (लघु-गुरु लघु ) के क्रम पर मात्रायें नहीं आयी हैं ।

जलद नहीं-जीवनद,जिलाया, जब कि जगज्जीवनमृत को
तपन-ताप-सन्तप्त तृषातुर, तरुण तमाल तलाश्रित को
पय-पीयूष-पूर्ण पानी से, भरा प्रीति का प्याला है
नव नव,नव जन, नव तन,नव मन, नव धन, न्याय निराला है ।[३४]

इसके प्रत्येक चरण में १६-१४ के क्रम से ३० मात्रायें समान रूप से विद्यमान हैं , गुरु-लघु कोई विशेष क्रम में नहीं हैं, अत: इसे 'लावनी' छन्द कह सकते हैं और

---

३३. निराला - परिमल,खोज और उपहार, पृ० ३५-३६
३४. निराला-परिमल,जलद के प्रति, पृ० ७८

प्रथम व द्वितीय और तृतीय व चतुर्थ चरणों में अन्त्यानुप्रास मिलते हैं ।

(२) विषममात्रिकसन्त्यानुप्रास कवितायें -

विषममात्रिक छन्दों के संबंध में पं० जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने छन्द प्रभाकर' में लिखा है, 'न सम नापुनि अर्धसम विषम जानिये छन्द'[३५] जो छन्द सममात्रिक चतुष्पदी नहीं हैं जिनमें अर्धसम मात्रिक छन्दों का लक्षण भी नहीं मिलता है उन अनियमति और संयुक्त छन्दों को विषम छन्द कहा जाता है । चार चरणों से कम अथवा अधिक चरण वाले छन्दों को भी विषम छन्द कहा जाता है । उनमें किसी एक छन्द की पंक्ति को लेकर शेष सभी बंध दूसरे छन्द छन्द के दिये जाते हैं । निराला जी के ऐसे अनेक छन्द मिलते हैं जो विषममात्रिक होते हुये भी सान्त्यानुप्रास होते हैं । इनके सम्बन्ध में निराला जी का वक्तव्य द्रष्टव्य है, इनमें लड़ियां असमान हैं, पर अन्त्यानुप्रास है । आधारमात्रिक होने के कारण ये गायी जा सकती हैं । पर संगीत अंगरेजी ढंग का है । इस गीत को मैं 'मुक्तगीत' कहता हूं ।'[३६] इन शब्दों में भावों की प्रसरणशीलता के अनुकूल परिवर्तन क किया जाता है अर्थात् इनके चरणों की मात्रायें भावानुकूल घटाई-बढ़ाई जाती हैं, किन्तु अन्त्यानुप्रास का पालन बराबर किया जाता है । निराला जी की अधिकांश विषममात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताओं की प्रमुख विशेषता यह है कि वे किसी छन्द विशेष का अनुसरण नहीं करतीं अथवा उनमें नियमानुकूल कोई विशेष छन्द मिश्रण भी नहीं होता । उनके चरण भावानुरूप छोटे-बड़े होते हैं और उनका स्वर-विन्यास ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चलता है । किन्तु उनमें मात्रा-नियम का आग्रह न होने पर भी अधिकांशतः तुक आवृत्ति होती है । इस वर्ग में 'परिमल' के द्वितीय खण्ड और 'तुलसी दास' की कवितायें और 'अनामिका', 'आराधना', 'अणिमा' आदि की अनेक कवितायें आती हैं । इस प्रकार के छन्दों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि

---

३५. छन्द प्रभाकर, पृ० ६३

३६. निराला-प्रबंध प्रतिमा, मेरे गीत और कला, पृ० २६६

भावों की गुंफन-शीलता, आवेग जनित भावों में क्रम-विपर्यय और सामासिक भावशृंखला आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिये भावानुकूल, संकुचित या प्रसरणशील विषममात्रिक चरणों के संयोजन की आवश्यकता थी । यह प्रवृत्ति काल सापेक्ष है । ऐसे छन्दों में लय प्रवाह तो बना रहता है, साथ ही वे सान्त्यानुप्रास भी होते हैं । अत: उनको मुक्त छन्द की कोटि में ग्रहण नहीं किया जा सकता, किन्तु मुक्त-छन्द की पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया जा सकता है :-

| | | |
|---|---|---|
| वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी | - | २२ मात्रायें |
| वह दीप-शिखा सी शान्त, भाव में लीन | - | २१ ,, |
| वह क्रूरकाल-ताण्डव की स्मृति-रेखा सी | - | २३ ,, |
| वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन | - | २१ ,, |
| दलित भारत की ही विधवा है ।[३७] | - | १७ ,, |

पूजा सी, रेखा सी और लीन-दीन में अन्त्यानुप्रास है ।

| | |
|---|---|
| उमड़ सृष्टि के अन्तहीन अम्बर से | २० मात्रायें |
| घर से क्रीड़ारत बादल से | १८ ,, |
| ये अनन्त के चंचल शिशु सुकुमार | १६ ,, |
| स्तब्ध गगन को करते हो तुम पार | १६ ,, |
| अंधकार-घन अंधकार ही | १६ ,, |
| क्रीड़ा का आगार ।[३८] | ११ ,, |

---

३७. निराला-परिमल, विधवा, पृ० ११६

३८. वही, बादल राग (४) पृ० १६४

अम्बर से, बादल से, सुकुमार, आगार और पार में अन्त्यानुप्रास है ।

निराला जी की कतिपय ऐसी रचनायें भी हैं जिनमें प्रत्येक कविता की चरण संख्या चार से अधिक हैं और उनमें तीन-चार चरण सममात्रिक होते हैं और उनके साथ विषम मात्रिक चरण भी रख दिये जाते हैं । 'तुलसीदास' नामक संग्रह की कविताओं में छह चरण होते हैं और उनमें चार चरणों की मात्रायें १६-१६ की होती हैं और शेष दो चरणों की मात्राएं २२-२२ की होती हैं --

| | |
|---|---|
| अब धौत धरा, खिल गया गगन | १६ मात्रायें |
| उर उर की मधुर, ताप प्रशमन | १६ ,, |
| बहती समीर, चिर आलिंगन ज्यों उनमन | २२ ,, |
| झरते हैं शश धर से क्षण-क्षण | १६ ,, |
| पृथ्वी के अधरों पर नि:स्वर | १६ ,, |
| ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन, संजीवन [३९] | २२ ,, |

इसमें मात्रा किसी निश्चित नियमानुसार नहीं रखी गयी है, फिर भी भाव प्रसार के अनुकूल स्वर के उत्थान-पतन पर ध्यान रखा गया है और साथ ही अन्त्यानुप्रास का पूरा ध्यान रखा गया है । इस प्रकार की कविताओं को विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताओं की श्रेणी में लिया जाता है ।

(३) मुक्त छन्द की कवितायें --

निराला जी के जीवन की साधना आद्यन्त मुक्ति परक रही है । जब प्रगीतात्मक भावावेग और भाव- शृंखला को उपयुक्त साँचे में ढलने की

---

३९. निराला-तुलसीदास, गीत-८, पृ० १५

आवश्यकता प्रतीत हुई तो निराला जी ने प्रभावान्विति और लय बद्धता मात्र का ध्यान रखते हुये छन्द -रूढ़ि से मुक्त हिन्दी भाषा के जातीय छन्द और गण बंधन से सर्वथा मुक्त वर्णवृत्त कविता या घनाक्षरी की लय पर आधारित मुक्त छन्द की सृष्टि की जो उनके विचारानुसार एक मात्र ऐसी अभिव्यंजना-प्रक्रिया है जिससे स्वच्छंद भावोल्लास अनायास ही व्यक्त हो जाता है। "मुक्त काव्य" कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।[४०] इस नवीन छन्द योजना का हिन्दी साहित्य-जगत् में विशेष विरोध होने लगा तो उसके सम्बन्ध में निराला जी को अपने विचार स्पष्ट करने पड़े। "परिमल" की भूमिका, पन्त और पल्लव, "मेरे गीत और कला" आदि निबन्धों के द्वारा निराला जी के मुक्त छन्द सम्बन्धी विचार स्पष्ट होते हैं। निराला जी के मुक्त छन्द के बारे में डा० रामविलास शर्मा का कथन है, "मुक्त छन्द, में मुक्त और छन्द परस्पर-विरोधी अर्थों के घोतक हैं। निराला जी के लिये जैसे अलंकारहीन भाषा वेदों में सुरक्षित है, वैसे ही मुक्त छन्द का व्यवहार उन्हीं ऋषियों ने किया था, जो सांसारिक माया मोह और अज्ञान से पूर्णत: मुक्त थे[४१]

> भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी
> मुक्त छन्द,
> सहज प्रकाशन वह मन का
> निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।[४२]

---

४०. निराला-परिमल की भूमिका, पृ० २
४१. निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० ४२२
४२. निराला परिमल-जागरण, पृ० २४६, २४७

इसी कारण वे कंटकाकीर्ण और बंधनमय छन्दों की छोटी राह छोड़कर स्वच्छन्द मार्ग पर कविता कामिनी को आमंत्रित करते हैं :-

> आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
> अर्धविकच इस हृदय कमल में आ तू
> प्रिय, छोड़कर बंधनमय छन्दों की छोटी राह ।[४३]

इस प्रकार निराला जी के 'मुक्त छन्द' का तात्पर्य परम्परागत छान्दसिक नियमावली से स्वतंत्रता ही है । इस मुक्त छन्द का वैशिष्ट इसका लय-सौन्दर्य ही है । 'मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है । वहीं उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति । [४४]

> विजन -वन-वल्लरी पर
> सोती थी सुहाग-भरी
> स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल-कोमल-तनु तरुणी
> जुही की कली
> दृग बन्द किये - शिथिल-पत्रांक में । [४५]

यहां 'सोती थी सुहाग - भरी' आठ अक्षरों का एक छन्द आप- ही-आप बन गया है । तमाम लड़ियों की गति कवित्त-छन्द की तरह है । 'स्वयं मुक्त छन्द में लय की ऐसी सुघरता ला दी कि कविता नग्न न रही ।[४६] डा० बच्चन सिंह

---

४३. निराला-अनामिका, प्रगल्भ प्रेम, पृ० ३४
४४. निराला-परिमल की भूमिक, पृ० १६
४५. निराला परिमल, जूही की कली, पृ० १७१
४६. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी-आधुनिक साहित्य की भूमिका, पृ० २६ ।

ने मुक्त छन्द के बारे में कहा है ;प्रवाह तथा गति की दृष्टि से साधारण छन्दों की अपेक्षा मुक्त छन्द अधिक स्वाभाविक सिद्ध होता है ।[४७] मुक्त छन्द के चरण विषम और प्राय: अन्त्यानुप्रासरहित होते हैं । भावावेग के अनुसार इसके चरणों को घटाया या बढ़ाया जा सकता है । मुक्त वर्णवृत्त कवित्त छन्द की बुनियाद पर चलने वाला यह छन्द कवित्तवत् चरणों में समाप्त नहीं हो जाता, किन्तु भाव प्रवाह के समानान्तर इसका लय-प्रवाह भी कविता की समाप्ति तक चलता है । इसमें भाव प्रवाह की अन्विति को प्रमुखता दी जाती है । यह नव गति, नव लय, ताल, छन्द नव'[४८] का सुपुष्ट और परिष्कृत रूप है ।

इस मुक्त छन्द के सम्बन्ध में निराला जी के निम्नांकित विचार द्रष्टव्य हैं,`मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है, मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना । ........... मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है ।[४६] स्वच्छन्द छन्द में `आर्ट् आव् म्यूजिक' नहीं मिल सकता, वहां है `आर्ट् आव रिडिंग' वह स्वर प्रधान नहीं, व्यंजन प्रधान है । वह कविता की स्त्री सुकुमारता नहीं, कवित्त का पुरुष गौरव है । उसका सौन्दर्य गाने में नहीं वार्तालाप करने में है ।[५०] इसमें अन्त्यानुप्रास नहीं । यह गाई नहीं जाती । इसेंपढ़ने की कला व्यक्त होती है ।[५१] मुक्त छन्द अर्थात् `फ्री वर्स' के सम्बन्ध में टी०एस० इलियट ने कहा,`कोई बुरा कवि ही छन्द बन्धन से पूर्ण मुक्ति के रूप में मुक्त छन्द का स्वागत कर सका । वस्तुत: यह मूल विधान के विरुद्ध क्रान्ति थी और एक नये विधान की अथवा प्राचीन के नवीनीकरण की तैयारी थी ।[५२]

---

४७. निराला गीतिका, गीत १, पृ० ३

४८. क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० २७

४६. निराला-परिमल की भूमिका, पृ० १२,१६

५०. निराला- प्रबंध पद्म, पन्त और पल्लव, पृ० ६१

५१. वही, प्रबंध प्रतिमा, पृ० २६६, ५२. सिलक्टेड प्रोज,पृ० ६५

इस मुक्त छन्द के विधान के लिये निराला जी को कहाँ से प्रेरणा मिली यह विवाद का विषय है। कविता की आन्तरिक एकता पर बल देते हुये बाह्य आडम्बरों के विरुद्ध विद्रोह करने वाले अमेरिकी कवि वाल्ट ह्विट मैन (१८१९-१८९२) ने अपने कविता संग्रह 'घास की पत्तियाँ' में मुक्त छन्द का आग्रह पूर्वक व्यवहार किया है।[५३] बंगला साहित्य पर विदेशी प्रभावों में एक प्रभाव वाल्टह्विटमैन के इस छन्द का भी था। इस प्रभाव को कवियों में रवीन्द्रनाथ, दार्शनिकों में विवेकानन्द और नाटककारों में गिरीशचन्द्र घोष ने स्वीकार किया है। गिरीशचन्द्र घोष के लिये तो स्वयं निराला जी ने लिखा है, 'बंगला में माइकेल मधुसूदन द्वारा अतुकान्त कविता की सृष्टि हो जाने पर नाट्याचार्य गिरीशचन्द्र घोष ने अपने स्वच्छन्द छन्दों को नाटकों में ही प्रयोग किया है। अतः यह स्पष्ट है कि अमेरिकी कवि वाल्ट ह्विट मैन का प्रभाव बंगला के साहित्यकारों पर पड़ा, बंगला के साहित्यकारों का निराला जी पर प्रभाव पड़ा, निराला जी अपने जन्म काल से लेकर इस छन्द के रचना-काल तक बंगला में ही थे।[५४] यह सत्य है कि निराला जी के सामने हिन्दी के अतिरिक्त बंगला के विभिन्न प्रयोग विद्यमान थे। माइकेल मधुसूदन दत्त ने अभिन्नाक्षर पदान्तर प्रवाही चतुर्दश वर्णिक पयार छन्द का प्रयोग किया। नाट्यकार गिरीशचन्द्र घोष ने भी अपने नाटकों में पयार छन्द पर आधारित स्वछन्द का प्रयोग किया तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी पयार छन्द के लय खण्डों का विनियोग कर विविध छन्दों का प्रयोग कर चुके थे।[५५] निराला जी ने स्वयं बंगला का प्रभाव स्वीकार किया है। उसके आधुनिक अमर साहित्य का उन पर काफी प्रभाव है।[५६] 'वेदों में काव्य की मुक्ति के ऐसे हजारों उदाहरण

---

५३. डा० जगदीश गुप्त- हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ६५३

५४. विश्वम्भर 'मानव'-काव्यों का देवता निराला, पृ० २१०

५५. डा० पुत्तूलाल शुक्ल-निराला व्यक्तित्व और कृतित्व - निराला के अक्षर-मात्रिक मुक्त छन्द, पृ० ३४०

५६. निराला-परिमल की भूमिका, पृ० ११

हैं, बल्कि ६५ फीसदी मंत्र इसी प्रकार मुक्त हृदय के परिचायक ही रहे हैं।[५७] वैदिक छन्दों में लय का प्राधान्य रहता है और उनके चरण छोटे-बड़े रहते ही हैं तथा उनमें भाव प्रवाह के साथ लय प्रवाह भी बढ़ता चला जाता है।[५८] किन्तु इसके बीच में यह कहना आवश्यक भी है कि वाल्ट ह्विट मैन का मुक्त छन्द अधिकतर गद्यात्मक है, लयात्मक नहीं है।[५९] अत: निराला जी के लय - निष्ट मुक्त छन्द के प्रयोग पर पाश्चात्य साहित्य के 'फ्री वर्स' या मुक्त छन्द का सूचनात्मक बौद्धिक प्रभाव भले ही स्वीकार कर लिया जाय, किन्तु उसे वैदिक काल से चले आने वाले मुक्त प्राण छान्दसिक संस्कारों, हिन्दी छन्द शास्त्र की लयों आदि के विकासमान और सुष्ठु परिणाम के ही रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये। समयानुकूल प्रवृत्ति का विकास करने में बंगला के आंशिक प्रभाव का अवश्य अपना योग है। इस प्रकार के नियम रहित, किन्तु, लय संश्लिष्ट और नाद-प्राण मुक्त- छन्द में विरचित उनकी कवितायें 'परिमल' के तृतीय खण्ड और 'अनामिका' में प्राप्त होती हैं। इन कविताओं में लय का निश्चयात्मक निर्वाह हुआ है जो मुक्त छन्द का प्राण है, किन्तु लय संस्कारों से प्राय: अप्रत्यक्ष रूप से वर्णों और मात्राओं के क्रम का भी निर्धारण हो जाता है।[६०] किन्तु यह स्वत: सिद्ध है, प्रयत्न-साध्य और नियम-प्रेरित नहीं है। निराला जी के मुक्त छन्द का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :-

चारों ओर
पुष्प युवती के कोर,
तरुण-दल अधर-अरुण,
जीवन-सुवास

---

५७. निराला-परिमल की भूमिका, पृ० ३०

५८. आर्थर ऐंथनी मैक्डानल- ए वैदिक ग्रामर फॉर स्टूडेन्ट्स, पृ० ४३६

५९. जान बैली- वाल्ट ह्विट मैन, पृ० ११५

६०. डा० पुत्तूलाल शुक्ल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० ४१३

मन्द गति से आ पास
देखा एक अपर लोक,
रोम रोम में समाई जहाँ
चुम्बन की लालसा,
ज्योति की नयन-ज्योति से
पलकों से पलक मिले,
अधरों से अधर
कंठ कंठ से लगा हुआ
बाहुओं से बाहु,
प्राण प्राणों में मिले हुये ।[६१]

निराला जी के मुक्त छन्दों की विशेषता यह है कि उनमें अनायास ही ध्वनियों की सानुप्रास आवृत्ति के कारण संगीतात्मक नाद माधुर्य आ गया है । कहीं-कहीं लय निपात और संगीत सौष्ठव को सहज ही आये हुये अन्त्यानुप्रास ने बढ़ा दिया है । जैसे ऊपर के छन्द में और, कौर, सुवास, पास आदि अन्त्यानुप्रास और तरुण-अरुण, रोम-रोम , ज्योति, नयन-ज्योति, पलकों से पलक, अधरों से अधर, कंठ कंठ से, बाहुओं से बाहु, प्राण प्राणों में आदि सानुप्रास ध्वन्यावृत्ति के कारण स्वाभाविक रूप से संगीतात्मक हुआ है ।

(४) उर्दू छन्द विधान पर आधृत कवितायें :--

निराला जी के काव्य संग्रह 'बेला' में उनका एक विशिष्ट प्रयोग उल्लेखनीय है । वे स्वयं अपने इस प्रयोग के सम्बन्ध में कहते हैं, 'नयी बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं जिनमें उर्दू के छन्द शास्त्र का निर्वाह

---

६१. निराला - परिमल, स्मृति-चुम्बन, पृ० १६६,१६६

किया गया है ।[६२] किन्तु, निराला जी के इस नवीन प्रयोग के बारे में यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में उनकी विशुद्ध उर्दू की रचनायें बहुत कम ही हैं, अधिकांशत: उर्दू छन्दों का सफल निर्वाह करते हुये भी भाषा के सम्बन्ध में वे प्रयोग तक सीमित रह गये हैं । कहीं विशुद्ध उर्दू है , कहीं विशुद्ध संस्कृत शब्दावली है और कहीं हिन्दी-उर्दू का मिश्रित रूप है :-

विशुद्ध उर्दू शैली — जो हस्ती से हुये हैं पस्त, समझे है वही क्या है ,
गुजरती जिन्दगी के साथ, बरकत से भरी बातें ।[६३]

विशुद्ध संस्कृत शब्दावली—
अमिय-धारणा नव-जीवन समास बनता था ।
कलुष मिला, मनसिज की विदग्धता फैली ।[६४]

हिन्दी-उर्दू की मिश्रित शैली —
असर ऐसा कि शिला पानी पानी हो गयी,
जवानी का पानीदार देखता चला गया ।[६५]

अब आगे 'बेला' की एक कविता का उर्दू छन्द : शास्त्रानुमोदित रूप देखा जायगा—
इस कविता की रुक्न(गण) फ़ऊलुन् फ़ाइलुन् फ़ेलुन् फ़ऊलुन् फ़ाइलुन् फ़ेलुन् है—

गिराया है जमीं होकर, छुटाया आसमां होकर ।
निकाला दुश्मन ने जां और बुलाया मेहरबां होकर ।[६६]

---

६२. निराला-बेला का आवेदन, पृ० ५
६३. निराला-बेला-गीत ५३, पृ० ६६
६४. वही, गीत १८, पृ० ३४
६५. वही, गीत १६, पृ० ३५
६६ वही. गीत-५४. पृ० ७० ।

इस छन्द में 'और' को ह्रस्व अर्थात् लघु लघु (११) पढ़ा जायगा।

दूसरी कविता की रुक्न इस प्रकार है :-

फ़ऊलुन् फ़ फ़ईलुन् फ़ाइल् फ़े फ़ाइल् फ़े

किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं।
दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं।[६७]

इस शब्द में 'वह' का उच्चारण 'व' और 'को' का उच्चारण ह्रस्व 'को' की तरह होगा। अत: उनकी एक एक मात्रा ही गिनी गयी है। उर्दू छन्दशास्त्र के नियम पालन की दृष्टि से निराला जी का यह प्रयोग सफल है। फिर भी उर्दू छन्दों को हिन्दी के संस्कृत गर्भित साँचे में ढालने की प्रवृत्ति के कारण उनकी कविता के सौन्दर्य में निखार नहीं आ सका है, अत: केवल प्रयोग की दृष्टि से उनको सफल कहा जा सकता है।

२. अलंकार योजना -

(क) भारतीय अलंकार- निराला अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों को दर्शाने के लिये उन्हें उद्बुद्ध करने वाले चित्रों का विधान करते हैं जिससे स्वयमेव अनेक अलंकारों की योजना हो जाती है। उनके अलंकारों के प्रमुख कार्य हैं -- प्रेषणीयता, प्रभावोत्पादकता, भाव-प्रसार और रसोत्कर्ष इसी कारण उनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि परम्परा-मान्य अलंकारों की योजना के साथ विशेषण विपर्यय, मानवीकरण, ध्वन्यार्थ व्यंजना आदि रोमान्टिक कला - आन्दोलन के विशिष्ट अलंकारों का भी बाहुल्य पाया जाता है। इस सम्बन्ध में डा० श्यामसुन्दर लाल दीक्षित का कहना है, 'निराला जी की अलंकार- योजना नवीन प्रणाली और नई अभिव्यक्ति के साथ उत्फुल्ल होती

---

६७. निराला-बेला, गीत-५२, पृ० ६६

दिखाई देती है। उनका भाव-वर्णन इतना चमत्कारिक होता है कि अलंकार अनियंत्रित चले आते हैं, किन्तु अनियंत्रित नहीं। यह उनकी विशेषता है।[६८]

अप्रस्तुत विधान --

निराला जी की उपमान-योजना की विशेषतायें उनकी मूर्त की अमूर्तोपमा और अमूर्त की मूर्तोपमा है। इसमें वस्तुत: प्रभाव-साम्य की प्रवृत्ति कार्य करती है। इसके द्वारा अन्त: सौन्दर्य के साथ सूक्ष्म सत्य का भी उद्घाटन होता है। अन्तरंग साम्य या प्रभाव साम्य के आधार पर 'विधवा' के लिए ऐसे अनेक मूर्त और अमूर्त उपमानों का जो विधान किया गया है वह द्रष्टव्य है :--

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजासी,
वह दीप-शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति-रेखासी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।.......... ।[६९]

इसमें प्रस्तुत मूर्त विषय विधवा के लिये 'मन्दिर की पूजा सी, काल-ताण्डव की स्मृति रेखा सी' के अमूर्त उपमानों और 'दीप शिखा सी शान्त' 'टूटे तरु की छुटी लता सी दीन' के मूर्त उपमानों का विधान किया गया है जिनसे क्रमश: उनकी पवित्रता, उसके जीवन में आयी भयंकर दशा, अपने ही भावों में उसकी तल्लीन और निश्छल अवस्था और अभाग्य की मारी हुई व्यथापूर्ण स्थिति का मार्मिक परिचय प्राप्त होता है। निराला जी के काव्यों में

---

६८. युग कवि निराला जी की अलंकार-योजना, निराला अंक, १ सं० २०१६, पृ० १६७।

६९. निराला- परिमल, विधवा, पृ० ११६।

उपमाओं की अतिशयता विद्यमान है जिससे न केवल उनकी वाणी में संस्कार आता है वरन् विचारों में भी परिष्कार आ जाता है :-

मीन मदन फांसने की बंशी सी विचित्र नास ।
फूलदल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल ।
चिबुक चारु और हंसी बिजली सी
यौवन-गंध-पुष्प-जैसा प्यारा यह मुखमण्डल ।[७०]

शूर्पनखा के सौन्दर्य-वर्णन में व्यतिरेक की छटा दर्शनीय है :-

बीच बीच पुष्प गुंथे किन्तु तो भी बन्ध-हीन
लहराते केश-जाल, जलद-श्याम से क्या कभी
समता कर सकती हैं
नील नभ तड़ित्तारिकाओं का चित्र ले
क्षिप्र गति चलती अभिसारिका यह गोदावरी ।[७१]

यहां प्रस्तुत भी मूर्त है और अप्रस्तुत भी मूर्त है :-

निराला जी की कविताओं में उपमा की भांति रूपक का भी बाहुल्य है, विशेषकर सांग रूपकों का भव्य निर्वाह हुआ है । 'गीतिका' के गीत 'मौन रही हार' को जीव-ब्रह्म परक रहस्यवादी तत्वों से गर्भित पाता है । उसमें अज्ञात अनन्त प्रियतम के पास अभिसारिका बनकर चलने वाली आत्मा का कलात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है । सारा विश्व उसे लांछित करता है

---

७०. निराला-परिमल , पंचवटी प्रसंग (३), पृ० २३१
७१. वही,

किन्तु प्रिय-चरणों को छोड़ कर कहां शरण पायेगी ? आत्मा हार कर प्रिय पथ पर चल रही है । उसके कंकण, किंकिणी और नूपुरों से आत्मा समर्पण की ध्वनि निकल रही है । लाज के मारे लौट गई तो वह प्रियतम फिर कहां मिलेगा ? प्रिय की ओर बढ़ने वाली अभिसारिका के रूप में ब्रह्म तत्व की ओर बढ़ने वाली जीव आत्मा का सांग रूपकात्मक वर्णन इस गीत में किया गया है :--

मौन रही हार, प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार ।
कण कण कर कंकण प्रिय, किण किण रव किंकिणी,
रणन रणन नूपुर, सर लाज, लौट रंकिणी,
और मुखर पायल स्वर करें बार बार, प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार ।
शब्द सुना हो तो अब लौट कहां जाऊं ?
उन चरणों को छोड़ और, शरण कहां पाऊं ?
बजे सजे सर के इस सुर के सब तार -
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार ।[७२]

दीन नेत्रों के इस वर्णन में सन्देहालंकार की छटा द्रष्टव्य है :--

मद भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं,
अल्प-जाल में या विकल लघु मीन हैं ?

---

७२. निराला-गीतिका, गीत ६, पृ० ८ ।

या प्रतिक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुये ये दीन है ? [७३]

निराला जी के काव्य में भावानुरूप शब्द-सृष्टि अर्थात् सार्थक अनुप्रास-योजना का अत्यधिक महत्त्व है । स्वर और वर्णों की मैत्री पर आधारित अनुप्रासों का प्रचुर परिणाम में उपयोग हुआ है जिससे शब्द-रचना से संबंधित संगीत का निर्माण हो जाता है :-

दिवसावसान का समय मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी धीरे-धीरे-धीरे ।[७४]

यहाँ 'दिवसावसान-आसमान, समय-मेघमय, सुन्दरी-परी सी' में अनुप्रास की छटा है ।

'तुम और मैं' की निम्नांकित पंक्तियों में अनुप्रास और रूपक का संयुक्त समावेश हुआ है :-

तुम तुंग-हिमालय-शृंग और मैं चंचल गति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास और मैं कान्त-कामिनी-कविता ।[७५]

'तुंग-शृंग, कान्त-कामिनी-कविता' आदि में अनुप्रास और 'तुम और हिमालय - शृंग , विमल हृदय उच्छ्वास' में और मैं और चंचल सुर-सरिता' एवं 'कान्त - कामिनी कविता' में रूपक का समावेश हुआ है । एक रूपक के आरोपित होने

---

७३. निराला-परिमल, नयन, पृ० ७५ ।
७४. वही, सन्ध्या सुंदरी, पृ० १२६ ।
७५. वही, तुम और मैं, पृ० ६० ।

पर परम्परा-सम्बन्ध निर्वाहार्थ दूसरे अप्रस्तुतों का भी आरोप होने से यहां परंपरित रूपक का स्वरूप देखा जा सकता है :--

जीवन प्रात-समीरण सा लघु विचरण निरत करो ।
तरुण-तोरण-तृण-तृण की कविता छवि मधु सुरभि भरो ।[७६]

इस गीत में 'प्रात समीरण सा विचरण करो' में उपमा, 'छवि-मधु' में रूपक और त, र, ण वर्णों में अनुप्रास आदि एकत्रित हैं जो शब्दालंकारों की संसृष्टि उपस्थित करते हैं । इस प्रकार निराला जी के काव्यों में बहुत ही स्वाभाविक ढंग से अलंकारों का सुगठित विधान हुआ है ।

(ख) पाश्चात्य अलंकार- आधुनिक हिन्दी कविता में पाश्चात्य अलंकारों की योजना के सम्बन्ध में डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी लिखते हैं, आधुनिक हिन्दी कविता में भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त पाश्चात्य अलंकार भी व्यवहृत हुये हैं । उनमें सबसे महत्वपूर्ण मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजना है । ये अलंकार भी भावाभिव्यंजन और वस्तु व्यंजना में पर्याप्त सहायक हुये हैं ।[७७]

(अ) मानवीकरण - निराला जी के काव्य में इस अलंकार का स्वाभाविक और भावावेष्टित प्रयोग हुआ है । संध्या-सुन्दरी, जुही की कली, शैफालिका, यमुना के प्रति, तरंगों के प्रति' आदि कविताओं में सौष्ठवपूर्ण और संश्लिष्ट मानवीकरण हुआ है । इनमें अचेतन प्रकृति के उपकरणों, निष्प्राण पदार्थों और सूक्ष्म भावों को चेतन रूप प्रदान करने वाली आलंकारिकता द्रष्टव्य

---

७६. निराला- परिमल, प्रार्थना, पृ० ३४
७७. आधुनिक हिन्दी काव्य में अलंकार-विधान, पृ० २६३ ।

है । निराला जी के मानवीकृत चित्र अधिकतर संश्लिष्ट और संतुलित हैं जिनमें चित्रमयी भाषा में प्रस्तुतों का सजीव मूर्ति-विधान स्वतः सिद्ध है । प्रकृति को चेतन स्वरूप प्रदान करने की कला से परिपूरित निराला जी की कविताओं में साम्य विधान से मानवीय तत्वों का अचेतन वस्तुओं में भी सौन्दर्यपूर्ण नियोजन हुआ है, 'जुही की कली' का मानवीकरण निम्न पंक्तियों में हुआ है :-

> विजन वन वल्लरी पर, सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
> अमल-कोमल-तनु-तरुणी-जुही की कली,
> दृग बन्द किये, शिथिल-पत्रांक में, वासन्ती निशा थी[७८]।

कली के माध्यम से मुग्धा नायिका का सादृश्यमूलक और भावगर्भित संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत हुआ है । उसमें सफल अन्तर्दृष्टिजन्य बिम्ब विधान पाया जाता है । 'गीतिका' के निम्नलिखित गीत में ऊषा के संधिकाल में रात्रि का सोकर उठी हुई एक युवती नायिका के अस्त-व्यस्त रूप में संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है । न केवल नायिका के आकार-स्वरूप और वेश-भूषा है वरन् समस्त वातावरण और अनुभवों का भी चित्र प्रस्तुत हुआ है :-

> (प्रिय) यामिनी जागी ।
> अलस पंकज-दृग, अरुण-मुख, तरुण-अनुरागी ।
> खुले केश अशेष शोभा भर रहे ,
> पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तिर रहे,
> बादलों में घिर अपर दिन कर रहे,
> ज्योति की तंवी, तड़ित्-द्युति ने क्षमा माँगी ।
> हेर उर-पट फेर मुख के बाल,
> लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,

---

७८. निराला-परिमल, जुही की कली, पृ० १७१

गेह में प्रिय-स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी ।[७९]

(आ) विशेषण विपर्यय--एक पदार्थ के विशेषण को दूसरे पदार्थ के साथ नियोजित करने वाले अर्थालंकार विशेषण विपर्यय का सौन्दर्य नीचे दी हुई पंक्तियों में देखा जा सकता है :-

यमुना, तेरी इन लहरों में किन अधरों की आकुल तान.....
चल-चरणों का व्याकुल पनघट, कहां आज वह वृंदाधाम ?

..................................... .

किस विनोद की तृषित गोद में, आज पोंछती वे दृगनीर ?[८०]

'आकुल तान', 'व्याकुल पनघट', विनोद की तृषित गोद, धरा के छिन्न दिवस के दाह, में से क्रमश: व्याकुलतापूर्ण मन की स्वर लहरी गोपियों की व्याकुलता, लालसापूर्ण अन्तर की अभावजनित वेदना और विनोद के भीतर छिपे हुये तृष्णात्व के अन्तर्द्वन्द्व और ताप से तृप्त पृथ्वी के दाह का अर्थ लिया जाता है । विशेषणों के इस विपर्यय में भावावेग और कल्पना का समन्वित योग रहता है । इन विशेषण विपर्यय में एक ओर वाच्यार्थ का बोध होता है तो दूसरी ओर सकैतिक अर्थ स्वीकार किया जाता है । भारतीय परम्परा के अनुसार इन शब्दोंके लाक्षणिक प्रयोग के अन्तर्गत आ सकता है ।

(इ) ध्वन्यर्थ व्यंजना - निराला जी के काव्य की संगीतात्मकता का प्रमुख कारण ध्वन्यर्थ-व्यंजना है जिससे भाव और नाद की मैत्रिका सुन्दर निर्वाह हो पाता है । इस संबंध में ध्वन्यात्मकता को शब्द का गुण स्वीकार

---

७९. निराला-गीतिका, गीत, पृ० ४
८०. निराला-परिमल, यमुना के प्रति, पृ० ४३,४४ ।

करते हुये 'भाषा' प्रकरण में विवेचन किया गया है । किन्तु पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों ने इसे अलंकार की कोटि में स्वीकार किया है । वस्तु की रूप-गुण-क्रिया को शब्दों द्वारा व्यक्त करने के साथ ही श्रेष्ठ कलाकार उस वस्तु की ध्वनि को भी शब्दों द्वारा व्यंजित करते हैं । भावानुयायी ध्वन्यात्मकता निराला के काव्यों की एक प्रमुख विशेषता है --

आभूषणों की झंकार-व्यंजना --

कण कण कर कंकण, प्रिय किण्, किण् रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर सर लाज, लौट रैंकिणी
और मुखर पायल स्वर करे बार-बार ।[८१]

नद-नदियों और बादलों के रव की व्यंजना :--

धंसता दलदल
हंसता है नद खल-खल
बहता, कहता कुल कुल कलकल कलकल
देख देख नाचता हृदय, कहने को महा विकल-बेकल
इस मरोर से-इसी शोर से, सघन घोर गुरु गहन रोर से ।[८२]

शब्दों की ध्वनि से पवन की क्षिप्र गति की व्यंजना :--

फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरिता गहन-गिरि-कानन
कुंज लता पुंजो को पार कर ।[८३]

---

८१. निराला-गीतिका, गीत ६, पृ० ८
८२. निराला- परिमल, बादल राग (१), पृ० १६१
८३. वही, जुही की कली, पृ० १७१ ।

उद्दाम वात-गति की भयंकरता की व्यंजना :-

> शत घूर्णावर्त,तरंग-भंग उठते पहाड़,
> जल-राशि,राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़
> तोड़ता बंध,प्रतिसंध धरा, हो स्फीत वक्ष
> दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष ।[८४]

अधिकांश रोमांटिक कवियों के लिये आदर्श कविता वह है जो भावावेश में स्वत: फूट कर बह निकले, जो विवेक से, चिन्तन और मनन के बाद न रची गयी हो । ऐसी कविता स्वभावत: अलंकारहीन होगी क्योंकि अलंकारों का काम कविता को सजाना है, भावोत्कर्ष में सहायक होना नहीं । यह धारणा निराला में भी है ।[८५] निराला जी के काव्यों में प्रयुक्त अलंकारों के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि वे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सहायक बन कर ही आये हैं, न कि बोझा बन कर । वे भाषा की साधारण अर्थाविधायिनी शक्ति को व्यापक, प्रभावपूर्ण और अधिक प्रेषणीय बनाने में सक्षम होते हैं और उनका आधार, द्रष्टा कवि की, अन्तर्दृष्टिमूलक कल्पना है ।

## ३. ध्वनि सौष्ठव --

भारतीय समीक्षा-सिद्धान्त के अनुसार काव्य में ध्वनिमयता उसकी विशिष्टता की परिचायिका है । ध्वनि प्रवणता सुसाहित्य का प्रमुख लक्षण मानी जाती है । कवि मानस का सूक्ष्मतम अर्थ ध्वनि और व्यंजना शक्ति द्वारा ही प्रतिपादित होता है । जिस काव्य में शब्द अपने वाच्यार्थ

---

८४. निराला-अनामिका,राम की शक्ति पूजा, पृ० १५७
८५. डा० रामविलास शर्मा-निराला की साहित्य साधना, भाग २, पृ० ४०८

की सघनता का परित्याग कर सूक्ष्म परन्तु गंभीर भाव या अर्थ की व्यंजना करता है, उस व्यंग्यमूलक अथवा ध्वनिपरक काव्य को श्रेष्ठतम माना जाता है । इस दृष्टि से देखा जाय तो निराला जी की अनेक रचनायें ध्वनि-काव्य की कोटि में आयेंगी । संध्या सुन्दरी, बादल राग, तुलसीदास,[८६] ठूंठ, खण्डहर के प्रति,[८७] यमुना के प्रति, जुही की कली, शेफालिका[८८] आदि कविताओं को इस श्रेणी में रखा जा सकता है ।

संध्या सुंदरी में संध्या के रूप, आकार और स्वभाव का सजीव चित्र प्रस्तुत हुआ है । इसमें कवि ने मानवीकरण के द्वारा सुन्दरी परी के रूप में संध्या को प्रस्तुत करते हुये अनेक वस्तु ध्वनियों का भी नियोजन किया है :-

> दिवसावसान का समय मेघमय आसमान से उतर रही है ।
> वह संध्या-सुन्दरी परी सी, धीरे-धीरे-धीरे ।
> अलसता की सी लता, किन्तु कोमलता की वह कली
> सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बांह, छांह सी अम्बर पथ से[८६] चली ।

प्रस्तुत पंक्तियां अपने वाच्यार्थ से भिन्न विशेष अर्थ का प्रतिपादन करती हैं, उनकी शब्द-योजना ध्वन्यात्मक है । यहां संध्या को मुग्धा नवयौवना नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो धीरे-धीर बड़े गांभीर्य के साथ चली आ रही है । संध्या की सखी नीरवता या शान्ति है, इस मैत्री से स्पष्ट है कि संध्या

---

८६. निराला-तुलसीदास, पृ० १

८७. निराला-अनामिका, पृ० १४३, २६

८८. निराला-परिमल, पृ० १२६, १५६, ४३, १७१, १७५

८६

भी स्वभावगत शान्त स्वभाव की है । सखी नीरवता के कन्धे पर बाँह डाले संध्या आ रही है, इससे विदित होता है कि मुग्धा नव युवती संध्या अपने अल्हड़पन के कारण सखी के साथ आ रही है । "छाँह सी" कहने से यह व्यंजित होता है कि संध्या-सुन्दरी सुकुमारी और कोमलांगिनी है । इसी-लिए तो वह सखी के कन्धे का सहारा लिये आ रही है । "अम्बर -पथ से चली" इसमें अम्बर-पथ का वाच्यार्थ आकाश-मार्ग चारी अथवा संध्या के लिए उचित है, साथ ही श्लेष-संभूत व्यंग्यार्थ के रूप में कोमलांगिनी नायिका के कोमल चरणों के लायक कोमल पांवड़े का मार्ग भी लिया जाता है । संध्या सुन्दरी के चित्रण में एक सुकुमारी नवयौवना और मुग्धा सुन्दरी के स्वरूप, आकार और व्यापारों का ध्वन्यर्थ उपलब्ध होता है, प्रकृति के मानवीकरण के द्वारा एक सुकुमारी के हाव-भावों का संश्लिष्ट चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है । सुन्दरी परी के समान संध्या-सुन्दरी का चित्रमय मूर्त विधान सुपुष्ट और सफल हो जाता है ।

जहाँ वाच्यार्थ का ज्ञान हो जाता है और उसके पश्चात् किसी शब्द की शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ के रूप में अलंकार-ज्ञान होता है वहाँ शब्द-शक्तिमूलक संलक्ष्य क्रम अलंकार ध्वनि होती है :-

> चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण, कह- "पित:, पूर्ण-आलोक-वरण
> करती हूं मैं, यह नहीं मरण, "सरोज" का ज्योति:शरण-तरण"।[६०]

पुत्री सरोज त्वरित गति से मृत्यु की नौका पर चढ़ कर यह कहती हुई अपने जीवन के अन्त की ओर अग्रसर होती है कि - हे पिता ! यह मेरा मरण नहीं, परन्तु पूर्ण आलोक का वरण है । इस सरोज को ज्योति की शरण में जाना जन्य है, प्रकाश पूर्ण ब्रह्म में तन्मयता प्राप्त करता है । यह मेरा तारण है न

---

६०. निराला-अनामिका, सरोज स्मृति, पृ० १२१

कि मरण । यहाँ 'सरोज' शब्द के श्लिष्टार्थ पर आधारित व्यंग्यार्थ का बोध होता है । व्यंग्यार्थ इस प्रकार है कि सूर्य के करों से विकसित होने वाला और जीने वाली सरोज या कमल उन करों में यदि मिल जाय तो वह उसका मरण नहीं है । उसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न जीवात्मा उस ब्रह्म-ज्योति में विलीन हो जाती है तो वह भी मरण नहीं, तरण है । व्याच्यार्थ द्वारा व्यंग्यार्थ के दृष्टान्त अलंकार के रूप में व्यक्त होने से यहाँ शब्द शक्तिमूलक संलक्ष्य क्रम दृष्टान्त अलंकार-ध्वनि विद्यमान है ।

४. भाषा :-

निराला जी के काव्य की भाषा पर विचार करने के पहले भाषा-सम्बन्धी उनके सुनिश्चित विचारों की जानकारी प्राप्त कर लेना अधिक युक्तियुक्त होगा । उन्होंने अपने निबंध, 'साहित्य और भाषा' में लिखा है, 'हमारा यह अभिप्राय भी नहीं कि भाषा मुश्किल लिखी जाय । नहीं, उसका प्रवाह भावों के अनुकूल ही रहना चाहिये । आप निकली हुई और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं । भावानुसारिणी कुछ मुश्किल होने पर भी भाषा समझ में आ जाती है ।[६१] बड़े-बड़े साहित्यिकों ने प्रकृति के अनुकूल ही भाषा लिखी है । कठिन भावों को व्यक्त करने में प्राय: भाषा भी कठिन हो गई है ।जो मनुष्य जितना गहरा है, वह भाव-तथा भाषा की उतनी ही गंभीरता तक पैठ सकता है और पैठता है । साहित्य में भावों की उच्चता की ही धारणा रखनी चाहिये, भाषा भावों की अनुगामिनी है ।[६२] निराला जी की भाषा पर अक्सर यह दोष लगाया जाता है कि वह जटिल , क्लिष्ट और दुरूह है । 'भाषा की जटिलता और दुरूहता का दोष निराला जी की

---

६१. निराला-प्रबंध पद्म, पृ० १३
६२. वही , पृ० १२ ।

कविता में प्राय: मिल जाता है ।[६३] ऐसा भी हुआ है कि एक ही काव्य-ग्रन्थ में उन्होंने कहीं अत्यन्त दुरूह भाषा का प्रयोग किया है, कहीं अत्यधिक सरल भाषा का, उदाहरण के लिए आराधना में ,इस प्रकार के प्रयोगों से साहित्य का कभी हित हुआ तो, हम नहीं जानते । ऐसे प्रयोग व्यक्ति के स्वभाव की अस्थिरता और विविधता के द्योतक होते हैं ।[६४]

क्लिष्ट-भाषा के संबंध में उनके विचार हैं,`भाषा क्लिष्टता से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न हिन्दी की तरह अपर भाषाओं में नहीं उठते । हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने वाले या बनाने वाले लोग साल में तेरह बार चीत्कार करते हैं - भाषा सरल होनी चाहिये जिसे आबालवृद्ध समझ सकें । मैं ने आज तक किसी को यह कहते हुये नहीं सुना कि शिक्षा की भूमि विस्तृत होनी चाहिये, जिससे अनेक शब्दों का लोगों को ज्ञान हो, जनता क्रमश: ऊँचे सोपान पर चढ़े[६५] उनका यह भी कहना है कि`उन प्राचीन बड़े-बड़े साहित्यिकों की भाषा कभी जनता की भाषा नहीं रही । सोलह आने में चार आने जनता के लायक रहना साहित्य का ही स्वभाव है । क्योंकि सब तरह की अभिव्यक्तियां साहित्य में होती हैं ।[६६] निराला जी के विचारात्मक भावों की संप्रेषणीयता और सबैधता ही उचित भाषा की कसौटी है । इस दृष्टि से देखा जाय तो निराला जी की भाषा पर कठिनता और क्लिष्टता के दोषों का आरोप करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । उनकी भाषा में स्वर, लय और

---

६३. डा० श्रीकृष्णलाल- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १४७
६४. विश्वंभर `मानव` - काव्य का देवता निराला, पृ० २२०
६५. निराला - प्रबंध पद्म, पृ० ६
६६. वही, ,, पृ० १०

नाद की ऐसी संश्लिति विद्यमान है कि उसमें सार्थक और भावप्रवण संयमित ध्वनिउत्पन्न होती है। उनके काव्यों में भावों के तारतम्य के अनुकूल तारतम्यपूर्ण भाषा भी पाई जाती है।

निराला जी हिन्दी के पहले कवि हैं जिन्होंने खड़ीबोली को अपने बंगला, संस्कृत भाषा आदि के ज्ञान के द्वारा माँजने, सशक्त बनाने, भावग्राही बनाने और साहित्यिक औदार्य प्रदान करने के नाना विध प्रयोग सफलतापूर्वक किये हैं। संगीत के ज्ञानी होने के कारण ताल और लय से समन्वित अनेक शब्द उनको गढ़ने पड़े हैं। उनकी दृष्टि में काव्य में भाषा का विशेष स्थान है। भावों की सजीवता को ग्रहण करके वाहन करने वाली भाषा ही से काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि होती है, यह निराला जी का विचार है, जिसे उन्हीं की निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है :-

> वह भाषा-छिपती छवि सुन्दर
> कुछ खुलती आभा में रंग कर,
> व भाव कुरल-कुहरे-सा भर कर आया।[९७]

और :-

> मलिन दृष्टि के भाषा-हीन भाव-से
> मर्मस्पर्शी देश राग के से, प्रभाव से
> क्या तुम बतलाते हो ? [९८]

और :-

> भाषा में तुम फिरो रही हो शब्द तौल कर,
> किसका यह अभिनन्दन होगा आज ?[९९]

---

९७. निराला-तुलसीदास, पद १४, पृ० १८
९८. निराला-परिमल, रास्ते के फूल से, पृ० १४३
९९. वही, तरंगों के प्रति, पृ० ७७

स्वर, लय और नाद से समन्वित वातावरण विशिष्ट और चित्रमयी भाषा के उदाहरण स्वरूप 'राम की शक्ति पूजा' के निम्नांकित दो पद दिये जाते हैं जिनमें से एक का संगीत युद्ध की प्रखर परिस्थिति का परिचय देता है तो दूसरे का संगीत ग्लानि पूर्ण पराजित रामचन्द्र के विपर्यय रूप का। एक का शब्द विन्यास भी प्रखरता सूचक और युद्ध की विभीषिका का परिचायक है तो दूसरे का अवसाद,सूचक और ह्रासोन्मुखी मनोबल का परिचायक है --

रवि हुआ अस्त : ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर,वेग-प्रखर
शतशेलसम्वरणशील, नील-नभ गर्ज्जित-स्वर ,
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल-समूह ,
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह-क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह ।[100]

और :-

लौटे युग-दल । राक्षस-पदतल पृथ्वी टल-मल,
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल,
वानर-वाहिनी खिन्न, लख निज - पति-चरण-चिह्न ,
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों, विभिन्न ।[101]

---

१००. निराला - अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ० १५२
१०१. वही, पृ० १५३ ।

प्रथम उदाहरण की भाषा स्वत: युद्ध का आवेग पूर्ण सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है , युद्ध की भयंकरता का आवेगमय चाक्षुष प्रतिबिम्ब उसके वर्ण-शब्द-समन्वय से पाया जाता है ।

निराला जी के भाषा-विन्यास का अध्ययन हम निम्नलिखित कोटियों में कर सकते हैं :--

१. संस्कृत गर्भित भाषा -- निराला जी के काव्य की भाषा में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक है । उन्हों ने कविता में जहां दीर्घ सामासिक शब्दों का व्यवहार किया है तो कहीं दीर्घ समास रहित शब्दों का । 'राम की शक्ति पूजा ' और ' तुलसीदास' में संस्कृत छन्दों की सी सुदीर्घ सामासिक पदावली का प्रयोग प्राप्त होता है :--

> देखा शारदा नीला-वसना हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि रचना
> जीवन-समीर-शुचि निश्वासना वरदात्रे ।[१०२]

और :--

> उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतु: प्रहर
> जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण-सम्वर ।[१०३]

और :-

> वैभव विशाल,साम्राज्य-सप्त-सागर-तरंग-दल-दल-माल ,
> है सूर्य छत्र,मस्तक पर सदा विराजित,लेकर आरपत्र......[१०४] ।

---

१०२. निराला-तुलसीदास, गीत ८७, पृ० ५४

१०३. निराला-अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ० १५३

१०४ - वही, ,, सम्राट, एडवर्ड अष्टम के प्रति, पृ० १६

और :-

तुलिका नारियों के चित्रण की निरपवाद,
ब्राह्मण-प्रतिभा का अप्रतिहत गौरव-विकास
वर्णाश्रम की नव स्फुरित ज्योति, नूतन विलास
कामिनी-वेश नव, नवल केश, नव नव कबरी
नव नव बंधन, नव नव तरंग, नव नवल तरी ।[१०५]

निराला जी के काव्य संग्रह 'अर्चना', 'आराधना' और गीत गुंज की भाषा संस्कृत की दीर्घ समास रचित भाषा है । उनकी भाषा में 'ज्योतिच्छाय, ज्योतिच्छवि, तमिस्र संहार, तमस्मरण, शीतलछाय, तमस्तूर्य, दिङ्मण्डल, निश्चय प्राण, दिग्देशज्ञान, सौरमौस्कालिक, अहल्योद्धारसार, त्यागोपजीवित' जैसे संधि युक्त समास बहुल शब्दों और तुक मिलाने के लिये विश्व-भरना, अशरण-शरण-शरणा, जय-विजय-रणना, निस्सार-विश्व-तरणा, तपोवरणा, तपश्चरिता, तपस्तरिता, मरण-सरिता जैसे शब्दों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है ।

२. चलताऊ भाषा -

निराला जी की रचनाओं में कहीं-कहीं सुन्दर-सुमधुर सरल और मुहावरेदार भाषा का व्यवहार मिलता है । इस वर्ग में 'महाराज शिवा जी का पत्र', 'सेवा प्रारंभ', 'भिक्षुक', 'सरोज स्मृति' आदि की भाषा को लिया जा सकता है । उनकी परवर्ती रचनाओं - बेला, नये पत्ते, कुकुर मुत्ता में भी इसी भाषा का रूप प्राप्त होता है -

---

१०५. निराला- अणिमा, सह्याद्रि, पृ० २६, २७ ।

बुढ़िया मर रही थी, गढ़े में फर्श पर पड़ी ।
आँखों में ही कह, जैसा कुछ उस पर बीता था ।
स्वामी जी पैठे , सेवा करने लगे ,
साफ की वह जगह, दवा और पथ्य फिर देने लगे । [१०६]

और :--

घने घने बादल हैं, एक ओर गड़गड़ाते,
पुरवाई चलती है, जुही फूलों से भरी ,
दूर तक हरियाली ज्वार की, अरहर की........[१०७] ।

निराला जी की लोग गीत परम्परा में आने वाली रचनाओं की भाषा को भी इसी कोटि में लिया जा सकता है । गीतिका के नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, 'हुआ प्राप्त प्रियतम, तुम जाओगे चले ' औ ' लाज लगे तो जाओ तुम जाओ ' से प्रारम्भ होने वाले गीतों में भाव-भाषा और संगीत सभी दृष्टियों से लोक-गीत-परम्परा का प्रयोजन दिखाई पड़ता है ।

३. भाव प्रवाहमयी भाषा --

निराला जी की कुछ रचनाओं में निर्बाध भाव-प्रवाह का समुचित शब्दावली द्वारा सम्यक् नियोजन हुआ है । 'जागो फिर एक बार ,' 'बादल राग' , 'संध्या सुन्दरी,' 'जुही की कली' , 'शेफालिका' , 'धारा' आदि रचनाओं की भाषा को इस कोटि में लिया जा सकता है :--

---

१०६. निराला-अनामिका, सेवा-प्रारंभ, पृ० १८५
१०७. निराला- नये पत्ते,वर्षा, पृ० ६६ ।

उगे अरुणाचल में रवि, आयी भारती-रति कवि-कंठ में ,
क्षण-क्षण में परिवर्तित, होते रहे प्रकृति-पट
गया दिन, आयी रात, गयी रात, खुला दिन ,
ऐसे ही संसार की बीते दिन, पक्ष, मास
वर्ष कितने ही हजार, जागो फिर एक बार ।[१०८]

और :-

फिर क्या ? पवन ,
उपवन-सर-सरिता-गहन-गिरि-कानन
कुंज-लता-पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि,
कली खिली-साथ ।[१०९]

४. अलंकृत भाषा -

'वसन्त -समीर, 'प्रेयसी' , 'यमुना के प्रति, वन बेला , आदि रचनाओं की भाषा को उनकी छायावादी लाक्षणिक शैली की कोमल-कान्त पदावली के कारण इस वर्ग में लिया जाता है । उनकी भाषा अपनी संगीत-मयता के कारण सामान्य और व्यावहारिक स्तर से ऊपर उठ कर कलात्मक स्तर पर पहुँच जाती है :-

---

१०८. निराला - परिमल, जागो फिर एक बार (१), पृ० १८७
१०९. वही, जुही की कली, पृ० १७१ ।

पुष्प-मंजरी के उर की प्रिय गन्ध मन्द गति ले आओ ।
नव जीवन का अमृत-मंत्र-स्वर, भर जाओ फिर भर जाओ ।
यदि आलस से विपथ नयन हों, निद्राकर्षण से अति दीन,
मेरे वातायन के पथ से प्रखर सुनाना अपनी वीन । [११०]

५. विशेषण पूर्ण भाषा :-

निराला जी की प्रकृति वर्णन, चरित्र-चित्रण सम्बन्धी रचनाओं और सम्बोधनों सम्बन्धी प्रगीतों में इस प्रकार की भाषा पाई जाती है । यह स्वच्छन्दतावादी कवियों की शैली है जिसमें वर्ण्य-विषय के अनेक सूक्ष्म गुणों और विशेषताओं का वर्णन किया जाता है । निराला जी यमुना नदी के तट पर घटित अनेक क्रिया-कलापों का स्मरण करते हैं :-

वह कटाक्ष-चंचलयौवन-मन ,
वन-वन प्रिय अनुसरण-प्रयास,
वह निष्पलक सहज चितवन पर,
प्रिया का अचल अटल विश्वास
अलक सुगंध-मन्दिर-सरि-शीतल,
मन्द अनिल, स्वच्छन्दप्रवाह
वह विलोल हिल्लोल-चरण, कटि,
भुज, ग्रीव का वह उत्साह । [१११]

और :-

देख पुष्प द्वार, परिमल मधु-लुब्ध मधुप करता गुंजार...... ।
बहता है भौंरा मधु-मुग्ध ,

---

११०. निराला - परिमल, वसन्त समीर, पृ० ३६
१११. वही, यमुना के प्रति, पृ० ५४

कढ़ता अति-भक्ति-क्षुब्ध ।[११२]

६. अनुप्रासमयी भाषा :-

निराला जी की ओज-पूर्ण भाषा में सामासिकता और अनुप्रासमयता का बाहुल्य पाया जाता है । संधियुक्त सामासिक भाषा के कारण उसमें धारावाहिकता बनी रहती है । 'अर्चना' काव्य में संधियुक्त सामासिक और अनुप्रासमयी भाषा का प्रांजल प्रयोग हुआ है :-

वासना-समासीना महतीजगती दीना,
जलद-पयोधर-धारा, रवि-शशि-तारक-कारा
व्योम-मुक्तछविसारा, शतधारा पथ-हीना,
ऋषि कुल-काल-कंठस्तुति, दिव्य-शस्य-सकलाहुति ,
निगमागम-शास्त्रश्रुति, रासभ-वासव-वीणा ।[११३]

एक ही शब्द का दो-दो अथवा तीन-तीन बार प्रयोग करके निराला जी ने भावाभिव्यक्ति को अधिक सुगठित बनाया है और इससे भावों की संप्रेषणीयता अधिक गहन होती है :-

जननि,जनक-जननि-जननि,जन्मभूमि-भाषे ।[११४]
मौन में भरते शत-शत श्लोक ।[११५]

.................. ......

---

११२. निराला-परिमल,बदला,पृ० ६६
११३. निराला-अर्चना, गीत-६१, पृ० ७७
११४. निराला-गीतिका, गीत-७८,पृ० ८३
११५. वही, गीत ७७, पृ० ८२ ।

है सभी मरण रे, अंधकार घेरता तुझे आ क्षण-क्षण ।[११६]

...................

अस्ताचल रवि, जल छल छल छवि ।[११७]

.....................

विहग-विहग नव गगन खिला है......
नभ-नभ कानन-कानन छा है ।[११८]

..........................

सौरभोत्कलित अंबर तल-थल-स्थल, दिक्-दिक् ।[११९]

..........................

नयनों का नयनों से बंधन,कांपे थर-थर थर-थर युग तन ।[१२०]

७. ध्वन्यात्मक भाषा :-

निराला जी ने एक सुदक्ष कलाकार के नाते अपनी कलागत विशेषताओं का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है । भाषा की ध्वन्यात्मकता और वर्ण चमत्कार के सम्बन्ध में अपने विचारों को अपनी रचनाओं में सम्यक रूप में प्रतिपादित करते हैं :-

वर्ण चमत्कार, एक एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार ।
पद-पद चल बही भाव-धारा, निर्मल कल-कल में बंधगया विश्वसारा

---

११६. निराला-गीतिका, गीत ३८, पृ० ५३
११७. वही, गीत ६३, पृ० ६८
११८. निराला- अर्चना, गीत, ४८, पृ० ६४
११९. निराला-तुलसीदास, गीत, १३, पृ० १७
१२०. निराला-गीतिका, गीत - ६४, पृ६६

खुली मुक्ति बंधन से बंधी फिर अपार,
वर्ण चमत्कार ।[१२१]

पद-पद बहने वाली भावधारा के अनुकूल वर्णों और शब्दों के उचित और प्रसंगानुकूल प्रयोग द्वारा ध्वनिमयता अथवा नाद-योजना की अन्विति लाने के पक्ष में निराला जी के विचार उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होते हैं । निराला जी ने ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्दों की संयोजना पर्याप्त मात्रा में की है - कंकण, किंकिणी और नूपुर का ध्वनिमय चित्रण :-

कण कण कर कंकण प्रिय किण-किण रव किंकिणी
रणन-रणन नूपुर,सर लाज लौट रंकिणी ।[१२२]

निर्झर,नद, मेघ आदि की ध्वनिमयता का चित्रण :-

झूम झूम मृदु गरज - गरज घन घोर...........
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में, घर,मरु,तरु-मर्मर,सागर में ।...

.................................

हंसता है नद खल् खल् बहता, बहता कुल कुल कुलकल कलकल ।[१२३]

और :-

बार बार गर्जन,वर्षण है मूसलाधार,हृदय थाम लेता संसार,
सुन सुन घोर वज्र-हुंकार,

---

१२१. निराला- गीतिका, गीत, ८७, पृ० ९२ ।
१२२. वही, गीत ६, पृ० ८
१२३. निराला-परिमल, बादल राग (६),पृ० १६७

....................

खिल-खिल, खिल-खिल, हाथ हिलाते तुम्हें बुलाते ।[१२४]

इन ध्वन्यार्थ व्यंजक शब्दों के प्रयोग से हमारे सम्मुख वातावरण का सुगठित रूप उपस्थित हो जाता है । निराला जी ने ऐसे अनेक अनुकरणात्मक और अनुरणात्मक ध्वनि प्रधान शब्दों का प्रयोग कर सुस्पष्ट वातावरण का निर्माण किया है ।

८. विदेशी शब्द मिश्रित भाषा --

निराला जी की संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर अधिक थी, फिर भी उन्होंने अनेक लोक प्रचलित उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है । यह प्रवृत्ति कुकुर मुत्ता, बेला, नये पत्ते आदि परवर्ती रचनाओं में अधिक मात्रा में पायी जाती है । इसके प्रमाण में निराला जी के वक्तव्य प्रस्तुत है :--

भाषा सरल तथा मुहावरेदार है । गद्य करने की आवश्यकता नहीं । .... .......... बढ़कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भरी हैं जिनमें फारसी के छन्द शास्त्र का निर्वाह किया गया है ।[१२५] .... भाषा अधिकांश में बोल चाल वाली पढ़ने पर काव्य की कुंजों के अलावा ऊँचे-नीचे फारस के जैसे ढोले भी ।[१२६]

---

१२४. निराला-परिमल, बादल राग (१) पृ० १६०-१६१
१२५. निराला-बेला की भूमिका ।
१२६. निराला- नये पत्ते की भूमिका ।

उर्दू,फारसी के शब्दों का प्रयोग :-

सुबहो शाम किरन जैसे तार पार..........
दुश्मन की जान आयी आफत में ,
गली गली गले के गोले दाग । [१२७]

और :-

रहते थे नव्वाब के खादिम, अफ्रीका के आदमी आदिम
खांसामा, बावर्ची और चौबदार, सिपाही,साईस,भिश्ती,घुड़सवार । [१२८]

और :-

निगाह तुम्हारी थी, दिल जिससे बेकरार हुआ ।
मगर मैं गैर से मिल कर निगाह के पार हुआ । [१२९]

अंगरेजी शब्दों का प्रयोग :-

द जोड़ ग्रेड बढ़ाया..........
दु:ख सहे, डिग्री खोई ।[१३०]

---

१२७. निराला -नये पत्ते, खुशखबरी, पृ० ३३
१२८. निराला-कुकुरमुत्ता, पृ० ५०
१२९. निराला- बेला, गीत २१, पृ० ३७
१३०. निराला-परिमल,जलद के प्रति, पृ० ७८ ।

और :-

जैसे सिकुड़न और साड़ी, ज्यों सफाई और मंडी
कास्मोपालिटन व मैट्रोपालिटन, जैसे हो फ्राइड, लिटन

...... ...... ...........................

तरसता में फ्राड कैपिटल में जैसे लेनिन ग्राड । [१३१]

इन शब्दों के प्रयोग से वातावरण-निर्माण में निराला जी को अत्यन्त सरलता प्राप्त हुई है । इस प्रयोग वैविध्य का मूल उद्देश्य पाठकों तक गंभीर- से - गंभीर विषयों को भी ऐसा प्रस्तुत करना है कि वे उनको समस्त संवेदनों के साथ सरलता से हृदयंगम कर सकें । निराला जी ने स्वयं कहा है -- "अधिक मनोरंजन और बोधन की निगाह रखी गयी है कि पाठकों का श्रम सार्थक हो और ज्ञान बढ़े ।[१३२]

निराला जी ने प्रसंगानुकूल भाषा-वैविध्य के द्वारा जातीय जीवन के विविध स्वरूपों का विविध चित्रण प्रस्तुत किया है जिससे उनके मानस प्रत्यक्षों और भावनाओं की जातीय जीवन के परिपेक्ष में कलात्मक अभिव्यंजना हुई है । निराला जी के ही शब्दों में भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छा मात्र से बदलने वाली देह है, रचना युद्ध-कौशल है, भाषा तदनुरूप अस्त्र । इस अस्त्र का पारंगत वीर साहित्यिक समुचित प्रयोग कर सकता है । जाति को भाषा के भीतर से ही देख सकते हैं । बाहरी दृष्टि से देखने की अपेक्षा इसके साहित्य के भीतर से देखने का महत्व अधिक होगा ।[१३३]

---

१३१. निराला-कुकुर मुत्ता, पृ० ४३
१३२. नये पत्ते की भूमिका ।
१३३.

५. शब्द-शक्ति -

किसी विशेषण को अभिधाश्रित स्थान से हटाकर लक्षणा द्वारा अन्यत्र लगा देने से काव्य का सौन्दर्य और बढ़ जाता है :-

बता कहाँ अब वह वंशीवट ?
कहाँ गये नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट,
कहाँ आज वह वृन्दा धाम ?
कभी यहाँ देखे थे जिनके श्याम विरह से तप्त शरीर ?
किस विनोद की तृषित गोद में आज पोंछती वे दृग-नीर ?[१३४]

"व्याकुल और तृषित" विशेषण क्रमश: पनघट और गोद के लिये आये हैं जब कि वास्तवमें "चरणों तथा शरीर" के लिये इनको प्रयुक्त होना चाहिये था। इन प्रयोगों के मूल में साध्यावसाना लक्षणा कार्य करती है।

निराला जी के काव्य में लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का इतना बाहुल्य है कि कोई कविता समग्रत: लक्षार्थ की द्योतक होती है तो कोई अभिधामूला व्यंजना की द्योतक :-

तुम नन्दन-वन-घन-विटप और मैं सुख-शीतल-तलशाखा,
.....................................
तुम आशा के मधुमास और मैं पिक-कल कूजन तान।[१३५]

---

१३४. निराला - परिमल, यमुना के प्रति, पृ० ४३-४४
१३५. वही, तुम और मैं, पृ० ८०-८२

इन दोनों पंक्तियों के वाच्यार्थ को ग्रहण करने से भाव समझने में बाधा पड़ती है, इनसे प्रतिपादित आत्मा-ब्रह्म के ऐक्य के सिद्धान्त को वाच्यार्थ से संबंधित दूसरे अर्थ के द्वारा परंपरा बद्धता और विशिष्ट प्रयोजन के कारण समझना पड़ता है। विटप-शाला और बसन्त कोयल की कूक के पारस्परिक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध की जानकारी के बल पर वाच्यार्थाश्रित लक्ष्यार्थ ग्रहण करना पड़ता है जिससे वाक्य का अर्थ समझ लिया जाता है। यहां लक्षणा शक्ति का समुचित प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार अभिधा मूलक व्यंजना द्योतक कविता व के रूप में "धारा"[१३६] को लिया जा सकता है। जिसमें वाच्यार्थ रोक-टोक से कभी न रुकने वाली नदी की बाढ़ का है। नदी की बाढ़ की अभिधा से "यौवन-मद" अर्थ लिया जाता है। साथ ही प्रबल वेग से बढ़ने वाली स्वच्छन्द काव्य धारा का भी अर्थ ध्वनित एवं व्यंजित होता है जो कभी नहीं रोकी जा सकती, किन्तु रोकने वाले को ही उसमें बहना पड़ता है। इसमें अन्योक्ति अलंकाराश्रित व्यंग्यार्थ ग्राह्य है। उनके नाम प्रधान वर्ण और शब्द भावानुयायी होते हैं, उसकी भाषा में कहीं उद्यम आवेग है तो कहीं माधुर्य की स्फूर्ति है। उनका प्रत्येक पद- विन्यास कवि की भाव तन्मयता को अभिव्यक्त करता है, इसमें उपर्युक्त वर्णों और शब्दों की सहायता से नियोजित ध्वनिमयता और नाद योजना का विशेष हाथ है। नाद सौन्दर्य और वर्ण-विन्यास कला के वैशिष्ट्य हैं, मुग्ध पर आशंकित वधू प्रिय-पथ पर चल रही है, उस समयउसके आभरणों की झंकृति सबको उसका परिचय दे देती है :--

---

१३६. निराला-परिमल, पृ० १३४

मौन रही हार, प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार
कण-कण कर कंकण, प्रिय किण-किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर, उर लाज, लौट रंकिणी......[१३७]।

निस्तब्ध-उदास और धूमिल संध्या के प्रशान्त, पर भीतर से व्यथापूर्ण रूप का चित्र इन पंक्तियों में सम्पूर्ण सायंकालीन रूप-छटा के साथ प्रस्तुत हुआ है :-

अस्ताचल रवि, जल-छल-छल छवि
स्तब्ध विश्व कवि, जीवन उन्मान,
मन्द पवन बहती सुधि-रह-रह
परिमल की कह कथा पुरातन।[१३८]

'जल-छल - छल छवि' में छलछलाने वाले जल की अजस्त्र धारा का चित्र ही प्रत्यक्षीभूत हो जाता है। इस प्रकार के भावाविष्ट ध्वन्यावर्त से वर्ण्य विषय का समस्त वातावरण उपस्थित हो जाता है। निराला जी की रचनायें 'बादल राग', 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' की नाद-व्यंजना अप्रतिम है। झूम झूमकर मंडराते और गरजते मेघों का ध्वनिमय चित्र वर्षा के समस्त स्वरों और गतियों के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :-

झूम झूम मृदु गरज गरज घन-घोर, राग अमर, अम्बर में भर निज रोर
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में घर मरु, तरु -मर्मर, सागर में

---

१३७. निराला-गीतिका, गीत ६, पृ० ८
१३८. निराला-गीतिका, गीत ६३, पृ० ६८

........... ............

अरे वर्षा के हर्ष ! बरस तू बरस-बरस रस धार........
पार ले चल तू मुझको, बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव-संसार !
........... ............
धंसता दल दल, हंसता नद खल-खल्
बहता, कहता कुल कुल कल कल कलकल । [१३६]

यहां नाद-योजना, अनुप्रास बहुलता और ध्वनिमय वर्ण विन्यास के द्वारा आरम्भ में वर्षाकालीन बादलों का धीरे-धीरे सरकना, गड़गड़ाना, विद्युत और गर्जना का आकाश में व्याप्त हो जाना, मूसलाधार वर्षा की ध्वनि का निरन्तर गूंजता रहना, पानी पड़ने से थल और दल-दल का धंस जाना ध्वनि सौष्ठव का वाच्यार्थ प्रकट हुआ है ।

## ४. रीति-योजना :-

काव्य-शरीर की तीनों प्रमुख संगठन विधियों का अथवा रीतियों को निराला जी के काव्य में सम्यक् रूप से नियोजित देखा जा सकता है । कहीं माधुर्य व्यंजक वर्णों की समास रहित या छोटे-छोटे समासों से युक्त वैदर्भी रीति की रचना है तो कहीं ओजगुण द्योतक सुन्दर वर्णों से गौड़ी रीति की रचना है और कहीं प्रसाद गुण समन्वित वर्णों की पांचाली रीति की रचना भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । निराला जी आत्मा और परमात्मा के बीच की द्वैतता के माध्यम से अद्वैतता की स्थापना करने के लिए विविध अप्रस्तुतों का जो नियोजन करते हैं उसमें भावानुकूल माधुर्य गुण का

---

१३६. निराला - परिमल, बादल राग (१), पृ० १६०

तुम तुंग हिमालय-शृंग, और मैं चंचलगति सुर-सरिता,
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास मैं कान्त-कामिनी कविता ।[१४०]

आत्मा और परमात्मा के अनन्य और शृंगारमूलक सम्बन्ध को छोटे-छोटे समासों वाली उपर्युक्त मधुर रचना द्वारा अभिव्यक्त किया गया है जो काव्य की आत्मा का स्वाभाविक आनन्द स्वतः प्रकाशित करती है ।

ओजगुण समन्वित पदावली अर्थात् गौड़ी रीति का उत्तम नियोजन 'राम की शक्ति पूजा' में हुआ है । युद्ध के उत्साहपूर्ण और भयानक स्वरूप का वर्णन करते हुये निराला जी ने जो सामासिक शब्दावली का प्रयोग किया है उससे उसकी आत्मा का ओज स्वयं ही व्यंजित होता है । शब्दों के वर्ण-प्रयोग मात्र से भावों की कठोरता और ओजस्विता का परिचय प्राप्त होता है :-

राघव-लाघव-रावण-वारण-गत युग्म-प्रहर
उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपि दल-बल-विस्तार
अनिमेष-राम-विश्वजित् दिव्य शर-भंग-भाव
विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टिप्रखर-रुधिर-स्राव
रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल वानर-दल-बल ।[१४१]

निराला जी की कुछ रचनाओं का पद विन्यास प्रसाद गुण- व्यंजक होता है । उनका श्रवण करने मात्र से अर्थ प्रतीति हो जाती है । ऐसी सरल और ,

---

१४०. निराला-परिमल, तुम और मैं, पृ० ८०
१४१. निराला-अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ० १५२ ।

प्रसाद गुण युक्त पांचाली रीति में आबद्ध निराला जी की रचनायें कम नहीं हैं :--

मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये, कल्पना-लतिका।
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय, है तू कमल-कामिनी,
मेरे कुंज-कुटीर, द्वार की कोमल-चरणा-गामिनी।[१४२]

निराला जी के गीतिका, अनामिका, आराधना, गीतिगुंज आदि काव्य संग्रहों में पांचाली रीति से गठित अनेक रचनायें विद्यमान हैं। गीतिका में माया-बद्ध जीवन का जो करुणा चित्र निम्नांकित पंक्तियों में अंकित किया गया है, उसके प्रत्येक वर्ण में प्रसाद गुण का सन्निवेश है :-- ·

व्यर्थ हुआ जीवन यह भार,
देखा संसार वस्तु
    वस्तुत: असार:,
भ्रम में जो दिया, ज्ञान में लो तुम गिन-गिन।[१४३]

निराला जी के अधिकांश पद- विन्यास में ओज गुण और गौड़ीय रीति का प्राधान्य है फिर भी उनकी समग्र रचनाओं का अध्ययन करने पर इसी

---

१४२. निराला-अनामिका, प्रिया से, पृ० ४२
१४३. निराला- गीतिका, पृ० ५६

निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी वर्ण-शब्द योजना प्रसंगानुसार मधुर ओजस्वी और प्रसादमय है । निराला जी के काव्य 'तुलसीदास' में तीनों रीतियाँ एक साथ समाविष्ट हैं :-

गौड़ीय रीति -

> भारत के नभ का प्रभापूर्ण,
> शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य
> अस्तमित आज रे- तमस्तूर्य दिङ्मण्डल ।

वैदर्भी रीति -

> वह नहीं आज गृह, छाया-उर ,
> गीति से प्रिया की मुखर, मधुर,
> गति-नृत्य, तालशिंजित-नूपुर, चरणारुण,

पांचाली रीति -

> वह आज हो गयी दूर तान,
> इसलिये मधुर वह और गान
> सुनने को व्याकुल हुये प्राण प्रियतम के ,[144]

'जागो फिर एक बार' , शीर्षक प्रगीत के प्रथम भाग की शब्दावली वैदर्भी रीति के माध्यम से और द्वितीय भाग का शब्द-विन्यास गौड़ीय रीति के माध्यम से संयोजित हुआ है । इसका कारण वस्तुगत वैविध्य है, यदि प्रथम

---

१४४. निराला- तुलसीदास, गीत, १,७२,७३, पृ० ११,४० ।

भाग में मधुर प्रकृति और शृंगार का चित्रण हुआ है तो द्वितीय में वीर रस का परिपाक और दार्शनिक सिद्धान्त का काव्यात्मक विवेचन हुआ है, तदनुसार पद-विन्यास में भी वैविध्य का होना स्वाभाविक ही है । इसके द्वारा निराला जी के शाब्दिक और आर्थिक संतुलन का आसानी से अनुभव किया जा सकता है ।

७. गेयता --

निराला जी की गीत-रचनाओं में हिन्दी के विभिन्न छन्दों का अनुपालन हुआ है । यद्यपि वहाँ गेयता ही प्रमुख है, संगीत के शास्त्रीय विधान की मान्यताओं के साथ काव्य के छन्द-विधान को भी एकान्वित करके उन्होंने एक मौलिक और नवीन पद प्रशस्त किया । निराला जी ने अपने गीतों को झंम्मार, रूपक, झपताल, त्रिताल, चौताल आदि प्रचलित तालों में आबद्ध किया । इन गीतों को भैरवी, केदार, मालकौस, कल्याण आदि विभिन्न राग-रागिनियों में गाया जा सकता है । साथ ही निराला जी के अधिकांश गीत हिन्दी के छन्द-विधान प्रक्रिया के अनुकूल भी ठहरते हैं । निम्नलिखित गीत दस मात्राओं की "झपताल" में आबद्ध हैं :-

अनगिनत आ गये, शरण में जन जननि = १० + १०

सुरभि -सुमनावली, खुली, मधु ऋतु अवनि ।[१४५] = १० + १०

---

१४५. निराला-गीतिका, गीत, १८, पृ० २०

इसे हिन्दी छन्द शास्त्र के अनुसार दैशिक जाति के 'दीप' छन्द के अन्तर्गत लिया जा सकता है जिसके प्रत्येक चरण में १० मात्रायें होती हैं।[१४६] किन्तु इसके चरणान्त में (गुरु-लघु) का पालन नहीं हुआ है। इसी प्रकार सोलह मात्राओं वाले त्रिताल में निबद्ध निम्नलिखित गीत सोलह मात्रिक संस्कारी जाति के प्रसिद्ध छन्द 'चौपाई'[१४७] के अन्तर्गत रखा जा सकता है :-

| | | |
|---|---|---|
| नील वसन शतदु-तन-उर्मिल | = | १६ |
| किरण चुम्बि मुख अम्बुज भरे खिल | = | १६ |
| अन्तस्तल मधु गन्ध अनामिक | = | १६ |
| उर उर तब नव राग जागरण[१४८] | = | १६ |

निराला जी गीतिका और परवर्ती गीतों में संगीत और काव्य का समन्वय करने में सफल हुये हैं। उनके गीत शब्द, स्वर, भाव और छन्द के मधुर समन्वय हैं। उन्होंने संगीत और काव्य का सम्बन्ध अपनी कविताओं द्वारा स्थापित किया है।

---

१४६. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' - छन्द प्रभाकर, पृ० ४४

१४७. रघुनन्दन शास्त्री - हिन्दी छन्द प्रकाश, पृ० ५४

१४८. निराला-गीतिका, गीत- ५०, पृ० ५५

## राय चौधुरी के काव्य में भाव पक्ष

### १. रस नियोजना :-

भारतीय साहित्य-चिन्तन की अभूतपूर्व रसवादी धारा राय चौधुरी के काव्यों में अन्तर्वाहिनी बन कर प्रवाहित हो रही है। 'रस' की शास्त्रीय नीति से विवेचित समस्त प्रकार राय चौधुरी जी की कृतियों में अपने सभी उपादानों के साथ विद्यमान हैं। 'तुमि' काव्य के प्रथम परिच्छेद में शृंगार के संयोग और वियोग पक्षों, व्यंग्य पूर्ण कविताओं में हास्य और शान्त रस का परिपाक है तो 'जयद्रथ बध' में वीर और रौद्र रस की व्यंजना है। उनके भक्ति-मूलक गीत भक्ति और शान्त रस से सम्बन्धित हैं। राष्ट्रीय गीत और कविताओं में वीर, करुणा और शान्त रसों की परिनिष्ठित व्यंजना हुई है। राय चौधुरी की आध्यात्मिक भाव पूर्ण रचनाओं में शान्त रस और जातीयतावादी देश-प्रेम मूलक रचनाओं में वीर रस विद्यमान है। उनके काव्य में उपलब्ध प्रमुख रसों का उदाहरण इस प्रकार है :-

वीर रस --

> जाग हूंका तेज, जाग आजि जाग
> स्वर्ग मर्त्य कंपाइ जाग,
> विनाशि जालिर दु:ख दारिद्र्य,
> घूणित गलित कालिमा दाग।[१४६]

---

१४६. राय चौधुरी-कन्दों कि कन्दैरे, पृ० ८

हिन्दी रूपान्तर

जागो यौवन-शक्ति, जागो आज जागो
स्वर्ग-मर्त्य कंपाकर जागो ,
जाति का दु:ख दारिद्र्य, घृणित-कालिमा दाग
विनष्ट कर जागो ।

शृंगार रस -

तुमि दूरणिर प्रेमिकर
हँपाछर व्यग्र हियाखनि,
तुमि विरहिनी, अन्तरत
मुँ मिलनर बलिया कंपनि ।[१५०]

हिन्दी रूपान्तर -

तुम दो दिन के प्रेमी की
आग्रहान्वित व्याकुल हिया हो ।
तुम विरहिणी अन्तर की
मिलन के आकुल कंपन की ध्वनि हो ।

---

१५०. राय चौधुरी- तुमि, पृ० २

भक्ति रस -

हैरा दयामय । मंगलदाता भगवान,
मौर जाति ढौंक एनै चरित्र दिया दान ।[१५१]

हिन्दी रूपान्तर -

हे दया मय । मंगलादाता भगवान् ,
मेरी जाति को ऐसा चरित्र करो प्रदान ।

अद्भुत रस -

हाय। हाय। हाय। समाज कनत
नैता नैति नीर सकर वापत
एनैयैह तौ नैतिक चरित्र उरि गल
बाढ़िल वैशत दुर्नीतिमय ब्याभिचार मल ।[१५२]

हिन्दी रूपान्तर

हाय । हाय । हाय । समाज में
नेता नेत्रियों की लालच की तीव्रता में
नैतिक चरित्र पानी हो गया है ।

---

१५१, राय चौधुरी - बेचनार उल्का, पृ० ६२
१५२ , वही, पृ० ६२

देश में दुर्नीतिपूर्ण
व्यभिचार की मलिनता बढ़ गयी है ।

अद्वैत तत्व अनुप्राणित राय चौधुरी की रस-नियोजन-प्रक्रिया सर्वत्र संयमित, तटस्थ और निर्वैयक्तिक है ।

२. प्रतीक विधान --

राय चौधुरी की रचनाओं में अनेक स्थलों पर भावों और विचारों से संगुम्फित अनुभव अपेक्षित हुये हैं तथा उन स्थलों पर वस्तु-भाव और सौन्दर्य के बोध की सबल और सक्षम अभिव्यंजना व्यक्त हुई है । उतदर्थ उन्होंने अनेक ज्ञापक सहज साध्य एवं संवेद्य संकेतों का प्रयोग किया है जिनके द्वारा दृश्य अथवा अगोचर वस्तु या विषय का प्रतिपादन[१५३] संभव हुआ है । राय चौधुरी के प्रतीक असाधारण भावना और अनुभूति के प्रकाशन में सफल सिद्ध हुये हैं उनकी कृतियों में गहनतम् लौकिक अनुभूतियों को प्रतीकों के माध्यम से प्रकाशित किया गया है । उदात्त और आलोकपूर्ण आध्यात्मिक अनुभवों की अभिव्यंजना के लिये प्रतीकों का आश्रय लिया गया है और अव्यक्त एवं अनिर्वचनीय तत्वों के उद्घाटन में साधारण भाषा को असमर्थ पाकर संकेतमय प्रतीकों का उपयोग किया है । वस्तुत: ये प्रतीक कवि की परिपक्व और संघटित अनुभूतियों की प्रतिकृति हैं । राय चौधुरी की रचनाओं में प्रतीक तत्वों का बाहुल्य उनकी आध्यात्मिक, दार्शनिक, रहस्यवादी और भक्ति परक कृतियों में पाया जाता है । उनके काव्यों में उदात्त आध्यात्मिक विचारों की प्राकृतिक प्रतीकों और यौन आवेगों के द्वारा बड़ी ही सरलता से अभिव्यक्त किया गया है :--

---

१५३. आत्माराम शाह- हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ५५५

मौर किन्तु एइ कुपुरित
शांति भरा आनन्द पुरीत
भरि आछे काणो काणो माथी महाप्राणा ।[१५४]

हिन्दी रूपान्तर -

किन्तु मेरी इस कुटी में
ऐसी पूर्ण आनन्द नगरी में
भरा - पड़ा है मात्र किनारे में महाप्राण ।

यहाँ साधक की साधना में डूब कर तेज: पुंज स्वरूप ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करने तथा ब्रह्मानन्द रसास्वादन करने की ओर संकेत है । "फनीपड़ी" ब्रह्मज्ञान अथवा सत्यज्ञान के अमृत सागर में निमग्न पड़े रहने वाले साधक के शरीर का प्रतीक, "आ आनन्द पुरी" "सनातन विराजमान रहने वाला स्वर्ग और" महा प्राण" सबके कर्त्ता भगवान् का प्रतीक हैं । ब्रह्मज्ञान के आलोकमय और अमर होने के कारण प्रतियमान को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं राय चौधुरी ने तत्वज्ञान अथवा परम-पद की उपलब्धि के लिये सच्चे हृदय से भक्ति या साधना करने की आवश्यकता पर जोर देते हैं :-

तोमार तैलत,
मौर अनलत,
नबलिलै बन्ति उदार,
हब किय् उजल अंधकूप ?[१५५]

---

१५४. राय चौधुरी-अनुभूति, पूर्णानन्द, पृ० ३

हिन्दी रूपान्तर

तुम्हारा तैल
मेरा आग

उदास दीपक नहीं जलने से
कैसे होगा उज्ज्वल अंधकूप ?

परमपद की उपलब्धि के लिये तन्मय भक्ति या साधना की ही आवश्यकता है । इसमें राय चौधुरी ने 'तैल, अनल, दीपक, अंधकूप' को क्रमश: जीवन शक्ति और भगवान् के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है ।

राय चौधुरी के स्वच्छन्दतावादी काव्य 'तुमि' आद्यन्त प्रतीक विधान से संबंधित है । यहाँ 'कवि' आत्मा का और 'तुमि' परमात्मा का प्रतीक है । इस काव्य में आने वाले समस्त शब्द प्रतीक हैं, जैसे 'तुम' , सुन्दर' 'आभा' , 'जननी, भाई बहन, सूर्य, चन्द्र, आकाश, वायु आदि वस्तुयें क्रमश: परमात्मा और आत्मा के प्रतीक बनकर आई हैं । वस्तुओं की आधार-आधेय, कार्य कारण इत्यादि सम्बन्धों का निर्वाध उक्त प्रतीकों में हुआ है । मायातम के आवरण से मुक्त होकर रहस्यमयी ब्रह्मसत्ता का पूर्ण परिज्ञान पाने वाले मुक्तात्मा की प्रतीक है । द्वैत में अद्वैत की स्वीकृति का प्रतिपादन 'तुमि में आये हुए समस्त प्रतीक करते हैं । 'तुमि' प्रतीक प्रधान काव्य है और इसमें तीव्र आध्यात्मिक अनुभव, दिव्य सत्ता के प्रत्यक्षसाक्षात्कार की अनु-भूति, रहस्यभावना आदि की परिष्कृत किन्तु सांकेतिक अभिव्यंजना प्रतीकों के माध्यम से हुई हैं ।

राय चौधुरी के अधिकांश प्रतीक उदात्त, प्रच्छन्न आध्यात्मिक तत्वों के प्रकाशक हैं। ये प्रतीक अभिव्यक्ति की समग्रता में निष्पन्न सौन्दर्य-बोध के द्वारा भाव- बोध को तीव्र और गंभीर बनाते हैं। उनके प्राकृतिक प्रतीक सर्वाधिक ग्राह्य हैं। प्रतीकों के प्रयोग से राय चौधुरी के काव्य में सशक्त अर्थवत्ता और भाव ग्रहण की नई शक्ति उभर आई है। राय चौधुरी के प्रतीक-विधान की विशेषता उनकी संवेद्यता और संवाह्यता है, कहीं भी वे दुरूह अथवा बोझिल नहीं हुये हैं।

३. बिम्ब-विधान --

राय चौधुरी का शब्द योजन उनके काव्य को पूर्णतः, प्रकाश और चित्रात्मक सौन्दर्य प्रदान करता है। उनके शब्दों में भावाभिव्यंजना की एक विशिष्ट प्रकार की शक्ति, सौन्दर्य और पूर्णता है, जो किसी दूसरे शब्दों के प्रयोग से संभव नहीं है। उनके काव्य में बिम्बों की समृद्धि पाई जाती है जो उनकी सशक्त और सक्षम कल्पना-शक्ति की परिचायिका है। उनके काव्य गत बिम्ब कविता के भावों, प्रतिपाद्य वस्तुओं और सारे परिवेश को पूर्ण प्रभाव क्षमता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनके बिम्बों में वांछित वातावरण का निर्माण हो जाता है :-

> तुमि लाजर राङ० ली आभा
> गाभरूर गोलापी गालत। [१५६]

---

१५६. राय चौधुरी - तुमि, पृ० १

हिन्दी रूपान्तर

तुम युवती के गुलाबी गाल की
शर्मीली लाल पूर्ण आभा हो ।

यह एक युवती के यौवन का बिम्ब है । यहाँ समग्र वातावरण का सम्पूर्ण बिम्ब उसकी गंभीरता, उदात्तता, आवेशमयता आदि के साथ उपस्थित हुआ है । राय चौधुरी के काव्य की भाषा में लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता विवेचनीय तत्व हैं । 'तुम' और 'मैं' की परम्परा में रचित 'तुमि' काव्य में लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

राय चौधुरी के काव्य में कलापक्ष -

१. छन्दोविधान -

नये युग के प्रतिनिधि कवि राय चौधुरी की भावनाओं की सूक्ष्मता, संवेदनाओं की तीव्रता, अनुभूति की गंभीरता और काल्पनिक गरिमा को वहन करने की सामर्थ्य पुरातन परम्पराबद्ध छन्द विधान में नहीं था । उनका काव्य ध्येय वस्तुत: जन सामान्य के अन्तर तक अपनी गंभीर और उदात्त अनुभूतियों को पहुँचाना था । उनका काव्य-ध्येय वस्तुत: जन-सामान्य के अन्तर तक अपनी गंभीर और उदात्त अनुभूतियों को पहुँचाना था । फलत: उन्होंने अपने काव्य में ऐसे ही शब्दों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया है जो लोक हृदय को स्पर्श करने वाली राग-रागिनियों और लोक-धुनों में निबद्ध हैं । इनके अतिरिक्त, असमीया छन्द-शास्त्र के परम्परा विहित शास्त्रीय छन्दों का भी प्रयोग किया है और उनमें यत्रतत्र केवल लय तथा नाद पर ध्यान देते हुये

शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन भी किया है। राय चौधुरी ने इन सबसे भिन्न सर्वथा नवीन छन्द का प्रयोग किया है। इसमें लय और नाद है, परन्तु छन्दोबद्धता नहीं, फिर भी कविता के समस्त गुण विद्यमान हैं। इस तरह राय चौधुरी की चार प्रमुख प्रकार की रचनायें पाई जाती हैं :-

(१) सममात्रिक सांत्यानुप्रास कवितायें - सम मात्रिक सांत्यानुप्रास कविता के प्रति चरण में समान मात्रायें होती हैं और अन्त्यानुप्रास भी मिलते हैं। राय चौधुरी की कृतियों में इस श्रेणी की कवितायें बहुत कम मिलती हैं :-

तोमार थानतकै मोर थान भाल, = २०
तृप्तिर आनन्द मोर स्यैचिरकाल ।[१५७] = २०

हिन्दी रूपान्तर

तुम्हारे स्थान से मेरा स्थान अच्छा है।
तृप्तिका आनन्द मेरा चिरकाल यही है।

इसके प्रत्येक चरण में समान रूप से बीस मात्रायें रहती हैं और दोनों चरणों में अन्त्यानुप्रास है।

असमीया भाषा में युग्म ध्वनि के उच्चारण के प्रभेद में दो छन्द रीति की उत्पत्ति हुई है - एक मात्र वृत और दूसरा यौगिक। यौगिक में

---

१५७. राय चौधुरी-अनुभूति, आत्माभिमान, पृ० ११।

शब्दों की लय और ताल सम्पूर्ण विद्यमान रहता है और असमीया के 'पयार' धर्मी छन्द इस यौगिक रीति के अन्तर्गत आते हैं । असमीया भाषा में मात्रावृत्त का प्रयोग बहुत कम है तो भी उसका बीज कहीं-कहीं मिलता है । अम्बिकागिरि राय चौधुरी ने मात्रावृत्त का व्यवहार किया है और इस क्षेत्र में उनका स्थान अन्यतम है । उनके काव्य 'तुमि' की छन्द-रीति एकान्त यौगिक है किन्तु कहीं - कहीं मात्रावृत्त का भी प्रयोग दिखाई पड़ता है :--

तुमि दापोंण आगत लइ ।
चाइ चाइ आपोन माधुरी
मिचिकि मिचिकि हाँहि
मुग्ध कैवा रूप-ही लाहरी । [१५८]

हिन्दी रूपान्तर

तुम दर्पण सम्मुख लेकर देखते हो अपनी माधुरी
तुम हो अस्फुट हँसी से मुग्ध करने वाली सुकुमारी सुन्दरी ।

इस स्तवक के प्रथम चरण का 'तुमि' शब्द पर्वप्रान्तिक है । इसके 'मुग्ध' शब्द में दो ध्वनियाँ हैं -- मुग् और ध । प्रथम ध्वनि युग्म है दूसरी अयुग्म है । किन्तु दोनों ध्वनि में एक ही मात्रा का व्यवहार हुआ है । मात्रा-

---

१५८, राय चौधुरी- तुमि, पृ० ५ ।

वृत्त होने से इसकी तीन ध्वनि होती है । राय चौधुरी ने इस यौगिक छन्द रीति में ही अपनी रचनायें की थीं । इसके प्रथम व तृतीय और द्वितीय व चतुर्थ चरणों में अन्त्यानुप्रास मिलते हैं ।

(२) विषममात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें —

जो छन्द सममात्रिक चतुष्पदी नहीं हैं और जिनमें अर्धसम मात्रिक छन्दों का लक्षण भी नहीं मिलता है उन अनियमित और संयुक्त छन्दों को विषममात्रिक छन्द कहा जाता है । चार चरणों से कम या अधिक चरण वाले छन्दों को भी विषममात्रिक छन्द कहा जाता है । उनमें किसी एक छन्द की पंक्ति को देकर शेष सभी बंध दूसरे छन्द को दिये जाते हैं । राय चौधुरी के काव्य में ऐसे अनेक छन्द मिलते हैं जो विषममात्रिक होते हुये भी सान्त्यानुप्रास हैं । इन छन्दों में भावों की प्रसारणशीलता के अनुकूल परिवर्तन किया जाता है अर्थात् इनके चरणों की मात्रायें भावानुकूल घटाई-बढ़ाई जाती हैं, किन्तु अन्त्यानुप्रास का पालन बराबर किया जाता है अत: उनको मुक्त छन्द की कोटि में ग्रहण नहीं किया जा सकता, किन्तु मुक्त छन्द की पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया जा सकता है :—

| | |
|---|---|
| शुनिछाने आजि | ६ मात्रायें |
| उठिहैं यै बाजि | ६ ,, |
| सखि छाँहि धका मोर चौतालत | १७ ,, |
| नीलिम चन्द्रतापर तलत | १४ ,, |
| चन्द्र-सूर्य-तरार आलोत | १५ ,, |
| चैपा छाँहि मारि मोहिनी छलत | १८ ,, |
| छ्योटा अतुर बारटा माहर , | १७ ,, |

सांतुरि-नाडुरि माधुरी सागर ।[१५६] १७ मात्रायें

हिन्दी रूपान्तर -

सुना है आज
कर उठा है बाज
हसमुख प्रिय मेरे आंगन पर ।
सुनील चंदोवा के नीचे
चन्द्र, सूर्य, तारों के आलोक में

अस्फुट मुग्ध कर हंसी से
छः ऋतुओं में, बारह मास में
तैरते ही प्रेम - माधुरी के सागर में ।

इस स्तवक के 'आजि', 'बाजि', 'चौतालत', 'तलत', 'आलोत', 'छलत', माहर, सागर में अन्त्यानुप्रास है ।

(३) मुक्त छन्द की कवितायें :--

असमीया छन्द- शास्त्र के ज्ञाता होते हुये भी राय चौधुरी ने ऐसी अनेक रचनायें प्रस्तुत की हैं जिनमें छन्द के नियमों का उल्लंघन हुआ है । वास्तव में राय चौधुरी ने लय, ताल और स्वर बद्ध कविताओं के द्वारा पर- म्परा-विरोधी, स्वच्छन्दतावादी और उदात्त समन्वयवादी सिद्धान्तों को अभि-

---

१५६. राय चौधुरी-अनुभूति, पृ० ३३

लोक-हृदय तक पहुँचाया है । उन्होंने पुरातन छन्द-नियमों का उल्लंघन कर अपनी स्वच्छन्द चेतना की अभिव्यंजना की है :-

मइ महा निराश्रय दरिद्र दुर्बल
परि आछों तोर एइ
पान-छिरि एरि दिया एंधार पुरीत
तातेहे करिछ मोक अवहेला इमान ?[१६०]

हिन्दी रूपान्तर

मैं अत्यन्त निराश्रय, दुर्बल, गरीब के रूप में
गिरा पड़ा हूँ बन्धनहीन अँधेरे नगरी में
इस लिये मेरी करते हो इतनी उपेक्षा ?

(४) प्राचीन रीति की कवितायें -

राय चौधुरी के गीतों में प्राचीन रीति मात्रावृत्त का व्यवहार किया है । विशेषकर पर्व प्रान्तिक और बहुमात्रिक रूपकल्प आदि का सुन्दर प्रयोग उनकी कविताओं में दिखाई पड़ता है :-

---

१६०. राय चौधुरी- अनुभूति, पृ० ४

दैश वैश जुरि लाख लाख भूपतियै
गाले आहि धुर्व गा यत्री । [१६१]

हिन्दी रूपान्तर

समग्र दैश के लक्ष्य नरपति ने
गाया है अपना जय गान ।

उक्त स्तवक में धुर्व शब्द के अवस्याजनिक उच्चारण पर दृष्टि डालने से ही छन्द रीति का प्रभेद दिखाई पड़ता है । इस प्रकार मात्रावृत्त छन्द रीति का प्रयोग अनेक छोटी-छोटी कविताओं में देखा जाता है :-

एहतो नहय हाँ हि येमालिर
भागर जुरीवा गान । [१६२]

हिन्दी रूपान्तर

यह नहीं है हँसी - खेल के आरंभ का गान ।

असमीया कविता की छन्द-रीति में कभी-कभी पर्व-समूह में ध्वनि-साम्य युक्त चरण में एक-एक गौण मात्रा आती है, इसका व्यवहार राय चौधुरी जी की कविता में सर्वाधिक परिलक्षित होता है । जिसको पर्व प्रान्तिक कहा जाता है -

---

१६१. राय चौधुरी - बन्दों कि छन्दे , पृ० १
१६२ वही, पृ० १० ।

एइतो नह्य् हाँहि तामाचार भागर जुरीवा गान०० इ ये ।
जीवन मरण एकाकार करा अग्नि बीणार तान ००इ ये ।
शत अपमान ‡ लीछना हानि ऊजरा असीम ताप ०० इ ये ।
रुद्र आत्मा ‡ शकति निर्जरि अह्लेना अनल भाप ००० ।[१६३]

हिन्दी रूपान्तर -

यह तो नहीं हंसी - खेल के आराम का गान ०० यह
जीवन-मरण के ऐक्य की अग्नि-बीणा की तान ०० यह
शत अपमान लांछना हानि विस्तृत असीम ताप ०० यह
रुद्र आत्मा की शक्ति से प्रवाहित हुआ अनल की भाप है ।

इस स्तवक में तान, इये, ताप, भाप मौन मात्रायें हैं । राय चौधुरी ने प्राचीन परम्परा के पखार धर्मी काव्य में मुक्ति का स्वर सुनाया है :-

भाङ्गि'गुरि करा धुमुहा आहिछे आइक
बिम्बा शब्दे बज्र गाजिछे गाजक
आग्नेयगिरि उल्का उरिछे उरक
भूमि कंपत धरणी फाटिछे फाटक ।[१६४]

---

१६३. राय चौधुरी-छन्दो कि छन्देरे, पृ० १०
१६४. राय चौधुरी-बीणा, पृ० ३७ ।

हिन्दी रूपान्तर-

चूर्ण करने वाली हवा आ रही है, आने दो ।
बिना शब्द वज्र गर्जन कर रहा है, करने दो ।
ज्वालामुखी में उल्का उड़ रही है, उड़ने दो ।
भूचाल में धरती फाड़ रही है, फाड़ने दो ।

षाड्मात्रिक रूपकल्प मात्रावृत्त छन्द का असमीया में प्रचलन अधिक है । इसमें अयुग्म तीन मात्राओं में असम मात्रिक रूप में माधुर्य के साथ ध्वनि निकलती है, राय चौधुरी की कविता में भी इसका प्रयोग परिलक्षित होता है :-

एइ तो नहय । हाँहि तामाचार भागर जुरोवा गान
इ यै जीवन मरण एकाफार करा अग्नि बीणार तान
इ यै शत अपमान लाँछित होता उजरा असीम ताप [१६५]

हिन्दी रूपान्तर

यह तो नहीं हँसी-खेल के आराम का गान ०० यह है
जीवन-मरण के ऐक्य की अग्नि-वीणा का तान ०० यह है
शत अपमान लाँछना-हानि विस्तृत असीम अनल का ताप....... ।

---

१६५. राय चौधुरी- बन्दों कि छन्देरे, पृ० १० ।

यह पर्व प्रान्तिक-वैशिष्ट्य पूर्ण अतिपूर्ण पढ़ी अनुमात्रिक मात्रावृत्त है ।

इस स्वच्छन्द शिल्प- सज्जा के निर्माण के लिये राय चौधुरी ने उनके स्रोतों से भले ही प्रभाव ग्रहण किया हो, फिर भी इसे मात्र सूच-नात्मक प्रभाव मानकर उनकी मौलिक सूझ का परिणाम स्वीकार करना ही अधिक समीचीन होगा, क्यों कि भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं की तीव्रता ,विशदता और प्रौढ़ता को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये कला के इस नवीन बाह्य उपादान का निर्माण असमीया भाषा में राय चौधुरी को ही सर्व प्रथम करना पड़ा है । राय चौधुरी की यह नवीन सृष्टि गतिशील और जीवन्त असमीया भाषा-शिल्प -विधान में एक नया चरण है ।

२. अलंकार योजना--

राय चौधुरी की अलंकार-योजना पर ध्यान देने से यह स्पष्ट विदित होता है कि उनके काव्य में परंपरा-स्वीकृत अलंकारों , भावप्रवेश, भाव-सान्द्रता, के अभिव्यंजनार्थ आवश्यक और स्वयंसंभूत ध्वन्यार्थ व्यंजना, विशेषण विपर्यय, मानवीकरण आदि अलंकारों का प्राचुर्य अवश्य है, किन्तु वे जड़-यंत्र बन कर नहीं आये हैं । उपर्युक्त कलात्मक अनुभूति- चेतना की सजीव रचना-प्रक्रिया के रूप में उपस्थित हैं । वास्तव में राय चौधुरी की अलंकार-योजना स्वाभाविक है ।

(क) भारतीय अलंकार -- असमीया काव्य के प्राचीन काल से जिन अलंकारों का प्रयोग किया जा रहा है उनमें संस्कृत और असमीया के अलंकारों में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

अप्रस्तुत विधान -- राय चौधुरी के काव्य में उपमा, रूपक आदि अलंकारों की बहुलता पायी जाती है जिनसे वाणी में चमत्कार और विचारों के प्रतिपादन में परिष्कार आ गया है। राय चौधुरी की उपमा-योजना की विशेषतायें उनकी मूर्त की अमूर्तो, एवं अमूर्त की मूर्तोपमा हैं। इसमें वस्तुत: प्रभाव-साम्य की प्रवृत्ति कार्य करती है। इसके द्वारा अन्त: सौन्दर्य के साथ सूक्ष्म सत्य का भी उद्घाटन होता है। अन्तरंग-साम्य या प्रभाव-साम्य के आधार पर 'तुमि' काव्य में ऐसे अनेक मूर्त और अमूर्त उपमानों को विधान किया गया है --

बिरहर बह्निमय बेलिर तलत ।[१६६]

हिन्दी रूपान्तर

बिरह की आग - सी है सूरजकेनीमें ।

इसमें प्रस्तुत मूर्त विषय विरह में अमूर्त उपमान सूर्य का विधान किया गया है।

राय चौधुरी की कविताओं में रूपक और उसमें भी विशेषकर सांग रूपक का निर्वाह परिलक्षित होता है। 'तुमि' काव्य में एक जगह स्त्री रूपी जीवात्मा का सांग रूपात्मक चित्र है :--

सुशितल सुबिमल
बिभर बुकुट नाचे
पदुमी लाहरी ।

---

१६६. राय चौधुरी- तुमि, पृ० ३५

सुषमा सुन्दरी कैने
बासन्ती काछौने काछै
बिरह पाहरि । [१६७]

हिन्दी रूपान्तर

सुशीतल सुविमल
झील की गोद में
नाचता है सुकोमल कमल का फूल ।
सुषमा सुन्दरी कैसी
वासन्ती सज्जा से सज्जित है
विरहीन आनन्द-व्याकुल ।

वसन्तकालीन -कमल पूर्ण जलाशय की सुषमा पूर्ण यौवन में चरण रखने वाली युवती का स्वरूप यहाँ प्रदर्शित है ।

राय चौधुरी के काव्य में भावानुकूल शब्द सृष्टि अर्थात् सार्थक अनुप्रास-योजना का महत्व अत्यधिक है । स्वर और वर्णों की आवृत्ति पर आधारित अनुप्रासों का प्रचुर परिमाण में उपयोग हुआ है, जिससे शब्द-संगीत का निर्माण हो जाता है :-

हीनता, नीचता, भीरुता, दीनता,
जौकारि पैलोवा भाव । [१६८]

---

१६७. राय चौधुरी- तुमि, पृ० ५५
१६८. राय चौधुरी-बन्दों कि छन्देरे , पृ० १०८ ।

हिन्दी रूपान्तर

फेंक दो ,
हीनता, नीचता, भीरुता, दीनता के भाव को ।

स्तवक में अनुप्रास की छटा विद्यमान है । इस प्रकार राय चौधुरी के काव्य में बहुत ही स्वाभाविक ढंग से प्राचीन परम्परागत अलंकारों का सुगठित विधान हुआ है ।

(ख) पाश्चात्य अलंकार - कवि राय चौधुरी ने भावाभिव्यंजना में सहायता प्रदान करने वाले तीन विशिष्ट अलंकारों का भी प्रयोग किया है जिन्हें वस्तुतः भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य काव्य शिल्प की छाया के रूप में ग्रहण किया जा सकता है । ये तीन अलंकार हैं -

मानवीकरण, विशेषण विपर्यय और ध्वन्यार्थ व्यंजना ।

(अ) मानवीकरण- प्रकृति दर्शन में रमकर आत्म विभोर होने वाले राय चौधुरी तल्लीनता में हृदय की मुक्तावस्था को प्राप्त कर चुके हैं । तभी प्रकृति उनके लिए साधन न बन कर साध्य बन जाती है । प्रकृति में जीवन-स्पन्दन की जब उन्हें अनुभूति होती है और तब वे अचेतन प्रकृति में भी साम्य विधान द्वारा मानवीय तत्त्वों का नियोजन कर उसे चेतन बना देते हैं । उनके प्रकृति विषयक मानवीकृत चित्र बड़े ही उदात्त, संश्लिष्ट एवं भावावेष्टित हैं । 'भूमि' काव्य के तृतीय परिच्छेद में मानवीकरण का सुमधुर स्वरूप पाया जाता है । मानवीकृत प्रकृति चित्रण के प्रसंगों में भावनाओं की सूक्ष्मता के साथ ही भाषा भी स्वयमेव अलंकृत और संश्लिष्ट हो जाती है ।

सुन्दरी सुवागी ऊषा चुचुक चामाक,
मोहिनी मिचिकि मारि धुमुक भावाक ।[१६६]

विन्दी रूपान्तर

सुन्दरी ऊषा आनन्द में द्विधापूर्ण भाव से ।
झाँकती है लज्जा में मन-मोहक रूप से ।

राय चौधुरी के उपर्युक्त प्राकृतिक चित्रों में मानवीय भावनाओं और क्रियाओं का कलात्मक नियोजन हुआ है । प्रभाव-साम्य के आधार पर संश्लिष्ट बिम्ब विधान और प्रकृति की विभिन्न परिस्थितियों का चेतन चित्रण उसके विविध अनुभवों के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

(अ) विशेषण विपर्यय - राय चौधुरी की कृतियों में विपर्ययों का बाहुल्य तो नहीं पाया जाता, किन्तु संग्रथित भावाभिव्यक्ति के अवसर पर सहज ही ऐसे अलंकारिक प्रयोग आ जाते हैं । विशेषण विपर्ययों के द्वारा भाषा का लाक्षणिक सौन्दर्य अत्यन्त निखर उठता है, किन्तु राय चौधुरी के काव्य में इसका प्रयोग अपेक्षा कृत कम ही हुआ है --

सत्य, शुद्ध, सूक्ष्म, तेजाल ,
मंगलमय, प्रीतिर आलय,
जय जय जय, महारस चय
चिर प्रेम मय

---

१६६. राय चौधुरी-तृमि, पृ० २६ ।

चिर सुखमय
चिर मधुमय रङ्गिण्याल ।[१७०]

हिन्दी रूपान्तर

सत्य, विशुद्ध, सुरूप, रक्तपूर्ण,
मंगलमय, प्रीति का आलय,
जय जय जय, महारस मय,
चिर प्रेम मय,
चिर सुखमय,
चिर मधुमय रंगीली है ।

(ड) ध्वन्यार्थ व्यंजना --राय चौधुरी की कृतियों में ध्वन्यार्थ व्यंजना का प्रमुख स्थान है । भावानुकूल नाद-योजना भारतीय-काव्य की एक प्रमुख विशेषता है । किसी वस्तु के रूप- गुणादि तत्वों का मात्र विवेचन प्रस्तुत नहीं किया जाता, उसके ध्वनित्व की भी उपयुक्त वर्णों और शब्दों के प्रयोग द्वारा अभिव्यंजना की जाती है :-

तुमि बिजुली छारेदि गांथि
बाँधि दिया बज्र गाजनि ।
तुमि मलयात बलि योवा ।

---

१७०, राय चौधुरी-अनुभूति, पृ० ३३ ।

रिबु रिबु शीतल जुरणि ।
तुमि ग्रीष्मर मूरत उठि
अग्निमय पंचड पौरणि ।[१७१]

हिन्दी रूपान्तर -

तुम बिजली की माला की डोरी से
गांठने वाला वज्र का गर्जन हो ।
तुम मलय-समीर का प्रवाहित शीतल
सुखकर स्वर हो ।
तुम ग्रीष्म के पहले का
अग्निमय प्रचण्ड ताप हो ।

उपर्युक्त पंक्तियों में सफल नादमय वर्ण संयोजन से उन शब्दों को सुनने मात्र में वर्णित वस्तु का परिज्ञान हो जाता है । गर्जन से बादल का, "रिबु रिबु " से शीतल पवन का और अग्निमय से सूर्य का ज्ञान हो जाता है । इस प्रकार राय चौधुरी की रचनाओं में अनेक स्थानों पर नादात्मक वर्णों की अभिव्यंजना हुई है ।

१. ध्वनि-सौष्ठव :-

पारिभाषिक शब्दों के रूप में ध्वनि के आचार्यों ने ध्वनि का व्यवहार कई अर्थों में किया है । उनके मतानुसार ध्वनि शब्द का प्रयोग अभिधा, लक्षणा और व्यंजना में किया जाता है । सूक्ष्म किन्तु गंभीर भावपूर्ण अर्थ

---

१७१. राय चौधुरी- तुमि, पृ० १६ ।

की व्यंजना करने वाले काव्य को श्रेष्ठ काव्य कहा जा सकता है । इसी दृष्टि से देखा जाय तो राय चौधुरी की अनेक रचनायें ध्वनि काव्य की श्रेणी में आती हैं । राय चौधुरी के 'तुमि' काव्य का कुछ अंश' अनुभूति' की अनेक कविताओं को इस कोटि में रखा जा सकता है ।

सो संध्या राणीर आंचल धरि
रंग-रसेरे विलास करि
गाइछे ये गीत नाचि-बागि
बाँहि मुखे
रक्त आभार मन-मोहिनी मोर ।[१७२]

हिन्दी रूपान्तर -

उस संध्या के आंचल पकड़कर रानी,
लाल रंग की मन-मोहिनी मेरी ।
रंग-रस से विलास कर
गाती है ये गीत हँसमुख,नाच-कूद कर ।

इस स्तबक में राय चौधुरी ने मानवीकरण के द्वारा वीणा को गीत गाने के लिये कहते हुये वस्तु ध्वनि का नियोजन किया है ।

---

१७२, राय चौधुरी- अनुभूति, उदास प्रश्न, पृ० ४०

दुख दैन्य वेदनार ज्वालाम्य अग्निशिखाबौर,
ढालि दिया धारासारे पूर्ण करि हिया-कुंभ मोर ।[१७३]

हिन्दी रूपान्तर -

दु:ख, दैन्य, वेदना की
ज्वालामय अग्निशिखायें ।
डाल दो जोर से पूर्ण कर
हृदय कुंभ में मेरे ।

राय चौधुरी की पुत्री 'अनुपमा' की मृत्यु पर उनका अन्तर दु:ख से अग्नि की तरह जल रहा था । उक्त कवितांश में 'अग्निशिखा' और 'हिया कुंभ' शब्द में वाच्यार्थ का ज्ञान होता है क्यों कि अन्तर जलता नहीं और अन्तर से धारासार पानी गिरता नहीं ।

४. भाषा :-

राय चौधुरी भाषा के आडम्बर और कृत्रिमता के पक्षपाती नहीं थे । परम्परा बद्ध कठिन और नीरस भाषा के प्रतिकूल राय चौधुरी ने भाषा का नया संस्कार करना चाहा और उसके सरल, सीधे और व्यावहारिक रूप को काव्य-भाषा के रूप में प्रस्तुत करने का उन्होंने सफल प्रयास किया । राय चौधुरी भावों और विचारों के अनुकूल भाषा के स्वरूप पर ही विश्वास

---

१७३. राय चौधुरी-अनुभूति, वेदना बिजय, पृ० ६६

रखते थे। जन-जीवन की आकाक्षाओं को मुखरित करने वाले राय चौधुरी के काव्य की भाषा अधिकांशत: जन-जीवन की भाषा ही है। वे चाहते थे कि असमीया भाषा बंगाली भाषा से मुक्त हो। सर्वप्रथम राय चौधुरी ने ही विशुद्ध असमीया जन-भाषा का प्रयोग किया है। स्थानीय 'कामरूप' के 'बरपेटा' अंचल के शब्द और उच्चारण के प्रयोग में कवि को सफलता प्राप्त हुई है :-

लोभा हले
तेज-मडु० है, हड़े - छाले......... ।[१७४]

हिन्दी रूपान्तर

लालची होने से
रक्त-मांस, हड्डी-चमड़ा........ ।

काव्य-भाषा के सम्बन्ध में राय चौधुरी के विचार बहुत ही स्पष्ट ज्ञात होते हैं कि वे सशक्त, सुस्पष्ट बोधगम्य और भावानुसारिणी भाषा को श्रेष्ठ काव्य की भाषा के रूप में मानते थे। राय चौधुरी जी भाषा की कर्कशता और रूक्षता का विरोध करते थे। यही कारण है कि उनकी कृतियों में परिवेश का सम्पूर्ण बोध और कलात्मक चेतना सर्वदा, प्रच्छन्न रूप से ही सही, विद्यमान है।

राय चौधुरी की भाषा का निम्न कोटियों में अध्ययन किया जा सकता है :-

---

(१) संस्कृत गर्भित भाषा - राय चौधुरी ने अपने काव्य में आवश्यकतानुसार प्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है । लोक-कवि के लिए यह स्वाभाविक है । असमीया की उत्पत्ति संस्कृत से है, अत: असमीया भाषा में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक है । उनकी काव्य-भाषा में ज्योतिर्मय, आत्मरिक्तासित, आत्मच्छेद, निष्कलुष, तेजोदीप्त, आदि जैसे संधियुक्त समास-बहुल शब्दों और तुक मिलाने के लिये उच्छल, निच्छल कल्लोल, अत्यन्तर आदि जैसे शब्दों का ही पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है ।

(२) चलताऊ भाषा - राय चौधुरी के समग्र काव्य की भाषा विशुद्ध साहित्यिक और आधुनिक असमीया है । असमीया भाषा की यह सामान्य विशेषता है कि उसकी बोलचाल के रूप और साहित्यिक रूप में अधिक अन्तर नहीं होता । यत्र-तत्र ग्रामीण वातावरण में अशिक्षित व्यक्तियों की भाषा भले ही कुछ अधिक पुरातनता और ग्रामीणता लिये हुये हो सकती है फिर भी सामान्य असमीया जनता की भाषा और असमीया साहित्य की भाषा सर्वथा सुसंस्कृत ही बनी रहती है । जहां कहीं राय चौधुरी लोक-गीत शैली में ( बिहु विषयक कविता) ग्रामीण समाज का चित्रण, वार्तालाप आदि प्रस्तुत करते हैं वहां आंचलिक भाषा का प्रयोग हुआ है । किन्तु साधारणत: राय चौधुरी की काव्य-भाषा विशुद्ध और परिष्कृत असमीया ही है :-

मइ अकलै कारिम, अकलै भाबिम ,
अकलै साजिम, अकलै बाचिम ,
मोरे गीत मइ अकलै बजाम,
मोर चित मइ अकलै फुलाम ।[२७५]

---

२७५. राय चौधुरी- अनुभूति, पृ० ६६

हिन्दी रूपान्तर-

मै अकेले करूंगा, अकेले सोचूंगा ,
अकेले सज्जित करूंगा, अकेले जिन्दा रहूंगा ,
मेरागीत मैं अकेले गाऊंगा
मेरे हृदय में अकेले उत्फुल्लित करूंगा ।

(३) भाव प्रवाहमयी भाषा --राय चौधुरी की कुछ रचनाओं में निर्बाध भावप्रवाह का समुचित शब्दावली के द्वारा सम्यक् नियोजन हुआ है । उनकी कविता, 'जाग जाग जाग' , जाग्रत होवा भाई , 'ओम् तत्सत्' आदि के भावानुकूल, कोमल, सरस और ब नीरस शब्दों का नियोजन हुआ है जिससे सहज और अविरल भाव प्रवाह की सुषमा स्वत: प्रतिभाषित होती है :-

आत्मदानेरे आत्म लभिम
महा मानबीय स्तंभ गढ़िम
एयैं आजि सेह पनर दिन ।[१७६]

हिन्दी रूपान्तर

आत्मदान से आत्म लाभ करूंगा ।
महामानवीय स्तंभ गठित करूंगा ।
आज उसकी प्रतिज्ञा का दिन है ।

(४) अलंकृत भाषा- राय चौधुरी की अनेक कविताओं की भाषा अलंकृत है और उसमें संगीतमयता और कलात्मकता का भी पुट मिलता है ।

---

१७६, राय चौधुरी-बेदनार उल्का, पृ० ५१

आंचलिक भाषा की नैसर्गिकता, उसके शब्दों की अकृत्रिम भाव व्यंजना, ध्वन्यात्मकता, प्रेषणीयता और स्वाभाविक आत्मीयता की अभिव्यक्ति क्षमता आदि स्वतः सिद्ध है :-

ओठर हाँसित, चकुर पाहीत,
सौणा-मंजुरा पतारे तैलित
प्राण-गुंजरा घरर भेटित ।[१७७]

हिन्दी रूपान्तर -

ओंठ की हंसी में, आँख की पलक में
सुनहरे खेत के मैदान में
प्राण- गुंजरित है घर की नींव में ।

(५) विशेषण पूर्ण भाषा - राय चौधुरी की काव्य-भाषा की यह सामान्य विशेषता है कि वे अपनी भाषा के द्वारा प्रस्तुत विषय या व्यक्ति के बाह्य और आन्तरिक स्वरूपों का पूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं । भाषा द्वारा प्रतिपाद्य के समग्र वैशिष्ट्य को रूपायित कर देना उनकी प्रधान शिल्पगत विशेषता है । यह कार्य अनेकानेक विशेषणों के प्रयोग द्वारा संभव हुआ है । उनकी प्राकृतिक, शृंगारिक और भावानुकूल रचनाओं में इस प्रकार की विशेषण बहुल भाषा का संगठित प्रयोग हुआ है ।

---

१७७. राय चौधुरी-बेदनार उल्का, पृ० १ ।

तुमि गोलापी गालर शोभा
शारी शारी मुकुतार धाम,
बियाकुल करि मोक
सुषमा धालिछा अविराम ।[१७८]

हिन्दी रूपान्तर

तुम गुलाबी गाल के
मोती स्वरूप पसीने के बूंद की शोभा हो ।
व्याकुल कर मुझे
सुषमा डाला है अविराम ।

(६) अनुप्रासमयी भाषा- राय चौधुरी के अनेक कविताओं में अनुप्रास मयी भाषा का प्रयोग हुआ है । अनुप्रास बहुलता और शब्दों के बार-बार प्रयोग करने के कारण भावाभिव्यक्ति में आवश्यक तीव्रता, धारावाहिक और मर्मस्पर्शिता लाई जा सकती हैं । अनुप्रास बहुलता के कारण नाद-सौन्दर्य का वैशिष्ट्य भी उनकी रचनाओं में पाया जाता है :--

जाग जाग जाग ,
जाग दु:खी-सुखी-शोक-रोगी-भोगी-भोगी-योगी-सुभागा-दुर्भागा,हीन भाग
जाग जाग जाग ।[१७६]

---

१७८. राय चौधुरी - तुमि, पृ० ५
१७६. राय चौधुरी - बन्दो कि छन्देरे, पृ० २४ ।

हिन्दी रूपान्तर -

जागो जागो जागो
सुखी, दु:खी, शोक, सन्तप्त, बीमार, भोगी, योगी,
भाग्यवान्, दुर्भागी, हीन, नीच, सब जागो ।

(७) ध्वन्यात्मक भाषा --राय चौधुरी की काव्य-भाषा न केवल प्रतिपाद्य के रूप, गुण आदि तत्वों का कलात्मक प्रतिपादन करती है, समुचित वर्णों और शब्दों का समावेश कर उसके ध्वनितत्व की भी अन्विल प्रस्तुत करती है । राय चौधुरी ने ध्वनिव्यंजक वर्णों और शब्दों का निर्वाह बड़े ही कलात्मक ढंग से किया है :-

आरु कि दे खाबि भय कारागार
आरु कि देखाबि भय ?
तोर रङुण चकु रङुण यिमाने करिबि
सिमानेइ मोर जय ।[१८०]

हिन्दी रूपान्तर

रे कारागार
और कितना भय दिखाओगे ?
तेरी लाल आंख, जितनी दिखाओगे
उतनी ही मेरी होती है जय ।

---

१८०. राय चौधुरी - बन्दो कि छन्देरे , पृ० २३ ।

इन ध्वन्यार्थ व्यंजक शब्दों के प्रयोग से हमारे सम्मुख वातावरण का सुगठित रूप उपस्थित हो जाता है। राय चौधुरी ने ऐसे अनेक अनुरणनात्मक और अनुकरणात्मक ध्वनि प्रधान शब्दों का प्रयोग कर सुपुष्ट वातावरण का निर्माण किया है। इस प्रकार ध्वन्यात्मक भाषा, प्रयोग द्वारा चौधुरी जी को वातावरण का निर्माण करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

(८) विदेशी शब्द- मिश्रित भाषा - राय चौधुरी की प्रवृत्ति संस्कृत के तत्सम शब्दों और विशुद्ध असमीया शब्दों के प्रयोग की ओर अधिक थी, फिर भी उन्होंने विदेशी शब्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। विशेषतया अंग्रेजी के 'आइडीलाजी', डिउटी, 'एटम' स्फुटनिक आदि शब्दों का व्यवहार देखा जाता है --

आग-चौलालत कौवारि बिदरा आइडीलजीर काकध्वनि ।

...... ........ ..... ..... ....

डिउटी आगत दाबि पाछत ।

........ ... ...... ...............

किन्तु आजि चारिओफाले बेढ़ि धरा
स्फुटनिक-चीन-पाकिस्थान- एटम बम । [१८१]

हिन्दी रूपान्तर -

आगे उच्च स्वर में आइडीलाजी की काकु-ध्वनि है ।

........... ...... ..........

---

१८१, राय चौधुरी-बेदनार उल्का, पृ० ३०,२५, ६६

डिउटी (कर्तव्य) पहले माँग बाद में है ।

......................

किन्तु आज चारों ओर घिरा हुआ है
स्फुटनिक, चीन, पाकिस्तान, एटम बम ।

उक्त विवेचन के आधार पर हम सरलता से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि राय चौधुरी की वैविध्य पूर्ण काव्य भाषा का निर्माण कवि की एक विशिष्ट ज्ञानपूर्ण दशा की उपज है, कवि की विशेष अन्त-र्दृष्टि की कारिका-शक्ति का परिणाम है और निर्वैयक्तिक रचनाकार की वैचारिक अनुभूतियों की प्रसंगोपयोगी कलाकृति में रूपान्तरित जीवन्त सृष्टि है । राय चौधुरी के भावानुकूल वैविध्यपूर्ण भाषा-प्रयोग के कारण अनुभूति की यथाभिव्यक्ति, विचारों की पुष्टि, भाव-निर्वाह में कुशलता और प्रभा-वान्विति के समस्त उपादान एकत्र हुये हैं । उनके काव्य में विषय गत मौलि-कता के समान उसकी अभिव्यक्ति के लिये भाषा का प्रौढ़तम स्वरूप भी परि-लक्षित होता है । कवि राय चौधुरी की विराटता, संवेदनशीलता और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जीवन के प्रति आसक्ति इत्यादि का सम्पूर्ण वाहन उनकी विराट् भाषा-नियोजन-प्रक्रिया के लिये ही संभव था । उनकी भाषा में चेतना के स्फूर्त उच्छ्वासों को मूर्त कर देने की अप्रतिम शक्ति विद्यमान है । वस्तुत: भाषागत सांस्कृतिक परिवेश राय चौधुरी के काव्य में सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है ।

५. शब्द-शक्ति --

शब्द-शक्ति उसके अन्तर्निहित अर्थ को व्यक्त करने का उपाय है । अर्थ का बोध कराने में शब्द कारण है और अर्थ को बोध कराने वाले व्यापार-

को 'अभिधा' कहते हैं । इस शक्ति के द्वारा तीन प्रकार के शब्दों का अर्थ बोध होता है - रूढ़ शब्दों का अर्थ बोध समुदाय - शक्ति द्वारा होता है । इनकी व्युत्पत्ति नहीं होती है । यौगिक शब्दों का अर्थ बोध प्रकृति और प्रत्ययों की शक्ति द्वारा होता है । योग रूढ़ शब्दों का अर्थ बोध समुदाय तथा अवयवों की (प्रकृति और प्रत्यय) की शक्ति के सहयोग से होता है । यह शब्द यौगिक होते हुये भी रूढ़ होते हैं । राय चौधुरी का निम्नलिखित छन्द अभिधा शक्ति प्रधान है :-

जाग ढेका तेज, जाग आजि जाग ,
आग्नेयगिरि उगारि जाग,
एलाहर गूंठि भांगि गुरि करि
कर्मधारारे धरणी ढाल । [१८२]

<u>हिन्दी रूपान्तर -</u>

जागो जागो रे यौवन की शक्ति
जागो जागो आज, आलस्य को परित्याग कर ,
ज्वालामुखी को उद्गिरण कर जागो ।

उक्त कविता में अभिधा शब्द शक्ति का निर्वाह है । इनका अर्थ बोध समुदाय शक्ति द्वारा हुआ है । राय चौधुरी की वाणी सीधी-साधी देश प्रेममूलक, अनुभूतिपूर्ण, प्रगतिशील शैली होने के कारण उसमें लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्ति का बाहुल्य प्रयोग पाया नहीं जाता ।

---

१८२, राय चौधुरी - बन्दों कि छन्दैरे, पृ० ८

६. रीति-योजना --

राय चौधुरी की भाषा वर्ण्य विषय के अनुसार निराश, कोमल अथवा सरस होती है। वह उनके काव्य-शरीर के अवयव-संस्थान-प्रक्रिया की भावानुगामिनी है। कहीं नीरस वर्णों से युक्त ओज गुण समन्वित गौड़ीय रीति का विनियोग हुआ है। कहीं माधुर्य व्यंजक वर्णों की सरल पदावली की वैदर्भी रीति का पालन हुआ है तो कहीं वर्ण्य विषय को सरलतया प्रेषणीय और संवेद्य बना देने वाली प्रसाद गुणयुक्त पांचाली रीति का नियोजन हुआ है। इन तीनों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :--

(क) कवि जातीय चेतना को आग्नेयगिरि के साथ तुलना करते हुये ओजस्वी नीरस शब्दों के नाद से प्रस्तुत करते हैं। इसमें गौड़ीय रीति का नियोजन है :--

जाग हका तेज
जाग आजि जाग
आग्नेयगिरि उभारि जाग।[१८३]

हिन्दी रूपान्तर -

जागो रे यौवन की शक्ति
जागो जागो आज
ज्वालामुखी को उद्गिरन कर जागो।

---

१८३. राय चौधुरी- बन्दों कि छन्देरे, जाग हैका तेज, पृ० ८

(ख) 'तुमि' काव्य में वैदर्भी रीति का पालन हुआ है । राय चौधुरी के शृंगारिक और करुणा-पूर्ण गीतों में वैदर्भी रीति का सुन्दर कलात्मक नियोजन द्रष्टव्य है ।

(ग) राय चौधुरी के राष्ट्रीय और भक्ति मूलक गीतों में पांचाली रीति का सुपुष्ट व्यवहार हुआ है । श्रवण मात्र से अर्थ प्रतीत होने वाली पांचाली रीति के पुष्ट गठन के उदाहरण स्वरूप में 'तोर जननी ये दासी '[१८४] कविता ली जा सकती है । इसके वर्ण वर्ण से करुणा और वेदना प्रतिध्वनित होती है । कवि की भाव-धारा की सतह सर्वेद्यता, प्रसाद गुण-व्यंजक और पद-रचना का वैशिष्ट्य है जो उक्त कविता से अनायास ही विदित होती है ।

७. गेयता --

राय चौधुरी की राग-रागिनियों में निबद्ध अनेक गीत हैं जो लय-ताल-नाद से समन्वित हैं । उनके काव्य की एक प्रमुख विशेषता यह है कि संगीत और काव्य एक दूसरे के अधिक समीप आ गये हैं । दूसरे शब्दों में राय चौधुरी ने संगीत और काव्य को अभिन्न ठहरा दिया है । इस प्रकार राग-रागिनियों में निबद्ध राय चौधरी की अनेक कवितायें हैं । 'आजि बन्दों कि छन्देरे ' , 'आजि कार की आवाहन' , 'सुनिबि भाइ देशर कथा कओं' , तइ 'भाङि० बलागिब शिल , 'बला भाइ आगुवाइ, 'तोमार चरण धूलि तलत , उबुराइ मन प्राण, जनम भूमि , 'जननी आमार शान्ति साधना स्वर्ग ,[१८५] आदि विभिन्न असमीया

---

१८४. राय चौधुरी- बन्दो कि छन्देरे, जाग डेका तेज, पृ० १८

१८५. वही, पृ० १, ७, २८, २७, १३, १५, १४

संगीत के रागों में निबद्ध की हुयी राय चौधुरी की अनेक गेय कवितायें हैं जो इस तथ्य का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं कि राय चौधुरी संगीत के बड़े मर्मज्ञ थे और संगीत के विधि-विधानों के विशिष्ट ज्ञाता थे। उनके गीतों में असमीया की विविध राग-रागिनियों का समावेश हुआ है। उनमें 'बरगीत' के राग-संयोजन, भैरवी, बरारी, गौरी, भटियाली और देह - विचार सर्व प्रधान हैं। उन्होंने अनेक गीतों की स्वर-योजना को भी प्रस्तुत किया है। वे स्वर और ताल के ऐसे समर्थक थे कि गीतों में वे अपने सुर का प्रयोग करते थे। जब वे स्वयं अपने गीतों को गाते तब श्रोताओं को ऐसा लगता था कि राग स्वयं साकार होकर मानों उनके समक्ष उपस्थित हो गया हो ।

स्वर ताल निबद्ध भैरवी राग के गीत का स्वर नियोजन राय चौधुरी ने निम्नलिखित गीत में किया है :-

तइ भाङिॅ ब लागिब शिल,
नौवारों बुलिले नहब ये भाइ
ढिलते परिब ढिल। [१८६]

हिन्दी रूपान्तर -

अरे भाइ।
पत्थर तोड़ना पड़ेगा,
नहीं कहने से नहीं होगा,
नहीं तो मार खाना पड़ेगा।

---

१८६. राय चौधुरी, बन्दों कि छन्दैरे, पृ० २७।

राय चौधुरी ने अपने काव्यों में संगीत और साहित्य का अभूतपूर्व समन्वय स्थापित किया है, इसी संगीतात्मकता और नादमयता के कारण उनकी समस्त रचनाओं में नादात्मक सौन्दर्य सर्वत्र वर्तमान है ।

## भावपक्ष एवं कला पक्ष की दृष्टि से निराला और रायचौधुरी का तुलनात्मक अध्ययन :--

हिन्दी और असमीया साहित्य में नवीन युग के प्रवर्तक निराला और राय चौधुरी के काव्यों के भाव पक्ष और कलापक्ष की तुलना उन दोनों की साहित्यिक तथा भाषागत परम्पराओं में विद्यमान विषमताओं के कारण पूर्ण रूप से नहीं हो सकती । किन्हीं दो कवियों की भावाभिव्यक्ति का ढंग भी सर्वथा एक-सा नहीं हो सकता । प्रत्येक कलाकार विशिष्ट शैली में अपनी रचना को रूपायित तथा अंकित करता है ।

निराला और राय चौधुरी की कृतियों की रस सिक्तता जीवन-बोध के अनेक मार्ग-मार्मिक और महत्वपूर्ण पटलोंका अनाच्छादन करने में पूर्णत: समर्थ है । मानव मात्र की मूल एकता को समझने -समझाने वाली महत्वपूर्ण रहस्यमयी भूमिका उनकी रचनाओं की समान और मौलिक विशेषता है । दोनों कवियों की रस-योजना वस्तुत: उनके सांस्कृतिक चेतना की उपज है । इस रस-योजना की सर्वाधिक मार्मिक विशेषता यह है कि उसमें संयम, तटस्थता, निर्बाधिकता और अस्खलित व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है । निराला और राय चौधुरी के रस- नियोजन पर सौन्दर्य- बोध, कल्पना, रागात्मकता और बौद्धिकता समान रूप से परिचालित है, जो वस्तुत: रस-प्रक्रिया की एक नई भूमिका है । यही कारण है कि दोनों के गीतों में सर्वाधिक रूप से रस-तत्व

विद्यमान है । साथ ही सौन्दर्य और कल्पना की अतिशयता के अभाव के कारण उनकी यथार्थवादी रचनायें भी रसनिष्ठ हैं । निराला और राय चौधुरी की कृतियों का आधार अद्वैत दर्शन और भक्ति की समन्वित भूमि है, इस कारण उन दोनों की रचनाओं में शान्त रस की व्यापकता आद्यन्त परिलक्षित होती है । विषय की दृष्टि से दोनों की रचनाओं में प्रसंग-भेदानुकूल विभिन्न रसों का विधान अवश्य हुआ है, तथापि समष्टिगत काव्य-प्रभाव की दृष्टि से शान्त रस ही अग्र स्थान ग्रहण करता है । निराला और राय चौधुरी की कविताओं की आदि और अन्त में समान रूप से विश्व कल्याण की कामना , भक्ति की तरलता, दर्शन की व्यापकता, और इस कारण शान्त रस की आद्यन्त परिनिष्ठित नियोजना है । निराला और राय चौधुरी की रस - योजना-प्रक्रिया की भूमिका नि:सन्देह उन दोनों कवियों की द्विधा रहित सांस्कृतिक चेतना ही है ।

निराला और राय चौधुरी ने अपनी सरल और सामान्य भाषा, लक्षक तथा व्यंजक शब्द द्वारा अनभिव्यंजनीय गंभीर तम अनुभूतियों को अभि-व्यक्त करने के लिये प्रतीकों का ही सहारा लिया है । दोनों कवियों ने समान रूप से अपने आलोकमय आध्यात्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिये सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । इसी प्रकार गहनतम लौकिक अनुभूतियों के प्रकाशन के लिये भी प्रतीकों की ही सहायता ली है । निराला और राय - चौधुरी के प्रतीक प्रमुख रूप से ससीम जगत् की वस्तुओं से ही विहित होते हैं और उनसे अध्यात्मानुभूतियों का प्रतिपादन सरलतया हो जाता है । उदाहरण निराला जी की कविता तुम और मैं, राय चौधुरी का काव्य 'तुमि' लिया जा सकता है । दोनों की रचनाओं में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक विश्व की दृश्य द्वैतता में अदृश्य अद्वैतता की स्वीकृति का परिचय कराते हैं । इनके अतिरिक्त निराला और राय चौधुरी दोनों कवियों ने प्रतीकों के द्वारा सामाजिक चेतना

का स्वर भी मुखरित किया है । इस कोटि में निराला जी के व्यंग्य प्रगीत और राय चौधुरी के कतिपय राष्ट्रीय प्रगीत आदि आते हैं । निराला और राय चौधुरी के प्रतीक-विधान के सम्बन्ध में यह कहना अनिवार्य है कि उनके प्रतीक कहीं बोझिल अथवा अस्पष्ट नहीं हैं, किन्तु उनके गहनतम विचारों का प्रतिनिधित्व करते हुये उन्हें सर्वाधिक प्रेषणीय बनाने में पूर्णत सफल हैं ।

निराला और राय चौधुरी दोनों कवियों की प्रवृत्तियों के आधार पर यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि दोनों ने जातीय जीवन की पृष्ठ भूमि में अपने विभिन्न अनुभूति-स्तरों, बिम्बात्मक अथवा चित्रात्मक अनुभूतियों, कला-कल्पनापूर्ण अन्तर्मुखी उदात्त तत्वों तथा समास-प्रत्ययों की सम्पूर्ण प्रभावान्विति के साथ अभिव्यक्ति के लिये रूप-रस- गंध आदि समस्त तत्वों से संबंधित जीवन्त भाषा का प्रयोग किया है । जिसका सांस्कृतिक परिपेक्ष्य उदात्त है और भाव-चेतना के स्फुरण को पूर्ण कर देने की शक्ति अप्रतिम है ।

निराला और राय चौधुरी के छन्द-विधान में अपनी-अपनी भाषाओं की छन्द-परम्परायें विद्यमान हैं । दोनों ने छन्द-विधान की दिशा में अनेक प्रयोग किये हैं जिनमें उन दोनों की प्रवृत्ति गत समानता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है । दोनों को अपने-अपने परम्पराबद्ध छन्दों का गंभीर ज्ञान था, उन्होंने उनका प्रयोग भी किया है । शास्त्रीय विधान के विरुद्ध छन्द गत नियमों का उल्लंघन भी किया है और लय-ताल एवं राग - रागिनियों में निबद्ध सुमधुर गेय गीतों की भी सृष्टि की है । राय चौधुरी ने इनके अतिरिक्त नाना प्रकार के राष्ट्रीय-गीतों की धुनों का प्रयोग कर जन-सामान्य के अन्तर को स्पर्श करने वाले सुमधुर विद्रोहात्मक गीतों की भी अधिक मात्रा में रचना की है । इन सबसे बढ़कर दोनों कवियों के छन्द विधान में पाई जाने वाली महत्वपूर्ण समान विशेषता यह है कि दोनों ने लय को छन्द की आत्मा तथा प्राण माना है । उनमें भावों के संकोच-प्रसार और अपचय-उपचय की आभ्यन्तर लयनिष्ठता

सर्वत्र विद्यमान है । दोनों ने भाव और भाषा के आन्तरिक सामंजस्य को जिस प्रकार अपना ध्येय बनाया है वैसे ही बाह्य छन्द-बंधन के स्थान पर भावों की आन्तरिक लय को छन्द- प्राण की भाँति स्वीकार किया है । इसी मुक्त-छन्द रूप में दोनों ने अपनी-अपनी भाषाओं में विद्यमान छन्द - रूढ़ियों से मुक्त होकर प्राण रूपी लय या प्रवाह का विकास किया है । दोनों का यह प्रयोग उनकी भाषाओं में सर्वथा नवीन था । किन्तु संश्लिष्ट और आवेगपूर्ण भाव-शृंखलाओं के प्रतिपादन में छन्द -नियम-बाधक थे तो उन्होंने नियम रहित किन्तु लय बद्ध और नाद मधुर स्वच्छन्द रचना-प्रक्रिया को अपनाया । दोनों कवियों के ऐसे छन्दों के चरण भावावेगों के अनुकूल कभी बड़े और कभी छोटे रहते हैं और दोनों के इन छन्दों में गेयता नहीं रहती है । निराला और राय चौधुरी के इस स्वच्छन्द छन्द विधान के मूल में अमेरिकी कवि वाल्ट ह्विट मैन, कवीन्द्र रवीन्द नाथ ठाकुर आदि की गद्य, गीतात्मक रचना-प्रक्रिया और लय प्रधान एवं छोटे-बड़े चरण वाले वैदिक छन्दों का प्रभाव अवश्य विद्यमान है । तथापि इस प्रभाव को मात्र सूचनात्मक स्वीकार कर, निराला और राय चौधुरी द्वारा अपनी तीव्र-,विशाल और आवेगपूर्ण भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं को मूर्त बनाने के लिए अपनी मौलिक कार्यकारिणी-प्रतिभा के बल पर निर्मित नवीन और सजीव सृष्टि के रूप में मानना ही उचित है ।

निराला और राय चौधुरी विशुद्ध कलाकार थे । उनकी कृतियां उदात्त भाव-भूमियों का प्रतिपादन करती हैं । दोनों ने अपनी गहन और उदात्त अनुभूतियों को अनेकानेक माध्यमों द्वारा ~~समयमत~~ रूपायित किया है । उन माध्यमों में उन दोनों की अलंकार योजना भी एक है । अपनी अनुभूतियों की चित्रात्मक अभिव्यंजना करने वाले ये दोनों कवि चित्र की सामूहिक प्रभाव-सृष्टि के प्रति सचेत रहते हैं, तब अनेक शास्त्रीय अलंकारों के रूप स्वयमेव उनकी कृतियों में आ जाते हैं, किन्तु वास्तव में उन दोनों कलाकारों में अलंकारों

के शास्त्रीय निर्वाह का पूर्व आग्रह विद्यमान नहीं है । कवि की अपनी सूक्ष्म, अथच अरूप अनुभूतियों को रूपाधार बनाने के लिये अनेक प्रकार के चित्रों का विधान करना पड़ता है जिनमें आलंकारिक चित्रों का भी अनिवार्यत: अपना स्थान रहता है । ये चित्र प्राचीन, अर्वाचीन दोनों प्रकार के आलंकारिक उपकरणों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं । निराला और राय चौधुरी की अलंकार-योजना उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को भी अधिक संवेद्य ग्राह्य बनाने में अत्यधिक सफल हैं । दोनों के अप्रस्तुत-विधान में प्राचीन अलंकारवादियों के अर्थालंकारों और अनुप्रासादि शब्दालंकारों का भी प्रसंगानुकूल उपयोग किया गया है । दोनों की कृतियों में विद्यमान भावानुरूप शब्द-सृष्टि अर्थात् स्वर और वर्णों की मैत्री पर आधारित अनुप्रास बहुलता विशिष्ट प्रकार की संगीतात्मकता का निर्माण करती है जिससे अलंकार्य का एक सुव्यवस्थित शब्द चित्र ही उपस्थित हो जाता है ।

दोनों कवियों ने इन प्राचीन भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त अपनी स्वच्छन्द, मानवतावादी, क्रान्तिकारी और आदर्शवादी प्रवृत्तियों की अभि-व्यक्ति के लिये नवीन अलंकारिक शैलियों का भी नियोजन किया है जिन्हें उन पर पाश्चात्य स्वच्छन्द काव्य- शिल्प की छाया मात्र के रूप में ग्रहण कर सकते हैं । वस्तुत: काव्य द्वारा पुनरुत्थान-काल में एक नवीन सृष्टि, नये उत्साह और नव्य जागरण का अवतारण करने वाले आवेग और आवेश से पूर्ण कवि जब अपने कमनीय भावोच्छ्वासों, कल्पनाओं और उन्मुक्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए आकुल होता है तब स्वयं आवश्यकतानुसार नवीन शैलियों का निर्माण हो जाता है । इसी रूप में निराला और राय चौधुरी की कृतियों में प्राप्त 'मानवीकरण, 'विशेषण विपर्यय और ध्वन्यार्थ व्यंजना' को नवीन काव्य शैलियों के आधार पर स्थापित किया जा सकता है । किसी विदेशी काव्य-शैली का अनुकरण करना असमीचीन है । कारण यही है कि निराला और राय चौधुरी जैसे समर्थ और सुदक्ष काव्य प्रेरणा वाले कवि अपनी कला की अभि-व्यक्ति को अपनी साधना द्वारा अप्रतिम शक्ति प्रदान करते हैं । उदाहरण के लिए निराला और राय चौधुरी की ध्वन्यर्थ व्यंजना को ले सकते हैं । जब

कवि की अनुभूति संश्लिष्ट और संग्रठित हो जाती है तब वह अपनी विषयी गत अनुभूतियों को उनके समस्त रूप-गुण-क्रिया-ध्वनि तत्वों के साथ पूर्णत: अभिव्यक्त करता है जिसके कारण एक सुगठितचित्रात्मकता, नाद व्यंजकता, संगीतात्मकता और भाव संश्लिष्टता का निर्माण स्वत: सिद्ध हो जाता है। अत: इन कलाकारों ने किसी बाह्य वस्तु का परिचय भले ही प्राप्त किया हो, किन्तु अनुकरण कहीं भी नहीं किया है।

भाषा के सम्बन्ध में निराला और राय चौधुरी का विचार एक ही था। वे दोनों यही चाहते थे कि भाषा भावानुसारिणी हो। कर्म-बाहुल्य जीवन के अनुकूल भाषा की गतिशीलता के वे दोनों पक्षपाती थे। वे दोनों अनावश्यक चमत्कारिता और अनपेक्षित वैचित्र्य को काव्य के प्रेषणीय धर्म - मार्ग में बाधक मानते थे। यही कारण था कि दोनों कवियों की भाषा में गंभीरता, विविधता, उदात्तता, सरलता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, भावानुकूल तारतम्यता आदि विविध प्रकार के तत्व समान रूप से विद्यमान हैं। दोनों की भाषा में एक रसता कहीं नहीं पाई जाती। भावानुकूल शब्द नियोजन के कारण मर्मस्पर्शी विविधता उसमें स्वत: आ गयी है। दोनों कवियों का यह विश्वास रहा है कि सम्यक् अभिव्यक्ति अपने सभी निर्मायक उपादानों के साथ अनुभूति या भाव-बोध को स्थायित्व प्रदान करती है। इसी-कारण समान रूप से दोनों की रचनाओं में प्रसंगानुकूल तथा आवश्यकतानुसार कोमल,सरल और ओजगुण पूर्ण शब्दों का नियोजन हुआ है। यही कारण है कि उनकी समस्त कृतियों में बिम्बात्मकता और प्रभावपूर्णता अन्योनाश्रित होकर लयात्मक अन्विति के साथ उभरी है। दोनों कवियों की भाषा और विन्यास-कला अत्यन्त कलात्मक है। उनकी भाषा में विद्यमान लयात्मिकता, नाद-योजना, ध्वन्यात्मकता और अनुप्रास बहुलता काव्य में अभिव्यक्त समस्त अनुभूतियों को उनकी विराटता, कोमलता और औदात्य के साथ पाठकों के समक्ष उपस्थित करती है। निराला और राय चौधुरी की भाषा गत रचना

प्रक्रिया का विस्तार से इसके पूर्व विवेचन किया जा चुका है । उनमें से प्रत्येक की तुलना अपेक्षित नहीं है क्यों कि भाषा-प्रयोग के मूल में दोनों की विचार-धारायें नितान्त समान हैं । उनकी उन विचार-धाराओं और प्रवृत्तियों तक ही तुलनात्मक अध्ययन को सीमित रखना समीचीन होगा, क्यों कि विभिन्न भाषाओं और प्रवृत्तियों तक दो कवियों के वर्ण-विन्यास, शब्द योजना,प्रयोग आदि को लेकर, जो स्वयं वैविध्य पूर्ण हैं, विवेचन अनुचित तथा अनावश्यक हैं । फिर भी निराला और राय चौधुरी की भाषा में कुछ विशेष अन्तर दृष्टिगोचर होता है । जहां निराला की भाषा में में अर्थ गौरव की प्रवृत्ति अधिक है, वहां राय चौधुरी की भाषा में अर्थ-विस्तार की । निराला की भाषागत एक प्रमुख विशेषता उसकी सामासिकता या संक्षेपीकरण ही की प्रवृत्ति है । भाव-ग्रथित एवं विचारनिष्ठ सामासिक भाषा का ही प्रयोग उन्होंने अत्यधिक किया है । निराला की अपेक्षा राय चौधुरी की भाषा कम सामासिक है और उसमें विशदीकरण की प्रवृत्ति अधिक है ।

निराला और राय चौधुरी के काव्य का विषय जैसे वैविध्यपूर्ण है वैसे ही उनकी कला के बाह्य उपादानों में भी विविधता विद्यमान है । साहित्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध को समझाते हुये सुमित्रानन्दन पन्त जी ने कहा है --"जो अपने सद्य: स्वर में सनातन सत्य के एक विशेष अंग को वाणी देता है, वही नाद उस युग के वातावरण में गूंज उठता, उसकी हृत्तंत्री से नवीन छन्दों-तालों में नवीन रागों, स्वरों में प्रतिध्वनित हो उठता,नवीन युग अपने लिये नवीन वाणी, नवीन जीवन, नवीन रहस्य, नवीन स्पन्दन-कंपन तथा नवीन साहित्य ले आता ।..............
नवीन युग की नवीन आकांक्षाओं, क्रियाओं, नवीन इच्छाओं, आशाओं के अनुसार उसकी वीणा से नये गीत, नये छन्द, नये राग, नयी रागिनियां,

नवीन कल्पनायें तथा भावनायें फूटने लगती हैं।[१९७] पन्त जी की साहित्य-परम्परा सम्बन्धी यह वक्तव्य निराला और राय चौधुरी के काव्य और कला पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है।

निराला और राय चौधुरी अन्त: प्रेरित कल्पना प्रवण कलाकार हैं, जिन्होंने अपनी आन्तरिक अनुभूतियों, मानस-प्रत्यक्षों और संवेदनों का सन्तुलन और समन्वय कर नवीन अभिव्यंजना-विधानों का निर्माण किया है, भावानुकूल छन्द, शब्द और लय का कल्पनानुमोदित सृजन किया है और अनुभूति स्निग्ध, अर्थ गौरव से पुष्ट और भावानुगामिनी भाषा प्रवाह-कारिणी शैलियों की अवतारणा की है।

---

१९७. सुमित्रानन्दनपन्त- पल्लव का प्रवेश, पृ० १४

\-

## अध्याय - ६

## युग प्रवर्तक- निराला और राय चौधुरी

निराला जी की प्रथम रचना 'जुही की कली' और राय चौधुरी की प्रथम रचना 'तुमि' एक समय अर्थात् सन् १६१६ ई० में प्रकाशित हुई थी। निराला और राय चौधुरी जी के व्यक्तित्व को संस्पर्श करने वाली राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ समान थीं। पराधीन और स्वाधीन भारत की समस्त परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण दोनों के युग-दर्शन और युग-संदेश में अधिक समानता दिखाई पड़ती है। सन् १६२१ ई० के बापू जी के असहयोग आन्दोलन के पश्चात् जन-जीवन को जागृति का एक विशिष्ट समय आता है। नये युग की राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों के कारण जीवन के समस्त क्षेत्रों में, भविष्य में, होने वाले प्रगतिशील आन्दोलन और उनके सफल परिणामों का अनुभव निराला और राय चौधुरी कर चुके थे। उनको जन-मानस के प्रत्येक स्पंदन, धड़कन, सजीवता और जागरूकता का गंभीर और व्यापक अनुभव था। देश में ऊपर-ऊपर दिखाई पड़ने वाली विचित्र जड़ता के मूल में छिपी रहने वाली चेतना और प्रतिक्रियात्मक शक्तिमत्ता का संश्लिष्ट अनुभव दोनों को था। निराला जी का जीवन-क्रम ही भौतिक रूप से राष्ट्र की सजगता की, क्रियात्मकता की, व्यापक जागृति की प्रत्येक दशा में नव-नव प्रेरणायें ग्रहण करता चलता था, किन्तु राय चौधुरी की अतिक्रामक प्रतिभा ने राष्ट्र-जीवन की जड़ता के भीतर गुप्त रूप से क्रियामाण स्पन्दनों और निष्क्रियता के भीतर विद्यमान अभिनव क्रियात्मक सजीवता का मौलिक अनुभव किया।

इसी कारण वै आगामी राष्ट्र-स्वातंत्र्य और सामाजिक उत्कर्ष की कल्पना कर सके। यही दशा निराला जी की थी जिनका भौतिक जीवन सन् १९६१ ई० तक राष्ट्र की विभिन्न दशाओं, परिवर्तनों, सामाजिक प्रक्रियाओं विश्व-परिस्थितियों आदि का निकट से अनुभव करता था। परतंत्र भारत में रहते हुये भी एक ओर राय चौधुरी राजनीतिक दासता, सामाजिक अंधरूढ़ियों, जातीयता, ऊंच-नीच के भेद-भाव इत्यादि से मुक्त नूतन और संस्कृत भारत की कल्पना की तो दूसरी ओर निराला जी भी पुरातन रूढ़िवादिता के बंधन में आबद्ध- अज्ञान और विविध विषमताओं से आवेष्टित भारत से भिन्न विजय-गान से उत्फुल्ल, ज्ञान-प्रकाश से आलोकित और निर्जीव रूढ़ियों से मुक्त भारत की कल्पना कर सके।

निराला जी बड़ी उत्फुल्लता के साथ आलोक-व्याप्ति का परिचय दे रहे हैं :-

जागा दिशा-ज्ञान
उगा रवि पूर्व का गगन में नव-यान।
खुले, जो पलक तम हुये थे अचल,
बैलनाहल हुईं दृष्टि देखी चपल,
स्नेह से फूल आई उमड़ मुस्कान।[१]

सन् १९३८ ई० में ही निराला जी ने अपनी क्रान्ति दर्शिता का परिचय अपने 'तुलसीदास' नामक काव्य में दिया है :-

जागो जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंधरात,
भरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल,

---

१ निराला-गीतिका, पृ० ८६।

बांधों बांधों किरणो चेतन ,
तेजस्वी, है तमरुज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल ।[२]

राय चौधरी भी निराला जी की भांति उल्लास में गाते हैं ।

जाग तेनै छले जाग व्यथा मौर
आकाश-पाताल बुराई जाग,
छटाई जड़ता, क्लेद, टानि तोल
नव-सृष्टिर अमल भाग ।[३]

हिन्दी रूपान्तर -

जागो सब जागो मेरी व्यथा
आकाश-पाताल डुबाकर जागो ।
हटाकर जड़ता और मलिनता
नव और स्वच्छ सृष्टि सृजन करो ।

सन् १९२१ ई० में राय चौधुरी पराधीन, उपेक्षित और पीड़ित भारतवासियों की मुक्ति की कामना से कई गीत लिखे -

जाग जाग भारत सन्तान
हिन्दु-मुसलमान ।
मुक्ति शंख बाजे गाजे भेदि
लक्ष प्रातार हियार तेजेदि ।[४]

---

२. निराला -तुलसीदास, गीत ६३, पृ० ५७
३. राय चौधुरी-अनुभूति, जाग वैथा मौर जाग, पृ० ७२
४. राय चौधुरी- बन्दों कि छन्देरै, जाग जाग जाग, पृ० २४

हिन्दी रूपान्तर -

जागो जागो रे भारत की सन्तान
हिन्दू और मुसलमान ।
मुक्ति के शंख की ध्वनि है मुखरित ।
लक्ष भाइयों की हिया के रक्त से है रंजित ।

भविष्य-वक्ता और भविष्य-द्रष्टा कवि अपनी सम सामयिक स्थितियों का ज्ञान रखते हैं और साथ ही उनकी प्रतिक्रियाओं,परिणामों, भविष्य-रूपों और सापेक्ष जीवन मूल्यों का भी निर्धारण करते हैं । निराला और राय-चौधुरी ने जीवन की अपनी अनुर्वर सतह के मूल में विद्यमान उर्वरता का , चेतन सत्ता का, अनुभव किया और इसी कारण आत्मविश्वासपूर्ण नव-युग की कल्पना कर सके । निराला और राय चौधुरी के काव्य में समान रूप से युगीन जीर्ण-शीर्ण-पुरातन के ध्वंस की कामना मुखरित हुई है और साथ ही समस्त भौतिक बन्धनों से उन्मुक्त होकर व्यापक और गंभीर विश्व-संस्कृति की संस्थिति का युग-सन्देश अपने समस्त विस्तार के साथ उभर आया है ।

युगस्रष्टा निराला -

युग को निराला की देन - निराला जी सामयिक युग-चेतना, विभिन्न संकीर्णताओं और विषमताओं से अत्यधिक प्रभावित हुये । फलतः वे अपने विद्रोही स्वर के द्वारा एक सुसंपन्न तथा मानवता के दिव्य तत्वों से ओत प्रोत अभिनव युग-निर्माण के महत्वपूर्ण कार्य में लगे रहे । सामाजिक वैषम्य के कारण जब ऊंच-नीच का भेदभाव बढ़ता है तब समाज का विकास रुक जाता है । यही दशा उस समय के भारत की थी । जातीयता की इस भीषण स्थिति को देख कर और उसके कारण होने वाली समाज की

शोचनीय दशा को अनुभव कर ही निराला जी ने कहा :-

> जारी रहेगा यदि, उसी तरह आपस में, नीचों के साथ यदि
> उच्च जातियों की घृणा, द्वन्द्व, कलह, वैमनस्य,
> क्षुद्र उर्मियों की तरह, टक्करें लेते रहे तो, निश्चय ही है
> वेग उन तरंगों का और घट जायगा,
> क्षुद्र से क्षुद्रतर होकर मिट जायेंगे, चंचलता शान्त होगी
> स्वप्न सा विलीन हो जायगा अस्तित्व सब,
> दूसरी ही कोई तरंग फिर फैलेगी ।[५]

सामाजिक विषमता का रूप उनकी 'कुकुरमुत्ता', बेला, नये पत्ते आदि कृतियों में व्यंग के माध्यम से उभर आया है । उन्होंने अपने उस विषम समाज की शोषण-प्रक्रियाओं से तड़पकर अनेक गीत गाये हैं । उन्हों ने देखा कि समाज में वे ही विजयी कहलाते हैं जो दूसरों का रक्त चूस कर बड़े बनते हैं और उनके शोषण के दबाव में निराश दलित मानव दबता जाता है । उसका जीवन अर्द्धमृत है । इसका चित्र निराला जी के निम्नांकित गीत में स्वाभाविक रूप से खींचा गया है, जिसके मूल में निराला जी का विद्रोह स्पष्ट है :-

> जमाने की रफ़्तार में कैसा तूफ़ां,
> मरे जा रहे हैं, जिये जा रहे हैं ।
> खुला भेद, विजयी कहाये हुये जो,
> लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं ।[६]

---

५. निराला-परिमल, महाराज शिवाजी का पत्र, पृ० २१७

६. निराला-बेला, पृ० ६८ ।

'कुकुरमुत्ता' में निराला जी ने अपनी आँखों के सामने दूसरों के श्रम पर वैभव का प्रासाद खड़ा करने वाले और साथ ही वर्ग के साथ अपने वैभव की प्रशंसा करने वाले शोषक वर्ग को देखा तो सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति के साथ शोषकों को फटकार बताते हुये कहा :--

> अबे, सुन बे, गुलाब,
> भूल मत जो पाईखुशबू रंगों-आब,
> खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
> डाल पर इतरा रहा है बने कैपिटलिस्ट ।[७]

समग्र मानव जाति में वर्ग-संघर्ष के स्थान पर वर्ग-सामंजस्य लाने की कामना और सांस्कृतिक चेतना का विकास लाने की इच्छा 'कुकुर मुत्ता' की पृष्ठ-भूमि में है ।

निराला जी की समस्त रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभि-व्यंजना हुई है, समाज में व्याप्त जातीय मत-भेदों, छोटे-बड़े की भावनाओं, अंध विश्वासों, स्वार्थ, चारित्रिक दोष आदि की समस्याओं का प्रतिपादन और समस्या समाधान के साधनों का विवेचन हुआ है । निराला जी का युगानुभव इतना अधिक विशाल है कि वह जीवन के सभी अंगों के यथार्थ पर प्रकाश डालता है । निराला अपनी जागरूक परंपराओं तथा युग के ज्वलन्त प्रश्नों

---

७. निराला - कुकुरमुत्ता, पृ० ३६ ।

और समस्याओं के पूर्ण संकेत हैं । इसलिए आधुनिक युग का समग्र रूप से प्रतिनिधित्व निराला ही कर पाते हैं ।[८]

निराला के समय में भारतीय समाज, विदेशी भौतिक संस्कृति के अनुरूप ढल रहा था । सर्वत्र जनता मोह-जड़-वासना-बधिर हो पड़ी थी, उस गति-विधिहीन युग का चित्र निराला जी ने इस प्रकार खींचा है :-

भारत के नभ का प्रभापूर्ण शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे तमस्तूर्यदिड्०मंडल ।[९]

निराला जी ने 'तुलसीदास' काव्य में युगीन पराभूत स्थिति के चित्रण से प्रारंभ करके विविध साधनाओं के परिणामस्वरूप पुनश्च युग-चेतना के विकास का उद्घोष करते हुये, काव्य का अन्त कर दिया है । 'तुलसीदास' का प्रारम्भ धूमिल युग-चेतना के वातावरण में हुआ तथा काव्य का अन्त उज्ज्वल युग-चेतना के जागरण के साथ पुष्कल रवि रेखाओं के बीच में हुआ है जो ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना के स्फुरण का ही परिचायक है ।

निराला जी अपने चारों ओर अनास्था, विकृत कुंठा, अविश्वास, शोषण, पीड़न आदि से आक्रान्त और पूंजीवादी तथा सामन्तवादी सभ्यता से त्रस्त विषादपूर्ण युगीन समाज को देख कर, पुष्ट सशक्त, प्रगतिशील परं-

---

८. डा० बच्चन सिंह - क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० १६४
९. निराला-तुलसीदास, गीत, १, पृ० ११

धरा और जीवन का निर्माण कर उसमें नूतन शक्ति और शोणित का प्रवाह भरने की कामना करते हैं। शोषण की चक्की के पाटों में पिसने वाली समूची मानवता की रक्षा के लिए निराला जी का काम्य है कि समस्त शोषण का अन्त कर दिया जाय, इसी उद्देश्य से जीवन-सत्य और युग-धर्म से विमुख रहने वाले कवियों को संबोधित कर निराला जी ने व्यंग्य भरी वाणी में कर्तव्य-ज्ञान कराया :-

> मैं जीर्ण-साज बहु छिद्र आज,
> तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन
> मैं हूं केवल पदतल-आसन,
> तुम सहज विराजे महाराज ।[१०]

निराला जी ने रूढ़िवादी पुराणपंथियों की कहीं खिल्ली उड़ायी है तो कहीं उनके ढोंगों पर कटु प्रहार किया है। इसका ज्वलंत प्रमाण उनकी कविता "मित्र के प्रति" है जिसमें प्राचीनता के उस पोषक पर जिसे न नवीनता के प्रति कोई रुचि है, न नये गीतों का भाव या छन्द योजना ही प्रिय है, व्यंग कसा है। वह मित्र भी कैसा है :--

> रहे काव्य कर्ण कुहर
> मन पर प्राचीन मुहर
> हृदय पर शिला [११]

इसी कारण उनकी स्थिति इस प्रकार है :--

---

१०. निराला - अनामिका, हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र, पृ० ११८

११. निराला-अनामिका, मित्र के प्रति, पृ० १३ ।

वही जो सुवास मन्द
मधुर-भार-भरण-छन्द ,
मिली नहीं तुम्हें, बन्द
रहे, बंधु, द्वार ?[१२]

यह वास्तव में रूढ़िवादी समाज की गतानुगतिकता के प्रति निराला जी का व्यंग्य, प्रहार और विद्रोह है । इसी कारण बार-बार गलित पुरातन मूल्यों का विरोध करते हुये निराला जी ने नवीनता का स्वागत अनेक कविताओं में किया है :-

आँखों में नव जीवन की तू अंजन लगा पुनीत,
बिखर झर जाने दे प्राचीन ।

...............................

पुनर्वार गायें नूतन स्वर, नव कर से दे ताल ,
चतुर्दिक छा जाये विश्वास ।

...............................

जीर्ण-शीर्ण जो, दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान ,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट ।[१३]

निराला जी की राष्ट्रीयता का उद्घोष 'जागो फिर एक बार', 'बादल राग, 'दिल्ली, सहस्राब्दी, 'महाराज शिवाजी का पत्र , 'यमुना के प्रति।

---

१२, निराला- अनामिका- मित्र के प्रति, पृ० १२
१३, वही, उद्बोधन, पृ० ६७,६८ ।

आदि अनेक कविताओं में देखा जा सकता है । निराला जी की 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता में राष्ट्रीय उद्बोधन के साथ भारत की दार्शनिक सांस्कृतिक चेतना के प्राणों को भी स्पन्दित पाते हैं । इसमें निराला जी भारतीय राष्ट्रीयता को उद्बुद्ध करने वाले और ब्रह्मपुत्र, सिन्धु और गंगा के तटों पर चतुरंग ससंगम विचरण करने वाले वीर-व्रतियों का स्मरण करते हैं । वे गुरु गोविन्द सिंह के 'सत श्री अकाल' की शंखध्वनि को राष्ट्रीयता का पवित्र उद्घोष मानते हैं । मृत्युंजय व्योमकेश के समान भारतवासियों को पुनश्च जगाने का प्रयत्न करने वाले निराला जी इस कविता में संकीर्ण साम्प्रदायिकता का उद्गार नहीं है, प्रत्युत पुरातन और पवित्र सांस्कृतिक उन्मेष-स्थलियों को देख कर साम्राज्यवादियों के कुचक्रों को कुचल डालने का अभियान है ।

निराला जी सामयिक समाज के समस्त बाह्याडंबरों का खण्डन करते थे । इसका ज्वलन्त प्रमाण उनका शोक-गीत 'सरोज स्मृति' है जिसमें अपने कान्यकुब्ज समाज की मिथ्या-रूढ़ियों, दहेज प्रथा इत्यादि निरर्थक बाह्याचारों का उन्होंने उन्मुक्त रूप से खण्डन किया है । नारी के प्रति निराला जी की अगाध श्रद्धा भारतीय समाज में नारी जाति की दीन-हीन दशा की प्रतिक्रिया है । 'राम की शक्ति पूजा' की सीता और 'तुलसीदास' की रत्नावली के स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक औदात्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । अपने युग में नारी संबंधी सामाजिक कटुता को देख कर निराला जी ने निम्नप्रकार से नारी के आदर्श रूप को चित्रित किया है :-

> तन की, मन की, धन की हो तुम, नव जागरण शयन की हो तुम ।
> काम कामिनी नहीं तुम, सहज स्वामिनी सदा रहीं तुम ।
>
> ....................................................

हास तुम्हारा पाश-विमोचन ,मुनि की मान, मनन की हो तुम ।[१४]

निराला जी की कामना और विश्वास है कि युग की कटुता के वातावरण में आध्यात्मिक चेतना के उन्नयन से मानवता जल के शत सहस्त्र उत्स फूटेंगे और छल बल के पंकिल भौतिक रूप अदृश्य होंगे । एक शुद्ध चेतना और उज्ज्वल युग का निर्माण होगा । निराला जी का संपूर्ण युग का अभिज्ञान इस पंक्ति में समग्र रूप से तीखे व्यंग्य के साथ प्रकट हुआ है,

दगा की इस सभ्यता ने दगा की ।[१५]

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की विविध समस्याओं से प्रभावित निराला जी भौतिक और आध्यात्मिकता के समन्वय में मानवता का कल्याण मानते हैं --

आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अँधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ ।
सारी संपत्ति देश की हो, सारी आपत्ति देश की बने ।
जनता जातीय वेश की हो ।[१६]

---

१४. निराला-अर्चना, गीत, २, पृ० १८
१५. निराला-नये पत्ते, पृ० ३६
१६. निराला-बेला, पृ० ७८ ।

राष्ट्रीय और आध्यात्मिक विचार-धाराओं से अनुप्राणित उनकी युग-अभिज्ञता और युग-संदेश को निम्नांकित पंक्तियों में सुस्पष्ट रूप से देखा जा सकता है :--

वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी ।[१७]

युग और समाज को एक नये मार्ग पर चलाने वाले निराला जी के जीवन-व्यापी युग सन्देशों के संबंध में डा० बच्चन सिंह का कथन है, वे छन्द बंधनों से मुक्ति चाहते थे, सड़ी-गली मान्यताओं से मुक्ति चाहते थे, प्रेम सम्बन्धी पुरातन धारणाओं से मुक्ति चाहते थे, पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्ति चाहते थे ......... मुक्ति का तात्पर्य निषेधात्मक न हो कर विधायक है ।............. जातीय जीवन को इतने विविध और प्रभावोत्पादक स्वरों में मुखरित करने के कारण निराला का काव्य जातीय आकांक्षाओं का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करता है, इस लिये वे युगद्रष्टा हैं, क्रान्तिकारी हैं ।[१८]

<u>निराला जी की परम्परा</u> - नवीन रूपों में परम्परा प्राप्त छन्दों से लेकर भावानुरूप गति-यति-लय से सम्पन्न मुक्त छन्दों तक और रागों एवं तालों में आबद्ध गीतों से लेकर भावावेग पर आधारित प्रगीतों और उर्दू छन्द-बहर, गजल आदि तक नये-नये सांस्कृतिक परिधानों को लिये छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी आदि नाना रूपों में निराला जी अपने को अभिव्यक्त करते थे यद्यपि उनको किसी वाद विशेष के घेरे में बांधना संभव नहीं है । उनका

---

१७. निराला-गीतिका, पृ० ४

१८. निराला की कविता, आलोचना, अंक ६५, जनवरी, १९५६, पृ० १५२, १६१

सर्वतोमुखी प्रभाव परवर्ती साहित्यकारों पर थोड़ा बहुत अवश्य पड़ा है। निराला जी के 'कुकुर मुत्ता', 'नये पत्ते', 'बेला', 'अणिमा' आदि ने परवर्ती कवियों के लिये नया मार्ग प्रशस्त किया। इन्हीं रचनाओं से प्रेरणा-ग्रहण कर व्यंग्य की चमक और यथार्थ जनित भीषण कर्कशता लिये हुये सामाजिक चेतना के जनवादी धरातल पर प्रगतिवादी, प्रयोगवादी- और नये कवि आये। प्रगतिशील रचना कारों में डा० रामविलास शर्मा और नागार्जुन निराला जी के प्रगतिशील तत्वों से अधिक प्रभावित हैं। निराला जी की इन कविताओं[१९] का इस कारण महत्त्व है कि इन्हों ने न केवल हिन्दी कविता को नये प्रकार की देन दी, वरन् प्रगतिवादी काव्य की अनेक मंजिलों में उसकी पथ प्रदर्शिका बनी।[२०]

प्रगतिवाद कवियों की सामाजिक चेतना और शिल्प-प्रक्रिया पर निराला का प्रभाव स्वयं स्पष्ट है। शमशेर बहादुर सिंह ने कहा है, "मेरी भावनाओं पर सबसे गहरा असर पड़ा है,...... 'परिमल' और 'अनामिका' का बहुत मुद्दत तक निराला की 'रवीन्द्र कविता कानन' मेरी अत्यधिक प्रिय पुस्तक रही।........ हालांकि बंबई आने के बाद 'नये पत्ते' के निराला[२१]। शमशेर ने रुबाई, गजल आदि का जो प्रयोग किया है उसके पूर्व ही निराला जी ने इस दिशा में प्रयोग कर दिया था। अपनी परवर्ती व्यंग्यपरक यथार्थवादी रचनाओं में निराला जी ने नये-नये प्रयोग किये, भाषा, शैली आदि में नवीन प्रयोग किये। निराला जी का मुक्त छन्द उनका एक नवीन और सफल प्रयोग है। वस्तु और शिल्प की दृष्टि से प्रयोग वादी और नये कवियों ने निराला जी

---

१९. निराला-कुकुर मुत्ता, नयेपत्ते, बेला।
२०. डा० शिवकुमार मिश्र- नया हिन्दी काव्य, पृ० ७८।
२१. अज्ञेय- दूसरा सप्तक, पृ० ९२,९४।

की परम्परा का पालन किया है । बंधनमय छन्दों की छोटी राह से कविता को निराला ने निकाल कर भावनाओं के निर्बन्ध स्वच्छन्द मार्ग पर ले जाने का संकल्प किया था, आरम्भ में उसका विरोध अवश्य हुआ, किन्तु वह क्रमशः लोकप्रिय बनता गया और आज निराला जी का प्रवर्तित मुक्त छन्द हिन्दी कविता की मूल प्रवृत्ति बन गया ।

गीतकार जानकीवल्लभ शास्त्री निराला जी की परम्परा को बनाये रखने वाले कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । उनकी रचनाओं में निराला जी की भाँति दार्शनिकता का पुट विद्यमान है और संगीत एवं साहित्य का समन्वय भी हुआ है ।

निराला जी की परवर्ती कवियों पर उनकी सामाजिक यथार्थ चेतना का पूर्ण प्रभाव पड़ा है । निराला जी के सम्बन्ध में श्रीमती महादेवी-वर्मा ने लिखा है कि , "साहित्य के नवीन युगपथ पर निराला जी की अंक-संसृति गहरी और स्पष्ट, उज्ज्वल और लक्ष्य-निष्ठ रहेगी । इस मार्ग के हर फूल पर उनके चरण चिह्न और हर शूल पर रक्त का रंग है । [२२]

<u>निराला का भविष्य</u> -- निराला जी हिन्दी भाषा के वर्तमान युग के ऐसे कवि हुये हैं जिन्होंने अपने काव्यों में युगीन मूल तत्वों का विवेचन प्रस्तुत किया है और युग की विभिन्न भावधाराओं,आदर्शों और प्रवृत्तियों को काव्यों में उतारा है । गतिमान जीवन की विविधता को अभिव्यक्ति प्रदान की है । युगीन भाव-धाराओं का विस्तार, बाहुल्य और शैली की बहुरूपता उनके

---

२२. महादेवी वर्मा- पथ के साथी, पृ० ६६

काव्य में विद्यमान है । अत: शताब्दी के काव्य-विकास का प्रतिनिधित्व करने वाले शताब्दी के कवि निराला जी ने नये युग के,हिन्दी साहित्यकारों के लिये अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किये हैं । हिन्दी के वर्तमान काव्य - विकास का उत्स निराला जी में ही देखा जा सकता है और आधुनिक साहित्यकारों के लिये वे भाषा, विषय और छन्द के क्षेत्र में प्रकाश स्तम्भ की भाँति स्थित हैं ।

निराला जी एक महान् व्यक्ति और कवि थे । फिर भी समाज और राष्ट्र ने उन्हें उनके जीवन-काल में उचित सम्मान नहीं दिया, उनकी रक्षा का दायित्व अपने ऊपर नहीं उठाया, अपनी शिथिलताओं, उपेक्षाओं और ना समझी के कारण उन्हें आजीवन लपने और मिटने दिया । निरालाजी हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक थे । उन्होंने हिन्दी को नयी भाषा, नया भाव और नये छन्द देकर एक नवीन युग का प्रवर्तन किया जिसे हिन्दी संसार को भी विस्मृत न कर सकेगा ।

## युग स्रष्टा राय चौधुरी :-

युग को उनकी देन -- राय चौधुरी की सामाजिक, राष्ट्रीय मानवतावादी और सांस्कृतिक चेतनाओं का मूल आधार युग के प्रति उनकी सच्ची ईमानदारी है । समाज और मानव के प्रति उनका दायित्व पूर्णयुग-बोध सर्जनात्मक है । समसामयिक जीवन सन्दर्भ में भारत के सांस्कृतिक अस्तित्व की मूल्यवत्ता के प्रति राय चौधुरी की गहन आन्तरिक आग्रह और संतुलित अन्तश्चेतना सुस्पष्ट है । राय चौधुरी का मानवतावाद जिसमें जाति, धर्म आदि की सीमाओं के लिये कोई स्थान नहीं है, उनकी युग-चेतना का परिणाम है ।

उनका युग - बोध राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से राष्ट्र की स्वतंत्रता और उन्नयन का सन्देश देता है। राय चौधुरी ने अपने समक्ष किस प्रकार के राष्ट्र को पाया, वह कैसा कटु, कलुषित और दलित था, उसका चित्रण राय चौधुरी ने बड़ी सहज भाषा में किया है और साथ ही इस बात की इच्छा भी प्रकट की है कि वह दलित भारत से विदा ले और नये प्रगतिशील सांस्कृतिक भारत का आगमन हो --

सकलो बिलीन है -सुख-शान्ति उज्ज्वल
प्रेमराज्य प्रतिष्ठित ह ब
सतता, सहृदयता, प्रबित्रता-उच्छल
एक आत्मा-अनुभूति ब ब । [२३]

हिन्दी रूपान्तर

सब विलुप्त होकर विमल सुख-शान्तिपूर्ण
प्रेम-राज्य होगा प्रतिष्ठित ।
सतता, सहृदयता, पवित्रता और उच्छलता
एक आत्मानुभूति होगी प्रवाहित ।

राय चौधुरी युग-जीवन के साथ निकटतम रूप में संलग्न थे और युग की प्रत्येक दशा की पूरी जानकारी उनको थी । उनका यह युग-बोध युगीन समाज के कटु

---

२३. राय चौधुरी-अनुभूति, आकांक्षा, पृ० ६२ ।

सत्य की स्वानुभूति पर आधारित है और साथ ही युग-परिस्थिति के प्रति उनकी सहानुभूति का परिणाम है । सभी प्रकार के भेदभावों से दूर, समस्त मानव जाति का हित करते हुये संपूर्ण एकता, मैत्री, बन्धुभाव और समानता के साथ रहने वाले भारतीय नव समाज का स्वागत राय चौधुरी निम्नांकित पंक्तियों में करते हैं :-

दुर्बलताक ध्वंस करिम
देश-जाति-मान रक्षा करिम
आमि स्वाधीन-आमि स्वाधीन ।[२४]

हिन्दी रूपान्तर

दुर्बलता को विध्वंस करूंगा
देशजाति-मन की रक्षा करूंगा
हम स्वतंत्र है, हम स्वतंत्र हैं ।

राय चौधुरी के सभी गीत राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित हैं । किसी गीत में देश की पराधीनता पर आक्रोश है, तो किसी में समाज की रूढ़िगत पराधीनता का क्षोभ है ।

समस्त जातीय भेद-भावों को विनष्ट करके पारस्परिक प्रेम, सौहार्द, बन्धुत्व आदि के साथ राष्ट्र जीवन को उज्ज्वल बनाने का युगानुकूल सन्देश राय चौधुरी की अनेककविताओं में मिलता है ।

---

२४. राय चौधुरी- बेबनार उल्का, पृ० ५१

राय चौधुरी ने भारतीय समाज में धार्मिक, जातिगत और साम्प्रदायिक भेद-भावों को परिव्याप्त देखा , उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि इन सामाजिक विषमताओं के कारण देश में एकता और स्वतंत्रता की व्याप्ति नहीं हो पाती । अद्वैतवादी दार्शनिक राय चौधुरी ने समस्त जीवों के मूल में एक ब्रह्म तत्त्व का अनुभव किया, समस्त धर्मों के उपास्यों को एक माना, अत: विशुद्ध ब्रह्म तत्त्व के ज्ञान -प्रसाद द्वारा समाज में व्याप्त भेद-भावों के नष्ट कर आलोकपूर्ण नव समाज के निर्माण की कामना की ।

भारतवासियों में शक्ति और विश्वास का अभाव था, वैयक्तिक अधिकारों और स्वतंत्र विचारों के लिए स्थान नहीं था । अशिक्षा, निर्धनता, असमर्थता, एकता के अभाव आदि के कारण भारतवासी पराधीन होकर आत्म-गौरव और आत्म-विश्वास के अभाव में अपने ही देश में दासता के पाश में बद्ध और किंकर्तव्यविमूढ़ हो पड़े रहे । उनमें राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का अभाव था । समाज में पुरुष-स्त्री विदेशियों के बंधपाश में अपनी शक्तियों और प्राचीन गौरव को भूले पड़े थे । राय चौधुरी ने अपने युग के इस रूप को पूर्ण रूप सेदेखा, अनुभव किया, परखा और वेदना के साथ अभिव्यक्त किया , साथ ही जड़ समाज को चेतना संपन्न बनाकर उसे जगाने के लिये कभी व्यंग्य के साथ और कभी आक्रोश के साथ युग सत्य की घोषणा की, युग चेतना को हृदयंगम कर युग-सन्देश सुनाये ।

राय चौधुरी निरन्तर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का उद्घोष करते हैं , उनका युग-सन्देश नयी जीवन-मूल्य चेतना का जागरण है । राय चौधुरी असमीया भाषा के वर्तमान युग के ऐसे कवि हुये हैं जिन्होंने ने अपने काव्य में युगीन मूल सत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत किया है और युग की विभिन्न भाव-धाराओं, आदर्शों और प्रवृत्तियों को

काव्य में उतारा है, गतिमान जीवन की विविधता को अभिव्यक्ति प्रदान की है । युगीन भाव-धाराओं का विस्तार-बाहुल्य और शैली की बहुरूपता अनेक काव्य में है । अतः शताब्दी के काव्य-विलास का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि राय चौधुरी ने नये युग के असमीया साहित्यकारों के लिये अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है । असमीया के वर्तमान काव्य-विकास का उत्स राय चौधुरी में देखा जा सकता है । राय चौधुरी आधुनिक असमीया साहित्यकारों के लिये प्रकाश स्तम्भ की भांति स्थित हैं ।

राय चौधुरी अपनी भाषा के माध्यम से ज्ञान को धरातल पर उतार गये हैं । वे अपनी कविताओं से मानवता की जय का उद्घोष और काव्य-कला को नित्य-नये सुरों से मुखरित कर गये हैं । राय चौधुरी अपने असमीया समाज के लोक-नेता महान् कवि और साहित्यिक थे । किन्तु समाज तथा राष्ट्र ने उनके जीवन-काल में उचित सम्मान नहीं दिया । इस तथ्य को स्वीकार करना ही होगा कि राय चौधुरी का जीवन राष्ट्र के लिए वरदान था ।

राय चौधुरी मानवता-प्रेमी और भविष्य-वक्ता थे । वे मानव के भविष्य के विषय एक जगह भविष्य-वाणी करते हैं जो आज अमेरिकी और रूसी वैज्ञानिकों द्वारा सफल होने जा रही है :-

> बीर दापेरे ग्रहान्तरत
> लैज महु० है मैं ,
> पारिलैहे उपनिवेश
> स्थापन करि लब,
> मानब जातिर मान गौरब
> नित्य-नतुन हब ।[२५]

---

हिन्दी रूपान्तर

सशरीर धीर शक्ति से ग्रहान्तर में
उपनिवेश स्थापन करने से
मानव-जाति का मान-गौरव
नित्य नवीन होगा ।

राय चौधुरी की परम्परा -

असमीया भाषा के काव्य-जगत् में एक प्रबल कवि-परम्परा चल रही है और इस परम्परा के काव्य की विषयवस्तु विद्रोह, सामाजिक संस्कृति, मानवता-बोध और समाज की जागृति आदि है । इस काव्य परम्परा का जन्मदाता थे अग्नि ऋषि कमलाकान्त भट्टाचार्य जी । उसी परम्परा के अन्य-तम कवि और देश-प्रेमी राय चौधुरी जी हैं । कमलाकान्त भट्टाचार्य राय-चौधुरी के गुरु ही थे । इसी परम्परा के अनेक कवि साहित्यिक वर्तमान असमीया भाषा में दिखाई पड़ते हैं । उनमें प्रसन्नलाल चौधुरी, गनेश गगै, उमेश चौधुरी और हेम बरुवा सर्व प्रधान हैं । उन्होंने राय चौधुरी के शब्द-गौरव, आवेशमयी भाषा, सामाजिक चेतना, विविध वैषम्यों से जर्जरित समाज का सुधार करने की उत्कट कामना, प्रगतिशील प्रवृत्ति आदि को अप-नाया है । उपर्युक्त सभी कवि राय चौधुरी से प्रभावित हैं । उनकी परम्परा के हैं तो भी राय चौधुरी की काव्य-चेतना, काव्य-प्रतिभा, सशक्त स्वर निश्चित मर्यादित सौन्दर्य-बोध का गांभीर्य और शिल्प-सौष्ठव और संतुलन की समग्रता किसी भी कवि के काव्य में पूर्णतया नहीं पायी जाती । यह शताब्दी के कवि की नैसर्गिक विशेषता है । वास्तव में राय चौधुरी के एकाध अंश को ही उक्त कवियों के काव्यों में पाते हैं ।

राय चौधुरी का भविष्य -

कवि क्षणभंगुर है किन्तु उनके अमर काव्य युग-युग तक समाज में अपना प्रभाव डालकर सामाजिक प्रगति पथ के सहायक बनते हैं । वाल्मीकि, तुलसीदास, होमर आदि विश्व-विख्यात काव्यकार काल की गति में विलुप्त हो चुके हैं किन्तु उनकी रचना रामायन, रामचरित मानस, इलियट ओदिसी आदि आज तक वर्तमान है और युग-युग तक मानव-समाज में रहेंगे । इसी प्रकार राय चौधुरी आज मानव समाज में नहीं हैं किन्तु उनके विचार-धारा को प्रसारित करती हुई इनकी रचनायें आज हमारे मध्य हैं और जब तक असमीया जाति तथा भाषा संसार में रहेगी तब तक राय चौधुरी की विचार-धारा की वाहक रचनायें भी रहेंगी । २० वीं शताब्दी के काव्य-विकास का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि राय चौधुरी ने नये युग के असमीया साहित्यकारों के लिये अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किये हैं । असमीया के वर्त-मान काव्यविकास का उत्स राय चौधुरी में ही देखा जा सकता है । क्या भाषा, क्या भाव, क्या विषय और क्या छन्द इन सभी को राय चौधुरी की देन अप्रतिम है । इन सब की छाप आधुनिक असमीया साहित्य पर स्पष्टतः देखी जा सकती है । आधुनिक असमीया साहित्य और उसके साहित्य-कार ~~राय चौधुरी~~ इस प्रदेश के लिये राय चौधुरी के चिर-ऋणी रहेंगे ।

युग प्रवर्तक निराला और राय चौधुरी का तुलनात्मक अध्ययन -

कवि निराला और राय चौधुरी की कृतियों में उनको युग-स्रष्टा घोषित करने वाले पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं । अपने युग के समाज द्वारा निर्मित दोनों कवियों का व्यक्तित्व जितना अपनी अतीत परम्परा के प्रति जागरूक है उतना ही वर्तमान विसंगतियों, युग-समस्याओं और संवेदनशील प्रवृत्तियों के

प्रति दोनों कवि यथार्थ या वास्तविक युग-जीवन को देखते, अनुभव करते तथा उसकी विषमताओं का खुल कर खण्डन करते हैं। किसी पूर्वाग्रह के बिना-युग जीवन की व्यक्तिगत और समष्टिगत समस्याओं से प्रभाव ग्रहण करते हैं और वर्तमान जड़ जीवन की प्रतिक्रिया में एक उन्मुक्त और चेतन जगत् का निर्माण करने का सन्देश देते हुये अपने युग-दायित्व का निर्वाह करते हैं। दोनों के काव्यों में युग का चित्रण अतीव स्पष्ट रूप से हुआ है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध और बीसवीं शती के मध्य से भारतीय जन-जीवन को राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में संक्रान्ति की जटिलता से गुजरना पड़ रहा था। बीसवीं शती में जीवन के सभी पहलुओं में बौद्धिकता, नियम-बद्धता और रूढ़ियों की अति के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति क्रमश: बढ़ने लग गयी थी। इस सम्बन्ध में डा० श्रीकृष्ण लाल का विचार हिन्दी और असमीया दोनों भाषाओं के साहित्य पर समान रूप से प्रकाश डालता है - "उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में साहित्य को गोष्ठी-साहित्य की सीमा से बाहर लाकर साधारण जनता की सामग्री बनाने के लिये एक आन्दोलन चल पड़ा....... फलत: बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिन्दी साहित्य को गोष्ठी-साहित्य के संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलने का प्रयास किया गया और उसे एक नये मार्ग और लय पर ले चलने का उद्योग होने लगा।[२६] इसी वातावरण में जीवन का फिर से संस्कार किया जाने लगा, धार्मिक रूढ़ियों की जड़ हिलाने लगीं, मानव की सहायता और उसके प्रति सहानुभूति की प्रतिष्ठा हुई।[२७] साहित्य के समस्त क्षेत्रों में और जीवन के सभी पहलुओं में प्रतिकूल परिस्थितियों की प्रतिक्रिया होने लगी। कवि उस अवरुद्ध वातावरण का उद्घाटन करने में प्रवृत्त हुये जो चारों ओर छाया हुआ था। प्राच्य और अधुनातन जीवन का विभेद और तज्जन्य संकल्प-विकल्प तथा संशय

---

२६. डा० कृष्णलाल-आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २७

२७. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ३४३

भी नवीन साहित्य में प्रतिबिम्बित हुआ ।[२८] असमीया साहित्य के क्षेत्र में भी वैसी ही अवस्थाओं का उदय हुआ । हिन्दी और असमीया साहित्य में निराला और राय चौधुरी ने ही इस कार्य को किया । असमीया समाज में राय चौधुरी की स्थिति के विषय में डा० वाणीकान्त काकति ने कहा है, वर्तमान असम के सामाजिक जीवन में राय चौधुरी ही सबसे अधिक मौलिक उपादान सम्पन्न प्रतिभावान पुरुष हैं ।[२९] निराला और राय चौधुरी युग पुरुष थे । वे युगीन परिस्थितियों को आत्मसात करके अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्हें अभिव्यंजना देते थे । युग की विषमताओं और समस्याओं से प्रभावित निराला और राय चौधुरी वर्तमान को सफल देखना चाहते थे । इस दृष्टि से उनको युग निर्माता कहा जाता है । वे समाज को नवीन रूप से रूपायित करना चाहते थे । ऐसे ही युगीन कवियों के सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है," सभी समयों और समाजों में कभी कुछ,कभी कुछ कम, कभी अधिक, रचनाकार अपनी संस्कृति के अनुरूप ऐसी रचनायें करते हैं और साहित्य में उनका सम्मान ही होता है ।[३०] इसी कोटि में निराला और राय चौधुरी को युग-द्रष्टा कवियों के रूप में स्वीकार किया जाता है । उन दोनों कवियों के समकालीन इतिहास को उनके काव्यों में स्पष्टत: देखा जा सकता है । वस्तुत: साहित्य की शुद्ध तथा सात्त्विक भूमि में उसके अन्य तत्वों की अपेक्षा युग की प्रतिध्वनि अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ती है । ............ प्रकृति कवि जीवन को समझने के लिए अतीत की ओर तथा सफल बनाने के लिये भविष्य की ओर देखता है, किन्तु उसका साध्य सदा वर्तमान ही रहता है ।............ किसी भी कविका व्यक्तित्व चाहे वह युग का खण्डन करने वाला हो, चाहे मण्डन ,उस

---

२८, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी, पृ० १३
२९, उपेन्द्र बरकटकी-अम्बिकागिरिर व्यक्तित्वर आभास, पृ० १५
३०, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी-हिन्दी साहित्य -बीसवीं शताब्दी, पृ० ६५१
~~३१, डा० रामलाल सिंह- कामायनी अनुशीलन, पृ० १६१ ।~~

युग के समाज द्वारा ही निर्मित होता है ।[३१] साथ ही जहाँ अशक्त कवि प्रभाव रूप में युग की विचार-धाराओं का दास होता है वहाँ समर्थ कवि युग की समस्याओं का चित्रण ही नहीं, उनका सुलझाव भी उपस्थित करता है । वह युग की विचार-धाराओं का निरूपण ही नहीं करता, प्रत्युत उनका उपयोगी तथा अनुपयोगी स्वरूप भी बताता चलता है । इस दृष्टि से युगीन समाज का समग्र चित्रण प्रस्तुत करने वाले कवि निराला और राय चौधुरी को सशक्त युग-स्रष्टा कहा जा सकता है । आधुनिकता के सन्दर्भ में अपनी सम-सामयिकता के प्रति दोनों का गम्भीर दायित्व-बोध उनको युग-स्रष्टा घोषित करता है । युगीन व्यष्टि-समष्टि तथा आत्म सजगता की दशा को सूचित करने वाली उनकी कृतियाँ वर्तमान युग-सन्दर्भों के प्रति पूरी एकाग्रता और सजगता विद्यमान हैं । वास्तविक आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में युगीन-जीवन मूल्यों और प्रकारान्तर से सामयिक जीवन-सन्दर्भों में चलने वाली जीवन-प्रक्रिया को वाणी प्रदान करने वाले दोनों कवि अतीत के गौरव मंडित वातावरण के प्रति उतने ही सजग हैं जितने जीवित भविष्य के निर्माण के प्रति । इस कारण उन दोनों कवियों को, सांस्कृतिक उन्मेष से सम्पन्न और भविष्य के सम्बन्ध में आशावादी युग-स्रष्टा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं । साथ ही यह भी स्वीकार करना है कि दोनों कवियों का युग-दर्शन अतीत कालीन भारतीय संस्कृति के पुनरावलोकन के कारण भावना सम्बन्धी आशा और आस्था से मंडित हैं । इसी कारण दोनों कवि उस मानवतावाद पर विश्वास करते हैं जो राष्ट्र, जाति, धर्म और ऐसी ही अन्य सीमाओं का अतिक्रमण करते हुये एक ऐसी नैतिक व्यवस्था और एक ऐसे मानव मूल्य पर विश्वास करता हो जो मानव मात्र के भौतिक और सांस्कृतिक विकास के लिये अपेक्षित है । निराला और राय चौधुरी ने युगीन आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में समस्त मानव जाति के अधिकारों के प्रति समान रूप से आस्था व्यक्त की है । युगीन

---

३१. डा० रामलाल सिंह- कामायनी अनुशीलन, पृ० १६१

मानव - जीवन के यथार्थ को अतीत-जीवन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में देखकर उसे अभिव्यंजना देने वाले निराला और राय चौधुरी के युग द्रष्टा रूप को उनकी कृतियों में आद्यन्त देखा जा सकता है ।

दोनों कवियों के युग-सृजन का दर्शन मूलत: समान है । जीवन में भौतिक तत्वों के विकास को, साथ ही तज्जनित विश्वव्यापी सम्बन्धों को देखकर दोनों चाहते हैं कि भौतिक और आध्यात्मिक संस्कृति की समरसता हो । निराला और राय चौधरी के युग-सृजन को मानवीयता से संवलित विशिष्ट युग-बोध के रूप में स्वीकार किया जा सकता है ।

द्वितीय विश्व-युद्ध और उसकी प्रतिक्रियाओं से सारा विश्व, विशेष-कर भारत प्रभावित था । शिक्षा, औद्योगिक उन्नति, फल स्वरूप मालिक-मजदूर का संघर्ष, भौतिक संस्कृति के प्रति मोह, साथ ही राष्ट्रीयता का प्रसार, गांधी जी के सर्वोदय का प्रचार आदि से भारत में एक ओर विषमताओं की वृद्धि पाई गई और दूसरी ओर गतानुगतिकता के प्रति विद्रोह के साथ जन-जीवन के सांस्कृतिक उत्थान का मार्ग भी खुलता गया । अत: दोनों पर उन समग्र सम-सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । निराला और राय चौधुरी दोनों कवियों ने रूढ़ियों को ठुकराया, सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अंधविश्वासों का खण्डन किया, साथ ही एक अभिनव भविष्य की कल्पना की । भौतिक जीवन में आध्यात्मिक सत्य का प्रकाशविकीर्ण करने का प्रयास किया । इसी कारण दोनों को युग-स्रष्टा तथा युग-प्रवर्तक कलाकार के रूप में ग्रहण किया जाता है । दोनों मानवतावादी और अध्यात्मवादी कवि थे । युग-जीवन के प्रति दोनों की उन्मुक्त और स्वच्छन्द दृष्टि थी । युग-जीवन मूल्यों को आत्म-बोध द्वारा ग्रहण कर मानव-जाति को रस-वर्णन द्वारा संसिक्त करने की कामना दोनों कवियों के जीवन-दर्शन के मूल

में विद्यमान है । दोनों कवियों के द्वारा प्रदत्त युग - सन्देश में दार्शनिकता और मानवीयता की युगानुकूल प्रवृत्तियां उपलब्ध होती हैं । राष्ट्रीय चेतना के जागरण, राष्ट्रीय संस्कृति के पुन: उत्थान की कामना, मानवतावादी स्वर की अनुगूंज, सामाजिक अनुभूतियों की ईमानदारी आदि निराला और राय चौधुरी के युग-सन्देशों के निश्चित प्रतिमान हैं । उनके सन्देश मुक्त चेतना में विश्वास करते हैं और इसी कारण उनमें सामाजिक यथार्थ का स्वच्छ रूप पाया जाता है और साथ ही उनमें मानव की अशेष संभावनाओं का प्रतिफलन है और जीवन की समग्रता और संपूर्णता की भूमिका भी है । युग प्रवर्तक निराला और राय चौधुरी के युग दर्शन और युग-सन्देश में जीवन के वर्तमान अग्राह्य चरण को स्वानुभूमि के आधार पर प्रकाश में लाने और द्रुततर बनाने की प्रक्रिया के साथ सांस्कृतिक दृष्टि से आलोकपूर्ण जीवन के आगामी चरण को रूपायित करने की सक्षम प्रक्रिया भी विद्यमान है ।

---

## अध्याय - ७

## उपसंहार

उत्तरी भारत के हिन्दी-कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुदूर उत्तर-पूर्व भारत के असमीया कवि अम्बिकागिरि राय चौधुरी के काव्यों में निहित सभी पक्षों का इसके पूर्व अध्यायों में विस्तार से तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उन अध्यायों में विविध प्रकार की काव्य-प्रवृत्तियों का पृथक्-पृथक् अनुशीलन और तत्पश्चात् तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अत: यहाँ पूर्व विवेचित तथ्यों को दोहराने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हिन्दी और असमीया कवि निराला और राय चौधुरी मूल में विद्यमान एकता को उनकी समग्रता के भीतर से प्रस्तुत करना ही इस अध्याय का प्रमुख विषय है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की समान परिस्थितियों ने इन दोनों की प्रवृत्तियों को समान रूप प्रदान किया था जिनका विवेचन आरंभ के अध्यायों में किया गया है।

सामाजिक जीवन-परिस्थितियों से अनुप्राणित और उदात्त आध्यात्मिक दर्शन की नव-प्रतिष्ठा की कामना से सम्बन्धित राष्ट्रीय चेतना के कवि निराला और राय चौधुरी की कृतियों की पृष्ठभूमि मानवीय, राजनीतिक और सांस्कृतिक हैं। दोनों जीवन-द्रष्टा और युग-प्रवर्तक थे। उनमें सहज और स्वाभाविक चेतना विद्यमान थी। नाममात्र के लिये भी पराजित और पीड़ित आत्मग्लानि अर्थात् संस्कार च्युत भावना उनमें नहीं थी। इसी कारण उनकी कृतियों में आदि से अन्त तक बद्धमूल आस्थावादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। दोनों के स्वर में शक्ति थी और सौन्दर्य-बोध में मर्यादित गम्भीरता

विद्यमान थी । निराला और राय चौधुरी भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवि होने पर भी प्रवृत्तियों से बहुत समान ही थे । दोनों कवि समान रूप से मानवीय संस्कृति पर आस्था रखते हुये जीवन की विकासोन्मुख प्रवृत्तियों को पहचान कर सामाजिक चेतना के संस्पर्श के साथ संक्रान्तियुगीन आधुनिक मानव की विस्थापित चेतना के अस्तित्व बोध के अनेक नवीन स्तर पर पुन: स्थापित करते हुये नवीन जटिल सन्दर्भों में संस्कृति प्राण मूल्यों के निर्माण में अपनी कृति-कर्तव्यता का अनुभव कर विश्व-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाले शताब्दी के कवि थे । यही कारण है कि दोनों के काव्यों में सुन्दर और उदात्त भावजगत् के दर्शन होते हैं और आद्यन्त एक क्रान्ति का स्वर भी अनुस्यूत रहता है । निराला और राय चौधुरी की एक बहुत बड़ी समान विशेषता यह है कि दोनों में ऐकान्तिक विपर्यय-बोध का सर्वथा अभाव है । दोनों ने जीवन की बहुविध भूमियों की समग्रता के अन्तरंग में प्रवेश कर जीवन और जगत् के शाश्वत सत्य का आकलन किया है । कर्म और विचार से संयुक्त जीवन-उन्मेष को नवीन सन्दर्भ प्रस्तुत किया है । दोनों का स्वर, मानवीय स्वर, संवेदना मानवीय-संवेदना, भावस्तर मानवीय भावस्तर रहा है अर्थात् उनमें जीवन का सच्चा और सामग्रिक साक्षात्कार है । दोनों विद्रोही कवि थे , राष्ट्रीय,सामाजिक, वैयक्तिक और साहित्य भूमिकाओं में अभिव्यक्त उनका विद्रोह, उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति नये भाव-बोध का परिचायक है, विवेक सापेक्ष अनुभूति की गंभीरता का द्योतक है और यथार्थ की जागरूकता में उसकी अन्तरंग प्रकृति को ग्रहण करने के साहस का प्रतिपादक है । एक ओर "हेर प्यारे को सेज पास, नम्र-मुखी हँसी - खिलि"[१] "जुही की कली" के सुन्दर प्रेम और उसकी तृप्ति में परिणति के चित्रण द्वारा

---

१. निराला- परिमल, जुही की कली, पृ० १७२

अद्वैत का कलात्मक चित्र निराला जी प्रस्तुत करते हैं और राय चौधुरी भी जीवन के भौतिक रंग से रंजित मार्मिक और स्वच्छन्द प्रेम का 'तृप्ति' में मधुर रूप प्रस्तुत करते हुये द्वयता में परिणत होने का सुमधुर चित्र खींचते हैं ।

निराला जी अपनी 'जुही की कली' 'शैफालिका' , जागृति में सुप्ति थी' जैसी रचनाओं में व्यापक और गम्भीर दार्शनिक विचारों की भूमिका में भावना और कल्पना के माध्यम से प्रकृति का आधार लेकर कला का शृंगार करते हैं अर्थात् ज्ञानमूलक अद्वैत को काव्य का विषय बनाते हैं तो दूसरी ओर पतनग्रस्त राष्ट्रीय जीवन की हतोत्साहित मानसिक स्थिति को नैतिकतापूर्ण पावन आत्मशक्ति प्रदान करने की निष्ठा से अनुप्राणित निराला और राय चौधुरी राष्ट्रीय भौतिक जीवन का व्यंग्यपूर्ण, चुम्बनशील, साथ ही प्रवेग और विदग्धता से पूर्ण चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। निराला जी 'जागो फिर एक बार' , 'बादल राग, 'तुलसीदास , महाराज शिवाजी का पत्र और राय चौधुरी राष्ट्रीय गीत, कविता और प्रगीत आदि राष्ट्रीय सांस्कृतिक रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण के लिये आवश्यक उद्बोधन की घोषणा करते हैं । निराला और राय चौधुरी की समस्त कृतियों में भारतीय अध्यात्मवाद और राष्ट्रीय सांस्कृतिक उन्नयन की भावना, आत्मविश्वास और आत्मगौरव के दृढ़मूल संस्कारों और उत्कृष्ट अद्वैत और उदात्ततम मानवीयता की अप्रतिम अन्विति विद्यमान है । पराधीन राष्ट्र के मानव-हृदय की स्वच्छन्द पुकार और मानवमन की मुक्ति की कामना इन दोनों युग प्रतिनिधि कवियों की कृतियों में अन्यान्य शैलियों और काव्य रूपों में मुखरित होती है ।

रागात्मक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली विशुद्ध मानवीय भावनाओं के कवि निराला और राय चौधुरी के काव्य-स्वर में समान रूप से शक्ति -शिल्प में सन्तुलन और सौन्दर्य - बोध में पर्याप्त गांभीर्य विद्यमान है । दोनों के काव्यों में भविष्य के उन्नयन के कारण जहां उनका त्यागमय नि:स्वार्थ

व्यक्तित्व श्रद्धा और आदर्श का विषय रहा है वहाँ उनकी समष्टिगत भावना का ओजस्वी समारोह और सांस्कृतिक वैभव की दीप्ति युगीन साहित्य-जगत् में नवीन उद्भावना या प्रयोग रहा है, दोनों के काव्यों का संवेदनों संगठन, प्रगीतों का अपार स्वातंत्र्य, गीतों का सामाजिक स्वर और मर्मस्पर्शी संवेदनों और गंभीरतम दार्शनिक विचारों की संग्रथित अन्विति, रचनाओं की गीतात्मक भंगिमायें अद्वैत साधना की काव्यगत सुषमा और व्यवस्थित भाव, बंधों के मध्य से उत्कर्षमय अन्तर्जीवन का निर्माण क्रियाशील नव्य वेदना की नयी भूमिका में बाह्य और आन्तरिक और व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय उन्मुक्ति की साधना, सामाजिक व्यक्तिगत तथा अध्यात्म जीवन-चेतना, जीवन-संपृक्त आध्यात्मिक संस्कृति की स्वीकृति, विद्रोह की भूमिका में नये सांस्कृतिक स्वप्न, कल्पना की भास्वरता और गीत-प्रगीतों की सार्वजनिक भूमिका, ये कुछ ऐसे महान् तत्व हैं जो इन दोनों कवियों में भाषा, प्रान्त आदि का अन्तर रहने पर भी अभूतपूर्व साम्य स्थापित करते हैं। मानव-जगत् की सम्भावनाओं का समाकलन करने वाले निराला जी के 'तुलसीदास' 'सरोज स्मृति' और राय चौधुरी के काव्य 'तुमि', 'वेदना विजय' जैसी कृतियों में विद्यमान उनके जीवनानुभव की वास्तविकता, गांभीर्य और तटस्थता एवं निर्वैयक्तिकता का उत्कर्ष उनके काव्यों में शाश्वत प्रतिमान है। उन दोनों की रचनाओं में विविध भावभूमियों का परिदर्शन होता है। राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और वैचारिक सबलता का निदर्शन है, भक्ति तथा वेदान्त की स्वच्छन्दता एवं औदात्य है, आस्थावान् जीवन का पाथेय है, जागरूक जीवन के व्यक्ति से लेकर विश्व तक परिव्याप्त नाना सोपानों पर चलने वाले अन्वेषण तथा प्रयोग है, बौद्धिक और रागात्मक चेतनाओं के समन्वय से निःसृत जीवन का एक नवीन स्तर है और संक्षेप में सांस्कृतिक अनुचिन्तन की विकासमूलक प्रक्रिया से समन्वित रागात्मक अभिव्यक्ति का सुगठित रूप है।

निराला जी और राय चौधुरी हिन्दी और असमीया साहित्य के ऐसे विद्रोही, स्वच्छन्दतावादी और आध्यात्मवादी कवि हुये हैं, जो लोक-जीवन की चेतना और स्फूर्ति से शोभामय हैं और जिन्होंने अपनी भाषा के काव्य साहित्य की मंथर गति को नयी चेतना और उत्थान की नवीन दिशा प्रदान की है, जिसको आदर्श बनाकर हिन्दी और असमीया के अनेक साहित्य-कार अग्रसर हुये हैं और भविष्य में होंगे।

आधुनिक हिन्दी और असमीया साहित्य में निराला और राय चौधुरी ऐसे कवि हुये हैं जिनमें विविधता है, विरोधाभासों का समाहार है और अनेका-त्मक धरातलों का सामंजस्य है किन्तु यह विविधता विशालतर एकता में अनु-स्यूत होकर युग की समग्रतापूर्वक चेतना का प्रतिनिधि उनको घोषित करती है। दोनों कवियों की कृतियों में प्राचीन गलित रूढ़ियों के प्रति विद्रोह है, अपने विशृंखल परिवेश से असन्तोष है, आदर्शमय विचारों के साथ प्रकृति प्रेम और मानवीय प्रेमानुभूति का औदात्य है, उच्च नैतिक आदर्श, राष्ट्र भक्ति और व्यक्ति-स्वाधीनता का संप्रसारण है, भौतिकता और आध्यात्मिकता का सुन्दर तथा संतुलित सामंजस्य है। लौकिकता का आभास होने पर भी ज्योतिसागर के प्रकाश का प्रसार है और ज्ञान एवं भक्ति का, बुद्धि और भावुकता का तथा दार्शनिकता और सौन्दर्य की साधना का विरोधाभास मूलक तत्वों का एकत्र समाहार हुआ है। दोनों कवियों ने काव्य के रूप विन्यास को भी पुरातन संकुचित रूढ़ियों से मुक्त करके नयी-नयी अभिव्यंजना का सृजन करने का साहस किया है। भाव-व्यंजना और भाव-चित्रण की कलापूर्ण प्रक्रियाओं के नये-नये प्रयोग किये हैं। गेय गीतों, गीति काव्यों, प्रगीतों आदि की रचना और लय-ताल-भाव में बंधे नवीन छन्दों विशेषकर स्वच्छन्द छन्द का सुन्दर निर्माण कर रूप-विन्यास में उल्लेखनीय नवीनता लाये हैं। दोनों कवियों ने अपने जीवन और व्यक्ति के संघर्षों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक धार्मिक और नैतिक क्षेत्रों में भी अनेक विरोधों सामना करते हुये अपने चारों

और विच्छिन्न वातावरण के नव निर्माण के कार्य में कटिबद्ध रहे हैं । यही कारण था कि दोनों कवियों को अपनी विद्रोहात्मकता, परम्परा मुक्ति-घोषणा, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति, सुधार भावना, परम्परा विहित नवीन छन्दों और अभिव्यंजना प्रणालियों का सृजन आदि के कारण चारों दिशाओं से संघर्षों और विरोधों का सामना करना पड़ा । किन्तु उनका व्यक्तित्व और आत्मबल इतना सशक्त तथा उदात्त था कि समस्त बाह्य-संघर्षों को स्वयं मार्ग से हट जाना पड़ा और एक सुन्दर और चेतन परम्परा का निर्माण भी हो सका जिसका पालन हिन्दी और असमीया के अन्यान्य कवि करते आ रहे हैं । इस तुलनात्मक विवेचन के फलस्वरूप यह कहा जा सकता है कि निराला और राय चौधुरी के व्यक्तित्व और प्रतिभा की विराट् बहुमुखता और गहन गम्भीरता उनकी नि:संगता और तटस्थ निर्वैयक्तिकता की परिचायिका है । समस्त पीड़ाओं से कुंठित विश्व पर और उसके संवेदनमय स्पन्दनों पर अमृत की रस धारा बहाने वाले महान् व्यक्तित्व के प्रतीक निराला और राय चौधुरी को समान रूप से महानतम ब्रह्मज्ञानी, अद्वैती, विशुद्ध रुचि के कवि, आस्था और निष्ठा के तत्वों से सम्बन्धित राष्ट्रीय जीवन के प्रति-निधित्व कवि और गंभीर मानवतावादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित जीवन द्रष्टा, सांस्कृतिक कलाकार घोषित करना सर्वथा समीचीन है ।

अपने जीवन में राष्ट्र के चारों ओर राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में व्याप्त विभीषिकाओं, असन्तोष, निराशा, शोषण आदि विकृतियों और वैषम्य की विद्रूपता आदि से प्रभावित होकर निराला और राय चौधुरी ने अपनी करुणा और वेदना को काव्यों द्वारा अभिव्यक्त किया है और जीवन-मूल्यों के अन्त: संस्कारों को प्रतिपादित किया है और व्यष्टि एवं समष्टि के कल्याण की अभ्यर्थना भी की है । दोनों कवियों के जीवन पथ पर प्रत्यक्ष परोक्ष अनेकानेक बाधायें और व्यवधान उपस्थित हुये जिनसे वे विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के कारण साहस के साथ जूझे और तब जीवन में

सत्यं-शिवं-सुन्दरं की स्थापना करने वाले अमृतत्व तथा अखण्डित मानवीय सत्य को अपनी काव्य-कृतियों द्वारा प्रतिष्ठित कर सके। दोनों कवियों की वैविध्य पूर्ण काव्य वृत्तियों की आधार भूमि समान है, उसे आस्था पूर्ण अद्वयवादी, निर्वैयक्तिक तटस्थ मानवतावादी और साधनाश्रित संवेदनापूर्ण विराट् चेतना की भूमिका कहा जा सकता है। भारतीय काव्य साधना के प्रगतिशील स्वरों के संवाहक, राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक प्रतिबद्धता के सशक्त और युगप्रवर्तक कवि निराला और राय चौधुरी का काव्य वर्तमान और अनागत पीढ़ियों के मानस में भी जीवन के नव निर्माण का स्वर फूंकता रहे- यही हमारी आन्तरिक कामना है।

---

## सहायक ग्रन्थानुक्रमणिका

निराला विषयक :–

१. निराला के काव्य :–


१. अनामिका ( प्रथम ) - नवजादिक लाल श्रीवास्तव, २३, शंकर घोष लेन, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, १९२३ ई०

२. अनामिका (नवीन) - पाँचवाँ संस्करण, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, १९५९ ई०

३. अणिमा - नवीन संस्करण, लोक भारती प्रकाशन, १५ ए महात्मा गाँधीमार्ग इलाहाबाद, १९७१

४. अपरा - दसवाँ संस्करण, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९७२

५. अर्चना - पुनमुद्रण, वही -------------------------------, १९७२

६. आराधना - द्वितीय संस्करण, लोक भारतीय प्रकाशन, १५- ए महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, १९६९ ई०

७. कुकुर मुत्ता - नया संस्करण, लोक भारती प्रका० १५ ए महात्मागाँधी मार्ग, इलाहाबाद, १९६६ ई०

८. गीत गुंज - तृतीय संस्करण, वसुमती, ३८ जीरो रोड, इलाहाबाद, १९७०

९. गीतिका - सप्तम संस्करण, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२६ वि०

१०. तुलसीदास - दसवाँ संस्करण, वही ---------------, १९७२

११. नये-पत्ते - प्रथम संस्करण, वही, -----------------, १९७३

१२. परिमल - सप्तमावृत्ति, श्री दुलारेलाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, १९७२

१३. बेला - निरुपमा प्रकाशन, ५० - शहदारा बाग, प्रयाग, १६४३
१४. सांध्य काकली - प्रथम संस्करण, वसुमती, ३८ जीरोरोड , इलाहाबाद ,
१६६६ ईसवी

हिन्दी सहायक ग्रन्थ :-

१. अलंकार मंजूषा - लाला भगवान दीन ।
२. आधुनिक काव्य, कला और दर्शन - डा० राममूर्ति त्रिपाठी ।
३. आधुनिक काव्य धारा - डा० केशनरीनारायण शुक्ल ।
४. आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत - वही ।
५. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा० लक्ष्मीसागर वाष्र्णेय ।
६. आधुनिक हिन्दी साहित्य, वही ---------------- ।
७. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - डा० कृष्णालाल ।
८. आधुनिक साहित्य - डा० नन्ददुलारे वाजपेयी ।
६. आधुनिक काव्य - रचना और विचार - डा० नन्ददुलारे वाजपेयी ।
१०. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डा० नगेन्द्र ।
११. आधुनिक हिन्दी कविता- सिद्धान्त और समीक्षा- डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
१२. आधुनिक हिन्दी की कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - डा० जगदीशनारायण, त्रिपाठी
१३. आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार - विधान , वही -------------- ।
१४. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ- डा० नामवर सिंह ।
१५. आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद - डा० विश्वनाथ गौड़ ।
१६. आलोचना के सिद्धान्त - शिवदान सिंह चौहान ।
१७. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना - डा० पुत्तुलाल शुक्ल ।
१८. आधुनिक कविता में युग-दृष्टि- शिवकुमार मिश्र ।
१६. आधुनिक कविता का मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान ।
२०. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ - प्रेम प्रकाश गौतम ।

२१. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ - मोहनवल्लभ पन्त ।

२२. आधुनिक कविता की भाषा - भाग १,२, - बृज किशोर चतुर्वेदी ।

२३. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य - हुकुमचन्द्र राजपाल ।

२४. आधुनिक खड़ी बोली कविता की प्रगति - कृष्णदेव प्रसाद ।

२५. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - इन्द्रनाथ मदान ।

२६. आधुनिकता के पहलू- विपिन कुमार अग्रवाल ।

२७. आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य- बरसाने लाल चतुर्वेदी ।

२८. आधुनिक हिन्दी कवि-डा० नागेन्द्र ।

२९. आधुनिक हिन्दी कवि - डा० नागेन्द्र ।

३०. आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा- त्रिभुवन सिंह ।

३१. आधुनिक हिन्दी कविता- प्रमुखवाद-जयकिशनप्रसाद ।

३२. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब योजना- केदारनाथ सिंह ।

३३. आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना-सुधाकर शंकर कलवड़े ।

३४. आधुनिक हिन्दी कविताओं का सामाजिक दर्शन- प्रेमचन्द्र विजयवर्गीय ।

३५. आधुनिक हिन्दी काव्य का अरविन्द दर्शन- का प्रभाव - कृष्णा-शारदा ।

३६. आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान- नरेन्द्र मोहन ।

३७. आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति की विचारधारायें - उर्मिला जैन ।

३८. आधुनिक हिन्दी गीत काव्य का स्वरूप और विकास-आशा किशोर ।

३९. आधुनिक हिन्दी में चित्र-विधान- राम यतन सिंह ।

४०. आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि- कृष्णलाल शर्मा ।

४१. आधुनिक कविता में गीत तत्व- सच्चिदानन्द तिवारी ।

४२. आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली- रांगेय राघव ।

४३. आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ - करुणापति त्रिपाठी ।

४४. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद- चन्द्रकला ।

४५. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान - नित्यानन्द शर्मा ।

४६. आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग - गोपालदत्त सारस्वत
४७. आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद-परशुराम शुक्ल ।
४८. आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद - विश्वनाथ गौड़ ।
४६. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधायें - निर्मल जैन ।
५०. आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और नवीनता- डा० ई० चैलिशैव (रूसी)
५१. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प- डा० कैलाश वाजपेयी ।
५२. आधुनिक हिन्दी : काव्य-शिल्प- डा० मोहन अवस्थी ।
५३. एक व्यक्ति एक युग- नागार्जुन ।
५४. कबीर ग्रन्थावली - डा० पारसनाथ तिवारी ।
५५. कविता कौमुदी- भाग १- रामनरेश त्रिपाठी ।
५६. कबीर ग्रन्थावली-श्यामसुन्दर दास ।
५७. कबीर की विचारधारा - डा० गोविन्द त्रिगुणायत ।
५८. कविता के नये प्रतिमान- डा० नामवर सिंह ।
५६. कवि निराला - एक अध्ययन- डा० रामरतन भटनागर ।
६०. कवि निराला और उनका साहित्य - गिरीशचन्द्र तिवारी ।
६१. कविता में प्रगति और प्रयोग की समस्या- शिवदान सिंह चौहान ।
६२. कामायनी : कला और दर्शन - डा० राममूर्ति त्रिपाठी ।
६३. कामायनी - जयशंकरप्रसाद ।
६४. कामायनी अनुशीलन- डा० रामलाल सिंह ।
६५. कामायनी और काश्मीरी शैव दर्शन - जगदीशचन्द्र जोशी ।
६६. काव्य का देवता निराला- विश्वम्भर मानव ।
६७. काव्य की रागात्मकता और बौद्धिक प्रयोग- डा० नगेन्द्र ।
६८. काश्मीर सुषमा- श्रीधर पाठक ।
६६. क्रान्तिकारी कवि निराला - डा० बच्चन सिंह ।
७०. गीता रहस्य- बाल गंगाधर तिलक, अनु० -माधवराव जी सप्रे ।

७१. छायावाद - डा० नामवर सिंह ।
७२. छायावाद :स्वरूप और व्याख्या - राजेश्वरदयाल सक्सैना ।
७३. छन्द प्रभाकर- जगन्नाथ प्रसाद'भानु' ।
७४. छायावाद और प्रगतिवाद - देवेन्द्रनाथ शर्मा ।
७५. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन- कुमार विमल ।
७६. छायावाद काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना- रवीन्द्रनाथ दरगन ।
७७. छायावाद काव्य में लोक-मंगल की भावना - अम्बादत्त पाण्डेय ।
७८. छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि- सुषमा पाल ।
७९. छायावाद पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानन्दन पन्त ।
८०. छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण - प्रमोद सिनहा ।
८१. छायावाद और निराला - शान्ति श्रीवास्तव ।
८२. दूसरा सप्तक (सं०) - सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन'अज्ञेय' ।
८३. नया हिन्दी काव्य- डा० शिवकुमार मिश्र ।
८४. नयी कविता और उसका मूल्यांकन - सुरेश चन्द्र सहगल ।
८५. नया हिन्दी काव्य - डा० शिवकुमार मिश्र ।
८६. नयी कविता के प्रतिमान-लक्ष्मीकान्त वर्मा ।
८७. निराला : आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह ।
८८. निराला की साहित्य साधना - भाग १,२ - डा० रामविलास शर्मा ।
८९. निराला -----------------------------वही ।
९०. निराला : काव्य और व्यक्तित्व- धनंजय वर्मा ।
९१. निराला का परवर्ती काव्य-रमेशचन्द्र मेहरा ।
९२. निराला के काव्य : बिम्ब और प्रतीक - देवव्रत शर्मा ।
९३. निराला का साहित्य और साधना - डा० विश्वंभर नाथ उपाध्याय ।
९४. निराला काव्य का अभिव्यंजना - शिल्प- जनार्दन द्विवेदी ।
९५. निराला काव्य का अध्ययन - भगीरथ मिश्र ।

९६. निराला और नव जागरण - रामरतन भटनागर ।
९७. निराला और उनका काव्य - गंगाप्रसाद पाण्डेय ।
९८. निराला : एक झलक- प्रेमनारायण टण्डन ।
९९. निराला साहित्य ( तीन खण्डों में ) प्रकाशन केन्द्र अमीनाबाद,लखनऊ ।
१००. निराला : काव्य समीक्षा, डा० पद्मसिंह शर्मा ।
१०१ - पल्लव - सुमित्रानन्दन पन्त ।
१०२ - पथ के साथी - महादेवी वर्मा ।
१०३. प्रतिष्ठान - शान्तिप्रिय द्विवेदी ।
१०४. प्रगति और परम्परा - डा० रामविलास शर्मा ।
१०५. प्रसाद एवं पन्त का तुलनात्मक विवेचन - रामराजपाल द्विवेदी ।
१०६. भारतेन्दु नाटकावली- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सं०) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ।
१०७. भारत-भारती- मैथिलीशरण गुप्त ।
१०८. भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास - डा० देवराज उपाध्याय ।
१०९. भारतेन्दु युग - डा० रामविलास शर्मा ।
११०. बृहत् हिन्दी कोश - ज्ञानमंडल लिमिटेड ।
१११. मन की लहर- प्रतापनारायण मिश्र
११२. मन की उमंग- अम्बिकादत्त व्यास ।
११३. महाकवि निराला : काव्य-कला और कृतियाँ - डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ।
११४. महाप्राण निराला- गंगाप्रसाद पाण्डेय ।
११५. महाकवि निराला का निराला पन- उमाशंकर सिंह ।
११६. महाकवि निराला- व्यक्तित्व और कृतित्व ( सं०) डा० प्रेमनारायण टण्डन ।
११७. महाकवि निराला- चन्द्रप्रकाश सिंह ।
११८. महाकवि निराला- विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ।
११९. महाकवि निराला - जानकी वल्लभ शास्त्री ।
१२०. महाकवि निराला कृत तुलसीदास-जगदीशचन्द्र जोशी ।
१२१. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डा० उदयभानु सिंह ।

१२२. मनोविनोद - श्रीधर पाठक ।
१२३. यथार्थवाद और छायावाद - काव्य और कला - यशंकर प्रसाद ।
१२४. रामचरित मानस- गोस्वामी तुलसीदास ,मोतीलाल जालान ।
१२५. रोमान्टिक साहित्य शास्त्र - डा० देवराज उपाध्याय ।
१२६. लोकोक्ति शतक- प्रतापनारायण मिश्र ।
१२७. वाङ्मय विमर्श - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।
१२८. विवेकानन्द चरित - सत्येन्द्रनाथ मजूमदार ।
१२६. सत्यार्थप्रकाश - स्वामी विवेकानन्द ।
१३०. साहित्य रूप- डा० रामअवध द्विवेदी ।
१३१. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर ।
१३२. साहित्य का साथी - आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
१३३. साहित्य दर्शन - जानकी वल्लभ शास्त्री ।
१३४. स्वप्न - रामनरेश त्रिपाठी ।
१३५. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ।
१३६. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
१३७. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि- डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय ।
१३८. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - डा० नन्ददुलारे वाजपेयी ।
१३६. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण - डा० किरणकुमारी गुप्ता ।
१४०. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक- डा० दशरथ सिंह ।
१४१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास- डा० शंभूनाथ सिंह ।
१४२. हिन्दी साहित्य कोश-भाग १,२,ज्ञानमंडल लिमिटेड ।
१४३. हिन्दी काव्य और अरविन्द दर्शन- प्रतापसिंह चौहान ।
१४४. हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि- रामरतन भटनागर ।
१४५. हिन्दी कविता में युगान्तर- डा० सुधीन्द्र ।
१४६. हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना- विधानाथ गुप्त ।
१४७. हिन्दी काव्य में और प्रयोगवाद - रामकुमार खंडेवाल ।
१४८. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य - डा० रामविलास शर्मा ।

१४६. हिन्दी काव्य में छायावाद - दीनानाथ शरण ।
१५०. हिन्दी काव्य में नियतिवाद- रामगोपाल शर्मा ।
१५१. हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास - वीरेन्द्र सिंह ।
१५२. हिन्दी काव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ - ब्रजमोहन गुप्त ।
१५३. हिन्दी काव्य विश्लेषण और मूल्यांकन -डा० केसरीनारायण शुक्ल ।
१५४. हिन्दी की छायावादी कविता की कला- बलवीर सिंह ।
१५५. हिन्दी की नयी कविता - नरायण कुट्टि ।
१५६. हिन्दी की प्रगतिशील कवितायें और उनके प्रेरणा-स्रोत-रामनागर ।
१५७. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - रणजीत ।
१५८. हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा - लक्ष्मीनारायण दुबे ।
१५९. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य-गोविन्दराम शर्मा ।
१६०. हिन्दी के आधुनिक कवि - रवीन्द्र भ्रमर ।
१६१. हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास - जितेन्द्रनाथ पाठक ।
१६२. हिन्दी वाङ्मय - बीसवीं शती - डा० नागेन्द्र ।
१६३. हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास - क्रान्तिकुमार शर्मा ।
१६४. हिन्दी भक्ति काव्य- रामरतन भटनागर ।
१६५. हिन्दी कविता का भविष्य - (सं०) सरस्वती, १९२० ई० ।
१६६. हिन्दी कविता का विकास (काव्य धारा) शिवदान सिंह चौहान ।
१६७. हिन्दी-असमीया शब्दकोश-असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ,गौहाटी ।

## २. राय चौधुरी विषयक

### (१) राय चौधुरी के काव्य :-

१. अनुभूति - द्वितीय संस्करण, गौहाटी, १९५४ ।

२. जयद्रथ बध - प्रथम संस्करण, गौहाटी, १९६१
३. तुमि- संस्करण, आत्म विकास भवन, गौहाटी, १९६२ ।
४. दैतेय भाबाम - प्रथम संस्करण, गौहाटी, १९६५
५. भक्त गौरव-अप्रकाशित ।
६. बन्दौं कि छन्दैरे - प्रथम संस्करण, गौहाटी, १९५८
७. बीणा- प्रथम संस्करण, डिब्रूगढ़ रेलवे प्रेस, १९१६
८. बैदनार उल्का-प्रथम संस्करण, गौहाटी, १९६४ ।
९. बेणु- अप्रकाशित ।
१०. स्थापन कर - स्थापन - कर - प्रथम संस्करण, गौहाटी, १९५८ ।

असमीया सहायक ग्रन्थ :-

१. असमीया साहित्यर इतिवृत्त - डा० सत्येन्द्र नाथ शर्मा ।
२. असमीया कवितार प्रवाह - नवदीप रंजन पाटगिरि ।
३. असमीया लोकगीत - लीला गगै ।
४. असमीया गीति साहित्य - डा० महेश्वर नै ओग ।
५. असमीया कवितार छन्द - महेन्द्र बरा ।
६. असमीया साहित्यर अध्ययन-डिम्बेश्वर नै ओग ।
७. अम्बिकागिरीर : व्यक्तित्वर आभास - उपेन्द्र बरकटकी ।
८. असमीया छन्द शिल्पर भूमिका- नवकांत बरुवा ।
९. असमीया कवितार काहिनी- भवानन्द दत्त ।

१०, असमीया साहित्यर विविध आलोचना - अब्दुल सत्तार ।
११, असमीया काव्य साहित्य - दीनेश्वर भट्टाचार्य ।
१२, अम्बिकागिरी आरु तेओंर जीवन दर्शन - तिलकदास ।
१३, अंबिकागिरी राय चौधुरी - असम प्रकाशन परिषद ।
१४, असमीया साहित्य और साहित्यकार (हिन्दी में )- चित्र महन्त ।
१५, असमीया पद्य बुरंजी - डा० सूर्यकुमार भुयाँ (सं० )
१६, असमीयार धलफाट - डा० विरिंचि कुमार बरुवा ।
१७, असमीया काव्यत प्रेमर बोवँती सुँति - अतुलचन्द्र बरुवा ।
१८, असमीया काहिनी काव्यर प्रवाह - डा० सत्येन्द्रनाथ शर्मा ।
१९, आधुनिक साहित्य - हैम बरुवा ।
२०, आधुनिक असमीया साहित्य - डा० महेश्वर नै ओग ।
२१, आहुति - अम्बिकागिरी राय चौधुरी ।
२२, काव्य आरु अभिव्यंजना - डा० विरिंचि कुमार बरुवा ।
२३, काव्य कथा - हितेश डेका ।
२४, डिम्बेश्वर नै ओग - असम प्रकाशन परिषद ।
२५, डेका - डेकैरीर वेद - अम्बिकागिरी राय चौधुरी ।
२६, पद्मनाथ गोहायिं बरुवा - असम प्रकाशन परिषद ।
२७, विंश शताब्दीर असमीया साहित्य - असम साहित्य सभा ।
२८, वेज बरुवार ग्रन्थावली - भाग १,२, असम प्रकाशन परिषद् ।
२९, रघुनाथ चौधुरी - असम प्रकाशन परिषद ।
३०, राय चौधुरीर जीवन संग्राम - आरति हाजरिका ।
३१, लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा - असम प्रकाशन परिषद ।
३२, विश्वनाथ कविराजर साहित्य दर्पण - विश्वनारायण शास्त्री ।
३३, साहित्य विधा परिक्रमा - तीर्थ नाथ शर्मा ।
३४, साहित्य तत्व - हरिमोहन दास ।
३५, साहित्य कला ( दो भाग ) नीलमणि फुकन ।

रामचरण ऐसी क्रियां करतु नागे ठौर
अब के अवसर चूकियो तो मूरख मति को जोर ।"[१]

स्वामी रामचरण ने मन की बड़ी विशद चर्चा अपने साहित्य में की है । निष्कर्षत: वे मन को अनन्त रूप, मायालिप्त, वायुवेग सदृश तीव्रगति, सागर की लहरों सदृश चंचल, स्वेच्छाचारी मंत्री आदि अनेक रूपों में देखते हैं और रामभजन द्वारा उसे नियंत्रित करने का उपदेश भी देते हैं । विजमन की कल्पना करके उन्होंने मन को अनुशासित करने की बात कही है । स्थान- स्थान पर उन्होंने मन को मनसा रहित होने का निर्देश भी दिया है । एकाध स्थान पर उन्होंने मन को 'पापी' भी कह डाला है । मन सद्गुरु के उपदेश से परिवर्तित भी होता है । इसलिए स्वामी जी ने मन को खण्डित करने की बात कही है । आत्मा व्याधि रहित है, व्याधि-रोग मन की उपाधियां हैं जिन्होंने ये उपाधियां छोड़ दी हैं वे शुद्ध स्वरूप हैं--

"आतम कूं नहीं व्याधि, व्याधि रोग मन मानिये ।
जिन ये तजी उपाधि, शुद्ध स्वरूप ते जाणिये ।"[२]

काल
---

स्वामी रामचरण ने काल को 'महा बलवन्त', 'महाप्रचण्ड' आदि विशेषणों से विभूषित किया है । संतों ने काल से बचने के लिए सदैव सचेत किया है । 'काल महाबलवंत मुख' है, जो इस संसार में उत्पन्न हुआ, काल के मुख में गया । केवल वे ही बचते हैं जो अविगत रस हरिजन हैं --

"काल महाबलवन्त मुख, उपज्या पड़ै सबै पड़ंल ।
रामचरण अविगतिरता, उबरै हरि का संत ।"[३]

पावक, तेल, दिया-बत्ती के दृष्टान्त द्वारा कवि काल की विनाशक शक्ति का वर्णन करता है । जैसे पावक, तेल को दिया-बत्ती की शैली द्वारा निगलता है

---

१- अ०वा०, पृ० ११९ ।
२- वही, पृ० ६८२ ।
३- वही, पृ० ३३ ।

ऐसे ही काल, मनुष्य को स्वार्थ-कर्म के माध्यम से निगल लेता है। जैसे जैसे बाती सरकती है तेल जलता है वैसे ही कर्म के विकास द्वारा मनुष्य अपने काल का ग्रास बनता है --

"पावक ग्रासै तेल कूं, दीवा बाती संग ।
काल गरासै आव नित, स्वारथ कर्मां संग ।
ज्यूं सरकावै कूं बाति कूं, त्यूं त्यूं तेल घटै ।
रामचरण बधतां कर्म, हंसि हंसि काल गिलै ।"[१]

काल की चक्की आठों याम चलती रहती है, इस चक्की में काल देव-मानव सभी को बिना नाम के परिचित हुए पीस डालता है --

"चक्की चालै काल की, निसि दिन आठूं जाम ।
सुर नर सबही पीसिया, रामचरण बिन नाम ।"[२]

इस 'काल महाबली' से ब्रह्मा भी डरते हैं तो फिर मानव की क्या बिसात है ?

"ब्रह्माण्ड डरपै काल सूं, तो नर की कितियक आव ।
रामचरण भज राम कूं, ज्यूं जम का लगै न दाव ।"[३]

केवल एक 'अकाल शब्द' ही भयरहित है, जिसे यह शब्द प्राप्त हो जाता है वह भय रहित हो जाता है। किन्तु यह मिलता किसे है ? उसे ही मिलता है जो भ्रम जंजाल से मुक्त हो जाता है। भ्रम जंजाल से मुक्त होने पर ही काल का भय मिट जाता है --

"काल तणां भै मिट गया, छूटा भर्म जंजाल ।
रामचरण निरभै भया, पाया शब्द अकाल ।"[४]

यह 'महाप्रचण्ड काल' किसी को नहीं छोड़ता, यह काल ही मृत्यु है। राजा, राणा, देवता सभी काल के वश में हैं। हजार या दस हजार वर्षों

---

१- अ०वा०, पृ० ३१ ।
२- वही, पृ० ३३ ।
३- वही ।
४- वही, पृ० ३१ ।

भक्षण करता है, जिससे कोई बच नहीं पाता --

"काल महा बलवन्त ममत की जाल पसारी ।
सुरनर आसुर और जीव सबहिन पर डारी ।
कहा वृद्ध अरु तरुण बाल की बाड़ न आवै ।
हेरि हेरि के खाय जिण्यां कहुं बचन न पावै ।"[१]

इसी आशय की पंक्तियां 'ममता निवारण' के नवम् प्रकरण में भी मिलती हैं --

"काल पसारी सृष्टि पर मोह ममत की जाल ।
जामें उलझया जीव सुधि, बिसर रामरिछपाल ।"[२]

'सुखविलास' में 'काल' शीर्षक के अन्तर्गत कवि संसारी जीवन को 'मेरी - मेरी' करते देखता है तभी काल आ पहुंचता है और उसे पकड़ ले जाता है ।

"मेरी मेरी करत ही आय पहुंचै काल ।
प्राण पकड़ ले जावतां कोइ न होय रिछपाल ।
कोई न होय रिछपाल खड़ा देखै सब रोवै ।
क्या आपणा क्या और किसी सूं जोर न होवै ।
रामचरण सत राम है और निकामी जान ।
मेरी मेरी करत ही, आय पहुंचै काल ।"[३]

इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी काल की कैद में हैं । अनेक सूक्ष्म एवं स्थूल तन-धारियों को काल नित्य मारता है । फिर भी अंधा मानव भौतिक कर्मों से दूर न होकर उसी के बन्धन में पड़ जाता है --

"काल सूं कूंण ब्रह्मण्ड में उबरै जीव जेता सबै जेर किया ।
सुक्षिम अरु थूल तन धार केता कहूं नित्य मारै अरु मार लीया ।

---

१- अ० वा०, पृ० ११८ ।
२- वही, पृ० ६२३ ।
३- वही, पृ० ४९७ ।

ताहू नर अंध कोउ पंथ लहै नहीं संध में परत लेगाम जूरा ।
पैल संसार का हवाल ताहू कहूं कोई घर रोज कोउ सजै तूरा ।"-१

महाप्रचण्ड काल के समक्ष संसार के सभी रिश्ते-नाते महत्त्वहीन हो जाते हैं । काल पिता के समक्ष पुत्र को धर दबाता है पर पिता का कोई जोर नहीं चलता, शिष्य को गुरु के सामने ही पकड़ लेता है पर गुरु बेबस देखता रहता है, खसम के सामने ही जोरू को खींच ले जाता है, स्वामी देखता रहता है और चाकर को पकड़ कर भाग जाता है । सुर, नर, असुर सभी उसका स्वर सुनकर कांप जाते हैं । केवल राम में लीन जन होनहार के बल से अभय होकर रहते हैं --

"काल दबावै पूत पिता को जोर न कोई ।
पकड़ै आय मुरीद पीर को नहीं बसाई ।
जोरू को लेजाय खसम को जोर न लागै ।
ठाकर देखत रहै पकड़ चाकर कूं भागै ।
सुर नर असुर हाकसूं सुणत आवाज धरहरै ।
रामचरण जन राम का होतब कैवल नां डरै ।"-२

काल की गर्जन से तीनों लोक धड़क उठता है ।[३] उसके कार्य-कलापों के समक्ष ब्रह्मा भी अधीर हो उठते हैं फिर उनकी सृष्टि का क्या ठिकाना जिसके वे मालिक हैं --

"काल गिलारै आय कै तब ब्रह्मा धरै न धीर ।
तो कुल सृष्टि की कहा चली जिनको ब्रह्मा मीर ।"-४

जैसे तीतर को बाज अचानक आकर दबा लेता है वैसे ही काल अचानक मनुष्य को दबाकर पकड़ लेता है और वह अवश कुछ नहीं कर पाता । सृष्टि के सभी साज पड़े रह जाते हैं ।[५] ग्रंथ 'समता निवास' में भी कवि इसी आशय से पूर्ण पंक्तियाँ

---

१- अ० वा०, पृ० ४१७ ।     २- वही, पृ० ४१८ ।
३- "काल गलारै गरज कै, धड़कै तीनूं लोक ।" ---- वही ।
४- वही ।
५- "काल दबावै आय कै, ज्यूं तीतर कूं बाज ।
सुरत पकड़ि ले जायगा, पड़्या रहै सब साज ।"
-- वही, पृ० ४१७ ।

लिखता है --

"काल पकड़ ले जायगा ज्यूं तीतर कूं बाज ।

रामचरण माया विषय पकृया रहै सब साज ।"[१]

स्वामी रामचरण ने सृष्टि एवं सृष्टिकर्ता दोनों को काल की प्रचण्डता के समक्ष नत, अवश एवं निर्बल पाया है । इस महाबली के समक्ष किसी का जोर नहीं चल पाता । यह समस्त ब्रह्माण्ड काल का भोजन है । इस काल से वही निर्भय रहता जो 'अकाल शब्द' पा जाता है । इसीलिए स्वामी जी पल-पल ममत्वहीन होकर राम को स्मरण करने का उपदेश देते हैं, इस महाप्रचण्ड योद्धा से बचने का यही एक-मेव उपाय है क्योंकि इससे धन का व्यय, औषधोपचार या तलवार की धार कोई नहीं बचा सकते । 'ममता निवास' नवम प्रकरण की निम्नलिखित पंक्तियां उपर्युक्त आशय की घोषणा है --

"काल महा परचण्ड सूं बचै न कोई विचार ।
धन खरचो भेषज करो भल पकड़ो तरवार ।
भल पकड़ो तरवार जोध सूं जोर न कोई ।
धड़की तीनूं लोक हरि ब्रह्मादिक सोई ।
तातै ममत न बांधिये पलपल राम संभार ।
काल महा परचण्ड सूं बचै न कोई विचार ।"[२]

मोक्ष

मोक्ष सामान्यतया मुक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है । डा० वासुदेव शर्मा लिखते हैं --"मुक्ति के संबंध में निम्नलिखित धारणाएं भारतीय समाज के मध्यकाल में प्रचलित थीं --

[१] आत्मपाश, आवागमन, आत्मसंताप और क्लेश का उच्छेद अथवा पूर्णनाश ही मुक्ति है, अत्यन्त क्लेशाभाव और क्लेशोच्छेद-स्वरूप ।

[२] मुक्ति भावात्मक, आनन्दस्वरूप एवं अमृतोपम ब्रह्मैकता है ।

---

१- अ०वा० पृ० ६२३ ।

२- वही ।

[३] मुक्ति अमरता है और जरा-जन्म-मरण के भय और दुश्चिन्ताओं से निवृत्ति। अत: जिसमें जीव अहंभाव से रहित होकर सब प्रकार के सुख-दुख, आशा-निराशा हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है उसे मोक्ष कहते हैं।"[१]

स्वामी रामचरण ने 'जीवन्मुक्ता को अंग' एवं सजीवण को अंग' में जीवन-मुक्ति पर विचार किया है। डाक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं कि -- 'इस जीवन में दु:खों से मुक्ति पा जाने वाला मनुष्य जीवन मुक्त कहलाता है। मुक्त पुरुष संसार के प्रपंचों से मुक्त रहता है।"[२] स्वामी रामचरण ने जीवन मुक्ति के संदर्भ में जनक को आदर्श माना है। ग्रंथ 'ममता निवारण' के प्रथम प्रकरण में वे लिखते हैं --

"घर बन जाण्यां एक रस जनक सरप गह ग्यान।
हर्ष शोक नृपराज संग सो बरत्यों नहीं अज्ञान।
सो बरत्यों नहीं अज्ञान कुल मरजे करि ऐसे।
अन्तर आशे अवास कमला जल जैसे।
रामचरण ले जीविका जग सुख लिपे न आन।
घर बन जांण्या एक रस जनक सरप गह ग्यान।"[३]

वस्तुत: इस भौतिक जाल में रहते हुए भी भौतिकता से अलिप्त रहना जीवन मुक्त का लक्षण है। अहंकार एवं ममता के बन्धन से सर्वथा मुक्त, शरीर सुख की साधना से विरत, शोकादि से परे, शत्रु-मित्र के प्रति समभाव रखना, जल में कमल सदृश संसार में रहना ही स्वामी जी के अनुसार मुक्त जीवन का आदर्श है।

"अहं ममत बांधे नहीं अरु तन सुख साधे नांहि।
प्रसाद पाय अलिप्त रहै ज्यूं कमला जल मांहि।

---

१- डा० वासुदेव शर्मा : संत कवि दादू और उनका पंथ, पृ० १३८।
२- डा० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय। अप्रकाशित शोध प्रबंध, गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रंथालय।
३- अ० वा०, पृ० ८३१।

ज्यूं कमला जल मांहि शीश शांगा में न्यारा ।
शत्रुमित्र सम गिणै ज्ञान लक्षलियां ज धारा ।
राम कहै समता वहै यु गुरुभक्ति सधि पांहि ।
ज्यूं ममत मांधे नहीं अरु तनसुख गाधे मांहि ।"[1]

जीवनमुक्त के विषय में लिखते हुए वे उनके लक्षणों की विवेचना निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं --

"राम भजे तजिकामना, अरि मैत्री चितवन जांणि ।
रामचरण गतवासना, सो जीवन मुक्त जांणि ।"[2]

स्वामी जी के अनुसार मोक्ष का साधन 'समता भजन' है । यह 'समता' रामभजन ही है जो आस्तिकता का मूल है, जो सभी सुखों का मूल है ।

"रामभजन समता जहां, सब आगति को मूल ।
जीं कभी कदे वहै नहीं, नित आनंद गह फूल ।
समता सुख को मूल है, अरु तृष्णा तन कूं दाह ।
तजि तृष्णा समता गही, ज्यां लियो मिनख तन लाह ।"[3]

गुरु-कृपा से समता भजन के सहारे जीव शिव-पद को पा लेता है ।--

"रामचरण गुरु महर सूं शिव परसै पद शीव ।
गुरु शिव एक उपासना, समता भजन सदीव ।"[4]

ग्रंथ 'अणभै विलास' के तीसवें प्रकरण में 'मुक्त जनों की पिछांण'
~~ग्रंथ 'अणभैविलास' के तीसवें प्रकरण में~~ (मुक्त जनों की पहचान) शीर्षक के अन्तर्गत कवि लिखता है --

"राम भजन में लीन, कीता आपो ऊरमीं ।
भई वासना छीन, मुक्ताजन समता लियां ।"[5]

---

१- अ०वा०, पृ० ८६१ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० ८६० ।
४- वही ।
५- वही, पृ० ३१२ ।

इसी ग्रंथ के नवम् प्रकरण में 'जीवत मोख' जन के विषय में कवि लिखता है कि 'जीवतमोख' जन जाप जपकर उत्तम ज्ञान अर्जित करता है उसके लिए काम सदा तृप्ति है, संतोष ही सारी बात है। जीवन मुक्त सदा राम के चरणों में रत रहता है --

"जपै जाप उत्तम सदा, कदा न उपजै आन।
रामचरण चरणां रता, पायो उत्तम ज्ञान।
काम सदा तिरपत्ति है, सारी बात संतोष।
रामचरण रत राम सूं, सो जन जीवन मोख।"[1]

'जीवतमुक्ता को अंग' में स्वामी रामचरण लिखते हैं कि जीवन मुक्त पाखण्ड एवं अभिमान को छोड़कर रामरत होता है --

"जीवत मुक्ता होय रहै, तजि पाखण्ड अभिमान।
रामचरण मन राम रत, सदा रहै गलतान।"[2]

जीवनमुक्त का हाथ परमात्मा पकड़ता है। जीवन मुक्त रात दिन भगवान के सम्पर्क में बना रहता है --

"ऐसा होय हरि कूं भजै, तब हरि पकड़ै हाथ।
निशिबासर संग ही रहै, जन को तजै न साथ।"[3]

'सजीवण को अंग' में कवि ने बतलाया है कि वेद के गुणों का विस्मरण ही 'सजीवन मूल' है। इसी सप्राणता में कवि का विश्वास है --

"रामचरण सतगुरु मिल्या, दिया सजीवण मूल।
सिख साच्या विश्वास करि, गया वैगुण भूल।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० २५२।
२- वही, पृ० २८।
३- वही।
४- वही।

यह सप्राणता या अमरता जिसे कवि सजीवण या मरजीव कहता है रामभजन से प्राप्त होती है --

"गुण जीतै रामै भजै, सोही सजीवण जान ।
गुण पोखै रामै तजै, सो सब मृतक समान ।"[१]

तीनों लोक में केवल राम का नाम 'सजीवण' (अमर) है, कवि की दृष्टि में 'सजीवण' होने के लिए निशिदिन नामोच्चारण अपेक्षित है --

"रामचरण तिहुं लोक में, एक सजीवण नाम ।
हुआ सजीवण चाहिए, तो निशि दिन कहिए राम ।"[२]

बिना रामभजन के जीव चितेरे की पुतली है किन्तु राम भजन से वही जीव 'सजीवण जीव' हो जाता है ।

"लिखा चितेरै पुतली, यूं राम भजन बिन जीव ।
रामचरण रामै भजै, सोही सजीवण जीव ।"[३]

'सजीवण ब्रह्म' का ध्यानी सजीवण जन्म-मरण, आवागमन से मुक्ति पा जाता है --

"भया सजीवण नो मरै ब्रह्म सजीवण ध्याय ।
रामचरण आमण-मरण, वै नहिं आवै जाय ।"[४]

स्वामी जी के अनुसार संसार में जन्म लेने वाला मनुष्य काल के वश में होकर मृत्यु को वरण करता है किन्तु जो 'अकाल शब्द' से मिल जाते हैं वे 'सजीवण' होते हैं --

"जो उपज्या सो काल बसि, सबही मृतक जाय ।
मिलै अकाली शब्द सूं, सोही सजीवण होय ।"[५]

---

१- अ०वा, पृ० ३९ ।

२- वही ।

३- वही ।

४- वही ।

५- वही ।

काम-क्रोध पर विजय, लोभ-मोह की पराजय, मैं-तैं का दाह स्वामी जी के अनुसार मरजीव विचार (सप्राण या अमर विचार) है --

"काम क्रोध कूं जीतिया, लोभ मोह गया हार ।
रामचरण मैं तैं जली, सो मरजीव विचार ।"[1]

भौतिक सुखों का त्याग, रामभजन के प्रति स्नेह भाव से सजीवण, ब्रह्म में मिल जाता है और इस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति उसे हो जाती है --

"सकल स्वाद तन का तजै, रामभजन सूं नेह ।
मिलै सजीवण ब्रह्म सूं, तो फिर नहीं धारै देह ।"[2]

स्वामी रामचरण के साहित्य में मोक्ष की कल्पना जीवन-मुक्ति मात्र नहीं है वरन् जीवनमुक्ति या मरजीवता (सप्राणता) इसलिए कि ब्रह्म से एकता स्थापित हो सके और जीव को भौतिक शरीर से छुटकारा मिल जाय । इसी मोक्ष को स्वामी जी अपने ग्रंथ `राम रसायण बोध` के पंचम प्रकरण में `काम पद` नाम से अभिहित करते हैं । यह `आमपद` `अहम्` की समाप्ति कर ब्रह्म में मिलकर ब्रह्मरूप हो जाना है । इस `आमपद` की प्राप्ति से जीव जन्म-मरण और जरा से मुक्त हो जाता है --

"आपा मेट आप में मिलिया, आप रूप होइ रहिया ।
जनमैं मरै नजरा संतावै, इसा आम पद लहिया ।
या पद की तारीफ न आवै, करिये कहा बखाना ।
गुणातीत पचरंग न वाकै, अंग संग नहि जाना ।
अंग न संग भंग नहि भिनता, सबैं पूरण स्वामी ।
निर्विकार निर्लेप निरंजन, परिपूरण घण नामी ।
छोट न मोट न छाना परगट, घटघट अघट समाया ।
अन्दर बाहर एक समाना, जहाँ न व्यापै माया ।

---

१- अ० वा०, पृ० २९ ।
२- वही ।

माया पारब्रह्म अविनाशी, सब सुख राशी राया ।
रमता राम धाम धरन्यारा, भजन करे कर पाया ।
सो अब लीन सदा ता मांही, कबहु न धर है काया ।
रामचरण बलिहारी गुरु की, जिन ये भेद बताया ।
पाया भेद छेद सब भागी, जागी अण मैं ऐसी ।
मैं भ्रम गया रह्या था तोही, कहिये तो गति कैसी ।
अकथ कहाणी सतगुरु दाखी, कीन्ही सकर निधाना ।
रामचरण मिल बरणां शरणं, पाया अध्यातमज्ञाना ।"[1]

स्वामी रामचरण द्वारा वर्णित 'आमपद' की कल्पना 'परब्रह्मपद' से अभिन्न है । उनके सम्पूर्ण अध्यात्मज्ञान का सार इस पद की प्राप्ति ही है । इस 'आम-पद' या 'परब्रह्मपद' में लीन हो जाना ही मोक्ष है । मन-वाणी से परे इस 'परब्रह्मपद' या मोक्ष तक पहुंचने का माध्यम गुरु है । स्वामी रामचरण की निम्न-लिखित पंक्तियां उक्त कथन की पुष्टि करती हैं --

"पहुंचाये पर ब्रह्म पद मन वाणी के पार ।
गुरु मिलियां सूं उपजी ज्ञान अध्यातमसार ।"[2]

साधनापक्ष

गुरु

भारतीय साधना-जगत में गुरु की महत्ता असंदिग्ध है । सगुण-निर्गुण, सभी उपासना-पद्धतियों में गुरु की अनिवार्यता देखी जाती है । संत-साहित्य में गुरु साधक का पथ-निर्देशक या प्रदर्शक माना गया है । साधना-जगत में उसकी अनिवार्यता पर टिप्पणी करते हुए डा० बड़थ्वाल लिखते हैं कि --"साधक चाहे जितने भी साधुओं का सत्संग करे उसे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में उत्तेजना लाने के लिए उनके साथ केवल कभी-कभी संसर्ग में आने से ही काम नहीं चल सकता । उन्हें एक ऐसे डायनमो की आवश्यकता है जो उन्हें अनवरत रूप से अभीष्ट विद्युत शक्ति की धारा पहुंचाता

---

१- अ० वा०, पृ० ६७३ ।
२- वही, पृ० ६७४ ।

रहे। उसे चाहिए कि किसी साधु विशेष के साथ सदा के लिए संबंध स्थापित कर ले जिससे वह अपनी आध्यात्मिक साधना में बाधा उपस्थित होने की कभी आशंका आने पर पथ-प्रदर्शन की सहायता प्राप्त कर सके।"[१]

उपर्युक्त कथन इस तथ्य का द्योतक है कि आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है। साधनारत साधक को प्रति पल उत्साह ग्रहण करने के लिए गुरु एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण उत्साहकेन्द्र है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी गुरु का महत्व आंका गया है। "बौद्ध सम्प्रदाय में बुद्ध, जैनियों में जिन, इस्लाम के पीर-पैगम्बर और ईसाई धर्म के फादर पाप वही महत्व रखते हैं जो महत्व हिन्दू धर्म के अन्तर्गत गुरु को प्राप्त है।"[२] डा० प्रेमनारायण शुक्ल के इस कथन के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए निवेदन है कि भारतीय साधना-प्रणाली में गुरु पीर-पैगम्बर और पाप से बहुत आगे है। भारतीय 'गुरु' कभी ईश्वर के समकक्ष और कभी उससे भी अधिक महिमामय बतलाये गये हैं। जैसा कि संत कबीर ने कहा है, 'हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।"

डा० शुक्ल ने अपने शोध-प्रबंध 'संत साहित्य' में 'गुरु' शब्द की व्याख्या में अद्वैतातारकोपनिषद की पंक्तियाँ उद्धृत करके बतलाया है कि, "गु शब्द का अर्थ है अंधकार और रु शब्द का अर्थ है निरोधक। जो अंधकार का विनाश करता है वह वास्तव में गुरु है।"[३]

"गु शब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रु शब्दस्तन्निरोधकः
अंधकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।"
-- अद्वैतातारकोपनिषद्[४]

---

१- डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, नवीन संस्करण, पृ० २३६-३७।

२- डा० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० १७६।

३- वही, पृ० १७८।

४- वही, पृ० १७८ का फुटनोट

हिन्दी-संत-साहित्य में गुरु की विशद चर्चा हुई है। विभिन्न साधना-पक्षों में गुरु की आवश्यकता समान रूप से आँकी गयी है। चाहे योग-साधना हो या भक्ति निरूपण गुरु सभी स्तरों पर वर्तमान दीखता है। स्वामी रामचरण ने 'गुरुदेव को अंग' एवं विभिन्न ग्रंथों में गुरु की चर्चा की है। बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन करने पर भी वे गुरु के गुणों का पार पाने में समर्थ नहीं हैं। उनके अनन्त उपकारों के सामने वे नतमस्तक हैं।

"कहा बरणूं बिसतार कर, सतगुरु गुणां न पार।
रामचरण दे राम धन, अनन्त किया उपगार।"[1]

सांसारिक वासना विष है जो रोम-रोम में परिव्याप्त है। स्वामी जी की दृष्टि में गुरु ही वह गारडू (विष वैद्य) है जो 'रामसुधारस' के द्वारा 'निरविष' कर सकता है --

"रोम रोम विष से भर्‌या, निरविष कैसे होय।
रामसुधारस पायकै, सतगुरु करि हैं सोय।
और कोई न कर सकै, सो सतगुरु सें होय।
रामचरण गुरु गारडू, सब विष डारे धोय।"[2]

स्वामी जी सतगुरु को इन्द्र के समान बतलाते हैं जो बिना भेदभाव के ज्ञान की वर्षा करता है, अब भक्त-हृदय की भूमि के अनुरूप ही उसमें बीज का विकास होगा --

"सतगुरु बरस्यां इन्द्र ज्यूं दुखध्या रही न कोय।
जैसी साखा नीपजै, तिसी भूमिका होय।"[3]

खाली खेत सदृश अचेत शिष्य के हृदय पर गुरु ज्ञान की वर्षा प्रभावहीन ही सिद्ध होगी --

---

१- अ० वा०, पृ० ३।
२- वही, पृ० ४।
३- वही।

"घमंड घमंड घन बरसिया, सतु बिन खाली खेत ।
यूं रामचरण गुरु क्या करै, जो सिख होय अचेत ।"[१]

अतः शिष्य की उपदेश वर्षा का जल ग्रहण करने के लिए जिज्ञासु होना आवश्यक है, तभी सतगुरु-मेघ की ज्ञान-वर्षा 'निरफल' नहीं होगी --

"सतगुरु बरसै मेघ ज्यूं, शिख जिज्ञासी होय ।
रामचरण तब सींप में, निरफल जाय न सोय ।"[२]

भक्ति की खेती जिज्ञासु के शुद्ध हृदय रूपी खेत में नाम का बीज डालने से होती है । इस बीज से ब्रह्मज्ञान का फल तभी उत्पन्न होगा जब गुरु की कृपा का जल पड़ेगा --

"रामचरण करसण भक्ति, शुद्ध हिरदो सू खेत ।
नाम बीज गुरु मेहर जल, ब्रह्मज्ञान फल देत ।"[३]

सतगुरु आलोकमय है । वह मन को माया से विरत कर ब्रह्ममय कर देता है । उसके बिना ज्ञान का आलोक कौन बिखेरे ? --

"रामचरण सतगुरु बिना, कूंण करै परकास ।
माया सूं मन काढ़ि कै, किया ब्रह्म में बास ।"[४]

वह 'शीव' (ब्रह्म) सर्वव्यापी है, प्रत्येक घट में उसका वास है पर सतगुरु के बिना जीव उसका रहस्य जानने में असमर्थ है --

"जहां तहां भरपूर है, घट घट व्यापक शीव ।
रामचरण सतगुरु बिना, भेद न पावै जीव ।"[५]

गुरु की सामर्थ्य का वर्णन करते हुए स्वामी जी 'गुरु समर्थाई को अंग' में लिखते हैं कि सतगुरु बड़ा सामर्थ्यवान बाहुबली है, वह जीव का संशय दूरकर

---

१- अ०वा०, पृ० ४ ।
२- वही ।
३- वही ।
४- वही ।
५- वही, पृ० ५ ।

अपने गुरु चरण कमल की छाया में स्थान देता है। वह दीर्घ-बुद्धि एवं सागर सदृश गंभीर होता है --

> "सतगुरु समर्थ बाहाँबली, लै काढ़े गह बाँह।
> साँसा सबै निवारि कैं, राखै चरणकमल की छाँह।
> गुरु समर्थ दीरघबुधी, सायर जिसा गंभीर।
> शिष मंगिमन होय पिवै, हरि सुख मीठी नीर।"[1]

भवजल में पड़े जीव को रामनाम की अपनी नौका पर चढ़ाकर सतगुरु रूपी केवट ही पार करता है --

> "जीव पर्यो भवकूप, अपने बल नहिं पार है।
> सतगुरु केवट रूप, रामनाम निज नाव है।"[2]

'कवित गुरुदेव को अंग' में स्वामी जी 'सतगुरु ब्रह्म स्वरूप नित्य चेतन परकासे'[3] कहकर गुरु को ब्रह्म स्वरूप कहते हैं किन्तु वहीं जैसे गम्भनकार गुरु एवं ब्रह्म की तुलना करने लगते हैं --

> "सब गिरां शिरै सुम्मेरु ताप पर तरु है तरु ही।
> मलया गिरि गुण येह सकल मलयागिरि कर ही।
> यूं सृष्टि ब्रह्म आधार सैं ब्रह्म न होई।
> ब्रह्म प्रकाशी संत संत करि लेवैं सोई।
> हरि गुरु एता आंतरा करि रच्यो गुणा विस्तार।
> रामचरण गुरु पलटि गुण लै पहुंचावै पार।"[4]

यही तो हरि और गुरु का अंतर है। ब्रह्म सुमेरु है। सुमेरु पर्वतराज है, उस पर भी तरु राजि सजती है पर मलयागिरि तरुओं को अपनी गंध से भर देता है। सृष्टि का आधार ब्रह्म है किन्तु सृष्टि ब्रह्म नहीं हो सकती, परब्रह्म के

---

१- अ० वा०, पृ० ५।

२- वही, पृ० १०५।

३- वही, पृ० १०५

४- वही।

आलोक से आलोकित संत अन्य जनों को संत बना देता है। हरि गुणों का विधाता एवं उसका विस्तारक है पर गुरु शिष्य को गुणातीत करके पार पहुंचा देता है। स्वामी रामचरण इस विवेचन के सहारे ब्रह्म के समक्ष गुरु की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

सतगुरु जब शिष्य पर प्रसन्न होता है तब शिष्य के हृदय में भक्ति और वैराग्य का उदय होता है और जब ज्ञान के साथ नाम-स्मरण में रत होता है तो पूर्ण भाग्योदय हो जाता है --

"सतगुरु रीझे शिष्य पर तब उदय भक्ति बैराग।
ज्ञान सहित सुमरण करै तो प्रगटै पूरण भाग।"[१]

स्वामी जी की दृष्टि में गुरु के समान परमार्थी अन्य नहीं। अन्य सभी स्वार्थी होते हैं पर 'दातार' सतगुरु की दृष्टि सदैव एकरस होती है --

"सतगुरु सम परमार्थी और न दीसै कोय।
दूजा सब स्वारथ भर्या चाहि लावै सोय।
चाहि लावै सोय दोय दिन में दरसावै।
ऐसा री फ़सन्याम सैस्यां बिन बीज उगावै।
रामचरण दातार की दृष्टि एकरस होय।
सतगुरु सम परमार्थी और न दीसै कोय।"[२]

'गुरु महिमा' नाम के अपने लघु ग्रंथ में स्वामी रामचरण कहते हैं कि गुरु-सेवा के साथ ही 'निरंजन देव' की प्राप्ति होती है, इसलिए पहले गुरु की सेवा करनी चाहिए। गुरु की कृपा से ही बुद्धि स्थिर होती है और 'तृष्णा-ताप' से मुक्ति मिलती है --

"प्रथम कीजै गुरु की सेव।
ता संग लहै निरंजन देव।
गुरु किरपा बुधि निश्चल भई।
तृष्णा ताप सकल बुझि गई।"[३]

---

१- अ०वा०, पृ० १३८।
२- वही, पृ० १३६।
३- वही, पृ० २०१।

ज्ञान, भक्ति और मोक्ष तीनों का दाता गुरु ही होता है। बिना गुरु के 'नुगरा' को नरक की प्राप्ति होती है --

गुरु बिन ज्ञान कहो किन पाया।
बैन सैन करि गुरु समझाया।
सतगुरु भक्ति मुक्ति का दाता।
गुरु बिन नुगरा दोजख जाता।"[1]

स्वामी जी गुरु को गोविन्द से अधिक घोषित करते हैं। गुरु के मिलने पर ही गोविन्द की प्राप्ति होती है।

"गुरु गोविन्द सूं अधिका होई।
या सुनि रीस करो मति कोई।
प्रथम गुरु सूं भाव बधावै।
गुरु मिलिया गोविन्द कूं पावै।"[2]

अथवा 'विश्राम बोध' की यह पंक्ति --

"गुरु गोविन्द सूं अधिक है देवै उत्तम बोध।"[3]

'उजास' कर्ता गुरु

ग्रंथ 'शब्द प्रकाश' में कवि तारक मंत्र 'राम नाम' का उपदेश गुरु से ही प्राप्त होने की बात कहता है। शिष्य गुरु प्रदत्त रामनाम को विश्वासपूर्वक हृदय में धारण कर जब उसे निशिदिन स्मरण करता है तो निश्चय ही उसके हृदय में 'आलोक' होता है --

"रामनाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरु, देवै यो उपदेश।

---

१- अ० वा०, पृ० ३०१।

२- वही।

३- वही, पृ० ७७३।

सतगुरु बकसे रामनाम, शिष धारै विश्वास ।
रामचरण निशिदिन रहै, तो नहचै होय प्रकाश ।"[१]

यह 'प्रकाश' ही ग्रंथ 'अणभै विलास' में 'निधान की उजास' नाम से कवि द्वारा उजागर किया गया है । इस 'उजास' (आलोक) की उपलब्धि गुरु-ज्ञान से होती है जिससे हृदय की आँखों को प्रकाश मिलता है । यह 'उजास' सूर्य और चन्द्र भी हृदय को नहीं दे सकते --

"यह उजास गुरु ज्ञान सें, उरलोचन परकास ।
रामचरण रवि शशि उदय, हिरदै न होत उजास ।"[२]

यहाँ कवि का दावा है कि सतगुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान ज्योति से ही हृदय प्रकाशित हो सकता है, हजारों सूर्य-चन्द्र का विकास हृदय को आलोकित नहीं कर सकते । गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान के आलोक से हृदय में छाया भ्रमान्धकार दूर होता है और साधक संसार को स्वप्न समझकर जैसे सोते से जाग उठता है --

"सहंस सूर शशि के उदय हीये न होय उजास ।
सतगुरु ज्ञान उद्योत सें हिरदै होत प्रकास ।
हिरदै होत प्रकास भर्म अँधियारो भागे ।
स्वप्नावत संसार जाण सोवत सो जागे ।
परस भजे परमात्मा रहै न मैली आस ।
सहंस सूर शशि के उदय हीये न होय उजास ।"[३]

## गुरु दातार

स्वामी रामचरण गुरु को 'समर्थ दातार' कहते हैं । 'अणभै वाणी' में वे स्थान-स्थान पर उनके सामर्थ्यशील दानी रूप की चर्चा करते हुए अघाते नहीं । स्वेच्छया जलदान करने वाले मेघ के सदृश सतगुरु ज्ञान का दान करता है । बादल

---

१- अ० वा०, पृ० २०८ ।
२- वही, पृ० २१० ।
३- वही ।

जलदान का प्रतिदान जैसे नहीं मांगता, वैसे ही गुरु भी ज्ञान का प्रतिदान नहीं मांगता। ज्ञान-कथन का भाड़ा मांगने वाले 'दाता-पद' के योग्य कदापि नहीं। ज्ञान के याचक (जिज्ञासु) को गुरु नकारता नहीं-

"घनहर कछु मांगै नहीं पर आप इच्छा जल देह।
यूं सतगुरु दाता ज्ञान का भाखिन भाड़ा लेह।
भाखिन भाड़ा लेह नांही दाता पद मांही।
कोई गाहिक मांगै आय तासूं नाटै नांही।"[1]

गुरु ज्ञान दाता तो है ही, 'राम' दाता भी वही है उसी मेघ की तरह। "वर्षा दाता मेघ है यूं गुरु दाता पै राम"[2]। 'गुरु विदार' के प्रथम प्रकरण में भी कवि गुरु के 'दातार' रूप का निरूपण करता है। उसके अनुसार संसार में गुरु के समान दूसरा दाता कोई नहीं, वह 'रामशब्द' से पुरस्कृत करता है पर बदले में कुछ भी नहीं चाहता --

"सतगुरु सम दातार और नहीं जगत मांही।
राम शब्द बक्सीस करै कछु बंछे नांही।"[3]

ग्रंथ 'विश्राम बोध' के प्रथम विश्राम में भी स्वामी रामचरण 'दातार-गुरु' की अनन्यता पर मुग्ध हैं। गुरु ने 'समता धन' का दान कर शिष्य के लिए कोई कमी नहीं छोड़ी --

"रामचरण सतगुरु जिसा और न दाता होय।
ज्यां समता धन बखशीस करि कमी न राखी कोय।"[4]

इसी प्रकार 'समता निवास' ग्रंथ में दातार गुरु कवि को निर्वैद, सत्य और समता के साथ 'नाम आध' का पुरस्कार देकर दयापूर्वक उसे मनुष्य से साधु बना देता है --

"निर्वेद साच समता सहित बकस्या नाम आध।
सतगुरु दया विचार के कीया मिनख सैं साध।"[5]

---

१- अ० वा०, पृ० २१३।

२- वही।

३- वही, पृ० ३२५।

४- वही, पृ० ७७३।

५- वही, पृ० ८५६।

राम-गुरु की एकता

गुरु के उपकारों से विनत, उनके ज्ञान उजास से आलोकित एवं उनके निस्पृह दातार रूप से प्रभावित जिज्ञासु (शिष्य) राम एवं गुरु की अभिन्नता का विश्वासी बन जाता है। कवि राम और गुरु की अभेद स्थिति का चित्रण ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के पहले प्रकाश में इस प्रकार करता है --

"राम कहूँ गुरु जांणिये गुरु कहु जांणों राम ।
गुरु मूरति को ध्यान उर रसना उचरौं राम ।
रसना उचरौं राम मनसा उर में मांही ।
गुरु गोविन्द तन एक देखि व्यापक सब मांही ।
रामचरण कहाँ जाईये घटवध कोइ न ठाम ।
राम कहूँ गुरु जांणिये गुरु ~~ह~~ कहु जांणों राम ।"[1]

'विश्वास बोध' के प्रथम प्रकरण की यह पंक्ति भी राम-गुरु की एकरूपता का निरूपण करती है --"परिहां रामचरण गुरु राम एक ही रूप रे ।"[2]

सकल शिरोमणि गुरु

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथ 'राम रसायण बोध' के पहले प्रकरण में गुरु को 'सकल शिरोमणि' कहा है जो मिलते ही क्षण भर में निहाल कर देता है। भ्रमों का परिहार कर रामस्मरण कराता है वह परमार्थी है, सहज प्रतिपालक है और है परम दयाल, समर्थ तथा सकल शिरोमणि --

"सकल शिरोमणि है गुरु समर्थ परमदयाल ।
रामचरण ताहि मिलत ही पल में करै निहाल ।
पल में करै निहाल माल बांध तुरत मिटावै ।
आन मर्म परिहार, राम ही राम रटावै ।
यू सतगुरु परमार्थी सहज करै प्रतिपाल ।
सकल शिरोमणि है गुरु समर्थ परम दयाल ।"[3]

---

१- अ० वा०, पृ० ४३१ ।
२- वही, पृ० ६४५ ।
३- वही, पृ० ६३३ ।

गुरुपारख

स्वामी रामचरण ने गुरुपारख का निरूपण सविस्तार किया है। उनका निश्चित मत है कि बिना परखे गुरु नहीं करना चाहिए --

"रामचरण पारख बिना, गुरु कियां क्या होय।
गुरु अंध्या संसार सूं, तो शिष कुंआ देवे खोय।"[१]

'राम रसायण बोध' के प्रथम प्रकरण में 'गुरुपारख' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी ने गुरु के लक्षणों की चर्चा की है। उनके अनुसार गुरु को गुणातीत गंभीर होना चाहिए। वह आदित्य के समान प्रकाशवन्त, नीर सदृश निर्मल, धरती के समान धैर्यशाली एवं शशि सदृश शांत हो। वह रामनाम का दाता हो। ये लक्षण जिनमें हो वह गुरु होने के योग्य है --

"गुरु पारख सोही गुरू गुणातीत गंभीर।
आदीत जिसा परकाशवत निर्मल जैसा नीर।
निर्मल जैसा नीर धीर धरि शांति शशी है।
राम नाम दातार गुरू गति जान इसी है।
रामचरण येह लक्षणा सो मेरे शिर पीर।
गुरु पारख सोही गुरू गुणातीत गंभीर।"[२]

गुरुपद उसी को शोभा देता है जो निर्लोभी, निर्मोही, निर्बन्ध और आनन्द मय हो, वह सम्पूर्ण सृष्टि में गुणातीत के ज्ञाता के रूप में विख्यात हो और शरीर तथा मन से परे राम रूप हो, साथ ही अन्य को राम का रंग चढ़ाता हो एवं अंशों के संग पार करे --

"गुरु पद शोभ जाके लोभ कोन लेश कोई।
निर्मोही निर्बंध नित आनन्दमय मानिये।
गुणातीत ज्ञाता सो विख्याता सारी सृष्टि मांही।
नाहीं तन मन जाके राम रूप जानिये।

---

१- अ० बा०, पृ० ३८।

२- वही, पृ० ६३४।

राम रूप सही आप राम की लगावै रंग,
करत असंग संग साधु सदा जानिये ।
राम ही चरण जी शरण ऐसे गुरु जी है ।
सीखे सब सांच सांच कमीन कूं मानिये ।-[१]

ग्रंथ 'सुख विलास' के दूसरे प्रकरण में स्वामी जी गुरु के लक्षणों की चर्चा तो करते हैं साथ ही ऐसे जनों से सचेत भी करते हैं जो "गुरु पणा और जबरन जणाय के ठिग ठिग खावै सोय ।"-[२] इसीलिए कवि कहता है, "गुरु तो सो सिर कीजिये जामें मैं गुरुता होय ।"-[३] आदर्श गुरु का लक्षण निम्नलिखित कुण्डलिया में वर्णित है --

"गुरु कीजे आर्य असल राम नाम दातार ।
जिनकी आशा अलख की सतकृत पालणहार ।
सतकृत पालणहार दया सो ता उर मांही ।
बाहर भीतर सुचि असुचि कुछ परसै नांही ।
उनकी संग जिहाज से भवजल उतरें पार ।
गुरु कीजे आर्य असल रामनाम दातार ।[४]

यहीं पर स्वामी जी ने जिज्ञासु जनों को 'गाफिल गुरु' न करने का परामर्श भी दे डाला है, क्योंकि --

"उनका चेला होय करि कहो कूंण घर जांहि ।
गाफिल गुरु न कीजिये ज्यां सावधानता नांहि ।"-[५]

इसी संदर्भ में स्वामी जी दो प्रकार के गुरुओं की चर्चा करते हैं -- १-कान फूंका गुजराम गुरु, २-भवतारन ज्ञान गुरु --

---

१- ज० वा०, पृ० ६३४ ।
२- वही, पृ० २३५ ।
३- वही ।
४- वही, पृ० २३५-३६ ।
५- वही, पृ० २३६ ।

गुरू गुरू सब कहत है पै गुरु दोय परकार ।
अनफूंका गुजरांन गुरु ज्ञान गुरू भवत्यार ।
ज्ञान गुरू भवत्यार जनूं के स्वारथ नांही ।
परमारथ की सार दया उनके मन मांही ।
रामचरण प्रभु ऊपरै विचरै पर उपगार ।
गुरू गुरू सब कहत है पै गुरु दोय परकार ।"[1]

गुरु 'अनन्य 'अयाची पुरुष' होता है । याचना करने वाले को कवि गुरु नहीं 'मंगता' की संज्ञा देता है --

"जाचिक तो सतगुरु नहीं, जाचिक मंगता होय ।
अजाचिक गुरु जांनिये, पार उतारै सोय ।"[2]

'गुरु पारख को अंग' में कवि लिखता है कि ऐसा सतगुरु कीजिए जो 'दीरघ चित्त' एवं 'उदारचित्त' हो, जो शिष्य को रामनाम दे सके और जिसकी शरण जाने से संसार से मुक्त हुआ जा सके --

" सतगुरु ऐसा कीजिये जाका दीरघ चित्त ।
रामचरण दे शिष्य कूं रामनाम निज तत्त ।
सतगुरु ऐसा कीजिए जाका चित्त उदार ।
रामचरण वाकी शरण छूटै यो संसार ।"[3]

इसी प्रकार स्वामी रामचरण ने 'चन्द्रायणा गुरु पारख को अंग' एवं जिज्ञासा बोध, समता निवास आदि ग्रंथों में भी 'गुरु पारख' की विस्तृत चर्चा की है ।

लोभी गुरु

स्वामी रामचरण ने 'लोभी गुरु' और 'मनमुखी शिष्य' की निन्दा की है । शिष्य से आशा रखने वाला गुरु किसी काम का नहीं होता --

---

१- अ० वा०, पृ० २३६ ।

२- वही ।

३- वही, पृ० ३८ ।

"लोभी गुरु किस काम का, करै शिखां की आस ।
राति दिवस चिन्ता रहै, स्वप्नै नहीं निवास ।"[1]

'लोभी गुरु को अंग', 'अणभै विलास', 'विश्वास बोध' और 'समता निवास' आदि विभिन्न ग्रंथों में स्वामी जी ने लोभी गुरु की चर्चा कर उनसे सावधान रहने का उपदेश दिया है। 'विश्वासबोध' के द्वितीय प्रकरण में वे कहते रहते हैं कि बिना परखे लोभी गुरु का संग करने से जन्म ही ठगा जाता है। लोभी गुरु न स्वयं तरता है और न शिष्य को ही तारता है --

"जन्म ठिगायो परखि बिन करि लोभी गुरु को संग ।
उन तिरे न त्यारै और कूं जे फूटी नाव कुसंग ।"[2]

लोभी गुरु के मन में सदा माया की प्यास लगी रहती है।[3] ऐसे गुरु के साथ सदैव हृदय की ग्लानि बढ़ती है।[4] लोभी गुरु स्वामी जी की दृष्टि में 'त्रय ताप' स्वरूप है। 'जिज्ञास बोध' की निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं --

"शीत उष्णा पावस कत है अति मैं त्रय ताप ।
आवत ही प्यारी लगै पीछै लगै संताप ।
पीछै लगै संताप इसै लोभी गुरु पायो ।
करत समय कर लियो जांचता लगै अभायो ।
रामचरण भज राम कूं तजि लोभ पाप की थाप ।
शीत उष्णा पावस कत है अति मैं त्रय ताप ।"[5]

इसलिए स्वामी जी लोभी गुरु की शरण को बुरा समझते हैं और उसकी ओर कभी न जाने की राय देते हैं। 'अणभै विलास' की यह साखी देखिए --

---

१- अ०वा० पृ० ।
२- वही, पृ० ६५५ ।
३-"लोभी गुरु के लागि रहै मन माया की प्यास"-- वही ।
४-"लोभी गुरु के संग बधे हिरदै सदा गिलानि" -- वही ।
५- वही, पृ० ५१६ ।

"लोभी की शरणां बुरी कबहूं के नीजे नांहि ।
निर्भयता उपजे नहीं, सदा शंक मन मांहि ।"[1]

लोभी गुरु के कृत्यों का संक्षिप्त विवरण 'अणभौ विलास' के इस पद में स्पष्ट हुआ है --

"लोभी गुरु आशा मुखी, कथा ज्ञान सुनावै ।
अपणा मतलब कारणें, भर्मी भ्रमावै ।
जब स्वारथ पूरी नहीं, तबही धुरकावै ।
शिख मूरख समझे नहीं, मन भय उपजावै ।
जे कारज कैसे करां, ते बोले दावै ।
बाल बुधि बहकाय के, गुजरान चलावै ।
रामचरण ऐसा गुरु मंदभागी पावै ।
भवसागर की धार कौं, वे बीच धकावै ।"[2]

पर यदि गुरु-शिष्य दोनों ही क्रमश: कामी-पेटू हों तब कौन किसकी परीक्षा करे । 'मतलबी' शीर्षक के अन्तर्गत ऐसे चेला गुरु का पर्दाफाश स्वामी जी करते हैं --

"शिष्य मिले पेटार्थी गुरु काम रत होय ।
कुण परखे खोटा खरा, उत्तम स्वार्थी दोय ।"[3]

जब गुरु और शिष्य दोनों का हृदय विवेक शून्य हो जाता है तो दोनों को अज्ञान की प्राप्ति हो जाती है । "गुरु शिख किये विवेक बिन मिल्या उभै अज्ञान"[4] पर उन्हें विवेक मिले भी तो कैसे ? 'समता निवास' में 'गुरु शिख भर्मी' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी इसका समाधान करते हैं --

"भर्मी शिख भर्मी गुरु मिला मिली लख एक ।
उन मिल कैसे पाईये भर्मां रहे विवेक ।"[5]

---

१- अ० वा०, पृ० २१६ ।
२- वही, पृ० २१४-१५ ।
३- वही, पृ० २६७ ।
४- वही, पृ० ८६४ ।
५- वही ।

पर जब शिष्य का हृदय मानातुर हो और गुरु का तृष्णातापी तो दोनों का मिलाप वैसे ही असंभव है जैसे रात और दिन का --

"शिष्य ~~दुख~~ आतुर मान की गुरु ~~उपदुख~~ उर तृष्णा ताप ।
रामचरण कैसे बणे रजनी दिवस मिलाप ।,[1]

निष्कर्ष

तब गुरु कैसा करना चाहिए ? यह प्रश्न इस विशद चर्चा के अंत में स्वाभाविक रूप से उठता है। स्वामी जी के 'विश्राम बोध' ग्रंथ के द्वितीय प्रकरण में इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। कवि ने गुरु का आदर्श मलयगिरि और पूनम के चांद को माना है --

"धीरप सतगुरु कीजिये मलयागिरि सम सोय ।
अंटक तरु मलया करे यूं गुरु अस्नमन देखाय ।
... ... ...
ऐसा सतगुरु कीजिए जैसा राका रजनी चंद ।
चंद करे जड़ मलिनता गुरु कस्मल करे निकंद ।
गुरु कस्मल करे निकंद मंद बुधि निर्मल होई ।
राम भजन परताप ताप तन रहै न कोई ।
रामचरण परकाश उर नयन लहै ज्यूं अंध ।
ऐसा सतगुरु कीजिए जैसा राका रजनी चंद ।"[2]

जिज्ञासी

साधना के विभिन्न पक्षों में जो गुरु या सतगुरु अपेक्षित है वैसे ही साधक भी। साधना तो साधक द्वारा ही संभव है, फिर वह चाहे योग-साधना हो या भक्ति साधना। गुरु जिसे अपनी साधना से उद्भूत अनुभवों की पूंजी देता है वह साधक ही है। साधक जिज्ञासु होता है। वह गुरु के बताये साधना पथ पर

---

१- अ० वा०, पृ० ८६४ ।

२- वही, पृ० ६५४ ।

चलकर साधना रत होता है और गुरु से सदैव सीखने की जिज्ञासा रखता है। स्वामी रामचरण ने इस साधक को ही 'जिज्ञासी' कहा है। उन्होंने जिज्ञासी के लक्षण एवं पात्रता आदि पर विचार किया है।

'साखी जिग्यासी को अंग' में स्वामी जी जिज्ञासु का लक्षण निरूपित करते हैं। जिज्ञासु वह है जो ज्ञानोपलब्धि के सारा भावनाम का अभियरण ग्रहण करता है। ज्ञान होने के बाद वह फिर माया के वशीभूत नहीं होता --

"साखी जिग्यासी जाणिए, जाग अमीरस खाय।
रामचरण जाग्यां पिछै, अबहूं सोय न जाय।"[1]

जिज्ञासी का जागरण

जिज्ञासु का ज्ञानदाता गुरु है। अनेक जन्मों का भ्रमित जीव सतगुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से सदा के लिए जाग उठता है और उसके सभी सांसारिक दुःख स्वप्नवत् गत हो जाते हैं --

"सूता जन्म अनेक का सतगुरु दिया जगाय।
रामचरण स्वप्ना तणां, सब दुख गया बिलाय।"[2]

स्वामी जी उस जिज्ञासु को ज्ञान नैसर्गिक समझते हैं जो ज्ञानोपलब्धि के बाद नाम में रत हो जाये। यदि वह नामस्मरण में लीन नहीं होता तो उसके ज्ञान से अनर्थ की संभावना हो जाती है --

"रे सिख जागे तो नाम ला, तो तर रहिये दाय।
रामचरण सुमरण बिनां, जाग्यां अनर्थ होय।"[3]

जागृत जिज्ञासु सोता नहीं, वह सतगुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान का विचार कर माया-मोह से विरत हो 'हरिमारग' पर गतिशील होता है --

"जाग्या सो फिर ना सुवै, हरि मारग लागै।
सतगुरु शब्द बिचार कै, माया मोह त्यागै।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० ३७।

२- वही।

३- वही।

४- वही, पृ० ३८।

## जिज्ञासी का भाव

जिज्ञासु साधना के लिए समर्पित प्राणी होता है। उसे केवल एक राम का भरोसा रहता है, वह संसार से विरक्त हो जाता है --

"एक भरोसो राम को, त्यागो आन उपाय।
रामचरण या यूं तरक, राम सनेही दास।"[1]

उसकी 'रहणी' और 'कहणी' में अंतर नहीं होता --

"रहणी कहणी एक है, तो लगी साध की फोट।"[2]

वह 'सुधरी' को राम का किया कहता है और 'बिगड़ी' को अपने सिर ओढ़ लेता है --

"सुधरी सूपे राम कूं, बिगड़ी अपने शीश।"[3]

वह गुरु का जूठन प्रेमपूर्वक ग्रहण करता है और उसकी आज्ञा का सदैव पालन करता है, इस प्रकार वह इन्द्रिय-निग्रह एवं रामभजन द्वारा अमलपद प्राप्त करता है --

"गुरु उच्छिष्ट ले प्रीति सूं, आज्ञा लोपे नांहि।
राम भजे इन्द्रयां दबै, यो मिलै अमलपद मांहि।"[4]

## जिज्ञासी का आचरण

जिज्ञासु इष्ट राम की उपासना में रत रहता है। नंगे पांव गुरु-दर्शन को जाता है, दया शील होता है, विषय एवं विष-वचन का त्याग करता है, हानि लाभ के अवसर पर भगवान में भरोसा रखता है। जुआ, चोरी, प्रलोभन, झूठ, कपट आदि से दूर रहता है। भांग, तमाखु आदि अखाद्य का सेवन नहीं करता है। वह अहिंसाव्रती, संयमी, श्रद्धालु, सादा भोजन करने वाला होता है। सादे वस्त्र शरीर पर धारण करता है --

"इष्ट राम रमतीत आंन कूं पूठ दई है।
पग नंगे गुरु दरी दया की मूठगही है।

---

१- अ० वा०, पृ० ३८।

२- वही।

३- वही।

४- वही।

विष त्यागै विषयवन शांति खिलवा नहिं जाणौं ।
शांणि वृद्धि की बार भरोसौ करि जो आणौं ।
जुवा चौरी परत्रुध्यि कूठ कपटा नाहिं राखै ।
मांगल माखू अमल अमल मद पान न चाखै ।
पांणी छाणै शांणि कै निरख पांव धरणी धरै ।
वै रामसनेही जांणियै यो कारज स्यणा करै ।
खारा मीठा स्वाद माग अनफाल परिहरियै ।
श्रद्धा गती त्याग समर्था मन में धरियै ।"
तन पर निरुणि साज साथ खारा सम सानै ।
धार तिहुवार उछाव धर्म मन को मन मानै ।
मैला धोन्ना कीजैन करै न रैखै जाय ।
रामचरण तन पीड कूं किया लजै उपाय । "[1]

जिज्ञासु के दो रूप

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथ 'सुख विलास' के दावें प्रसंग में जिज्ञासु को दो रूपों में निरूपित किया है --

१- ज्ञान जिज्ञास

२- कपट जिज्ञास

वस्तुत: ज्ञान जिज्ञास ही जिज्ञासी का सही रूप है । 'कपट जिज्ञास' दुविधा में ही पड़ा रहता है और गुरु की चिन्ता नहीं करता --

"दुबध्या मांही दुरंग सोइ गुरु गम रहै जु नांहि ।"[2]

स्वामी जी 'कपट जिज्ञास' को उस लोहे के सदृश समझाते हैं जो पारस के स्पर्श से भी अपरिवर्तित ही रहता है । साधु संगति का उस पर प्रभाव ही नहीं पड़ता --

---

१- अ० वा०, पृ० १२२ ।

२- वही, पृ० ४०३ ।

"लोहा पारस मिल्या न पलट्या तो कोइ बिच अंतर जाँनो ।
यूँ साधु संगति करता कपटी ना पलटा नो ।
पारस मिल कर हेम न हुवा जिन मिल जनपद माँहि ।
तो बिच कोई पड़दो कहिए पारस दोष न ताँहीं ।"[१]

पर 'ग्यान जिज्ञास' की स्थिति इससे बिलकुल भिन्न तथा विपरीत है। 'ग्यान जिज्ञासु' ग्यानशील प्राणी होता है। स्वामी जी ने ग्यान जिज्ञासुओं को 'नर बुद्धि प्राणी' कहा है। जैसे कुमारियों की लगन होती है, वैसे ही इन जिज्ञासुओं की हरि मार्ग पर होती है। वैराग्य में लीन तत्त्व विचारक होते हैं और सत्संग में समय व्यतीत करते हैं। अहं भाव और ममता की कलुषता को धोकर निरंतर 'रामरटन' में रत रहते हैं --

"जैसी लगन कुमारगी यूं हरि मारग में होय ।
रामचरण वे प्राणियां नरबुधि कहिये सोय ।
नर बुधि कहिये सोय ग्यान गम तत्त्व विचारै ।
सत्संगति में बैठ आपणो आपो तारै ।
राम राम रसना रटैं अहं ममत मन धोय ।
जो ग्यान कुमारगी यूं हरि मारग में होय ।"[२]

'ग्यान जिज्ञासु' की लगन का वर्णन करते कवि अघाता नहीं। जैसे काम के अधीन हो कर कामी लग्नशील होता है, जैसे पराये धन पर चोर की आसक्ति होती है, गाय का बछड़े से जैसा लगाव होता है, सीप की स्वाती में जो अनुरक्ति होती है, सरिता सागर की ओर जैसी लीन होकर दौड़ती है, प्यासा पानी के लिए जिस प्रकार उद्यम रत रहता है, क्षुधातुर भोजन के लिए जैसा ध्यान रखता है, चंद्रमा के लिए जैसी आसक्ति चकोर में रहती है, लोभी दाम के लिए जिस प्रकार साधनरत होता है और मेह के लिए मोर जितना आतुर होता है वैसी लगन आसक्ति या आतुरता आठों पहर ग्यान जिज्ञासु की रामभजनमें रहती है --

---

१- अ० वा०, ४०४।
२- वही, पृ० ४०३।

"लावै लालन जैसे अहं मैं बखान जैसे,
कामी कामाधीन जैसे परधन पै चोर है ।
गऊ बच्छ हेत जानों सीप हू कै स्वाति मानों,
सरिता समंद लीन जैसे याकी धोर है ।
प्यासे की लगन पानी उद्यम मैं जाय जानी ।
क्षुध्यार्थी भोजन यूं चन्द कूं चकोर है ।
लोभी कै उपाय दाम जैसे जन भजे राम,
आठूं जाम जान तेते मेघ काज मोर है ।"[1]

जिज्ञासा गति की सूक्ष्मता

स्वामी रामचरण अपने ग्रंथ 'जिज्ञास बोध' के प्रथम प्रकरण में जिज्ञास गति को अति सूक्ष्म निरूपित करते हैं । इस गति तक वही पहुंच सकता है जो स्वयं सूक्ष्म हो । इस जिज्ञास गति की शोभा और महात्म्य दोनों गंभीर हैं, वेद-पुराण भी इसकी सूक्ष्मता का गान करते हैं । योगी, यती, तपस्वी, ऋषि या और भी जो साधक हैं सभी के लिए 'जिज्ञासा धर्म' के समान दूसरा धर्म नहीं --

"जिज्ञासा गति अति ही झीणा झीणा होय सो पावै ।
जाकी शोभ महातम भारी वेद पुराणा गावै ।
जोगी जती तपी ऋषि जेता साधन और अपारं ।
जिज्ञासा तुल धर्म न कोइ ये जानो निरधारं ।"[2]

जिज्ञासु की साधना में दास्य भाव का प्राधान्य होता है । स्वामी जी कहते हैं कि जिज्ञासु को सत्पुरुषों की उपासना दास्य भाव से तन-मन लगाकर करनी चाहिए और स्वयं को गुरु को अर्पित कर देना चाहिए । जिज्ञासु को अपनी साधना में तभी सफलता मिलती है जब वह वर्ण, धर्म, कुल, कर्मकाण्ड, लोक-गौरव से मुंह मोड़ कर अभिमान, मान, मद, मत्सरादि का भी परित्याग कर देता है । वह

---

१- अ०वा०, पृ० ४०२ ।
२- वही, पृ० ५१२ ।

गुरु की वाणी सुने, नयन से उसका दर्शन करे, मुख से प्रश्न करे, दोनों हाथ जोड़ कर आज्ञा की प्रतीक्षा करे, जिह्वा से राम-नाम का उच्चारण करता रहे। गुरु का चरण धोकर उसे चरणोदक पान करना चाहिए जिससे उसका मन उज्ज्वल हो, सीलप्रसाद ले, इस प्रकार 'प्रीतिपण' दास्य भाव से संभव है --

"दास भाव सत्गुरु सों ऐसी कीजे तन मन लाई।
अपना आपा अर्प जनां कूं सूंपी लाज बड़ाई।
वर्ण धर्म कुल किरिया सारी लोक बड़ाई डारी।
तजि अभिमान मान मद मत्सर यूं जिज्ञासु विचारी।
सुनि गुरु बैन नैन सूं दर्शण मुख तैं परसन करना।
आज्ञाकार दोउ कर जोड्यां रसना राम उचरना।
चरण धोय चरणोदक पीजे ज्यूं मन उज्ज्वल होई।
सील प्रसाद प्रीतिपण ऐसो दास भाव सूं होई।"[1]

'जन-जिज्ञासी'

स्वामी रामचरण ग्रंथ 'विश्वास बोध' के इक्कीसवें प्रकरण में जन-जिज्ञासी संबंध पर प्रकाश डालते हैं। यहां उन्होंने जन का अर्थ परमात्मा से माना है। जिज्ञासु का एकमेव आधार 'जन' है। जैसे कमल जलवासी है पर उसकी आशा विश्वास आकाश में रहता है। पर सूर्योदय के साथ ही कमल अपने अंतर के उल्लास एवं ज्ञान के साथ विकसित हो जाता है। यही स्थिति 'जन' और 'जिज्ञासी' की भी है। परमात्मा जिज्ञासु के हृदय में वैसे ही समा जाता है जैसे सूर्य कमल के हृदय में। जैसे आकाशवासी सूर्य दूर रहकर भी कमल के निकट आ जाती हो जाता है वैसे ही 'जन' जिज्ञासी के हृदय के निकट पहुंच कर उसे हर्षोल्लास से भर देता है और जिज्ञासी सदा के लिए शुद्ध भावना से 'जन' का अनुकूल दास बन जाता है --

"अम्बुज वासी अम्बु में आशा अकी अकाश।
उदै भयां विकसै कमल अंतर लगन हुलास।
अंतर लगन हुलास जांण यूं जन जिज्ञासी।
जन हिरदै रहै समाज दूरि सो निकट निवासी।

---

1- अ० वा०, पृ० ५१२-१३।

रामचरण शुध भावना सदा सनमुख दास ।
अम्बुज वासी अम्बु में आशी अर्क अकाश ।"[१]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने 'जिज्ञासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया है । उनका 'जिज्ञासी' साधना की उस स्थिति में अपनी दास्य भावना के साथ, अपने शुभ आचरण के सहारे, गुरु की आज्ञा में रहकर 'भक्ती रस' का पान करने में तत्पर है । वह अम्बुज सदृश ज्ञान-जलाशय में रहते हुए भी प्रभाकर की ज्ञान रश्मियों से ज्योतित होकर अमित ज्ञान एवं अनुराग से परिपूर्ण रहता है । उसका हृदय 'स्वाति की चातक आशा' से भरा रहता है, इसी लिए तो स्वामी जी कहते हैं --

"पिवो रामरस सोय जिज्ञासी अविनाशी सुख पावो ।"[२]

## योग

डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ 'नाथ सम्प्रदाय' में लिखा है कि 'योग शिखोपनिषद्' में चार प्रकार के योग कहे गये हैं -- मंत्र योग, हठ योग, लय योग और राज योग । मंत्र योग में कहा गया है कि जीव के निश्वास-प्रश्वास में 'ह' और 'स' वर्ण उच्चरित होते हैं । 'ह'कार के साथ प्राणवायु बाहर आता है और 'स'कार के साथ भीतर जाता है । इस प्रकार जीव सहज ही 'हं-स:' इस मंत्र का जाप करता है । गुरु वाक्य जान लेने पर सुषुम्ना मार्ग में यही मंत्र उल्टी दिशा में उच्चरित होकर ही 'सोऽहं' हो जाता है और इस प्रकार योगी 'वह' (स:) के साथ 'मैं' (अहम्) का अभेद अनुभव करने लगता है । इसी मंत्रयोग के सिद्ध होने पर हठयोग के प्रति विश्वास पैदा होता है, इस हठ योग में हकार सूर्य का वाचक है और ठकार चन्द्रमा का । इन दोनों का योग ही हठ योग है । हठ योग से जड़िमा नष्ट होती है और आत्मा-परमात्मा का अभेद सिद्ध होता है । इसके बाद वह लय योग शुरू होता है जिसमें पवन स्थिर हो जाता है और आत्मानन्द का सुख प्राप्त होता है । इस लय योग की साधना से भिन्न अंतिम राज योग है । योनि के मध्य क्षेत्र में जपा और बन्धूक पुष्पों के समान लाल रज रहा करता है ।

---

१- अ० वा०, पृ० ७३६ ।

२- वही, पृ० ५१३ ।

यह दैवी तत्व है। इस रज के साथ रेत का जो योग है वही राज योग है।.....
निश्चय ही यहाँ पारमार्थिक अर्थ में 'रज' और 'रेतस्' [शुक्र] का उल्लेख हुआ है।[1]

नाम-साधना
---------

संत-साधना में योग की महत्ता है पर संतों ने योग को स्वानुभूति का विषय बनाया। ऐसा नहीं कि संतजन योग की शास्त्रीयता से अपरिचित थे। पर वे योग की सहजता के विश्वासी थे। उन लोगों ने विभिन्न योगों को अपनी अनुभूति का आधार देकर ग्रहण किया और अपनी विचार शैली से उसकी साधना की। वस्तुतः मंत्रयोग, लय योग और हठ योग आदि का संतों ने परिष्कार किया और अपनी अनुभूतियों के सहारे उन्हें सहज बना दिया। डा० बड़थ्वाल 'नाम सुमिरन' को 'मंत्र योग' कहते हैं और उसे ही सारे योगों का योग बतलाते हैं। सभी योग इसी के रूपान्तर हैं। इसे ही वे 'सुरति शब्द योग' का दूसरा रूप कहते हैं।[2] पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने 'संतकाव्य' के अन्तर्गत संतों की पारिभाषिक शब्दावली में 'सुमिरन' की परिभाषा दी है। "सुमिरन -- नामस्मरण की साधना जो वस्तुतः अनाहत नाद के श्रवण को लक्ष्य करती है और जो सुरति शब्द संयोग का कारण बनकर संतों के लिए आत्मोपलब्धि में सबसे प्रधान सहायक है।"[3]

डाक्टर बड़थ्वाल ने नामस्मरण की साधना में रत होने वाले साधक के लिए उस पनिहारिन का आदर्श सुझाया है जो "मार्ग पर चलती हुई बातचीत भी करती जाती है, किन्तु उसका मन सदा अपने सिर पर रखे हुए भरे घड़े की ओर ही लगा रखता है। इसी प्रकार साधक को भी चाहिए कि अपने को उस पनिहारिन की स्थिति में रखे और बाह्य रूप से संसार में व्यवहार करता हुआ भी अपनी सुरति को सदा ईश्वर में ही लगाये रखे।"[4]

---

१- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृ० १४३-४४।

२- डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय [नया संस्करण] पृ० २५५।

३- पं० परशुरामचतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७४।

४- डा० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० २५०।

इसी संदर्भ में डा० बड़थ्वाल सुमिरन के तीन प्रकारों का भी उल्लेख करते हैं -- [१] 'जाप' जो कि बाह्य क्रिया होती है, [२] 'अजपा जाप' जिसके अनुसार साधक बाहरी जीवन का परित्याग कर आभ्यान्तरिक जीवन में प्रवेश करता है, [३] 'अनाहत' जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश करता है, जहाँ पर अपने आप की पहचान के सहारे वह सभी स्थितियों को पार कर अंत में कारणातीत हो जाता है।"[१] जाप में होंठ जिह्वा से नाम को बार-बार दुह-राया जाता है पर अजपा जाप 'अव्यक्त जाप' है, उद्बुद्ध आत्मा ईश्वर में तल्लीन हो जाती है फिर मुख की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके बाद अनहद शब्द सुनने की स्थिति आ जाती है। "आराध्य को स्मरण करते करते आराधक उसके द्वारा इतना भरपूर हो जाता है कि वह उसकी जगह ले लेता है।"[२] इस मग्ना-वस्था के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सुरति शब्द योग

संत नाम जप के सहारे ही सुरति का शब्द से संयोग कराने में समर्थ होता है। जाप, अजपा जाप और अनाहत की पूर्णता के बाद ही सुरति शब्द संयोग हो पाता है। इस सुरति शब्द योग की संक्षिप्त चर्चा यहाँ आवश्यक है। डाक्टर बड़थ्वाल ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है --"वह योग जिसके द्वारा सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सीमायें शब्द में फिर से लीन हो जाती हैं; शब्द योग अथवा सुरति शब्द योग कहलाता है और वह शब्द सर्वप्रथम भगवन्नाम के रूप में मुंह से निकलता है और अन्त में स्वयं शब्दस्वरूप ब्रह्म हो जाता है। इसे सहज योग भी कहा जाता है क्योंकि इसकी सहायता से भी प्रत्यभिज्ञान का उदय होता है।"[३] अन्ततः यह सुरति है क्या ? पं० परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि --"सुरति-जीवात्मा परमात्मा का वह प्रतीक है जो उसकी स्मृति वा प्रतिनिधि के रूप में मनुष्य के भीतर वर्तमान है। सुरति का संतों ने अपने पति परमात्मा से बिछुड़ी हुई

---

१- डा० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० २५२।
२- वही।
३- वही, पृ० २५६।

दुलहिन के रूप में भी वर्णन किया है। वह उससे मिलने के लिए आतुर हो नाम-स्मरण की सहायता से अनाहत शब्द के साथ संयोग कर लेती है जिससे अन्त में उसे तदाकारता की उपलब्धि होती है।"[१]

डा० धर्मवीर भारती ने अपने ग्रंथ 'सिद्ध साहित्य' में 'सुरति' पर विचार किया है। उनके अनुसार "सिद्धों ने इस शब्द का प्रयोग निःसंदेह प्रेम-क्रीड़ा के अर्थ में किया था।"[२] आगे इसी संदर्भ में नाथ संप्रदाय से भी इसे जोड़ते हैं। "नाथ सम्प्रदाय का एक बहुत पुराना नाम शब्द सुरति योग बताया जाता है।"[३] गोरख-मछिन्द्र संवाद के आधार पर डा० भारती सुरति शब्द की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं --"सुरति शब्द की वह अवस्था है जब वह चित्त में स्थिर रहता है। शब्द अनाहद नाद है जो विशुद्धाख्य तथा आज्ञाचक्र में सुन पड़ता है।"[४]

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने सुरति को राजस्थानी शब्द 'सुरता' का पर्याय बताते हुए लिखा है कि --"राजस्थानी भाषा में आज भी 'सुरता' शब्द का प्रयोग ईश्वरोन्मुख ध्यान के लिए प्रचलित है। 'सुरता' का प्रचलित अर्थ ऊर्ध्वगामिनी चित्तवृत्ति है"।[५] संत साहित्य के अन्य अनेक विद्वानों ने इस शब्द के कई सामान्य एवं विशेष अर्थ ग्रहण किये हैं। जैसे- स्मृति, प्रीत, आध्यात्मिक किरण आदि।

"श्री रामस्नेही सम्प्रदाय" के लेखकों ने 'सुरति शब्द योग' का निरूपण इस प्रकार किया है। यह मत स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग संबंधी निरूपण में सहायक सिद्ध होगा। "संत मत का दूसरा नाम सुरति शब्द योग है। यह शब्दयोग संतमत का प्राण है, मर्म है, उसका सार है, सर्वस्व है। यह संत मत का मध्यम मार्ग है, इसमें न तो सिद्धों जैसी महामुद्रा की साधना है और न

---

१- पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७४।

२- डा० धर्मवीर भारती : सिद्ध साहित्य, पृ० ४०९।

३- वही।

४- वही, पृ० ४१०।

५- वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०२।

हठ योगियों जैसी कृच्छ्र काय साधना । यह लय योग है, यही सहज समाधि है । सभी सन्तों ने 'परचे' के अंग में इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही प्राणवन्त, हृदय-स्पर्शी और उल्लासपूर्ण वर्णन किया है ।'[१]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन्तों की योग-साधना न तो सिद्धों का कमल कुलिश का सुरत विलास है, न हठयोगियों का हठयोग, मंत्रयोग का 'सोऽहं' भी संतों को अग्राह्य हुआ । उन लोगों ने 'सोऽहं' के स्थान पर 'राम' का भजन करना उचित समझा । वस्तुतः यह वैष्णव प्रभाव था । वैष्णवों में रामभजन की बड़ी महिमा है और रामभजन को ही मुक्ति का साधन भी बतलाया गया है ।

## स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग

स्वामी रामचरण ने हठयोग, लय योग, सुमिरन के मिस मंत्र योग, एवं सुरति शब्द योग की चर्चा की है । यहाँ इन सभी पर स्वामी जी के दृष्टिकोण की संक्षिप्त चर्चा हमारा अभीष्ट है ।

### हठयोग

स्वामी जी ने 'हठजोग को अंग' के कवित और कुण्डलिया शीर्षकों में हठ-योग की समीक्षा की है । हठयोग में आसन, प्राणायाम तथा षट्कर्मों का विधान है । हठयोगी प्राणवायु का निरोध करता है । प्राणवायु के निरोध से कुण्डलिनी का जागरण होता है । कुण्डलिनी षट्चक्रों का भेदन करके ब्रह्मरंध्र में पहुँचकर ब्रह्म से मिल जाती है । प्राणवायु निरोध, कुण्डलिनी का जागरण और षट्चक्रों के भेदन की प्रक्रिया सहज नहीं ।

स्वामी जी कहते हैं कि योगी पवन का निरोध करके कान से बहुत बुझाता है, वह रात दिन इसी क्रिया में लीन रहता है पर राम का स्मरण कभी नहीं करता । कवि योगी को संबोधित करते हुए कहता है कि रामभजन के बिना तुम्हारे योग को ब्रह्म में ठिकाना नहीं --

---

१- वैद्य सेवनराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०२ ।

"जोगी पवन चढ़ाय काल सूं घाव चुकावै ।
निशिदिन पवन उपाय राम कबहुं नहि गावै ।
ज्यूं चाकर होय अमान धणीं सूं गढ़ रजि राखै ।
तब आवै फुरमान बचन सब उल्टा नांखै ।
रामचरण ब्रह्मा कल्प रहै आपणीं जोर ।
तांहि रामभजन बिन जोग कूं नहीं ब्रह्म मैं ठौर ।"[1]

योगी अष्टांग योग की साधना करता है, व शरीर, मन एवं इन्द्रियों का निग्रह करता है, प्राणवायु को पकड़कर रखता है किन्तु भजन बिना उसके ये सभी धंधे व्यर्थ हैं और वह आंख रहते अंधा है --

"नहीं ब्रह्म मैं ठौर और साधन जो साधै ।
करै जोग अष्टांग देह मन इन्द्री बांधै ।
प्राणवायु कूं पकड़ि पचै निशिवासर अंधा ।
करि हैं कूड़ी खेव भजन बिन सबही धंधा ।"[2]

कवि का विचार है कि स्वर-साधना, जलपान आदि यौगिक क्रियायें निरोग रहकर जीने के लिए की जा सकती हैं पर इससे मुक्ति नहीं मिल सकती । बिना रामस्मरण के मुक्ति संभव नहीं । इस प्रकार की योग साधना से न तो परमात्म-सुख ही मिल सकता है और न मन का भ्रम (माया अंधकारादि) ही दूर हो सकता है ।

"सुर साधन करि जल पिवै रहै निरोगा पोय ।
रामचरण इक राम बिन थाकी मुक्ति न होय ।
थाकी मुक्ति न होय झूठ कै सागै लागा ।
परमातम सुख त्याग भर्म उर का नहि भागा ।"[3]

---

१- अ० वा०, पृ० १२५ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० १७४ ।

यद्यपि स्वामी रामचरण ने इस रामस्मरण के मानने हठयोग की क्रियाओं की व्यर्थता प्रतिपादित की है किन्तु सुरति शब्द योग के वर्णन में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, त्रिवेणी, त्रिकुटी, अनहद नाद, मेरु की घाटी आदि हठयोग संबंधी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि संतों ने योग को भी स्वानुभूति का विषय बना लिया था और उसी आधार पर उन लोगों ने योग का ग्रहण किया था, अतः स्वामी रामचरण ने भी यदि हठयोग का परिष्कार कर लिया तो वह संत परंपरा के अनुरूप ही था। इस संबंध में डाक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी का यह मत समीचीन है -- उनका हठयोग प्रेम की डगर में चलते चलते नाथ योगियों का हठयोग न रहकर संतों का सुरति शब्द योग हो गया।[1]

लय योग
------

डाक्टर बड़थ्वाल लिखते हैं कि "लय योग" वह है जिसे निर्गुणी 'लौ' की संज्ञा देते हैं।"[2] स्वामी रामचरण ने 'लै को अंग' में 'लै', 'ल्यो' और 'ल्यौ' शब्दों का प्रयोग 'लय' के लिए किया है। लय योग पिण्ड में ब्रह्माण्ड निरूपित करता है। जो ब्रह्माण्ड में है वह सब पिण्ड में भी है। प्रकृति का पुरुष में लय होना ही लय योग है। कुण्डलिनी ही वह प्रकृति है जो जाग्रत होकर सहस्रार में स्थित पुरुष में लय होती है।[3]

स्वामी रामचरण कहते हैं कि लय पहले 'रसना' में लगती है, फिर रसना से चलकर हृदय में पहुँचती है, फिर रसना से चलकर हृदय में पहुँचती है। लय जब हृदय से लग जाती है तो वही अजपा जाप कहा जाता है। इस स्थिति में पाप-पुण्य का भय सदा के लिए मिट जाता है --

"प्रथम लै रसना लगी, रामचरण सिमि साम।
रसना सूं हिरदै गई, बाकै नहीं परकाम।

---

१- डा० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय (अप्रकाशित शोध प्रबंध, गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रंथालय, गोरखपुर)

२- डा० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० ३५५।

३- डा० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय (अप्रकाशित शोध प्रबंध, गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रंथालय, गोरखपुर)

हिरदै लै लागी रहै, योही अजप्पा जाप ।
रामचरण तब ना रहै, पाप पुण्य की ताप ।"[१]

वस्तुत: रसना से लय लाने का अर्थ नामस्मरण की आरंभिक अवस्था है जिसे जाप कहा गया है और 'अजप्पा जाप' का तो स्वामी जी स्वयं नामोल्लेख कर देते हैं। इस लय के लग जाने पर भ्रम की निकम्मी आदत छूट जाती है और तब राम मिलन होता है और लय का निवास (ल्यो की धाम) का दर्शन हो जाता है।

"रामचरण भ्रम ऊठतां, नाहर मिलसी राम ।
गई खोवुली बांण यह,दरसी ल्यो की धाम ।"[२]

स्वामी जी कहते हैं कि जब तक भ्रम (माया) से मुक्ति नहीं मिलती समझना चाहिए कि लय नहीं लगी क्योंकि लय लगते ही आनंद प्रकट हो जाता है --

"हिरदै लै लागी नहीं, जब लग भरम न जाय ।
रामचरणलैके लग्यां आणंद प्रगटै आय ।"[३]

लय लगने की पहचान यह भी है कि रातदिन, सोते-जागते कभी छूटे नहीं, सदा एक रसता बनी रहे। इस एकरसता से काल का जाल छूट जाता है और प्राणी कालातीत हो जाता है --

"लै लागी तब जाणिये, निसिदिन छूटे नांहि ।
रामचरण रहै एकरस, सोवत जागत मांहि ।
सोवत जागत एकरस, तो मार सकै नहि काल ।
रामचरण लै कै लग्यां, कटै काल की जाल ।"[४]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने लय योग की शास्त्रीय परिभाषा से अलग हटकर लय पर विचार किया है। उन्होंने लय को लगन

---

१- अ०वा०, पृ० १२ ।

२- वही ।

३- वही ।

४- वही ।

या `लौ` के अर्थ में उस सीमा तक लिया है जब `अजपा जाप` की स्थिति निर्मित हो जाती है। किन्तु जैसा डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि लय योग से आत्मानन्द का सुख मिलता है स्वामी जी भी कहते हैं कि लय लाने से आनंद प्रकट होता है। निष्कर्ष यह कि स्वामी जी लय में भी नामस्मरण या मंत्र योग को महत्व देते हैं।

मंत्र योग
------

मंत्र योग नाम-साधना है। सभी संत नामोपासक रहे हैं पर उन्होंने मंत्रयोग के `सोऽहं` को अपनी स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने इसका भी अपने ढंग से परिष्कार किया और `सोऽहं` के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा की। स्वामी रामचरण `साखी सुमरण को अंग` में स्पष्ट लिखते हैं कि `ओम् सोऽहं` शब्द माया के विस्तार हैं, केवल `रकार` माया रहित है --

`ॐ सोऽहं शब्द का, सब माया विस्तार।
रामचरण माया रहित, अक्षर एक रकार।`[1]

स्वामी रामचरण की यह साखी सोऽहं के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा ही नहीं करती वरन् सोऽहं के समक्ष राम शब्द की श्रेष्ठता भी यह कहकर प्रतिपादित करती है कि `ओम् सोऽहं` दोनों माया युक्त हैं और राम शब्द माया से परे है। यह राम-स्मरण इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह शब्द तारक मंत्र है। ग्रंथ `शब्द प्रकाश` में स्वामी जी ने बहुत ही स्पष्ट कहा है --

रामनाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरू, दे ये यो उपदेश।`[2]

कवि `हरिनाम` पर इसलिए न्योछावर है क्योंकि उसके स्मरण से माया-कारी में प्रियतम से परिचय हो गया। नामस्मरण से ही धुरनि शब्द संयोग भी होता है --

-----------------------------------

१- अ० वा०, पृ० ८।

२- वही, पृ० २०८।

"रामचरण हरिनाम की ह में अभिलाषी जांहि ।
सुमर्या पिव परचै भया काया नगरी मांहि ।
प्रथम शब्द श्रवणां सुणें, रसना रटण लगाय ।
सुरति समावै शब्द में, तब चित की चितवन जाय ।"[१]

स्वामी जी रामस्मरण को 'मोक्ष पंथ' घोषित करते हैं --

"सुमरै रमता राम कूं गुण इन्द्री मन जीत ।
रामचरण यह मोख पंथ, और सकल विप्रीत ।"[२]

और 'सवैया सुमरण को अंग' में तो वे रामस्मरण को 'निर्मल धर्म' की संज्ञा दे डालते हैं, इससे 'परमपद' की प्राप्ति हो जाती है --

"रामचरण्णा ये निर्मल धर्म है,
होय पुनीत परमपद पावै ।"[३]

इतना ही नहीं, जाने अनजाने भी यदि नित्य नामस्मरण किया जाय तो मुक्ति मिल जाती है --

"जानि अजानि रटै नित राम कूं,
रामचरण्णा तिरें ही तिरैगे ।"[४]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने राम के नामस्मरण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना ह । उन्होंने इसे मंत्रयोग से और भी श्रेष्ठ नाम 'मोख पंथ' और 'निर्मल धर्म' दिया है । यह राम-नाम का स्मरण ही सुरति शब्दयोग का द्वार भी उन्मुक्त करता है । वस्तुतः यह सभी योगों की कुंजी है । सभी योग इसी में समाहित हैं । डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने उचित ही कहा है -- "भक्ति योग, राज योग, मंत्रयोग, लय योग, हठ योग एवं ज्ञान योग भी उसी के विविध

---

१- अ० वा०, पृ० ७ ।
२- वही, पृ० ९ ।
३- वही, पृ० ८६ ।
४- वही, पृ० ८६ ।

रूपान्तर कहे जा सकते हैं । सभी के आधारभूत सिद्धान्त इसके भीतर आ जाते हैं ।[१] स्वामी जी `नाम निरणा को अंग` में `नाम का भेद कहो कूण भाई ? ` यह प्रश्न प्रस्तुत करके `राम` नाम के स्मरण की स्पष्ट घोषणा करते हैं --

"और सब नाम जुग जुग उपजैं खपैं,
एक रंकार रहै, अखण्ड जोई ।"[२]

स्वामी रामचरण का सुरति शब्दयोग
--------------------------------------

स्वामी रामचरण ने सुरति शब्द योग का वर्णन अणभै वाणी के `परचा को अंग` के विभिन्न छन्द शीर्षकों, `नाम प्रताप` एवं `शब्द प्रकाश` नामक लघु ग्रंथों तथा `अणभैविलास`, `जिज्ञास बोध` एवं `विश्वास बोध` आदि बड़े ग्रंथों में किया है । अन्य संतों की भाँति ही सुरति शब्द योग स्वामी रामचरण का स्वानुभूतिपरक योग है जिसे नामयोग की सिद्धि के सहारे प्राप्त होने की बात वे कहते हैं ।०"स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग" के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नामस्मरण ही सब योगों का योग है । यह सभी योगों का मूल है । `सुरति शब्द संयोग` इसी साधना से संभव है । इसे ही सहज योग भी कहा गया है ।

भजन प्रताप की चार चौकियाँ
-------------------------------

स्वामी जी ने सुरति शब्द योग की बड़ी स्पष्ट कल्पना प्रस्तुत की है । इस साधना के चार अवस्थान उन्होंने निरूपित किए हैं जिसे वे भजन प्रताप की चार चौकियाँ कहते हैं --

"चौकी भजन प्रताप की, संत कह गए च्यार ।
रामचरण या सत्य है, दूजा भरम अपार ।"[३]

---

१- डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५५ ।

२- अ० वा०, पृ० १६२ ।

३- वही, पृ० १३ ।

इन चार चौकियों के मुकाम क्रमशः कण्ठ, हृदय, नाभि और ब्रह्माण्ड है --

"रसना कण्ठ रस पीय कै, हिरदै सुख बिलास ।
नाभि कमल मैं उलटि कै, सुरति गई आकास ।"[१]

सुरति शब्द योग की साधना की इन चारों अवस्थाओं का वर्णन स्वामी जी ने 'नाम प्रताप' एवं 'शब्द प्रकाश' में बहुत स्पष्ट किया है । यहां कवि के अनुसार चारों चौकियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है --

प्रथम अवस्थान
----------

सुरति शब्द योग की साधना का प्रारंभिक अवस्थान नाम जप है । यह 'रामनाम' है जिसे स्वामी जी ने तारक मंत्र कहा है । जिज्ञासु या साधक को इस रामनाम की उपलब्धि गुरु से होती है --

"प्रथम नाम सतगुरु सूं पाया ।
श्रवणां सुनि कै प्रेम उपजाया ।"[२]

सतगुरु से प्राप्त रामनाम का श्रवण कर जिज्ञासु को शब्द के प्रति प्रेमानुभूति होने लगती है और तब वह रसना की श्रद्धा का जागरण करके निशिवासर 'राम-रटन' में लीन होता है ।

"पुनि रसना की श्रद्धा जागी ।
राम रटनि निशिवासर लागी ।"[३]

नाम के प्रति अनुराग भाव का जागरण ही रसना की श्रद्धा के जागरण का कारण होता है । तब अपर आशाएं समाप्त हो जाती हैं और सुरति रामनाम में

---

१- अ० वा०, ४०९३।

१- राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय ।
रसना सूं सरस्या शब्द कण्ठ होय हिरदै ध्याय ।
कण्ठ होय हिरदै ध्याय तृतीये नाभि निवासा ।
नाभिकमल सूं उलटि गगन जाय किया बिलासा ।
चौकी च्यारूं परसि कै सहज समाधि समाय ।
राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय ।"
-- अ० वा०, पृ० १४१ ।

२- वही, पृ० ३०८ ।

प्रथम नाम रसना सूं गावै ।
मन कूं पकड़ि एक घर लावै । -- वही, पृ० ३०९ ।

लग जाती है। मन एकाग्र हो जाता है और सुरति शब्द छोड़कर अन्यन नहीं जाती-

"दूजी आशा सकल बुझारी।
तब रामनाम में सुरति ठहारी।"[१]

इस समय साधक पद्मासन लगाकर मन को निश्चल कर लेता है और साँस-उसाँस के साथ राम जप में तन्मय हो जाता है। जप करते-करते नाम के प्रति उसकी आसक्ति साधक राम के वियोग में परिणत हो जाती है।[२] नामोच्चारण करते करते रसना की श्रद्धा उसके शिरोभाग से रसधार के रूप में स्रवित होने लगती है। यह स्राव अखण्ड होता है। इस स्राव का नीर दुग्धवत् होता है --

तब रसना शिर छूटै धारा।
लगी अखण्ड नहिं खण्डै नारा।"[३]

इसकी मिठास का क्या कहना। हर्ष और विश्वास की अनुभूति होने लगती है --

"रटतां रटतां भयो मिठास।
हर्ष भयो आयो विश्वास।"[४]

इस रसधार की मिठास से जल पीने की श्रद्धा समाप्त हो जाती है। साधक इस अमृत पान से पल भर भी विलग नहीं होना चाहता। इस रस-पान से भूख नहीं लगती है और सुखधारा की अनवरतता शिराओं को मुदित कर देती है --

---

१- अ० वा०, पृ० २०८।
राख सुरति शब्द की माँही।
शब्द छाँड़ि कहुं अनत न जाँही। -- वही, पृ० २०६।

२- श्वास उश्वासा घर्षण लागै।
आरति करि करि विरह जागै। -- वही, पृ० २०६।

३- वही, पृ० २०६।
रसना अब खुली इक नीरा।
प्रथम वाको पय सो नीरा। -- वही, पृ० २०८।

४- वही, पृ० २०६।

"जल पीवन की श्रद्धा नाँही ।
मलियाँ अमृत बूरि होइ जाँही ।
रप पीवत दुखा मब भागी ।
कण्ठाँ शब्द टगटगी लागी ।
नाड़ि नाड़ि मैं चलै गिलगिली ।
सुख धारा अति बहै पिलपिली ।
मुख सूं अक्षु न उचरै बैना ।
लग्या कण्ठ कपाट खुलै नहीं नैना ।
श्रवणाँ चर्चा सुणैं न कोई ।
कण्ठ ध्यान यह लक्षण होई ।"[१]

उपर्युक्त अवस्था को कवि `कण्ठ ध्यान` की संज्ञा देता है। इस अवस्था में शिरायें तो आनन्दानुभव करती ही हैं, मुख से वाणी नहीं फूटती, नयन कपाट बन्द हो जाते हैं, कान बाह्य चर्चा नहीं सुन पाते। शब्द जिह्वा से सरक कर कण्ठ स्थान में आ जाता है। `कण्ठ ध्यान` में कम्पन की अनुभूति होती है और रोम-रोम में शीतलता आ जाती है, हृदय गद्गद् हो जाता है, श्वास अवरुद्ध हो जाता है और नयनों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगती है --

"कण्ठ के ध्यान मैं कंमकंमी जागैं ।
रोम रोम पीतो सी लागैं ।
हियो गद्गदै श्वास न आवै ।
नैणाँ नीर प्रवाह चलावै ।"[२]

यह कण्ठ के ध्यान विरहानुभूति की स्थिति है। कण्ठस्थान पर साधक की सुरति नामी राम का वियोग अनुभव करने लगती है। यह बड़ी कठिन अवस्था होती है। मुख से बोला नहीं जाता, खान-पान की रुचि नहीं रह जाती, शरीर

---

१- अ० वा०, पृ० २०६।

२- कोई विषम रचना रस गटक्यौ ।
पीछै शब्द कण्ठ मैं अटक्यौ । -- वही, पृ० २०९

३- वही, पृ० २०६।

क्षीण हो जाता है, त्वचायें सिकुड़ जाती हैं, नसें नीली पड़कर झलकने लगती हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है, नेत्रों में लाली छा जाती है और ललाट आईने की ज्योति सदृश दीप्त हो उठता है, कंपन और सिहरन चलने लगने लगती है, छाती रूंध जाती है। विरहिणी की ऐसी दशा हो जाती है। इस अवस्थान को या तो गुरु ही जानता है [जो विरह जगाता है] या फिर विरही स्वयं जो इसे झेलता है।[१]

द्वितीय अवस्थान
-------------
कण्ठ स्थान की कठिनाई पारकर शब्द ने हृदय में प्रवेश किया।[२] यह साधना का द्वितीय अवस्थान है। कण्ठस्थान से चलकर हृदय देश में शब्द के प्रवेश की क्रिया का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि एक दिन एक तमाशा हुआ, कण्ठ और हृदय के बीच 'हुलास' जगा। द्रवित होकर हृदय में 'नीर सुखम रस' प्रवाहित होने लगा और 'शब्द ब्रह्म' हृदय में वास करने लगा। अंधेरी निशा में शशि के आलोक का अनुभव होने लगा --

---

१- कण्ठ स्थान बहुत कठिनाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।
खान पान में रुचि रहे थोरी।
मारग रुक्यो जाय कब घोरी।
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी।
नीली नस दीसै झलकानी।
पीरी बदन नैनरां लाली।
मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली।
चलै कंपकंपी ई थररावै।
छाती रूंधै श्वास न आवै।
ऐसी विधि विरहिनि की होई।
विरहि जाणै कै सतगुरु सोई। -- कब अ० बा०, पृ० २०९।

२- एक दिवस ऐसी बनि आई।
शब्द सरक गयो हिया मांही।
-- वही, पृ० २०९।

"एक दिवस इक भया तमासा ।
कण्ठ हृदा बिच उठ्या हुलासा ।
ज्यूं पाला की डोरणि छूटी ।
हिरदै नीर सुखमरस ऊठी ।
शब्द कुस हिरदै किया बासा ।
ज्यूं रैण अंधेरी चंद प्रकाशा ।"[1]

परमसुख से हृदय आलोकित हो उठा जैसे रवि ने अंधकार को विनष्ट कर दिया हो --

"परम सुक्ख हिदै परकाशा ।
ज्यूं रवि कीनी तमको नाशा ।"[2]

इस अवस्थान को कवि ' हृदय ध्यान ' की संज्ञा से अभिहित करता है । इस अवस्था में भ्रम, कर्म, संशय सभी दूर जा पड़े और हृदय में अखण्ड जाप होने लगा । जब हृदय-ध्यान की ध्वनि स्फोट होने लगती है तो सभी अन्य साधन लुप्त हो जाते हैं । इस सुख की महिमा अवर्णनीय है ।[3] हृदय के भीतर होने वाले इस सहज सुमिरन का रहस्य बाहर कोई नहीं जान पाता --

"सहजै सुमरण हिरदैव होई ।
बाहिर भेद न जांणै कोई ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० २०६ ।

२- वही, पृ० २०९ ।

३- भर्म कर्म सांसो गयो भागी ।
हिरदै ध्वनी अखण्ड लिवलागी ।
कहा कहूं या सुख की महिमा ।
और सुख सब दीसै पल मा ।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई ।
दूजा साधन रहै न कोई ।" --- वही, पृ० २०६-२०७ ।

४- वही, पृ० २०९ ।

सोते जागते हर अवस्था में यह सहज सुमिरन चलता रहता है। वन-बस्ती की शंका नहीं रह जाती। यह कवि की दृष्टि में `अब `अजपा जाप` की स्थिति है। इस अवस्था में बाहरी साधन बिला जाते हैं।

"सोवत जागत डोरी लागी ।
बन बस्ती की शंका भागी ।
रसना जप्यां अजप्पा पाया ।
बाहिर साधन सकल बिलाया ।"[१]

प्रेम का जागरण हो जाने पर सांसारिक मर्यादाओं के नियम बन्धन समाप्त हो जाते हैं। इस प्रेम साधना[२] द्वारा ही साधक को शरीर में `राम धाम` मिल जाता है --

"जाग्यो प्रेम नैम रह्यो मांही ।
पाई रामधाम घर मांही ।"[३]

तृतीय अवस्थान

उर स्थान में विश्राम कर शब्द नाभिप्रदेश में पहुंचता है। यह तीसरा मुकाम है --

उर अस्थान पाय बिसरामा ।
शब्द किया जाय नाभि मुकामा ।"[४]

`नाम प्रताप` में `शब्द` को कवि `लै` कहता है। यह `लय` नाभिकमल में पहुंच जाकर चैतन्य हो जाती है --

"हिरदै सूं लै धरणी गई ।
शब्द मिलत नभ-नभि-मुकामा ।"[४]
नाभिकमल में चेतन भई ।"[५]

---

१- अ० बा०, पृ० २०६ ।

२- "सुमिरन एक प्रकार की प्रेम साधना है।"
---डा० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय [नया संस्करण], पृ० २५३ ।

३- अ० बा०, पृ० २०६ ।

४- वही ।

५- वही, पृ० २०७ ।

यहाँ पहुँचकर शब्द गुंजन करने लगता है जिससे सभी नाड़ियां जागृत हो जाती हैं। रोम-रोम से राग ध्वनित होने लगते हैं और नौ सौ नाड़ियाँ का मंगलगीत सुनायी पड़ता है। यहाँ मन मधुप को अतीव सुख मिलता है --

"शब्द गुंजार नाड़ि सब जागे ।
रोम रोम में उठि रही रागे ।
नौ से नारी मंगल गावै ।
तहाँ मन भंवरा अति सुख पावै ।"[१]

काया शीतल हो जाती है क्योंकि शब्द को ब्रह्मरस का अमृत प्राप्त हो जाता है।[२] रोम रोम तांत यंत्र की तरह झंकृत होने लगता है --

"रोम रोम झणकार फुणकै ।
जैसे जंतर तांत ठुणकै ।"[३]

<u>चतुर्थ अवस्थान की ओर</u>

नाभि प्रदेश में ब्रह्मरस की अनुभूति करने के बाद शब्द गगन[४] की ओर अपनी यात्रा आरंभ करता है। गगन का रास्ता मेरुदण्ड की घाटी से होकर है। इस मेरु में बीस गांठे हैं। शब्द के वेग से बीसों गांठे फट जाती हैं और गगन का मार्ग खुल जाता है।[५]

---

१- अ० वा०, पृ० २०७।
नाभिकमल में शब्द गुंजारे
नौ से नारी मंगल उचारे। -- वही, पृ० २०९।

२- शीतल भई सबै ही काया।
शब्द ब्रह्म रस अमृत पाया। -- वही, पृ० २०७।

३- वही, पृ० २०९।

४- गगन शरीर के भीतर का वह आकाशवत् अन्तराल है जिसमें ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है और जहाँ से अनाहत की ध्वनि सुन पड़ती है। इसको कभी-कभी 'शून्य' भी कहा करते हैं। -- पं० परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, पृ० ५७१।

५- पश्चिम दिशा मेरु की घाटी।
बीसूं गांठि घोर सैं फाटी।"-- अ०वा०, पृ० २०९।

"अब तो शब्द गगन कूं चढ़िया ।
पश्चिम घाटि होइ करि अनुसरिया ।"[१]

घाटी के मार्ग से होकर शब्द त्रिकुटी[२] पर पहुंचता है। इसके ऊपर 'अनहद' बजता है। यह त्रिकुटी इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना का त्रिवेणी संगम है। इस त्रिवेणी घाट पर स्नान कर के जीव गगन में प्रवेश करता है --

"पद्मिनी बैठा त्रिकुटी छाजे ।
जाके ऊपर अनहद बाजे ।
त्रिवेणी तट कुल न्हवाया ।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया ।

छन्द छि०
इंगला पिंगला सुखमणा, मिले त्रिवेणी घाट ।
जहां मानक जल झूलिके, निर्मल होय निराट ।
अब त्रिवेणी न्हाइकै, कीया गगन प्रवेश ।
तीन लोक सूं अलग सुख, यो कोई चौथा देश ।"[३]

चतुर्थ अवस्थान

अभी तक जिन लोकों के सुख की चर्चा हुई है उससे बिल्कुल भिन्न सुखों वाला यह कोई चौथा देश है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने इस अवस्थान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "यह साधना की अंतिम भूमिका है जहां सुरति शब्द को पकड़कर एकमेक होकर शाश्वत सुख लूटती है। सुरति सुंदरी के साथ

---

१- अ० वा०, पृ० २०७ ।

२- "त्रिकुटी - भ्रूमध्य में स्थित वह बिन्दु जहां पर इड़ा पिंगला एवं सुषुम्ना योग नाड़ियों का मिलन होता है और जिसे इसी कारण 'त्रिवेणी' भी कहा जाता है।" -- पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० ५७२ ।

३- अ० वा०, पृ० २०७ ।

त्रिकुटी संगम कीया स्नाना ।
जाइ चढ़्या चौथे अस्थाना । -- वही, पृ० २०९ ।

शून्य महल में पूर्णानन्द पुरुष ररंकार का यह मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन -- यहां संत साधना का अनर्घ अध्याय होता है।"[१]

इस गगन लोक (चौथा घर) में निरंजन सिंहासनासीन है जिसकी ज्योति के प्रकाश से अनन्त सूर्य शोभा पाते हैं। जहां अनहद नाद अगणित रागों में ध्वनित होता रहता है। जहां सुषुम्ना नीर की फुहार निरंतर स्रवित होती रहती है जिससे सुरति भींग कर शीतल हो जाती है। जहां अर्द्ध-ऊर्ध्व कमल विकसित है और सुरति भंवरा बनकर विलसती है। जहां अनहद की 'घररघरर' सुन पड़ती है और परम ज्योति का विद्युत प्रकाश दीख पड़ता है --

> "जहां निरंजन तख्त बिराजे।
> ज्योति प्रकाश अनन्त रवि राजे।
> अनहद नाद गिणत नहिं आवै।
> भांति भांति की राग उपावै।
> स्रवै सुषुम्णा नीर फुहारा।
> शून्य शिखर का यह विस्तारा।"[२]

'कुण्डल्या को अंग' में स्वामी जी इसे 'ब्रह्म सभा' कहते हैं। इस ब्रह्म सभा का विस्मयकारी वर्णन उन्हीं की पंक्तियों में प्रस्तुत है --

> "बिन रसना गुण गाइये बिनकर बाजै तूर।
> बिन श्रवणा अनहद सुणै जहां ब्रह्मसभा भरपूर।
> जहां ब्रह्मसभा भरपूर और कोई निजर न आवै।
> सुरति रही मठ छाय दैह तहां जाणि न पावै।

---

१- वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ११०।

२- अ० वा०, पृ० ३०९।

> "घरर घरर अनहद घहरावै।
> परमज्योति दामणि भलकावै।
> सुषुमण नीर बूंद भड़िलाई।
> भीजत सुरति शीतल होई जाई।
> अर्ध ऊर्ध जहां कमल प्रकासा।
> सुरति भंवर होइ करत विलासा। --- वही, पृ० ३०७।

रामचरण वै देश में बहु परकाशे सूर ।
जिन रपना गुण गाइये जिनकर बाजै तूर ।"[१]

अपने ग्रंथ `जिज्ञास बोध` के पंचम प्रकरण में स्वामी जी उस आम स्थान में सुरति शब्द संयोग का दृश्य-वर्णन करते हैं --

"जागी ज्योति जात गुरु परस्यों, परस्यों अब आम पयाना वै ।
रसना बिना रामधुन लागी, जानै संत सुजाना वै ।
गगन मण्डल में बाजै अनहद सुणि कै निमही काना वै ।
चरण बिना जहाँ नृत्य करत हैं देखत है कुल दाना वै ।
भाँति भाँति सुखदाई नाटक, प्रेम मगन गलताना वै ।
रीझ रमइया मौजा करी, जांमण मरण मिटाना वै ।"[२]

उस आम लोक के अनाहद नाद का अलौकिक स्वर संगम का एक चित्र `रेखता प्रचा की अंग` में स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है --

"घोर अनहद की गगन गिरणाइया होत बहु सोर नहिं कहत आवै ।
झालरी बीणा मरदंग सहनाईयाँ बाँसुरी तान भुणकार लावै ।
भेरि नरसिंग करनाल बंक्या बज कै अरु उपंग गति करत न्यारी ।
एक इक नाद मैं राग नाना उठै मधुर स्वर मधुरस्वर करत भारी ।
मंजीरा मान घघकार धौंसा करै गिड़गिड़ी राय मौ सोंचा बाजै ।
रुणा भुणूं रुणाभुणूं नृत्य ज्यूं घुघरू घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै।[३]

इसी पंचम में स्वामी जी कहते हैं कि संसार में ३६ रागों का वर्णन किया गया है पर संतजन गगन में `बेपरमाण अनहद` सुनते हैं --

"रामचरण संसार मैं, राग छतीस बखांण ।
संत सुनत है गिगन मैं, अनहद बेपरमाण ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० १४१ ।

२- वही, पृ० ५४० ।

३- वही, पृ० ९९२-९३ ।

४- वही, पृ० १४ ।

उस चौथे देश की बात अतुलनीय है, मुख से उसका वर्णन संभव नहीं। प्रत्यूष-वेला के अरुणालोक सदृश उस धाम देश का अवर्ण्य आलोक है। जहां अनहद गरजता रहता है, गगन झरता है, दामिनी चमकती है, वहीं सागर के तट पर हंस निवास करता है। हंस में सागर समा गया। हेत की यही समाप्ति है।[१]

सुरति शब्द का संयोग बूंद और समुद्र का संयोग है। जैसे बूंद समुद्र में मिल जाती है, फिर उसे पकड़ा नहीं जा सकता वैसे ही जीव और ब्रह्म का मिलन अभिन्न है। स्वामी जी कहते हैं कि जब तक यह स्थिति न आजाय, ध्यान नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि राम के बिना सारा ज्ञान ही फोकट है --

"जैसे बूंद मिली सायर मैं।
कैसे पकड़ि सके कोई कर मैं।
जीव ब्रह्म मिली भया समाना।
ब्रह्म मिल्या फेरि नहिं आना।
एक बचन बरस्यां बिना, मति जाइ छोड़ी ध्यान।
रामचरण इकराम बिन, सबही फोकट ज्ञान।"[२]

यही स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग की संक्षिप्त समीक्षा है। वैसे अपने विभिन्न ग्रंथों एवं फुटकर पदों में उन्होंने सुरति शब्द योग का वर्णन भिन्न विभिन्न प्रतीकों द्वारा भी किया है।

---

१- "या तो बात अतोल है भाई।
मुख सूं कहा तोल तुवै जाई।
... ... ...
रूप वर्ण कैसो तहं वाको।
ऐसो कहो बखानो जाको।
अनहद गरजै नभ झरै, दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायरां, हंसा करत निवास।
सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस में रह्या समाई।" --- अ० धा०, पृ० २०७।

२- वही, पृ० २०८।

भक्ति

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि निर्गुण संतों की भक्ति पर वैष्णव सिद्धांतों का प्रभाव रहा है। यद्यपि संतमत के मूल में नाथों की योग-साधना आबद्ध है फिर भी संतमत के विकास के समय वैष्णव-भक्ति की भावधारा इतनी प्रबल थी कि वह संतों की साधना की एक प्रमुख भूमिका बन गई। शनैः शनैः योग की कठिन प्रक्रियाओं का संत-साधना से एक प्रकार से बहिष्कार-सा हो गया। अब वे सुरति-शब्द योग के अभ्यासी बन गए थे, जिनकी सफलता की भावभूमि में वैष्णवों के राम-भजन की प्रमुख भूमिका रही है। डा० रामकुमार वर्मा का निम्नलिखित मत इस विचार की पुष्टि करता है। वे लिखते हैं --"रामानन्द के प्रभाव से राम और उनकी भक्ति का प्रचार इतना अधिक था कि संत सम्प्रदाय में भी राम और उनकी भक्ति का रूप स्वीकार किया गया। यह बात दूसरी है कि राम का नाम ही संत-मत में मान्य हुआ, राम का व्यक्तित्व नहीं। राम के ब्रह्म रूप को विस्तार देने के लिए एक ओर अवतार और मूर्ति का खण्डन किया गया और दूसरी ओर राम के अनेकानेक नाम तथा उनके निर्गुण रूप पर अधिक बल दिया गया।"[१]

डा० वर्मा के इस दृष्टिकोण को और भी स्पष्टता संत विनोबा की इन पंक्तियों से प्राप्त होती है जिसे "श्री रामसनेही सम्प्रदाय" के लेखकों ने उद्धृत किया है। "कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण निराकार का ध्यान करते हैं। अगर हम जहाँ निर्गुण-निराकार को छोड़ते हैं, सगुण-साकार में आ जाते हैं। लेकिन इन दोनों के बीच सगुण-निराकार की भी एक भूमिका होती है। इसमें भगवान को निराकार मानते हुए भी दया, वात्सल्य आदि अनन्त गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है।"[२] वस्तुतः निर्गुण निराकार भगवान में आदर्श गुणों का आरोप वैष्णव भक्ति की भावधारा का प्रभाव है। संतों की भक्ति-साधना का अध्ययन करते समय उक्त विचार पर दृष्टि रखना नितांत आवश्यक है।

---

१- सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), पृ० २०७।
२- श्री केवलराम स्वामी : श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ८९-९०।

स्वामी रामचरण की भक्ति-समीक्षा के संदर्भ में यह ध्यातव्य देने योग्य है कि स्वामी जी ने रामावत वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी। उनकी गुरु गद्दी दांतड़ा की वैष्णव गद्दी है। उनके गुरु स्वामी कृपाराम जी परम वैष्णव संत थे जिनकी स्वामी जी ने अपनी 'अणभैवाणी' एवं अन्य ग्रंथों में भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्वामी रामचरण के जीवन-वृत्त से यह भलीभांति स्पष्ट है कि वे अपने विरागी जीवन के आरंभ में एक रामानन्दी साधु के रूप में विख्यात थे और बाद में निर्गुणो-पासक हुए। अतः स्वामी जी के भक्ति विषयक दृष्टिकोण पर वैष्णव प्रभाव स्वाभाविक है। 'श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने लिखा है कि --"इस दृष्टि से स्वामी रामचरण जी की वाणी में भगवान का सगुण-निराकार रूप आया है ; पर, सगुण होते हुए भी वह अविचल है --व्योमवत् ; यही उसका वैशिष्ट्य है और यही मध्य भूमिका है।"[1]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में भक्ति

महिमा

स्वामी रामचरण के विशाल साहित्य में सर्वत्र- भक्ति-भावना का आरोपण मिलता है। स्वामी जी ने भक्ति की श्रेष्ठता का अनुभव किया है। उनकी दृष्टि में भक्ति से सभी कुछ संभव है। 'कवित भक्ति महिमा को अंग' में भक्ति की महिमा का गायन करते हुए वे कहते हैं कि भक्ति के प्रभाव से सूखा सरोवर पल भर में जलपूरित हो सकता है और भरापूरा जलाशय उसी क्षण सूख भी सकता है। जलाशय ऊसर में परिणत हो सकता है। राक्षस कुलोद्भव प्रह्लाद 'भक्ति के खंभ' से ही उजागर हो गया और राजा उग्रसेन का पुत्र कंस दुर्बुद्धि के कारण असुर हो गया। स्वामी जी की दृष्टि में भगवान की गति वर्णनातीत है, वह अनहोनी को होनी में बदल देता है और जो होनी है वह विला जाती है --

> "सूका सखर भरै भर्या पलमांहि सुकावै।।
> सर सूं ऊसर होय ऊसर्या सर होय जावै।

---

1- केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ९० ।

राक्षस कुल प्रह्लाद भक्ति से भये उजागर ।
उग्रसेन सुत कंस भये आसुर बुधि आगर ।
रामचरण कहि कहा हरिगति लिखी न जाय ।
जग जोणी जोणी करै जोणी जाय बिलाय ।"[1]

यह भक्ति ही है जिसकी महिमा से ध्रुव स्वर्ग को सुशोभित कर रहे हैं और सप्तर्षि उनकी परिक्रमा में रत हैं। भगवान तो अपने भक्त के प्रेम के भूखे हैं, इसीलिए तो ब्राह्मण और ऋषियों को छोड़कर शबरी का जूठन लिया। दुर्योधन का यज्ञ त्यागकर विदुर का 'साग' ही खाया।--

"ध्रु राजत बैकुण्ठ सप्त परिक्रमा देवै ।
बड़े विप्र ऋषि माहिं, झूठ शबरी को लेवै ।
... ... ...
दुर्योधन किया त्याग विदुर को साग ही पायो ।"[2]

स्वामी जी ने बड़े निःसंकोच शब्दों में कहा कि हरिभक्ति के बिना कुल की उत्तमता व्यर्थ है, यदि यवन और चाण्डाल भक्त हैं तो उत्तमकुलीन भी उनकी तुलना में नहीं आ सकते। भगवान का भजन करने वाले ऊँच-नीच सभी समान हैं। भक्ति की दुनिया में सर्वश्रेष्ठ जाति भक्तों की होती है। भक्ति-भावना से रहित ऊँच और श्वपच में कोई भेद नहीं --

"उत्तम कुल किस काम जहाँ हरि भक्ति न होई ।
भक्त जवन चंडार तास तुलि और न कोई ।
... ... ...
ऊँच नीच हरि कूं भजे सो ही उत्तम जान ।
रामचरण हरिभजन बिन ऊँचहि श्वपच समान ।"[3]

---

१- अ० वा०, पृ० १२६ ।
२- वही ।
३- वही ।

इसी अंश में उन्होंने हनुमान, विभीषण, अजामिल, अंबरीष आदि अनेक भक्तों की चर्चा की है। इसी संदर्भ में स्वामी जी कहते हैं कि हरिभक्ति के बिना सभी साधन निरर्थक हैं --

रामचरण हरिभजन बिन साधन सब बेकाम।
तातें साधन साधि कै निशिदिन रटिये राम।"[1]

ग्रंथ 'अगाधी विलास' के तृतीय प्रकरण में 'चौरासी की धारा' के इलाज रूप में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को महापद घोषित करते हुए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ निरूपित करते हैं। उनके अनुसार अन्य साधन भय-रहित हैं एक भक्ति ही भय रहित है --

"चौरासी की धारा भारी, जाको यह इलाजा।
ज्ञान भक्ति वैराग्य महापद, जानों धर्म जिहाजा।
यो अब सुणों कहूं गति जाकी, पाकी सुधि नर भाई।
जाकी शास्त्र निगम नित गावैं, सो गुरुदेव बताई।
दृढ़ता येती उर में धरिये, करिये कारज भाई।
और सकल साधन भय भरिया, भक्तिनिर्भय भाई।"[2]

'ग्रंथ जिज्ञास बोध' के द्वितीय प्रकरण में स्वामी रामचरण भक्ति को 'भव नीर' के पोत के रूप में निदर्शित करते हैं जिस पर चढ़कर अनेक स्त्री-पुरुष पार उतरे हैं। भक्ति के समान तीनों लोक में दूसरा कोई धर्म नहीं। अनन्त पुण्य, पाठ, तप जाप, यज्ञ, वेद विद्या, योग-साधना, तीर्थ, दान, स्नान, पर्व आदि तुलना में भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। षट्दर्शन, वर्णाश्रम धर्म की साधना भले ही कीजिए पर बिना भक्ति के भगवान में प्रेम नहीं होता --

"भक्ति भवनीर पर जांन ये पोत है बहुत नर नारि चढ़ि पार हूवा।
भक्ति सों धर्म तिहुं लोक में को नहीं भक्ति सधि सकल तांहि हूवा।

---

१- अ० वा०, पृ० १२६।
२- वही, पृ० २२१।

अनन्त पुन पाठ तप जाप जज्ञादि पे वेद विद्या पढ़ै जोग धारा ।
तीरथां दान संनान पव्यां तणां तो निह भक्ति सम नांहि पारा ।
दर्शणी वरण आश्रमका धर्म पन पाधिये भक्ति बिन प्रेम नांहीं ।
राम ही चरण कोउ सरण के आतमा भये जा पार निज भक्ति मांही।[1]

'ग्रंथ अमृत उपदेश' के तीसरे प्रकाश में स्वामी रामचरण भक्ति को 'नित्य धर्म' की संज्ञा देते हुए उसे आद्य बताते हैं। भक्ति से पावनता मिलती है, यह भ्रम-विनाशिनी एवं कर्म की मलिनता दूर करती है, शुद्ध चित्त में ही इसका ग्रहण होता है --

"भक्ति को आद्य कहै वेद रु पुराण साध ।
साधु को अन्त होय जोय धर्म नित्त है ।
पावन करन मल हरन मलीन कर्म,
भ्रम को विनाश करै धरै शुद्ध चित्त है ।"[2]

स्वामी जी हरिभक्ति को मानव की ऋतु कहते हैं जिसे करने से मनुष्य पावन होता है ।

"नर की ऋतु हरि भक्ति है जिस्यांस पावन होय ।
रामचरण निज भक्ति बिन, पावन करै न कोय ।"[3]

रामभक्ति की गंगा के अवगाहन से ही मनुष्य निर्मल होता है, गंगा, गया के स्नान निर्मलता नहीं प्रदान कर सकते । रामभक्ति की भागीरथी में स्नान करके निर्मल हुए भक्त की प्रसिद्धि होती है, बखान होता है पर गंगा गया के स्नानार्थी को कौन जानता है ? भक्ति में ऊंच-नीच के सभी कर्मों को धो डालने की क्षमता है --

"रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय ।
रामभक्ति भागीरथी करम निर्मल होय ।

---

१- अ० वा०, पृ० ५३५ ।

२- वही, पृ० ४४३ ।

३- वही ।

करै य निर्मल होय, मन मिथ्यात बखाणै ।
गंगा गया स्नान किया ताहि कोइ न जाणै ।
ऊंच नीच कुल का कमै भक्ति डारै धोय ।
रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय ।"[1]

ग्रंथ 'विश्रामबोध' के चतुर्थ प्रकरण में स्वामी जी रामभक्ति की सूक्ष्मता का निरूपण करते हैं । उनकी दृष्टि में 'रामभक्ति महाझीणा' (अति सूक्ष्म) है, इसे वही कर सकता है जो सूक्ष्म हो, यह भक्ति-स्थूल मन की साधना का विषय नहीं है --

"रामभक्ति महाझीणी है, झीणा झीणी पाय ।
मोटा मन सूं ना सधै, कोइ साधै झीणा होय ।"[2]

इसी प्रकार ग्रंथ 'दृष्टान्त सागर' में अनेक दृष्टान्तों द्वारा भक्ति की महिमा स्वामी जी ने गायी है । स्वामी रामजन जी की टीका वचनिका में भक्ति की प्रमुखता है ।

## ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के प्रतीक

स्वामी रामचरण ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनों में भक्ति को ही प्रमुखता दी है, यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है । ग्रंथ 'अणभै विलास' के तीसरे प्रकरण में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य, तीनों की विशेषता[3] निरूपित करते हुए कवि ने कतु प्रतीक के द्वारा तीनों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है --

---

१- अ० वा०, पृ० ४४३ ।

२- वही, पृ० ६७२ ।

३- "ज्ञान भक्ति वैराग्य की खरा खरी यह बात ।
आपा करै आप कूं करै नहीं परघात ।
करै नहीं परघात भक्ति जहां भमै न कोई ।
ज्ञान सबै निर्दोष त्याग वैराग्य स होई ।
रामचरण जे पहुंचसी निर्भय पदकुशलात ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य की खराखरी यह बात ।" --
-- अ०वा०, पृ० ३३१ ।

"शीत गरम ऋतु शील में ग्रीषम अधिक तपांहि ।
तन समझ्या और अब पावस अति बर्षांहि ।
पावसअति बर्षांहि चहन मन मोद उपावै ।
यूं प्रथम ज्ञान वैराग्य उभय मिलि भक्ति बधावै ।
ये ज्ञावांणी आगम कहै जांणो तो नहि जांहि ।
शीत गरम ऋतु शील में ग्रीषम अधिक तपांहि ।"[1]

शीत, ग्रीष्म और पावस, इन तीन ऋतुओं में शीतकाल अतीव शीतल, ग्रीष्म अतीव तापमय और पावस अति वृष्टि की ऋतु है। यद्यपि पावस में अत्यधिक वृष्टि होती है पर वह ऋतु मन में मोद बढ़ाती है। इसमें शीत ज्ञान का, ग्रीष्म वैराग्य का और पावस भक्ति का प्रतीक है। इस प्रतीक में वर्षा अर्थात् भक्ति को मनमुदित करने वाली कहा गया है। निस्संदेह भक्ति, वैराग्य और ज्ञान से अधिक महिमामयी सिद्ध होती है। इन तीनों ऋतुओं के भेद से ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का भेद स्पष्ट हो रहा है और भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन भी। स्वामी जी के निम्नलिखित `दृष्टान्त` एवं उसकी टीका वचनिका द्वारा यह विषय भलीभांति स्पष्ट हुआ है --

`च्यार भ्रात आगै चलै च्यार भार मधि च्यार ।
च्यार सुलक्षणां कर रहै आठलणूं अधिकार ।
आठ लणूं अधिकार च्यार जिन आदर नांही ।
आठ बाट होय जाय बालखा निजर छिपांही ।
च्यार रैंथ्यां आठां मिलै भज्जन लाभ फार ।
च्यार भ्रात आगै चलै च्यार लार मधि च्यार ।"[2]

इस मूल प्रतीक को `वाणी` में टीका वचनिका[3] द्वारा स्पष्ट किया गया है। प्रतीक का स्पष्टीकरण यहां दिया जाता है।

एक वर्ष में १२ मास होते हैं। इस एक वर्ष को पिता और १२ महीनों को पुत्र माना गया है। चार-चार महीने की एक एक ऋतु हुई, यथा-चार महीने की ग्रीष्म ऋतु, चार महीने की पावस और शेष चार महीने की शीत ऋतु। वर्ष पिता

---

१- अ० वा०, पृ० २२१।
२- वही, पृ० २२१-२२२।
३- `~~भ्रमगमल वैराग्य अहिमे~~` -- वही, पृ० २२१२४

के १२ मास-पुत्रों को तीन भागों में संगठित कर दिया गया है । इन १२ पुत्रों के ०२ लक्षण हैं जिनका ब्यौरा चार-चार के तीन विभागों में अलग अलग प्रस्तुत किया गया है स्वामी ब जी धूपकाल को वैराग्य, वर्षाकाल को भक्ति और शीतकाल को ज्ञान का प्रतीक मानते हैं । फिर प्रत्येक मास को उसके साधना भेद से जोड़ते हैं । हर महीना अपनी ऋतु के अन्तर्गत क्रमशः वैराग्य, भक्ति और ज्ञान की विभिन्न साधना अवस्थाओं का प्रतीक है ।

१- धूप काल
------- वैराग्य का प्रतीक है ।[1] इसके अन्तर्गत स्वामी जी ने फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ के महीनों को रखा है । ये चारों महीने वैराग्य के चार अवस्थाओं के प्रतीक हैं । यथा --

(क) पतझड़ फागुन -- पतझड़ का महीना है । जैसे वृक्ष फागुन में पत्तों का परित्याग कर देते हैं वैसे ही साधक वैराग्य लेकर सांसारिक आवरण से मुक्त होता है । वर्णाश्रम, कनक, काम का परित्याग करता है ।[2]

(ख) चैत्र -- धूपकाल का द्वितीय मास चैत्र चित्त की एकाग्रता का प्रतीक है ।[3]

(ग) वैशाख -- साधक लोक और परलोक दोनों की वासना का त्याग करता है ।[4]

(घ) ज्येष्ठ -- यह मास ताप की चरम सीमा है है । यह महीना नदी, नाले, धरती सभी को सुखा देता है । साधक इसी प्रकार वैराग्य द्वारा शरीर के गुण सुखा देता है । शरीर एवं मन को तपा कर विरक्तातुर होकर अतिशय वैराग्य में लीन

---

१- 'धूपकाल वैराग्य अखिये' -- अ०था०, पृ० २२१ ।

२- ' प्रथम फागण मास सो फकीरी लेवे,
    ज्यों द्रुम पातन को त्याग करें,
    वर्णाश्रमादिक कनक काम परिहार करें,
    निवृत होय मनवचन कायकर इंत पर्णों विचारे
                    -- वही, पृ० २२१-२२ ।

३- है द्वितीय चैत्र, सो चित्त एकाग्र करें । -- वही, पृ० २२२ ।

४- तृतीय वैशाख, सोवै नाम दोय लोक की वासना तजे । -- वही ।

होता है। इस प्रकार वैराग्य दृढ़ होता है।[१]

२- वर्षा काल
भक्ति का प्रतीक है। वैराग्य की उष्णता भक्ति रूपी वर्षा से शान्त होती है।

(क) आषाढ़-- राम भक्ति की आतुरता का प्रतीक है। यह बीजारोपण का महीना है। भक्त नाम रूपी बीज गुरु से प्राप्त करता है। हृदय की धरती में रचना की साधना से रामनाम रूपी भक्ति का बीज साधक बोता है। प्रेम की वर्षा से उसका सिंचन होता है।[२]

(ख) श्रावण -- जैसे सावन के महीने में धरती पर हरियाली छा जाती है, वैसे ही शरीर में भजन द्वारा भक्ति की झड़ी लग जाती है, धरती की हरियाली मधुरा शरीर की कांति बढ़ जाती है। हृदय में भजन का अंकुरण होता है।[३]

(ग) भाद्रपद -- पावस का यौवन काल है। घटाएं उमड़ती हैं, गरजती हैं, बिजली चमकती है, नीर बरसता है, वैसे ही साधक के हृदय में प्रेम की घटा उमड़ती है, आनन्द की गाज सुन पड़ती है, नाम विद्युत का आलोक भासित होने लगता है,

---

१- चतुर्थ जेठ, सो जेठ पृथ्वी का नदी निवाँण सोषन्त करै, जैसे ही विरागी जन तब वैराग्य कर शरीर का गुण शोषन्त करै, जन पणाँ विचारै, मन लो निवाँण इन्द्रीनाला, नदी, तिनके विकार, शोषन्त करै, विरह वियोग उपजाय, तन मन तपायमान करै,. ... ऐसे प्रथम वैराग्य की दृढ़ता होय

--- वशिष्ठ ब० वा०, पृ० २२१।

२- आषाढ़ मास जो राम जी की भक्ति की आतरि कहिये, सो गुर बीज रूपी रामज को नाम प्राप्ति करै..... अरु वर्षा प्रेम के आगमकु माहीं कहिये..... रसना रूपी साधना करि कै, ज्यूं हिरदा रूपी भोमिका मैं राम कृपा तैं उदय होय।

--- वही।

३- द्वितीये श्रावण मास मैं पृथ्वी हरियाली होत है, तैसें ही शरीर का मध्ये भजन की झड़ लागत है, तब शोभायमान दीसत है। तब भजन अंकुर उदयाकार होत है, हिरदा स्थान के विषय। ---- वही।

अमिय सदृश प्रेमरस नीर की वर्षा होने लगती है। हृदय की धरती गद्गद् होती जाती है, नेत्र अश्रु विमोचन करते हैं, रोमांच होता है। भजन के विकास के साथ प्रेम विह्वलता बढ़ती है।[१]

(घ) आसोज -- जहाँ तहाँ निर्मल नीर भरा रहता है। कृषि भली भाँति उपजती है अकाल की अवस्था समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार साधक भक्ति की निर्मलता से पूरित होकर महाकाल की दशा से मुक्त होकर परमात्म पद को प्राप्त करता है।[२]

जिज्ञासु के जीवन में भक्ति की वही महिमा है जो मानव जीवन में पावस की। ग्रीष्म की तपी धरती पर अच्छी वर्षा का जो प्रभाव होता है वही वैराग्य से तपे साधक के हृदय पर भक्ति का आश्विन है महीने में जैसे अच्छी वर्षा के परिणामस्वरूप खेतों में अन्न तैयार दीखता है वैसे ही भक्ति के विभिन्न अवस्थाओं से गुजरा जिज्ञासु का हृदय प्रौढ़ होकर ज्ञान ग्रहण करने के लिए ज्ञान की परिधि में प्रवेश करता है। यह विवरण नीचे प्रस्तुत है।

३- शीतकाल ज्ञान का प्रतीक है।[३] इसके अन्तर्गत स्वामी जी ने कार्तिक, मार्गशीर्ष पौष और माघ महीनों को लिया है। इन चारों महीनों के प्रतीक द्वारा कवि ने ज्ञान के अवस्थाओं को स्पष्ट किया है। वर्षान्त के बाद जैसे शीत की अनुभूति होती है वैसे ही भक्ति की प्रौढ़ता ज्ञान का अनुभव कराती है।

(क) कार्तिक -- शुभ कार्यों के आरंभ का यह महीना है। साधक अब ज्ञान क्रियाओं में तत्पर होता है।[४]

(ख) मार्गशीर्ष -- अचंचल भाव से मन ज्ञान की एकरसता में निमग्न हो जाता है।[५]

---

१- आगम भाद्रपद मास, प्रेमघटा जो चढ़ाय होत है, फिरि कोत है बरण बार्यो आवै नहीं, ये उमंग आनंद रूपी तो गाज होती है, प्रकाश रूपी बीज खिंवत है, अमृतरूपी प्रेमरसनीर वर्षत है, त्यूंत्यूं भोमि रूप हीयो गद्गद् होत है, विह्वल होत है, नैत्रों अश्रुपात चलत है, रोमांच खड़े होत है, ज्यूं ज्यूं भजन रूपी शाख बधत है, त्यूं त्यूं प्रेम हौल में मगन होत है।

--- अ०वा०, पृ० ३३१।

२- आसोज निर्मल नीर जहाँ तहाँ भरिया, अंकूरत शाख भली तरह सूं नीपजी, जहाँ जगत में तो काल को माथो टूटो, यहाँ महाकाल को दंड छूटो, आत्मा-परमात्मा का पद में प्राप्त हुआ। --- वही।

३- तृतीय शीतकाल ज्ञान कहिये है। -- वही।

४- प्रथम तो कार्तिक मास ज्ञान क्रिया सहित होय --- वही।

५- द्वितीय मार्गशिर, इसमें मन चलायमान नहीं, अचंचल वृत्ति एकरस। -- वही।

(ग) पौष -- यह मास प्रपंच विहीन होने का प्रतीक है । साधक प्रपंचरहित होकर ज्ञान की शीतल अनुभूति करता है ।[१]

(घ) माघ- शीत काल का अन्तिम महीना साधक द्वारा ज्ञान प्राप्ति का अन्तिम अवस्थान है । अति सुंदर शोभायुक्त ज्ञान की प्राप्ति साधक को होती है ।[२]

डाक्टर अरविन्द वर्मा ने इस प्रतीक को एक मानचित्र द्वारा व्यक्त किया है । मानचित्र यथावत् प्रस्तुत है ।[३]

| वर्ष के १२ मास | साधना के १२ तत्व |
|---|---|
| **१-ग्रीष्मकाल = वैराग्य** | |
| (१) फाल्गुन | (१) जग विड़्व्यार त्याग व वैराग्य धारणा |
| (२) चैत्र | (२) एकाग्रता |
| (३) वैशाख | (३) वासना त्याग |
| (४) ज्येष्ठ | (४) वैराग्य दृढ़ता |
| **२-वर्षाकाल = भक्ति** | |
| (५) आषाढ़ | (५) गुरु से रामनाम रूपी बीज ग्रहण तथा हृदयरूपी भूमि में बोना |
| (६) श्रावण | (६) शरीर में भजन की झड़ लगाना, अंकुर की उत्पत्ति |
| (७) भाद्रपद | (७) आनन्द की गर्जना तथा प्रकाश रूपी बिजली |
| (८) आश्विन | (८) महाकाल से मुक्ति तथा परमपद की प्राप्ति । |

---

१- तृतीये पौष, सो जग काहू का प्रपंच में फसै नहीं । -- अ०वा०, पृ० २२१ ।

२- चतुर्थ माघ महीनो, सो महासुंदर शोभावान । -- वही ।

३- डा० अरविन्द वर्मा : स्वामी रामचरण - एक अनुशीलन, पृ० १८५ ।

[३] शीत काल = ज्ञान

| | |
|---|---|
| [९] कार्तिक | [९] क्रिया रहित ज्ञान |
| [१०] मार्गशीर्ष | [१०] निश्चयवृत्ति |
| [११] पौष | [११] प्रपंच रहित |
| [१२] माघ | [१२] सुंदर शोभावान ज्ञान |

इस प्रतीक द्वारा स्वामी जी ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को स्पष्ट तो किया ही है साथ ही टीका वार्तिका के अन्त में यह भी वे लिखते हैं कि जैसे वर्षा के चार मास के कारण शेष आठ महीनों का आदर होता है वैसे ही भक्ति से ज्ञान और वैराग्य की महत्ता है। बिना भक्ति के ज्ञान और वैराग्य को मन्के-फोटिक समझना चाहिए। बिना भक्ति के मुक्तपद की प्राप्ति नहीं होती।[१]

भक्ति निरूपण

'शांडिल्य भक्ति सूत्र', 'नारद भक्ति सूत्र' एवं श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों में भक्ति का भलीप्रकार निरूपण मिलता है। श्री जयदयाल गोयन्दका ने अपनी लघु पुस्तक 'नवधा भक्ति' में भक्ति विवेचना के संदर्भ में महर्षि शांडिल्य और देवर्षि नारद को उद्धृत किया है।[२] उक्त दोनों ऋषियों के अनुसार भक्ति ईश्वर में परम अनुराग या परम प्रेम का नाम है। श्रीमद्भागवत में भक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है --"सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप से भगवान में लग जाती है तब उस प्रवृत्ति को भक्ति कहते हैं।[३]

---

१- स० वा०, पृ० २२२।

२- "महर्षि शांडिल्य ने कहा है --'सापरानुरक्तिरीश्वरे' ईश्वर में परम अनुराग- यानी परम प्रेम ही भक्ति है।" देवर्षि नारद ने भी भक्तिसूत्र में कहा है --'सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा' उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है। 'अमृतस्वरूपाच' और वह अमृत रूप है।"

--श्री जयदयाल गोयन्दका : नवधा भक्ति, पृ० ४।

३- डा० दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५२६।

स्वामी रामचरणने अपने ग्रंथ `अमृत उपदेश` के तृतीय प्रकाश में भक्ति की महिमा के वर्णन के संदर्भ में भक्ति के प्रकारों की चर्चा की है। वे भक्ति के तीन भेद बताते हैं --

१- कनिष्ठ भक्ति

२- मध्यम भक्ति

३- उत्तम भक्ति

"व्यास कही भागवत में भक्ति तीन प्रकार।
कनिष्ट उत्तम मध्यमा जाकूं जो अधिकार।
जाकूं जो अधिकार असम पया कनिष्ट गाई।
उत्तम उत्तम जनन समझ कूं मधि फुरमाई।
पैदासी जाणी नहीं जो मतलब के यार।
व्यास कही भागवत में भक्ति तीन प्रकार।"[१]

भक्ति के इस भेद निरूपण में स्वामी रामचरण भागवत को संदर्भितकरते हैं। वस्तुत: भागवत में भक्ति पर जो शास्त्रीय समीक्षा मिलती है उससे स्वामी जी के इस विवेचन से कोई सीधा संबंध नहीं। किन्तु उन्होंने निर्दिष्ट भेदों को भली-भांति स्पष्ट किया है। उनके अनुसार कनिष्ठ भक्ति में प्रतिमा-सेवा ही हरि-सेवा है, मध्यम भक्ति में गुणातीत होकर निरंजन देव का भजन अपेक्षित है और उत्तम भक्ति में साधक सकल कामनाहीन होकर निजस्वरूप हो जाता है। इस उत्तम भक्ति को स्वामी रामचरण ने `अनूपा` कहा है --

"कनिष्ट पैड़ी प्रत्यक्षी प्रतिमा में हरि सेव।
दूजी मध्य गुण जीतिके भजै निरंजन देव।
भजै निरंजन देव तीसरी उत्तम अनूपा।
सकल कामना हीन भये जन निज्ज स्वरूपा।
पैदासी पड़ाव परि भजन सेवा नहिं भेव।
कनिष्ट पैड़ी प्रत्यक्षी प्रतिमा में हरि सेव।"[२]

---

१- अ० वा०, पृ० ४४३।

२- वही।

स्वामी जी उत्तम भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं, मध्यम में निरंजन के भजन का विधान है पर अनिष्ठ में प्रतिमा सेवा की व्यवस्था है, अत: अनिष्ठ भक्ति पर स्वामी जी टिप्पणी करते ही रहे हैं। अनिष्ठ भक्ति की प्रतिमा सेवा बाल-बुद्धि को बहलाने के लिए है क्योंकि बालक इतना विकसित बुद्धि नहीं होता कि वह संतों का ज्ञान ग्रहण कर सके --

"बाल बुद्धि समझै नहीं, संत जनों को ज्ञान।
ताकूं यो खिलमावणी, अनिष्ट प्रतिमा मान।"[१]

नवधा भक्ति
----------

वैष्णव धर्म भक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत में उल्लिखित नवधा भक्ति[२] की खूब चर्चा तो की ही है साथ ही दसवीं भक्ति -- प्रेमलक्षणा भक्ति -- का भी उल्लेख किया है। डा० दीनदयाल गुप्त ने सूरदास द्वारा इसके उल्लेख किये जाने की बात लिखी है --

"श्रवण कीर्तन स्मरण पादरत, अरचन बंदन दास।
सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।"[३]

अष्टछाप के दूसरे प्रसिद्ध कवि परमानंददास ने भी दशधा भक्ति का उल्लेख अपने एक पद में किया है। डा० दीनदयालु गुप्त ने अपने शोधप्रबंध में उस पद को उद्धृत किया है --

ताते नवधा भक्ति [illegible] भली।
जिन जिन कीन्हें तिनके मन ते बैकुंठ अनत चली।"[४]

स्वामी रामचरण नवधा भक्ति के समक्ष दशधा को महत्व देते हैं। उनके अनुसार नवधा भक्ति करके भक्त सुलझता नहीं प्रत्युत उलझता है। इससे संशय-संताप आदि की

---

१- अ० वा०, पृ० ४४३।

२- श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।
--श्री जयदयाल गोयन्दका - नवधा भक्ति, पृ० ७।

३- डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५४३।

४- वही।

उत्पत्ति होती है । वे नवधा को त्रेता-द्वापर की भक्ति कहते हैं और कलियुग के लिए दशधा का विधान करते हैं --

"करि करि नवधा भक्ति भक्त उरझात हैं ।
शांती बिह संताप नहीं उपजात हैं ।
उर तृष्णा की ताप ज्ञान जरात है ।
परिहां क्यूं ही कही न जाय अनोखी बात है ।"
नवधा त्रेता द्वापरा की दशधा उपजे ताय ।
जे कलियुग का भक्ता करैं, तो जातरूप क्यूं थाय । [1]

नवधा में हृदय-तृष्णा के ताप से ज्ञान जलता है, ऐसा क्यों होता है, यह अनोखी बात है, पर यदि भक्त दशधा को अपनाये तो वह 'जातरूप'[2] नहीं होगा ।

अब यहां यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या वैष्णव भक्तों द्वारा वर्णित दशधा भक्ति ही स्वामी रामचरण की दशधा भक्ति है या दोनों में भिन्नता है ? श्रीमद्भागवत में साधक की प्रकृति के अनुसार भक्ति के चार भेद उल्लिखित हैं-- १-तामसी, २- राजसी, ३-सात्विकी और ४-निर्गुणा । इस निर्गुणा भक्ति को 'सुधासार भक्ति' भी कहा गया है । "सुधा भक्ति करने वाला भक्त मुक्ति को नहीं चाहता, यह अनन्य भक्त कुछ नहीं मांगता, इसका न कोई शत्रु होता है न मित्र, इसको संसार की माया का संताप नहीं होता ।"[3] श्रीमद्भागवत में वर्णित निर्गुणा भक्ति की परिभाषा का अनुवाद डा० दीनदयालु गुप्त इस प्रकार करते हैं --"जो जन मेरे गुणों के श्रवण से, मुझको सब में समान जानता है और अपनी मनोगति को अविच्छिन्न भाव से मुझमें अर्पण करता है उस आसक्ति को निष्काम या निर्गुणा भक्ति कहते हैं । ये भक्त मेरी दी हुई पांच प्रकार की मुक्ति को भी ग्रहण नहीं करते ।"[4]

---

१- अ० वा०, 'समता निवास' द्वितीय प्रकरण, पृ० ८६६ ।
२- स्वामी जी के अनुसार जगत का वो जिसका जन्म मन हो जाय -- लेखक ।
३- डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५३६ ।
४- वही ।

यह निर्गुणा (निष्काम) भक्ति जिसे सूर 'पुष्टामार्ग भक्ति' की संज्ञा देते हैं प्रेमलक्षणा भक्ति है।[1] स्वामी रामचरण नवधा भक्ति के नौ अंगों के ऊपर दशधा भक्ति को भवसागर पार करने वाली कहते हैं। यदि दशधा या प्रपत्ति (अनन्य भक्ति या शरणागति) भक्ति नहीं तो सब व्यर्थ समझना चाहिए। बिना दशधा भक्ति के नवधा भक्ति के सभी व्यापार फीके हैं। अतः दृढ़तापूर्वक एकतानता धारण कर राम के भजन में रत होना चाहिए। यही नामोच्चारण दशधा भक्ति है --

"नव अंग नवधा भक्ति के आपर दशधा पार।
जे दशधा प्रापति नहीं तो सबही जाण असार।
तो सबही जाण असार पार बिन अतिव फीकी।
देखो हिये बिचार नाम नवधा सिर टीकी।
रामचरण भज राम कूं धारया दृढ़ एकतार।
नव अंग नवधा भक्ति के आपर दशधा पार।"[2]

स्पष्ट यों कि तन्मयतापूर्वक राम का नामस्मरण ही दशधा भक्ति है। इस तन्मयता के कारण ही इसे प्रपत्ति भी कहा गया है। स्वामी जी की भक्ति निष्काम भक्ति है। 'अणभै विलास' के तृतीय प्रकरण में 'साची भक्ति' को 'अगुणी शिना, निवासिना, काम-कामना रहित बताते हैं --

"रामचरण साची भक्ति शिना अगुणी जान।
करैं होय निवासिना, काम कामना हान।"[3]

भक्ति निरूपण में स्वामी जी कहते हैं कि उत्तम भक्ति में भक्त सकल कामना क्षीण होकर निजस्वरूप हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह दशधा भक्ति जिसकी श्रेष्ठता स्वामी रामचरण प्रतिपादित करते हैं श्रीमद्भागवत की निर्गुणा (निष्काम) भक्ति है

---

१-'सूर ने प्रेमलक्षणा भक्ति को पुष्टामार्ग भक्ति भी कहा है।' --
--डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५४५।

२- अ० वा० (समता निवास, कि०५०), पृ० ८७०।

३- अ० वा०, पृ० ~~७६१~~ २२३।

जिसे सूर सुधासार भक्ति कहते हैं और जिसे परमानन्ददास भी 'समधा' कहते हैं। इससे एक बात और सिद्ध होती है वह यह कि संतों की भक्ति-साधना पर वैष्णवता का जो प्रभाव पड़ा था उससे स्वामी रामचरण भी अछूते नहीं वरन् पूर्ण प्रभावित हैं।

भाव भक्ति
--------

यद्यपि संतों का उपास्य निराकार ब्रह्म है फिर भी वैष्णव भक्ति की भावना से संतसाहित्य अछूता नहीं रह सका है। वैष्णव भक्ति पद्धति की मान्यता है कि 'भगवान सर्वदा सर्व भाव से भजनीय हैं'[1] भावभक्ति के क्षेत्र में आकर संतों का उपास्य निर्गुण निराकार न रहकर सगुण निराकार का रूप ग्रहण कर लेता है क्योंकि जब तक निराकार में सगुणता का आरोपण नहीं होगा दैन्य-प्रदर्शन, आत्मनिवेदन आदि की कल्पना असंभव है। स्वामी रामचरण के साहित्य में भाव भक्ति की दृष्टि से दास्य, माधुर्य एवं शांता भक्ति के दर्शन होते हैं।

दास्य भक्ति
--------
अपने ग्रंथ 'विश्राम बोध' के द्वितीय विश्राम में स्वामी जी दास्य भाव द्वारा भक्ति करने की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। वे कहते हैं कि दास्यभाव की करुणा के साथ हृदय से निरंजन राम का ध्यान करो और नित्य उनकी शरण में रहो --

"शिर सतगुरु उर रामनिरंजन, ऐसे ध्यानकज धरना।
रामचरण नित शरणै रहिये, दासभावकरिकरणा।"[2]

इसी ग्रंथ में स्वामी जी 'दासभाव' शीर्षक के अन्तर्गत दास्य भक्ति के विभिन्न पक्षों की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि यदि दास होने की अभिलाषा है तो मैं की आशा और ग्लानि का परित्याग करना आवश्यक है, श्याम में एकतान ध्यान लगाकर

---

१- डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५६७।
२- अ० वा०, पृ० ७८१।

मुख से रामनाम ले और हृदय में भी राम को धारण करे। मन वाणी की एकरूपता दास्य भक्ति में सर्वथा अपेक्षित है।[१] राम तो 'गरीब निवाज' हैं पर कोई दास गरीबी ग्रहण तो करे --

"राम गरीब निवाज है कोइ गहो गरीबीदास।"[२]

दास की सफलता इसी में है कि वह सदैव 'दासत्व' में रहे। निरंतर दासभाव से साधना रत रहे, उसे छोड़कर कहीं भी न जाय। दास को चाहिए कि केवल शारीरिक क्रिया के हेतु ही साधना छोड़ कहीं जाय, अन्य सभी समय साधनारत रहे। जब स्वयं को उपास्य को अपित कर दिया तो फिर हृदय में भिन्न आशा को स्थान कहाँ ? अत: उसी की 'दासपदवी' सही है जो निरंतर 'दासत्व' में रहता है।[३] राम के दास को केवल रामका ही विश्वास रहता है, यदि दास राम को छोड़कर किसी अन्य की आशा करता है तो फिर वह एकताम स्थान का दास नहीं --

---

१- "रामचरण तो सूं कहूं तूं चित दै सुणियो कान।
दास होण की सूझ तोहि तजि मैंनी आश गिनान।
तजि मैंनी आश गिलान श्याम इकतार विचारो।
राम राम मुख गाय सो ही अन्तरगत धारो।
मनसा वाचा एकरस तो समथै होय विधान।
रामचरण तो सूं कहूं तूं चित दै सुणियो कान।"
--- अ० वा०, पृ० ७६१।

२- वही।

३- दासपदी जाकै सही जे सदा दासत्व मांहि।
श्याम साधना में रहै तजि साधन कहूं न जांहि।
तजि साधन कहूं न जांहि जांहि तो तन किरिया कूं।
और न करै उपाय कुश साधन बिरिया कूं।
ज्यां आपा अर्यो श्याम कूं आन आश उर नांहि।
दासपदी जाकै सही जे सदा दासत्व मांहि।
-- वही।

"राम तुम्हारा दास कै इक तुम्हरो ही विश्वास ।
जे दास आश दूजी करै तो नहि इहतारो दास । [1]

इसलिए 'दासपदी' की शोभा इसी में है कि साधक उपास्य के प्रति आशा-विश्वास का भाव धारण करे । भ्रमरहित होकर एकतान लगन लगावे, कर्म और कामना से विरत हो और दुराशा को खंडित करे --

"श्याम आश विश्वास धार उर सोय रे ।
रास एक एकतार भर्म ना खोय रे ।
मना मनोरथ कृत्य कर्म सब छांडिये ।
परिहां दासपदी तब शोभ दुराशा खांडिये । [2]

जब दास दासपदी में लीन रहता है तभी श्याम हाथ से सम्हालता है, वह जब वह अलख आस को अंतर में बसा कर सुमिरन करता है तभी सनाथ होता है --

"दास दासगी में रहे तब श्याम सम्हावै हाथ ।
अलख आस आंतर बसु सुमर्यां होय सनाथ ।" [3]

दास अपनी निर्बलता के सहारे राम का बल प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार विजयी होता है और सबल अपने सामान का भरोसा किये पराजय को वरण करता है । निर्बल के बल राम हैं और सबल का उसका सामान । कौरवों-पाण्डवों का उदाहरण प्रस्तुत कर कवि ने भगवान से विश्वास की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है ।" [4]

---

१- अ० वा०, पृ० ७६१ ।

२- वही ।

३- वही ।

४- "कि निबलां केवल राम को अरु सबलां बल सामान ।
सामान समर्थ कौरवां पंडवा पखि भगवान ।
पंडवां पखि भगवान कहो हार्या कुंण जीता ।
सो कांना किण्या न कोय सृष्टि हुवै रहा बदीता ।"
--अ० वा०, पृ० ७८२ ।

स्वामी जी की दास्य भावना

स्वामी जी ने बीनती की अंग के विभिन्न छंदों तथा अपने काव्य ग्रंथों में दास्य भाव से अपने आराध्य को पुकारा है । अपने अवगुणों को स्वीकारते हुए दीन भाव से शरणागत होकर राम से उबारने का वह निवेदन करते हैं--

"बहु गुणवंता साँइयाँ मैं अवगुण भरया गुलाम ।
जे चितवो अवगुण दिशा तो नहीं कहूं विश्राम ।
तो नहीं कहूं विश्राम आप सब गुन्हा निवारो ।
तुम बिन समर्थ और दूसरो नहीं पतारो ।
दास दीन विनती करै शरण उबारो राम ।
बहु गुणवंता साँइया मैं अवगुण भरया गुलाम ।"[1]

दास अपने निवेदन में अपनी पूरी जीवन चर्या को ही अवगुणमय बतलाता है, उसका हृदय अवगुणों की खान है, अवगुण करते वह अपने स्वामी से भी नहीं डरता । फिर अपने 'गुणवंता रामजी' से 'अवगुण निपात' के लिए प्रार्थना करता है ।[2] उसका राम अन्तर्यामी है, उसके अन्तर में वह वास करता है, अतः अंतर में उत्पन्न होने वाले गुण-अवगुण उससे कहाँ छिपे रह सकते हैं ? अन्यत्र उसे छिपाये भी कहाँ ? इसलिए दैन्य भाव से विनय में तत्पर होता है ।[3]

---

१- अ० वा०, पृ० ७८३ ।

२- 'अवगुण ऊठत बैठतां बोलत चालत खात ।
अवगुण सोवत जागतां अवगुण आवत जात ।
अवगुण आवत जात रैण दिन अवगुण करिहूं ।
उर अवगुण की खान श्याम के भय नहिं डरिहूं ।
तुम गुणवंता रामजी अवगुण करो निपात ।
अवगुण ऊठत बैठतां बोलत चालत जात ।'-- वही, पृ० ७८३ ।

३- 'अन्तर्यामी राम जी तुम हो अंतर माँहि ।
गुण अवगुण अंतर उपजै सो तुम सै छाना नाहि ।
सो तुम से छाना नाहि कहो अब कहाँ दुराऊं ।
जो कोइ बाहिर होय जिन सूं कपट दुराऊं ।
जासैं करिहूं बीनती दीनपणो उपजाँहि ।
अंतर्यामी राम जी तुम हो अंतर माँहि । -- वही ।

"राम रटावो राम जी तुम काम घटाओ ताप ।
मने उठावो जीव को कर्म कटावो पाप ।
कर्म कटावो पाप आप तुम्हारी निरवाहो ।
और हाटवो आश वासना नहन मिटावो ।
ये अरज बीनती रामचरण अधम उधारण आप ।
राम रटावो राम जी तुम काम घटावो आप ।"[1]

'भारी बीनती को अंग' में वह अपने दीवान के समक्ष स्वयं को अनेक जन्मों का गुनहगार, खूनी बंदी आदि कहकर बन्धन काटने के लिए कृपा की याचना करता है --

"गुनहगार बहो जन्म का, खूनी बंदी वान ।
बन्दे ऊपर महर कर, काटो बंध दिवान ।"[2]

अपने राम दयाल के समक्ष अनाथ निराधार कहकर दास शीघ्र उनका साथ पाकर सनाथ एवं साधार होने की कामना करता है --

"तुम तो राम दयाल हो, मैं अनाथ निरधार ।
रामचरण कह राम जी, बेग लगावो पार ।"[3]

'चन्द्रायणा बीनती को अंग' में भक्त अपनी एक 'अरदास' मानने का निवेदन राम से करता है । स्वयं को कामी, कपटी, कूर कहने के बाद भी वह राम का अपना है । यदि राम ने हाथ छोड़ दिया तो वह बेसहारा हो जायगा, अतः वह अपनी सब खोटों के लिए क्षमा के साथ स्वामी की शरण चाहता है --

"राम एक अरदास हमारी मानियो ।
कामी कपटी कूड़ आपणों जाणियो ।
जे तुम छोड़ो हाथ और नहीं स ओट जी ।
परिहां रामचरण रखि सरण बकस सब खोट जी । [4]

---

१- अ० वा०, पृ० ७८३ ।

२- वही, पृ० १० ।

३- वही ।

४- वही, पृ० ७६ ।

अविचल दया एवं चरणशरण की इस याचना में दास्य भावना जैसे साकार हो उठी है --

"कीजै दया दयाल विनय नहिं करी गुसाईं ।
सुरति रहै तुम माँहि चरण तजि अंत न जाईं ।"[1]

भक्त अपनी एक और 'अरदास' में 'राम निरंजन देव' से उनके चरण कमल की सेवा की याचना करता है । उसे ऋद्धि-सिद्धि, मुक्ति कुछ भी नहीं चाहिए । उसे केवल 'अलख' की भक्ति चाहिए ।[2] वह राम के नाम पर अनेक बार न्योछावर होता है क्योंकि राम उस निराधार का एकमात्र आधार है--

"राम तुम्हारे नाम की मैं बलि बारंबार ।
रामचरण निरधार कै एक राम आधार ।"[3]

दास्यभावना से सराबोर स्वामी रामचरण की इन पंक्तियों को पढ़कर यह आभास ही नहीं होता कि स्वामी जी निराकार के आराधना मे रत हैं । ऐसे कवि पुन: अपनी सगुण वैष्णवता के तट पर इस भावना की तरंगों में बहता-बहता पहुँच गया है । स्वामी जी का अधिकांश साहित्य इसी दास्य भक्ति में ओतप्रोत है ।

मधुर भक्ति
---------

'लोक में प्रेम के जितने भिन्न-भिन्न संबंध हो सकते हैं, उन सबको भक्तों ने लोक से हटाकर ईश्वर के साथ जोड़ा है, यहाँ तक कि ऐन्द्रिय विषयों में अनुरक्त लोगों के

---

१- अ० वा०, पृ० १४१ ।

२- सुणो एक अरदास हमारी राम निरंजन देव ।
रामचरण कूं दीजिये चरण कमल की सेव ।
चरण कमल की सेव छाँड़ि ऋधि सिधि नहिं माँगै ।
मुक्ति माँहि मन नाहिं सुरति तुमही सूं लागै ।
भक्ति बिना कैसे लहै अलख तुम्हारा भेव ।
सुणो एक अरदास हमारी रामनिरंजन देव ।
---- वही, पृ० १४१ ।

३- वही ।

संसार-विषय से छुड़ाने के लिए भक्ति शास्त्र के आचार्यों ने ईश्वर को ही उनकी विषय-तृप्ति का साधन बनाया ।"[१] माधुर्य भाव की भक्ति-साधना वैष्णव भक्त कवियों और निर्गुण गायक संतों, दोनों की साध्य है । अन्तर इतना है कि वैष्णव भक्तों ने परकीया-भाव से अपने आराध्य की उपासना विशेष रूप से की है जबकि संत कवियों ने स्वकीया भाव को ही अधिक महत्त्व दिया है । संयोग-वियोग के अनेक सूक्ष्म चित्र इन भक्तों की वाणी में उभरे हैं ।

स्वामी रामचरण ने भी कबीर आदि संत कवियों की भांति राम की उपासना पत्नी भाव से की है । 'राम भर्तार' में अपनी लगन लगाने की बात 'सुख विलास' के चतुर्थ प्रकरण में वे कहते हैं --

"एक राम भर्तार की मनों धार इकतार ।
मनों एक इकतार बिन नहिं परलग बकार ।"[२]

इसी प्रकार 'ममता निवास' के द्वितीय प्रकरण में 'एक राम भर्तार' के अतिरिक्त अन्य को जार समझने की बात भी कवि को अभीष्ट है --

"एक राम भरतार है जार दूसरा आन ।
एक एक को आसरा एक एक को जान ।"[३]

'गाथा का पद' में माधुर्य भक्ति भाव के बड़े मर्मस्पर्शी पद मिलते हैं । कवि का भक्त हृदय प्रियतम राम के लिए कितना उल्लसित है । आज भक्त की पुकार पर प्रियतम उसके महल में आया है । मन मंदिर में प्रेम का दीपक जलेगा, प्रीति की पलंग बिछेगी, शील के श्रृंगार से सजकर पीव के अंग से अंग स्पर्श कराने का अवसर आ गया है । बहुत दिनों के बाद 'प्रीतम' मिला है, मनोकामनाएं पूरी हो गई । एक चाणाई क्षण के लिए भी प्रियतम राम को छोड़ने का इरादा नहीं है --

"मेरे महल पधार्‌या प्रीतमा हो, सखी री मेरे साहिब सुनी है पुकार ।
पणा कर पान भाव करि आयो, कूंतो कभी जनाय ।

---

१- डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ६२१ ।

२- अ० वा०, पृ० ३५६ ।

३- वही, पृ० ८७३ ।

साँच सुपारी पाजगर मिलूलो, माँहि मन्सुरत दिया है मिलाय ।
प्रेम का दीपक जोय मंदिर में, प्रीति का खेल पिलंग बिछाय ।
शील शृंगार साज पिय परसूं परसूं, अंग सूं अंग लगाय ।

... ... ...

बहुत दिनां में प्रीतम पाया, मरया मनोरथ काम ।
पाव पलक डीन्या नहीं काढूं, घर आया केवलराम ।"[1]

और अब संयोग के बाद वियोग की बारी आती है । स्वामी जी विरह भाव की भक्ति में स्वयं विरहिणी की भूमिका में उपस्थित होते हैं । भक्त-हृदय अपने 'रमइया' के पधारने की प्रतीक्षा में बैचैन है, सूनी सेज दूना दुःख बढ़ाती है । विरहिणी अपने प्रिय के कारण बन-बन विचरण करती है, वह गिरगिर कर उठती है क्योंकि प्रेम बैठने को नहीं देता । प्रेम बिना अँधेरा नहीं मिटेगा । पर यह अँधेरा तभी मिटेगा जब विरहिणी के हृदय में दीवाली होगी । वह प्रेम का दीपक जलायेगी और उसके आलोक में अपने राम का दीदार करेगी । --

"विरहा रूनी प्रेम शय्या सूनी, सूनी सूनी दुख पावै ।
इत उत म्हारे कबै पधारे, आव रमईया यूं गावै ।
तुमरे कारण बिचरूं आरण, कारण बिरहन तणावै ।
पड़ि पड़ि उठै प्रेमन सू है, प्रेम मिला क्यूं तिम जावै ।
कहो दिवाली मोउरां कब होती कवारि ।
दीपक जोऊं प्रेम का करूं राम दीदार ।"[2]

स्वामी जी की इन पंक्तियों ने अनेक विरही भक्तों की बहात् स्मृति करा दी । कबीर और मीरां के विरही हृदय इन पंक्तियों के आइने में अपना रूप झलकता हुआ देख सकते हैं । वियोगावस्था में विरहिणी की पलकें नहीं लगतीं । दरस की आस में रैन दिन का जागरण, दश दिशाओं में मन की आतुरता, बाट जोहने की प्रक्रिया,

---

१- अ० वा०, पृ० ९९९-१००० ।

२- वही । अणभौ विलास म०प्र०), पृ० २४५ ।

सभी तो हो रहे है। स्वाति के चातक की दशा हो रही है, पर क्या घन आशा पूरी करेगा ? जो भी हो रामचरण की विरहिणी का निवेदन यही है कि अविलम्ब पिया दर्शन दे --

"रमइया मेरी पलक न लागे हो ।
दरश तुम्हारे कारणे, निशिवासर जागे हो ।
दशुं दिशा आतर करुं, तेरो पंथ निहारुं हो ।
राम राम कीटेर दे, दिन रैण पुकारुं हो ।
नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आरी हो।
हृदय हुलसे हेत कुं, हरि कब परकाशी हो ।
स्वाति बूंद व चातक रटै, अन और न पीवे हो ।
घन आशा पुरे नहीं, तोके कैसे जीवे हो ।
दास की अरदास सुणा, पिया दर्शण दीजे जी ।
रामचरण बिरहनि कहै, अब विलम न कीजे हो ।"[१]

पर उसे तब पूर्ण संतोष होता है जब उसका समर्थ 'साईंया' कृपा करके उसका दर्द पहचान लेता है। उसकी सामर्थ्य पर वही वह रीझ उठी है।

"साईंया मैं समर्थ जांण्या हो ।
महरिकरि मुझि ऊपरे, मेरा दरद पिछाण्या हो ।"[२]

अव्यक्त प्रियतम के वियोग के उपर्युक्त उद्गार संत काव्य की माधुर्य भक्ति में निश्चित ही अमूल्य है, स्वामी रामचरण के काव्य-साहित्य में मधुर-भक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं।

शांता भक्ति

"संसार की अनित्यता, वासनाओं का त्याग और ईश्वर भक्ति अथवा ज्ञान द्वारा प्राप्त की गई चित्त की स्थिर अवस्था से जिस परमानन्द को भक्त अथवा ज्ञानी पाता

---

१- अ० वा०, पृ० १००६ ।
२- वही, पृ० १००८ ।

है वही शान्तभाव है, और काव्य में व्यक्त होकर काव्यशास्त्र के अनुसार वही शान्तरस है ।"[1] इसी शान्तभाव की काव्यरचना शांताभक्ति के अन्तर्गत आती है । वस्तुतः संसार की असारता, नश्वरता, त्याग एवं ईश्वर के प्रति भक्ति भाव आदि विषय ही संतों के साहित्य सृजन की प्रेरणा है । स्वामी रामचरण की कृतियों में शान्त भाव की भक्ति से संबंधित पदों या छन्दों की संख्या कम नहीं है । सम्पूर्ण `अणभैवाणी` का विशाल संग्रह शान्ता भक्ति से भरा हुआ है ।

सांसारिकता में लीन प्राणी को जीवन की अनित्यता के प्रति सजग होने की बात कवि निम्नलिखित पंक्तियों में करता है --

"जाग जाग नर रैण बरीती ।
सोवत भोर भयो अणचीती ।
जाम एक गयो मोल माल में, दोय में गुणा दबायो ।
चौथे चिन्ता जरा गिरास्यो यौं जन्म गुमायो ।
यो संसार विषय की संगी, स्वारथ नहीं जायो ।
रामचरण आव बस्यो भयो गाफिल, फेर वृथा पिछतायो ।"[2]

यह मानव जीवन बड़े भाग्य से मिलता है । इसकी सार्थकता रामरस में क्षण भर के लिए विरत न होकर इसमें सर्वथ डूबे रहने में है । इस रामरस सदृश कोई रस नहीं, यह पीने में बड़ा प्यारा लगता है । स्वामी जी रामरस के पान का अवसर हाथ से न जाने देने के लिए सभी को सचेत करते हैं --

"रामरस पलकन कीजै न्यारो ।
ऐसो सूंज बहुरि नहि पावे, नरतन को अवतारो ।
लख चौरासी भ्रम भ्रम आयो, भुगत्यो कष्ट अपारो ।
भाग भले मिनखा तन पायो, भजो निरजन हारो ।
ऐसो रस और नहि कोइ, पीवत ल्यौ पियारो ।
ई अवसर में पीलै पाणी, होय होय हुंसियारो ।"[3]

---

१- डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५४९-५० ।
२- अ०वा०, पृ० ६९३ ।
३- वही, पृ० १००४ ।

चार दिन की जवानी पर गुमान करने वालों को स्वामी जी का यह संदेश है --

"संसार सता येह संसार सता ।
दिनां च्यार जोबन मिमचारी । अंतकाल नर खाय खता ।"[1]

इसी प्रकार 'चिंतावणी' एवं 'उपदेश को अंग' के विभिन्न शीर्षकों में अनेक भाव की पुष्टि में अनेक छंद स्वामी जी ने लिखे हैं ।

भक्ति के साधन

संतों ने भजन एवं सत्संग को भक्ति का अन्यतम साधन माना है । स्वामी रामचरण ने भजन एवं सत्संग की बड़ी महिमा गायी है और भक्ति के विकास में इन्हें साधन अंग के रूप में स्वीकार किया है ।

भजन

भगवान के नामस्मरण को भजन भी कहा जाता है । स्वामी रामचरण ने 'अणभै विलास' के पाँचवें प्रकरण में 'सुमरण' को भक्ति का अंग कहा है और इसे सभी अंगों का सिरताज माना है । राजा हो या रंक बिना राम स्मरण के सद्गति संभव नहीं --

"सुमरण भक्ती अंग कहीजे,
सब मांही शिर ताजा ।
सुमरै राम मांही गति पावै,
कहा रंक कहा राजा ।"[2]

स्वामी जी कहते हैं कि सब एकाग्र मन से रमता राम का भजन करके देखिए तो कि जिह्वा रस चखती है या नहीं ? --

"रामचरण भज देखिए रसना में रस चाख ।
रमता राम समाधिये एक अग्र मन राख ।"[3]

---

१- अ० वा०, पृ० ६६८ ।
२- वही, पृ० २३३ ।
३- वही ।

यह भजन सभी नहीं कर सकते, यह कठिन है, जिसपर राम की कृपा होती है वही भजन करता है --

"भजन दुहेलो राम को जिण तिण सुं नहि होय ।
जापर किरपा की भजन करैगा सोय ।"[1]

'जिज्ञास बोध' चतुर्थ प्रकरण में 'भजन गति' शीर्षक से उद्धृत निम्नलिखित पंक्तियाँ भी भजन की महत्ता का प्रतिपादन करती हैं । रामभजन सभी कर्तव्यों का सार, अभय-शरण और कलियुग के जीवन का आधार है --

"रामचरण शरणो अभय कलि जीवन आधार ।
रामभजन करिये सदा यो सब किरतब को सार ।"[2]

भक्ति के साधन के रूप में सुमिरन या रामभजन को निरूपित करते हुए स्वामी जी ने भजन की बड़ी महिमा गायी है । वस्तुतः रामभजन को उन्होंने अपनी सम्पूर्ण साधना के मूल मंत्र के रूप में स्वीकार किया था ।

सत्संग
----

सत्संग स्वामी रामचरण द्वारा गृहीत भक्ति का दूसरा प्रमुख साधन है । स्वामी जी ने अपने ग्रंथों में सत्संग की बड़ी महिमा गाई है । यद्यपि इस विषय का विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा फिर भी भक्ति के साधन अंग के रूप में यहाँ भी उसकी संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है । ग्रंथ 'विश्वास बोध' के बारहवें प्रकरण में सत्संग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्वामी जी ने सत्संग को ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का कारण तक कह डाला है । इसका पालन करने के लिए सदैव उल्लसित रहना चाहिए, मन भंग नहीं करना चाहिए । मनुष्य देह धारण करने का लाभ भी सत्संग ही है --

"ज्ञान भक्ति वैराग को है कारण सत्संग ।
सो सदा हुलसि के कीजिए ना करिये मन भंग ।
ना करिये मन भंग लाभ नर तन को लीजे ।
रसना रटिये राम करो चर्चा रस पीजे ।

---

१- अ० वा० (अमृत उपदेश, काष्ठाप्रकाश), पृ० ४६१ ।

२- वही, पृ० ५३४ ।

रामचरण जब ही लगी जन रहणी को रंग ।
ज्ञान भक्ति बैराग को है कारण सत्संग ।-[1]

भक्ति-ज्ञान के लिए भक्तों का सत्संग स्वामी जी की दृष्टि में आवश्यक है । बिना सत्संग के भक्ति का ज्ञान संभव नहीं --

'भक्तां बिन पावै नहं' भक्ति ज्ञान गत तूल ।
और ठौर अति भर्मेगा खोज शांसे फूल ।-[2]

सत्संग की महिमा अवर्णनीय है ।[3] कितने सत्संग से निहाल हो गये, काल जाल से मुक्त हो गए और 'भक्ति की चाल' से अवगत हो गए । भक्ति ने अनेक जनों को कृतार्थ किया । वे सचमुच ही 'बड़ भाग' हैं जो संसार में जी कर सत्संग करते हैं --

"रामचरण सत्संग में केतेहि भये निहाल ।
कालजाल सूं सुलझिया पाय भक्ति की चाल ।
पाय भक्ति का चाल जीव कृतार्थि कीया ।
धिंन वाका बड़भाग धन्य सो जग में जीया ।
गही रहै गुरु ज्ञान में नितप्रति सदा खुश्याल ।
रामचरण सत्संग में केतेहि भये निहाल ।-[4]

'समता निवास' के चतुर्थ प्रकरण में 'संतों को सत्संग' शीर्षक के अन्तर्गत सत्संग के गुण-गुणों से बचाने जाने की बात कहते हैं । सत्संग ने अनेक पतितों को अमृत रूपी ज्ञान देकर पावन कर दिया । रामभजन सत्संग की प्रेरणा से ही संभव है जिससे पाप नाश होता है और सत्संग ही मानव को 'हरिभक्त' की संज्ञा दिलाता है --

---

१- अ० वा०, पृ० ७३३ ।

२- वही ।

३- "रामचरण सत्संग की महिमा को नहि पार" -- वही, पृ० ७३१ ।

४- वही ।

"रामचरण सत्संग का जुग जुग होय बखाण ।
जो सकुन पवित्र पावन करै है अमृतरूपी ग्यान ।
है अमृत रूपी ग्यान राम को भजन करावै ।
जो पातक होय निपात पुनः परिभक्त कहावै ।
ऐसो बड़ दातार की नहिं महिमा को परमाण ।
रामचरण सत्संग का जुग जुग होय बखाण ।"[1]

इसी प्रकार 'अणभैविलास' के नवें प्रकरण में स्वामी जी सत्संग को 'रामबाग' कहते हैं। इस बाग में बैठकर रसरंग में गोता लगाइये। रामरस का प्याला पान कीजिए और युग-युगों तक जीवित रहिए। इस उद्यान में ध्यान के वृक्ष, ज्ञान के फूल और विज्ञान के फल मिलते हैं। भ्रान्तियों का शमन होता है। यह सत्संग ऐसा बाग है जो कभी नष्ट नहीं होता --

"रामबाग है सत्संग ।
जामैं बैठ कीजे रंग ।
प्याला रामरस पीवो ।
जासूं जुग जुग जीवो ।
जहां अति ग्यान अमरी फूल ।
भागै भरमैंरा सब सूल ।
जहां निज तरु उत्तम ध्यान ।
जाके लगे फल विज्ञान ।
ताको नाहिं कबहूं भंग ।
ऐसो बाग है सत्संग ।"[2]

स्वामी जी सत्संग को सभी साधनों में श्रेष्ठ घोषित करते हैं। 'अनन्य भक्ति', 'निजधाम' की प्राप्ति, 'ब्रह्म निरूपण' ये सभी सत्संग के विषय हैं। सत्संग के समान

---

१- अ० वा०, पृ० ८८७ ।

२- वही, पृ० ३१० ।

उनकी दृष्टि में और दूसरा कोई साधन नहीं --

"सब साधन के शिर सबका सत्संगति कीजे ।
तन मन धन सब शीश अर्प सतगुरु को दीजे ।
अनन्य भक्ति निज नाम साध संगति में पावे ।
मिले न दूजी ठौर ठाम मनी अयाची आवे ।
[illegible]
रामचरण सत्संग सम और न दीसे कोय ।
जहां निरूपण सुख को सदा सवेरा होय ।"[1]

इस संदर्भ में 'अणभै विलास' की निम्नलिखित पंक्ति भी महत्वपूर्ण है ।

"ज्ञान भक्ति वैराग्य मिले सत्संगति मांहि ।"[2]

परन्तु 'जिज्ञास बोध' के सोलहवें प्रकरण में तो स्वामी जी ने स्पष्ट घोषणा कर दी है कि सत्संग भक्ति का आगर है सब ही सुख का आगर मोक्ष और सिद्धि का आगर साधन है --

"सत्संग आगर भक्ति को सुख को आगर मोख ।
साधन आगर सिद्धि को सुख शिख निरूपण पोख ।"[3]

इसी लिए 'विश्राम' के बीसवें विश्राम में कवि की घोषणा भी यहां है कि सत्संग के समान 'सुखसार' कोई दूसरा नहीं --

"सतसंग सम सुखसार नहीं कोई और है ।
सब देख्या निरताय यही मन ठौर है ।"[4]

स्वामी रामचरण ने भक्ति के प्रमुख साधन संग के रूप में सत्संग की महत्ता आंकी है । यों उनकी कृतियों में सत्संग का सत्संगति, साध संगति आदि विभिन्न शीर्षकों में बड़ा विस्तृत विवेचन किया गया है जिसकी चर्चा 'सांप्रदायिकता' के अध्याय के अन्तर्गत होगी । यहाँ सत्संग का निरूपण भक्ति के साधन रूप में किया गया है ।

---

१- अ० वा०, पृ० ११२।

२- वही, पृ० ~~४०७~~ ३११।
३- वही, पृ० ६०७।
४- वही, पृ० ७६८।

स्वामी रामचरण भक्त हृदय संत कवि थे । उनका सम्पूर्ण साहित्य भक्ति-भावना अमित एवं अथाह सागर है । उन्होंने भक्ति को ज्ञान-वैराग्य सभी से श्रेष्ठ घोषित किया है । यों तो उनके इस विशाल संग्रह ग्रंथ में सर्वत्र भक्ति भावना के अनगिनत मुक्ताफल सघनता से व्याप्त हैं पर कतिपय प्रमुख शीर्षकों की पृष्ठ संख्या फुटनोट में अंकित है । निष्काम भक्ति,[1] सरल भक्ति निन्दा,[2] अधीन भक्ति,[3] भक्त-रक्षा,[4] श्रद्धाभक्ति,[5] भक्ति महात्म्य-त्रिविध भक्ति,[6] भक्ति सिद्धान्त,[7] भक्ति महात्म्य,[8] गृही भक्ति कठिनता,[9] प्रतीति भक्ति,[10] गुन भक्ति,[11] सकल भक्ति[12] आदि ।

उपर्युक्त शीर्षकों में स्वामी रामचरण ने भक्ति की कोई शास्त्रीय समीक्षा नहीं की है और यदि कहीं ऐसा प्रकरण आया भी है तो उसमें प्रमाणिकता को महत्व नहीं दिया है । वस्तुतः उनकी भावना में भक्ति का जो रूप जिस समय विवरण करने लगता था उसे उसी तरह निरूपित कर देते थे । उदाहरणार्थ "सुखविलास" की पंक्तियों में 'श्रद्धा भक्ति' का निरूपण प्रस्तुत है --

> श्रद्धा में सबही बणै बिन श्रद्धा बणै न काय ।
> धर्म अधर्म निकर्म सब देखो अकल जाय ।
> देखो अकल जाय सती संग्राम ज होई ।
> तन मन श्रद्धा चढ्यां भुग्यां भी जाय न कोई ।
> तातैं भजियै राम कूं श्रद्धा अधिक उपाय ।
> श्रद्धा में सबही बणै बिन श्रद्धा बणै न काय ।-[13]

---

१- अ० वा०, पृ० २२१ ।
२- वही, पृ० २२५ ।
३- वही, पृ० २२८ ।
४- वही, पृ० २३० ।
५- वही, पृ० ४०८,६५१,७६८ ।
६- वही, पृ० ४४३ ।
७- वही, पृ० ४६१ ।
८- वही, पृ० ५२५ ।
९- वही, पृ० ६७१ ।
१०- वही, पृ० ७८० ।
११- वही, पृ० ७८८ ।
१२- वही, पृ० ६१२ ।
१३- वही, पृ० ४०८ ।

इसी प्रकार अणभै वाणी के बीनती, सुमरण आदि विभिन्न अंगों में भी उनकी भक्ति भागीरथी का अजस्र प्रवाह देखा जा सकता है। सम्पूर्ण वाणी साहित्य ही भक्ति का दूसरा नाम है। ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के प्रथम प्रकाश में 'निर्णय' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी अपना निर्णय भक्ति के पक्ष में देते हैं। उनके अनुसार साधु की शोभा वैराग्य जग की शोभा व्यवहार बंधन, विप्र की शोभा विद्या और क्षत्रिय की शोभा तलवार हो सकती है पर भक्ति तो सबकी शोभा है --

"जन शोभा वैराग सूं जग की संध्या विवहार ।
विद्या शोभा विप्र की क्षत्री की तरवार ।
[illegible]
क्षत्री की तरवार भक्ति सबही की शोभा ।
बड़ी कुशोभा भूल चूक तन उपजे लोभा ।
रामचरण गुरु ज्ञान गहौ रहो पला फटकार ।
जन शोभा वैराग सूं जग की संध्या विवहार ।"[1]

-----0-----

---

१- अ० वा०, पृ० ४३४ ।

# षष्ठ अध्याय

## लोकमत

## षष्ठ अध्याय

### लोक पक्ष

संतों की लोक जीवन पर सीधी नजर थी । लोक जीवन की उन्होंने न तो कभी उपेक्षा की और न उसकी लौकिकता में फंसे ही । वे सदैव ही सहज भाव से रामोपासना में रत रहते थे । अपने उपासक जीवन को विस्मयकारी बनाकर समाज को प्रभावित करने की दिशा में वे कभी अग्रसर नहीं हुए प्रत्युत ऐसे तत्वों से समाज को सदैव सजग रखने का मंगलमय संदेश देना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे । सिद्धों, नाथों एवं वैष्णव उपासना पद्धतियों में संलग्न विकृतियां जो उन्हें नापसंद थी, परम्परा से चली आती सामाजिक रूढ़ियाँ और अंधविश्वास जिन्हें वे लोक-जीवन के लिए विष समझते थे तथा अनेक बाह्याचार जिन्हें उनके मस्तिष्क ने नहीं स्वीकार किया, के प्रति लोक-जीवन को दिशा देने में वे पीछे नहीं रहे । साथ ही व्यक्ति और समाज के नैतिक मूल्यों के विकास के लिए उन्होंने जो रचनात्मक सुझाव दिये, वे सब समाज के लिए उनकी अमर देन हैं । इस संदर्भ में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों की निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत करना असामयिक न होगा ।

"सन्त वाणी की दो धाराएं हैं -- एक धारा सींचती हुई बहती है - जीवन के उपवन को, पर मानव जीवन में जो अशिव है, अशुभ है, जीवन में जो जड़ता, अन्ध-विश्वास, बैर विरोध, हिंसा भाव हैं -- उनके लिए संतवाणी की दूसरी धारा प्रलय बन्या बनकर उसे बहाती, डुबाती, उखाड़ती, गिराती -- प्रचण्ड वेग से बही है । संत के एक हाथ में निर्माण का वरदान है तो दूसरे में विध्वंस का अभिशाप । निर्माण व ध्वंस दोनों कार्य संतवाणी एक ही भाव से एक ही वृत्ति से करती है । वहाँ न हर्ष है न विषाद ।"[१]

---

१- वैद्य केवलराम स्वामी : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ११९ ।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से विचार करने पर स्वामी रामचरण के साहित्य का लोकपक्ष भी खण्डन-मण्डन से पूर्ण प्रतीत होता है। स्वामी जी ने जहाँ समाज में प्रचलित बाह्याडम्बरों, अंध विश्वासों आदि पर जोरदार शब्दों में आक्रमण किया है वहीं उन्होंने लोकजीवन को रचनात्मक दिशा भी प्रदान की है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ध्वंसात्मक एवं रचनात्मक दो पहलुओं में हम उनके लोकपक्षीय विचारों को विभाजित कर सकते हैं।

**ध्वंसात्मक**

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन विषयों का विश्लेषण हमारा अभीष्ट है जिनसे लोकजीवन के विभिन्न पहलुओं में कुरूपता समाती है। प्रतिमा पूजन, रोजा-नमाज, अवतारवाद, वर्णाश्रम व्यवस्था, हिंसा, देवल-मस्जिद, कंचन-कामिनी, बहुदेववाद, पुस्तकज्ञान एवं विभिन्न सामाजिक कुरीतियों आदि पर स्वामी जी के दृष्टिकोण का संक्षिप्त विवेचन करके उनके लोकजीवन संबंधी दृष्टिकोण को समझना सरल है। स्वामी जी धार्मिक आडम्बरों, सामाजिक रूढ़ियों एवं बाह्याचारों के प्रबल विरोधी थे। राजस्थान के जनजीवन में उनके लोकजीवन संबंधी विचारों का जहाँ एक ओर स्वागत हुआ वहीं दूसरी ओर विरोध भी। भीलवाड़े का सूबेदार तो स्वामी जी का विरोध करने में व्यक्तिगत स्तर पर आ गया था किन्तु शाहपुरा नरेश ने सम्मान अपने नगर में उन्हें बसाया एवं उनके द्वारा प्रचारित 'रामधर्म' का अनुयायी भी बना। बाद में उदयपुर के महाराणा ने भी स्वामी जी का दृष्टिकोण समझा और उन्हें आदर भी दिया।

**प्रतिमापूजन का विरोध**

निर्गुण सन्त मूर्तिपूजा के विरोधी थे। वस्तुतः निराकार की उपासना में आकार पूजन संभव नहीं। कबीर आदि संतों की भांति स्वामी रामचरण भी मूर्तिपूजा का खण्डन करने में पीछे नहीं रहे। मिट्टी की गौरी और पत्थर के भगवान की पूजा करने वाले नर-नारियों की बुद्धि पर उन्हें तरस है। कभी वे इन प्रकार के प्रतिमा-पूजकों की खिल्ली उड़ाते हैं तो कभी उनकी मूर्खता पर रोष प्रकट करते हैं। मिट्टी की गौरी प्रतिमा के पूजन पर स्वामी रामचरण जी की प्रतिक्रिया कितनी तीखी है :--

"लाडगार की गौरि बणाई, पाणी दे दे साधी ।
होय कर्ता कर जोड़ खड़ी है, ऐसी दुनिया आंधी ।
हार डोर अपणा पहराया, शक्ति कर कर पूजे ।
जड़ के आगे चेतन नाचे, ऐसी साव न झूठे ।"[1]

मिट्टी की गौरी अपने हाथों बनाने वाली स्त्री स्वयं उस मूर्ति के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी होती है । उसे माला पहनाकर शक्तिरूपा मानकर पूजती भी है । क्या कौतुक है कि जड़ के सामने चेतन नृत्य करता है, यह दुनिया का अंधविश्वास ही तो है । पाषाण प्रतिमा पर स्वामी जी की दृष्टि सीधी पड़ी है । स्वामी जी को विस्मय है कि भगवान द्वारा निर्मित पत्थर को दुनिया पत्थर ही कहती है पर उसी पत्थर को जब मनुष्य गढ़कर मूर्ति का रूप दे देता है तो उसे मानव-सृजन को लोग भगवान कहने लगते हैं --

"सिरज्या सिरजणहार का, जासूं कह पाषाण ।
रामचरण मानुष घड्यां, ताहि कहै भगवान ।"[2]

इसी संदर्भ में कवि कहता है कि राम सबको पैदा करता है, उसे तो 'कर्ता' कहा जाता है पर जिस मूर्ति को मनुष्य बनाता है उसे कैसे कर्ता कहा जा सकता है --

"राम सकल पैदा करै, कर्ता कहिये सोय ।
रामचरण मानुष किया, सो क्यूं कर्ता होय ।"[3]

मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए स्वामी जी अवतारों की भी चर्चा करते हैं । वस्तुत अवतारों की मूर्तियां बनाकर उन्हें संसार पूजता है पर स्वामी जी पूछते हैं कि अवतार जिस घर जाता है, कभी उस पर भी विचार किया है ? स्वामी जी समाधान करते हैं कि अवतार का जन्म और मरण युग-युगों से होता आया है किन्तु अवतार उत्पन्न होकर जिसमें समा जाता है उस घर का पता संत जानता है ।[4] स्वामी जी कहते हैं कि

---

१- अ० भा०, पृ० ६५ ।
२- वही, पृ० ६६
३- वही ।
४- अवतारां की प्रतिमा करि पूजै संसार ।
रामचरण जिस घर गया, जाका नहीं विचार ।
जन्म मरण अवतार का, जुग जुग होय अनन्त ।
उपजि समावै तासमें, सो घर जाणै संत ।"
--अ०वा०, पृ० ६६ ।

यदि अवतार प्रत्यक्ष हो तो उनका सुमिरन किया जा सकता है पर वह प्रत्यक्ष है नहीं लेकिन पाषाण का भजन तो कदापि संभव नहीं --

"जे सुमरूं अवतार कूं, जे कहूं प्रत्यक्ष होय ।
रामचरण पाषाण कूं, भजन न आवै माँहि ।"[1]

स्वामी रामचरण पहले सगुणोपासक थे, उन्होंने ही सच्चे मन से प्रतिमा पूजी थी किंतु परिणाम ?

"हम भी पूजी प्रतिमा, साच धारिमन माँहि ।
रामचरण दुलपीड़ की, कबहूं बूकनी नाँहि ।"[2]

परिणाम, आकार में विश्वास नहीं रहा और उन्होंने अनुभव किया कि दुनिया बड़ी नासमझ है, वह पत्थर को प्रणाम करती है पर राम जानी संत के निकट नहीं जाती, वह पत्थर का प्रसाद ग्रहण करती है और राम से स्नेह रखने वाले सब साधुओं से व्यर्थ का विवाद करती है --

"रामचरण पाषाण कै, दुनिया लागै पाय ।
साधु मिलावै राम सूं, ताकै निकट न जाय ।
रामचरण संसार नै, पाहण को परसाद ।
रामसनेही साध सूं, करै खैचरि बाद ।"[3]

स्वामी जी मुसलमानों के आक्रमण काल के संकट की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं । मूर्ति को गढ़-संवार कर मंदिर में रख दिया जाता था और उस मूर्ति से सम्बद्ध सम्पत्ति का भंडार लूटने के लिए तुर्क आक्रमण करते थे । स्वामी जी कहते हैं कि पाषाण मूर्ति को गढ़सवार कर प्रस्थापित तो कर देते हैं पर जब तुर्कों की लड़ाई पड़ती है तो डर के मारे भंडार ही दे डालते हैं ।[4] उनका तात्पर्य यह है कि मूर्तिस्थापन से

---

१- अ० वा०, पृ० ६६ ।

२- वही ।

३- वही, पृ० ६६-६७ ।

४- रामचरण पाषाण की मूरति घड़ी संवार ।
पड़ी लड़ाई तुरक की, तब मै मै दई भंडार ।
-- अ० वा०, पृ० ६७ ।

कारण एक विकट को आमंत्रण देते हैं।

'कुण्डल्या भर्म विध्वंस को अंग' में स्वामी रामचरण कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति गिरकर फूट सकती है, उसमें जीव-प्राण है नहीं फिर फिर उसे देव कैसे कहा जाय। उससे काग और श्वान भी नहीं डरते फिर मूर्ख मनुष्य की बुद्धि को क्या कहें। ऐसा लगता है कि संसार की दृष्टि से ज्ञान गत हो गया है।[1] मूर्तिपूजा के संबंध में पंडितों पर आक्षेप करते हुए स्वामी जी कहते हैं कि पत्थर को गढ़कर करतार नाम दे दिया पर संसार सन्मुख जो करतार व 'कर्ता का करतार' है उसे नहीं देख पाता क्योंकि उस पर पंडितों का प्रभाव है जो अपने पेट पालन के लिए मूर्तिपूजा का भ्रम संसार में फैलाये हुए हैं --

"टांच्या घड़ि पत्रा आयो नाम धरयो करतार।
कर्ता का करतार कों लखै न यो संसार।
लखै न यो संसार भर्म पंडित की छाया।
उदर ओट की ओट जिनूं ये भर्म बनाया।
रामचरण सतगुरु बिना संत मत नहीं बिचार।
टांच्या घड़ि पैरा आयो नाम धरयो करतार।"[2]

पाषाण देव की चर्चा करते हुए स्वामी जी चित्र देवता तक पहुंच जाते हैं। मूर्तिपूजा सदृश चित्रपूजा को भी वे व्यर्थ समझते हैं और संसार की कुटिल बुद्धि पर तरस खाते हैं। वे कहते हैं --

"रंग कारक को मोरड़ो उड़ै न चुगवा जाय।
सुण घनहर की घोर कूं कुमी न होय कुलाय।

---

१- घरिया कूं धीजू नहीं घड़्यो घाट पाषाण।
पड़ि फूटै बरबस रहै तामें जीव न प्राण।
तामें जीव न प्राण देव कंसे विधि कहिये।
डरें न कउवा श्वान मिनख मूरख मति चहिये।
रामचरण संसार के दृष्टि ज्ञान गत माण।
घटिया कूं धीजू नहीं, घड़्यो घाट पाषाण।"

--- अ० वा०, पृ० ९७६।

२- वही।

कुरी न होय कुलाय मवंग भी देख न हर्षे ।
देखो नर की समफ चित्र का देवत थर्पे ।
रामचरण संसार चख भी तिमिर रहे छाय ।
रंगदारक को मोरड़ो उड़े न चुगवा जाय ।"[१]

रंग शिल्पी का मोर न उड़ता है न चारा चुगने जाता है, न वह मेघ गर्जन से प्रसन्न होकर क्रीड़ा ही करता है, सर्प भी उससे नहीं डरता पर मनुष्य की समझ को क्या कहा जाय वह तो उस चित्र में देव की प्रतिष्ठा करता है । वस्तुत: इस संसार की आंखों में भ्रम का अंधेरा छा रहा है ।

स्वामी जी की दृष्टि में धातु, काष्ठ, पाषाण की मूर्तियां और चित्र सभी मृतक समान हैं क्योंकि उनमें चेतना नहीं है --

"धातु काठ चित्राम का, बांधा घड़्या पषांण ।
रामचरण चेतन बिना, सब ही मृतक जांण ।"[२]

स्वामी जी अन्तत: इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जैसे पत्थर की नाव पर चढ़े व्यक्ति का डूबना निश्चित है वैसे ही पत्थर प्रेमी का पार न पहुंचना भी निश्चित है ।[3] इसी लिए स्वामी जी ने चेतावनी दी है कि पाषाण से अपनी रक्षा नहीं हो सकती, सेवक का उसके समक्ष हाथ जोड़ना व्यर्थ है --

"रामचरण पाषांण सूं अपणी रख्या न होय ।
कर जोड़्यां सेवक खड़ा, क्या पावेगा सोय ।"[४]

इसलिए स्वामी रामचरण ने मूर्ति को प्रणाम करने का स्पष्ट निषेध करते हुए भगवान के चरणों में रत होने का उपदेश दिया है --

---

१- अ० वा०, पृ० १७६ ।
२- वही, पृ० ६६ ।
३- रामचरण पाषांण की प्रीति न पहुंचै पार ।
ज्यूं पाहण की नाव चढ़ि, बूडै बहती धार ।
--अ० वा०, पृ० ६७ ।

४- वही ।

कुमी न होय कुनाथि भवंग भी बैस न हर्पै ।
दैखो नर की समफ चित्र का दैवल थर्पै ।
रामचरण संसार चख भी तिमिर रहे छाय ।
रंगचारक को मोरड़ो उड़े न चुगवा जाय ।"[1]

रंग शिल्पी का मोर न उड़ता है न चारा चुगने जाता है, न वह मेघ गर्जन से प्रसन्न होकर क्रीड़ा ही करता है, सर्प भी उससे नहीं डरता पर मनुष्य की समझ को क्या कहा जाय वह तो उस चित्र में देव की प्रतिष्ठा करता है । वस्तुत: इस संसार की आंखों में भ्रम का अंधेरा छा रहा है ।

स्वामी जी की दृष्टि में धातु, काष्ठ, पाषाण की मूर्तियां और चित्र सभी मृतक समान हैं क्योंकि उनमें चेतना नहीं है --

"धातु काठ चित्राम का, बाँधा घड़्या पषांण ।
रामचरण चेतन बिना, सब ही मृतक जांण ।"[2]

स्वामी जी अन्तत: इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जैसे पत्थर की नाव पर चढ़े व्यक्ति का डूबना निश्चित है वैसे ही पत्थर प्रेमी का पार न पहुंचना भी निश्चित है ।[3] इसीलिए स्वामी जी ने चेतावनी दी है कि पाषाण से अपनी रक्षा नहीं हो सकती, सेवक का उसके समक्ष हाथ जोड़ना व्यर्थ है --

"रामचरण पाषांण सूं अपणी रख्या न होय ।
कर जोड़्यां सेवक खड़ा, क्या पावैगा सोय ।"[4]

इसलिए स्वामी रामचरण ने मूर्ति को प्रणाम करने का स्पष्ट निषेध करते हुए भगवान के चरणों में रत होने का उपदेश दिया है --

---

१- अ० वा०, पृ० १७६ ।

२- वही, पृ० ६६ ।

३- रामचरण पाषांण की प्रीति न पहुंचे पार ।
   ज्यूं पाहण की नाव चढ़ि,बूडै बहती धार ।
   --अ० वा०, पृ० ६७ ।

४- वही ।

कुमी न होय कुलाय मर्वग भी नैस न हर्ष ।
देखी नर की समझ चित्र का देवल पर्ष ।
रामचरण संसार चख भर्म तिमिर रहै छाय ।
रंगदारक को मोरड़ो उड़ै न चुगवा जाय ।"[1]

रंग शिल्पी का मोर न उड़ता है न चारा चुगने जाता है, न वह मेघ गर्जन से प्रसन्न होकर क्रीड़ा ही करता है, सर्प भी उससे नहीं डरता पर मनुष्य की समझ को क्या कहा जाय वह तो उस चित्र में देव की प्रतिष्ठा करता है । वस्तुत: इस संसार की आँखों में भ्रम का अंधेरा छा रहा है ।

स्वामी जी की दृष्टि में धातु, काष्ठ, पाषाण की मूर्तियां और चित्र सभी मृतक समान हैं क्योंकि उनमें चेतना नहीं है --

"धातु काठ चित्राम का, चोंगा घड़्या पषांण ।
रामचरण चेतन बिना, सब ही मृतक जांण ।"[2]

स्वामी जी अन्तत: इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जैसे पत्थर की नाव पर चढ़े व्यक्ति का डूबना निश्चित है वैसे ही पत्थर प्रेमी का पार न पहुंचना भी निश्चित है ।[3] इसीलिए स्वामी जी ने चेतावनी दी है कि पाषाण से अपनी रक्षा नहीं हो सकती, सेवक का उसके समक्ष हाथ जोड़ना व्यर्थ है --

"रामचरण पाषांण सूं अपणी रख्या न होय ।
कर जोड़्यां सेवक खड़ा, क्या पावैगा सोय ।"[4]

इसलिए स्वामी रामचरण ने मूर्ति को प्रणाम करने का स्पष्ट निषेध करते हुए भगवान के चरणों में रत होने का उपदेश दिया है --

---

१- अ० वा०, पृ० १७८ ।

२- वही, पृ० ५६ ।

३- रामचरण पाषांण की प्रीति न पहुंचै पार ।
   ज्यूं पाहण की नाव चढ़ि, बूडै बहती धार ।
                                        --अ० वा०, पृ० ५७ ।

४- वही ।

"तजि पाहन अर बंदगी, हरि चरणां मैं लीन ।
रामचरण चरणारविंद, तजे न होवै हीण ।"[१]

इसी सिद्धांत के विभिन्न शीर्षकों में स्वामी जी ने प्रतिमापूजन का तिरस्कार करते हुए राम में लीन होने की बात कही है । निर्गुण संत की दृष्टि में मिट्टी, धातु, काष्ठ, पाषाण की मूर्तियां और रंग शिल्पी के चित्रों में अवतार या दैवी देवता की कल्पना मनुष्य की अज्ञानता का परिचायक है । इसीलिए कवि बार-बार मानवबुद्धि पर तरस खाता है । वह अनुभव करता है कि शठ संसार ऐसे ही धर्म में विश्वास करता है जो निस्सार है जैसे धुयें की वर्षा जिससे धरती नहीं भींगती है --

"जैसे वर्षा धूम की, धरती भीजै नांहि ।
रामचरण संसार शठ, ऐसे धर्म समांहि ।"[२]

निष्कर्ष यह कि स्वामी जी ने प्रतिमापूजन को धूम वर्षा की भांति व्यर्थ बता कर उसका पूर्णतया निषेध किया है ।

व्रतोपवास की व्यर्थता

स्वामी जी ने व्रतोपवास की महत्ता नहीं स्वीकार की है । सामान्यतया एकादशी का व्रत हिन्दू-समाज में लोकप्रिय व्रत के रूप में विख्यात है । स्वामी जी एकादशी समेत सभी व्रतों की व्यर्थता सिद्ध करते हैं । एकादशी को स्वामी जी ने 'कल्पाव्रत' कहकर निरूपित किया है --

"रामचरण एकादशी तू दृढ़ कर हिरदै धारि ।
ग्यारस काचा व्रत है मांठ ले गयी मारि ।"[३]

कवि एकादशी और एकादशीव्रत में अन्तर स्पष्ट करता है, उसके अनुसार एकादशी एवं एकादशीव्रत दो भिन्न स्थितियां हैं । व्रत से भिन्न एकादशी वह है जिसका कभी नाश न हो --

---

१- अ० वा०, पृ० ६७ ।

२- वही, पृ० ६६ ।

३- वही ।

"मुख सूं कहै एकादशी, करे करै ग्यारस को नास ।
एकादशी सो जाणिये, जामा कहै न होवे नास ।"[१]

इसलिए स्वामी जी राम के नामस्मरण को ही सर्वश्रेष्ठ व्रत मानते हैं। यदि जन्म से मरण तक एकरस निभ जाय, जो निभ न सके वह व्रत बेकाम है --

"जन्ममरण लग एक रस, निभै राम का नाम ।
बीछ पडूया भगि जात है, सोही व्रत बेकाम ।"[२]

"साखी चाणक को अंग" में एक स्थल पर स्वामी जी बहुत स्पष्ट लिखते हैं कि उपवास और व्रत आदि से "हरि मारग" की प्राप्ति नहीं होती --

"वास व्रत अरु पर्वी साधै, देवी देव मनावै ।
रामचरण दुनियां बकबूंधी, हरिमारग नहि पावै ।"[३]

हिंसा एवं मांसाहार का विरोध

स्वामी रामचरण ने हिंसा एवं मांसभक्षण का निषेध किया है। संतजन जीव हिंसा के प्रबल विरोधी रहे हैं। उन लोगों ने हिंसा करके मांसाहार करने वालों को बहुत फटकारा है। समाज में हिंसा के विरुद्ध वायुमण्डल निर्मित करने में अन्य सन्तों सदृश स्वामी जी भी पीछे नहीं रहे। मांसाहारी एवं जीव हिंसक हिन्दू और मुसलमान दोनों को स्वामी जी ने धिक्कारा है। स्वामी जी कहते हैं कि चराचर सभी में भगवान व्याप्त है। ऐसे जीव को मारकर खाने वाला हिन्दू हो या मुसलमान अवश्य ही नरक में जाता है --

"बधता फिरता बोलता, खाता पीता जीव ।
रामचरण सचराचरां, सब में व्यापक शीव ।
ताहूं मारै कर दलै, आनंद कर कर खाय ।
तो रामचरण हिन्दु तुरक, दोन्यू दोजिख जाय ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० ६६ ।
२- वही,।
३- वही ।
४- वही, पृ० ६४ ।

जीवहत्या बहुत बड़ा जुर्म है, इससे भगवान कुपित होता है और एक जीव की हत्या का हजार बार बदला लेता है। स्वामी जी संसार को बतलाना चाहते थे कि जीवहिंसा बहुत बड़ा अपराध है, यह ईश्वरीय अपराध है।

"बड़ा जुलम जिव मारतां, कोपै सिरजणहार।
रामचरण ले जीव का, बदला बार हजार।"[१]

देवी देवताओं के स्थान पर उनके निमित्त हत्या करने वालों की स्वामी जी ने बड़ी भर्त्सना की है। भैरव और देवी की पाषाण प्रतिमायें प्रत्यक्ष जड़स्वरूप हैं, किन्तु मनुष्य उन्हीं के निमित्त परमात्मस्वरूप जीव की हत्या करता है --

"भैरूं देवी पथर का, प्रतिमा जड़ स्वरूप।
रामचरण ताके निमित, हते जीव अनूप।"[२]

जीव-हत्या के लिए स्वामी जी ने काजी मुल्लाओं को भी फटकारा है, समझाया है। इस संदर्भ में उन्होंने कुरान की साक्षी भी दी है। वे कहते हैं कि सभी जीव खुदा स्वरूप व पैगम्बर की उत्पत्ति हैं किन्तु काजी हाथ में छुरी लेकर उनका वध करता है। हिंसा करने वाला मनुष्य 'नापाक' होता है यह कुरान का वचन है --

"सब जीवां खुद खुदाय है, पैगम्बर की पैदास।
रामचरण कर छुरी ले, काजी करत बिनास।
काजी कलमा पाक है, तो छुरी पछाड़ै कांहि।
हिंसा नर नापाक है, कह कुरांन के मांहि।"[३]

स्वामी जी फूलपत्तियों के तोड़ने को भी हिंसा ही समझते हैं। निर्जीव की पूजा करने वाली पुजारिन निर्दयतापूर्वक सजीव फूलपत्ती की हत्या करती है। अपने पेट के आगे उसे पाप नहीं दिखते। ब्राह्मण भी यह क्रिया करते हैं। फूल को जड़ मूर्ति पर ले जाकर चढ़ा देते हैं और घड़ी पहर में वह सूख जाता है। जब कर्ता इसका विवरण मांगता है तो उस समय जीभ नहीं डोलती --

---

१- अ० वा०, पृ० ६४।

२- वही।

३- वही।

"सरजीवत पाती फूल हत निर्जिव पूजण कारि ।
पुनि राम कहां से जिव मरे ये सही मोल संसार ।
... ... ... ...
तोड़े फलता-फूलता ज्यों दया न दिल के मांहि ।
कारज अपणा उदरके, पातक नहिं दशांहि ।
पातक नहिं दशांहिं त्याय जड़ ऊपर धरि है ।
घडी जाम जाय चूक विप्र यह किरिया करि है ।
कर्ता लेखो मांगसी जब जीभ उलझसी नांहि ।
तोड़े फलता फूलता ज्यों दया न दिल के मांहि ।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि पात-पात में पुरुषोत्तम का निवास है, माटी का महादेव बनाकर उस पर पत्ते तोड़कर चढ़ाना, परमात्मा को दुख देना है --

"पात पात पुरुषोत्तम व्यापक, ताकूं तोड़ संतावै ।
माटी का महादेव बणावै, जापर त्याय चढ़ावै ।"[2]

स्वामी रामचरण फूलपत्ती को तोड़ने में भी हिंसा का अनुभव करते हैं फिर निर्दोष वनवासी पशु जिनका अहार ही तृण-जल है, की हत्या करने में बहुत बड़ा पाप को बोझ सिर पर चढ़ता है --

"हि निरदावें वन में रहै, तृण जल करै आहार ।
रामचरण ताकूं हत्या, बहुत चढ़ै शिर भार ।"[3]

स्वामी जी मांसाहार के प्रबल विरोधी थे । कबीर आदि निर्गुण संतों की भांति स्वामी जी भी मांसभक्षियों को धिक्कारते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार से मांस भक्षण के प्रति घृणा भाव को उभारते हैं । शालिग्राम की पूजा, गीता का पाठ और उसके साथ जीव हत्या कर उसका मांसभक्षण विचित्र स्थिति है, स्वामी जी कहते हैं ऐसा करने वाला प्राणी भगवान से भी नहीं डरता --

"सेवा शालिगराम की, मुख गीता पाठ करै ।
जीव मार भक्षण करै, सांई सूं न डरै ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० ७४६ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० ६४ ।
४- वही ।

स्वामी जी समझाते हैं कि जिस मुख में चरणामृत और तुलसी धारण करते हो, उसी से मांसाहार करना अनुचित है --

"चरणामृत मुख में धरै, पुनि तुलसी का पान ।
रामचरण नहि खाइये, तामुख माटी खान ।"[1]

मांस कुत्ते और गीदड़ का भोजन है किन्तु कुत्ते और सियार भी निर्जीव का मांस भक्षण करते हैं पर मनुष्य तो भगवान से भी नहीं डरता । वह जीवित को भी मार कर खा जाता है --

"श्वान स्याल को खांण है, सो भी मूवां खाय ।
नर निधड़क नाराण सूं, जीवत मारण खाय ।"[2]

स्वामी जी बड़ी संयत भाषा में समझाते हैं कि मनुष्य का खाद्य अन्न पानी है पर मनुष्य कहां मानता है, वह अपनी मूर्खतावश माटी (मुर्दा) भक्षण करता है --

"रामचरण नर देह का, अन पाणी है खज्जा ।
ताहि छांड़ि माटी भखै, मूरख खाय अखज्ज ।"[3]

'जिज्ञासबोध' के उन्नीसवें प्रकरण में स्वामी जी हिंसकों की चर्चा उठाते हैं । वे कहते हैं कि जो पराया प्राण लेता है उस निर्दयी की गति राक्षस की होती है --

"आसुर गति सो निर्दई, जे ले पराया प्रांन ।"[4]

वस्तुत: मांसाहार के लिए जीवहत्या करनी ही पड़ती है क्योंकि मांस न तो पेड़ में फलता है और न ही खेत में उपजता है । जो लोग जीवहत्या करते हैं वे जिह्वा स्वाद के वशीभूत असुरबुद्धि हैं,। स्वामी जी कहते हैं कि जीवहत्या के समय जितनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं, उसका बदला उसी प्रकार रो रोकर देना पड़ता है --

---

१- अ० वा०, पृ० ६४ ।

२- वही ।

३- वही ।

४- वही, पृ० ६२८ ।

"मांस न वृच्छा लागि है मांस न निपजै खेत ।
क्वचरि कै देह मांस किसी कूं चाहिये तो प्राणघात करि लेत ।
तो प्राणघात करि लेत केत रसना रस जानो ।
बोलत चोंथत कौ ताहि आसुर बुधि मानो ।
आपै हंसि हंसि मारिया आगै रोइ रोइ बदनो देत ।
मांस न वृच्छा लागि है मांस न निपजै खेत ।"[1]

स्वामी जी ने जीवहिंसा करके मांसाहार करने वाले सभी मनुष्यों को धिक्कारा है चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान उन्होंने हिंसा को घोर पाप कहा है और मांसाहारियों को श्वान शृगालों से भी गया बीता बतलाया है । रामसनेही सम्प्रदाय में जीवों की रक्षा का इतना अधिक ध्यान रखा जाता है कि रामसनेही जन व पानी कपड़े से छान कर प्रयोग में लाते हैं और सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करते ।

पाखण्डों पर सीधी नजर

स्वामी रामचरण ने धर्म के नाम पर समाज को ठगने वाले विभिन्न कर्मकाण्डों को पाखण्ड कहा है और उनके विरोध में अपना स्वर बराबर ऊंचा करते रहे । उन्होंने पूजा, नमाज, तीर्थयात्रा, नदी स्नान, उपवास, देवल-मस्जिद सभी पर सीधी दृष्टि डाली है और जो कुछ भी कहना था उसे बड़े निर्भीक भाव से कह गए । उनके संत हृदय ने इन सभी को कभी आडम्बर से अधिक नहीं माना । हृदय एवं आचरण की शुद्धता पर उन्होंने विशेष बल दिया जिसके लिए उपर्युक्त सभी साधनों को उन्होंने निरर्थक माना । समाज के हर स्तर पर लोगों को उन्होंने समझाया । हिन्दू-मुसलमान दोनों को बिना भेदभाव के खरीखोटी सुनाकर उन्हें भगवत् भजन की ओर उन्मुख होने का संदेश दिया ।

पूजा-नमाज

स्वामी जी ने मालाफेरने वाले हिन्दुओं और नमाज की अजान देने वाले मुल्लाओं पर सीधे प्रहार किया है । माला और अजान दोनों की उन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की है, स्वामी रामचरण द्वारा कुछ पूजा-नमाज पर की गई बौछारें कबीर की सूक्तियों

---

१- अ० वा०, पृ० ६३९ ।

का स्मरण करा देती है । माला फेरने वालों को वे ठग कहने में संकोच नहीं करते --

"माला का वाला करै, मुख सूं कहै न राम ।
रामचरण दै भजन शिर, ये ठिगबाजी का काम ।"[१]

इसी प्रकार अजान देने वाले मुल्ला की पुकार पर स्वामी जी की प्रतिक्रिया भी कम तीखी नहीं है । स्वामी जी कहते हैं कि कान में अंगुली डालकर जो मुल्ला पुकारता है क्या कभी विचार किया है कि वह कौन है ?

"घालकान में आंगली, मुल्लां करै पुकार ।
बांग देय सो कूण है, आकाकरो विचार ।"[२]

वह सर्वव्यापी रहीम है जो बहरा नहीं है, फिर मुल्ला किसे अपनी बांग सुनाता है ? --"सकल जिहान मैं रमि रह्या,मुल्लां एक रहीम,बांग सुणावै कूणकूं, बहरा नाहि रहीम ।"[३] स्वामी कहते हैं कि मैं भी बांग देने को तैयार हूं पर जब मैं यह जान लूं कि वह साहब दूर है पर उसे तो सकलव्यापी कहते है, फिर वह मुकाम भी तो है । जो वस्तु जहां है वहां तो उसे खोजते नहीं बाहर खोजने जाते हैं । दोनों में अंतर है अत: कैसे वह मिल सकता है --

"रामचरण मैं बांग दूं, जो साहिब जाणूं दूर ।
सकल वियापी कहतो है, तो मुकामै मैं भरिपूर ।
वस्तु जहां हैरै नहीं बाहिर हैरण जाय ।
रामचरण कैसे लहै, दुंणूं अन्तर थाय ।"[४]

तीर्थ यात्रा

स्वामी रामचरण की दृष्टि में तीर्थयात्रा नदी स्नान आदि व्यर्थ हैं यदि हृदय सत्संग से पवित्र पवित्र नहीं है । वे हृदय की शुद्धता में ही सभी तीर्थयात्राओं की चरम फल पा लेने के पक्षपाती हैं --

---

१- अ० वा०, पृ० ६५ ।
२- वही, पृ० ६४ ।
३- वही ।
४- वही ।

"काशी गया पराग गंग मथुरा वृन्दावन्न ।
दूर देश ते आयके सबै मुक्ता धन्न ।
सबै मुक्ता धन्न मन्न की भ्रांति न जावै ।
भेदाभेद निरोध वर्ण विधि नहीं मिटावै ।
रामचरण सत्संग बिन सबबत् सभी जतन्न ।
काशी ~~बच्च~~ गयापराग गंग मथुरा वृन्दावन्न ।"[1]

लोग काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि विभिन्न तीर्थस्थलों पर जाकर नदी स्नान करते हैं, धन व्यय करते हैं पर क्या ~~ह~~ इससे मन की भ्रांति दूर होती है ? नहीं, इससे न तो भेदाभेद का ही निरोध हो पाता है और न वर्ण-विधान ही मिटता है, मन सदव भ्रान्त रहता है । अत: तीर्थों में जाकर धन का व्यय करना या अन्य प्रकार के यत्न करना सबवत है जब तक सत्संग न हो । `अणभैविलास` ~~ग~~ के बीसवें प्रकरण में स्वामी जी कहते हैं कि तीर्थयात्रा करते आयु व्यतीत हो गई पर मन नहीं जीता जा सका, फिर परिणाम क्या रहा ? बेशरम बने, फजीहत हुई, शरीर और धन की हानि हुई । आदि --

"कुंण करै मन जीत, सुणै न देखे दास की ।
आयु गई सब बीत, करता तीरथ जातरा ।
तीरथ कीता मन नहीं जीता भया फजीता बेशर्मी ।
तन धन छीजै दुख में सीजै कहा कहा कीजै करिकर्मी ।"[2]

`सुख विलास` ग्रंथ में तीर्थस्थलों की चर्चा करते हुए स्वामी जी स्पष्ट ~~कहते~~ करते हैं कि अड़सठ तीर्थों का स्नान, बद्रीकेदार की यात्रा सभी व्यर्थ है यदि मन विकृत है । मन का विकार तो रामभजन से ही जाता है --

"अड़सठ तीरथ न्हाय के चढ़ बदरी केदार ।
~~एक~~ राम का भजन बिन मन नहिं तजै विकार ।"[3]

भले ही कोई जगन्नाथपुरी और बद्रीकेदारधाम की यात्रा कर आवे पर मन में कोई अंतर नहीं आता, वही लोभ कामना की ~~झझ~~ लगन मन पर छाई रहती है ।

---

१- अ० वा०, पृ० १७८ ।

२- वही, पृ० ३११ ।

३- वही, पृ० ३४६ ।

"काशी गया पराग गंग मथुरा वृन्दावन्न ।
दूर देश तें आयकै सबै मुक्ता धन्न ।
सबै मुक्त धन्न मन्न की भ्रांति न जावै ।
भेदाभेद निषेध वर्ण विधि नहीं मिटावै ।
रामचरण सत्संग बिन सनवत् सपीजत्न्न ।
काशी ~~गया~~ गयापराग गंग मथुरा वृन्दावन्न ।"[1]

लोग काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि विभिन्न तीर्थस्थानों पर जाकर नदी स्नान करते हैं, धन व्यय करते हैं पर क्या ~~ह~~ इनसे मन की भ्रांति दूर होती है ? नहीं, इससे न तो भेदाभेद का ही निषेध हो पाता है और न वर्ण-विधान ही मिटता है, मन सदव भ्रान्त रहता है । अत: तीर्थों में जाकर धन का व्यय करना या अन्य प्रकार से यत्न करना सनवत है जब तक सत्संग न हो । 'अणभैविलास' ~~ग्र~~ के बीसवें प्रकरण में स्वामी जी कहते हैं कि तीर्थयात्रा करते आयु व्यतीत हो गई पर मन नहीं जीता जा सका, फिर परिणाम क्या रहा ? बेशरम बने, फजीहत हुई, शरीर और धन की हानि हुई । आदि --

"कूंणा करै मन जीत, गुणी न देखै दास की ।
आयु गई सब बीत, करता तीरथ जातरा ।
तीरथ कीता मन नहीं जीता भया फजीता बेशमी ।
तन धन छीजै दुख मैं खीजै कहा कहा कीजै करिकमी ।"[2]

'सुख विलास' ग्रंथ में तीर्थस्थलों की चर्चा करते हुए स्वामी जी स्पष्ट ~~कहते~~ कहते हैं कि अड़सठ तीर्थों का स्नान, बद्री केदार की यात्रा सभी व्यर्थ है यदि मन विकृत है । मन का विकार तो रामभजन से ही जाता है --

"अड़सठ तीरथ न्हाय कै चढ़ बदरी केदार ।
एक राम का भजन बिन मन नहिं तजे विकार ।"[3]

भले ही कोई जगन्नाथपुरी और बद्रीकेदारधाम की यात्रा कर आवे पर मन में कोई अंतर नहीं आता, वही लोभ कामना की ~~बब~~ लगन मन पर छाई रहती है ।

---

१- अ० वा०, पृ० १७८ ।
२- वही, पृ० ३११ ।
३- वही, पृ० ३४६ ।

"मन जाओ कोइ द्वारका मन कोई बद्रीनाथ ।
लोभकामना लगन अति, मन की वाही बात ।"[१]

स्वामी जी द्वारका के साथ मक्का तक की बात कह जाते हैं । उनका कहना है कि बिना गुरु ज्ञान के मन पराजय नहीं स्वीकारता --

"भल कोइ जावो द्वारका भल जावो मक्के ।
रामचरण गुरुज्ञान बिन मन नांहि थक्के ।"[२]

इसी संदर्भ में स्वामी जी कहते हैं कि कर्म कामना तीर्थ यात्रा से नहीं मिटती, संसार में आना जाना लगा रहता है । मन की शुद्धता रामभजन से संभव है, तीर्थयात्रा से नहीं --

"गया गया जाता हुआ आया आया आत ।
कर्म कुलटा कामना मिटै न तीरथ जात ।
मिटै न तीरथ जात, गया आया जग मांहीं ।
रामभजन मन शुद्ध होय सो संशय नांहि ।
अंतर की सोधि बिना गान गोल की बात ।
गया गया जाता हुआ आया आया आत ।"[३]

## देवल-मस्जिद

स्वामी रामचरण की दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान दोनों की गति क्रमशः मंदिर और मस्जिद तक है पर दोनों का भ्रम देवल मस्जिद आदि की उपासना से दूर नहीं होता । भ्रम निवारण तो रामभजन से संभव है पर दोनों ही राम का नाम लेकर भरमते रहते हैं । ग्रंथ 'विश्वास बोध' के अठारहवें प्रकरण में इस विषय पर स्वामी जी ने अपने विचार व्यक्त किये हैं । उन्हें दोनों ही जातियों पर तरस आती है कि

---

१- अ० वा०, पृ० ३४६ ।
२- वही ।
३- वही ।

कि `रामरहीम ` को बिसारकर अन्य स्थानों की उपासना में दोनों ही लीन हैं ।[१] कवि समाज की दोनों की स्थिति से अवगत कराता है, दोनों ही राम का स्मरण नहीं करते प्रत्युत मंदिर एवं मस्जिद में दौड़ते हैं --

"फेर सुणों दोइ आलिम की गति, नित्य राम नहि गावै ।
वै मसीत वे देवल धर्म, तिनही नहवै आवै ।"[२]

हिन्दू देवल और मुसलमान मस्जिद को मानते हैं ।[३] कवि मस्जिद और देवल के भीतर झांकता है तो देखता है कि मस्जिद का ताक और देवल की `मूरति` में उसके `साईं ` के रूप का कहीं मेल नहीं है । काजियों ने कुरान और पंडितों ने वेद का संदर्भ प्रस्तुतकर मुसलमान और हिन्दू दोनों को अज्ञानता में भरमा दिया । किन्तु `शून्य` और `देवल` की उपासना से दु:ख और खेद नहीं छूटेगा । इसके लिए तो रामभजन ही आवश्यक है --

"मसीत में ताक अरु देवल में मूरति है ।
मूरति साईं की भिन्न जानत न भेद जू ।
दोही आलिम अज्ञता कूं भरमाय दिये,
काजी अरु पंडितां कुरान मिस वेद जू ।
पजि पूजि पगां परै करैं अरदास बहु ।
सोभि न मिटावै पीर मंडी कौन छेद जू,
राम ही चरण कहै राम को भजन बिना
सै यें शून्य देवल छूटै न दु:ख खेद जू ।"[४]

---

१- दयाधर्म भूला सबै आलिम दोइ अजान ।
राम रहीम बिसारि कै पुजै आन स्थान ।
पूजै आन स्थान मान कूं पाप कमावैं ।
कारज नांही सिद्धि कुबुधि बहुभांति उपावैं ।
रामचरण भज राम कूं जे चाहै सुखदान ।
दया धर्म भूला सबै आलिम दोइ अजान । --- अ०वा०, पृ० ७४८ ।

२- वही ।

३- हिन्दू मानै देहुरा, मुसलमान मसीत --- वही ।

४- वही ।

स्वामी जी हिन्दू और मुसलमानों दोनों को भ्रम के वश में देखते हैं। दोनों का लोकजीवन भ्रमों का आगार बना दीखता है। हिन्दू देवल-द्वारका के चक्कर में भरमता है तो मुसलमान मस्जिद और मक्का के भ्रम में पड़ा हुआ है। मुसलमान रोजा रखते हैं तो हिन्दू एकादशी रखते हैं। हिन्दू कर्म के फंदे में है तो मुसलमान ईद बकरीद मनाता है। तात्पर्य यह कि देवल-द्वारका, मस्जिद-मक्का, रोजा-एकादशी, ईद-बकरीद सभी भ्रमोत्पादक हैं और मनुष्य इन्हीं में भूला रहता है। 'अलह इलक' से भरपूर राम का भजन ही सुखदाई है। अत: दुविधा त्यागकर राम का भजन करना चाहिए क्योंकि दुविधा में पड़ा व्यक्ति नरक का भागी होता है चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान हो --

"क्या देवल या द्वारका क्या मक्का मसजीद ।
क्या रोजा एकादशी क्या कर्म ईद बकरीद ।
क्या कर्म ईद बकरीद भर्म में भुल्या दोई ।
अलह इलक भरपूर राम सुमर्यां सुखदोई ।
दुबध्या दोजिग जाइये क्या मुसलमान क्या हींद ।
क्या देवल या द्वारका क्या मक्का मसजीद ।"[1]

रोजा-एकादशी, देवल-मस्जिद, ईद-बकरीद एवं द्वारका-मक्का आदि को स्वामी जी ने निस्सार तो बतलाया ही हिन्दू और मुसलमान दोनों को भगवान को दिशाबद्ध करने से भी मना किया। उनका कहना है कि हिन्दू-मुसलमान भगवान को विरोधी दिशाओं में पाते हैं। अर्थात् हिन्दुओं का भगवान पूरब की ओर है और मुसलमानों का पश्चिम की ओर, अत: दोनों विरोधी दिशाओं की ओर उन्मुख होकर उपासना करते हैं। किन्तु भक्त कहते हैं कि वह सूर्य की ज्योति के समान सभी दिशाओं में व्याप्त है --

"हिन्दू हरि पूर्व कहै पश्चिम मुसलमान ।
दसूं दिशा हरि जन कहै तिमर ज्योति समान ।"[2]

इस कथन में जहाँ हिन्दू-मुस्लिम उपासना विधियों पर स्वामी जी ने दृष्टि डाली है, वहाँ उन्होंने दोनों को निकट करने का भी प्रयास किया है। दोनों ही एक परमात्मा के बंदे हैं पर यहाँ इस संसार में आकर दोनों को भिन्न-भिन्न मार्गों

---

१- अ० वा०, पृ० १७८ ।
२- वही ।

पर चलते हैं । इस प्रकार दोनों की उलझनें बढ़ती हैं, दोनों उलझनों को सुलझाकर रामस्मरण नहीं करते हैं परन्तु मस्जिद और देवल में भरमते फिरते हैं --

"रामचरण हिन्दू तुर्क मिळस्यार के घाट ।
एकै साईं सिरजिया अब चाले दो दो बाट ।
अब चाले दो दो बाट उलझ की आंटी भारी ।
सुलझ भजै न हि राम मिनख तन बाजी हारी ।
कै मसीत कै देवरै भर्म्यां फिरै निराट ।
रामचरण हिन्दू तुर्क मिळस्यार के घाटध ।"[1]

भिन्न धर्मों एवं उपासना पद्धतियों में आस्था होने के कारण भी हिन्दू और मुसलमानों में भेदभाव की खाई चौड़ी होती थी । उपर्युक्त उदाहरणों से इस आशय की गंध मिलती है कि स्वामी जी दोनों को मतवाद की उलझनों से विरत हो परस्पर निकट होने का संदेश देते हैं । मतवादी उलझनों से विरत होने का एकमात्र मार्ग राम-नाम का स्मरण है । इस संदर्भ में स्वामी जी विभिन्न मुसलमान भक्तों का नाम भी गिनाते हैं जो रामस्मरण के द्वारा उजागर हो गये हैं --

"शाहा सुलतांनी हैत मा काजी महमद फकीद ।
प्रगट दास कबीर हैं दादू अरु बाजिंद ।
दादू अरु बाजिन्द और हिन्दू बहु आगर ।
जिन सुमर्या इकराम तो ही सब भया उजागर ।[2]

भारतीय संतों की हिन्दू-मुस्लिम विचार वैषम्य पर सदैव दृष्टि रही है । मत भिन्नता के कारण दोनों जातियों में सदा वैर विरोध का भाव बना रहा और संत जन उसे दूरकर सद्भाव उत्पन्न करने के प्रयास में लगे ही रहे हैं । कबीर आदि संत सदैव हिन्दू और मुसलमानों को सदैव उनकी विकृत उपासना पद्धतियों के लिए फटकारते रहे हैं जिसके कारण दोनों में वैर-भाव स्थायित्व पाता था । वस्तुत: संतों की दृष्टि मानवतावादी रही है । स्वामी रामचरण इसी संत परंपरा की एक सुदृढ़ कड़ी थे । अत: यदि उन्होंने भी दोनों पक्षों में सद्भाव जगाने का सद्प्रयास किया तो

---

१- अ० वा०, पृ० ३७८ ।

२- वही ।

यह उचित ही था । निर्गुण उपासकों ने राम को सर्वव्यापी कहा है । स्वामी जी भी ~~निमनर-व्यक्ति०~~के इस राम को 'तिमर अरु ज्योति' के समान दसों दिशाओं में व्याप्त पाते हैं और इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनों उस ज्योति से आलोकित होते हैं अत: भेदभाव भ्रम के अलावा अन्य कुछ नहीं ।

पुस्तक ज्ञान

स्वामी रामचरण ने वेद, पुराण-कुरान आदि ग्रंथों के ज्ञान को भी निरर्थक ही कहा है, यदि उस ज्ञान से राम न मिल सके। वह 'साखी चाणक को अंग' में वेद के जानकार बेदी के ज्ञान को सुनकर कहा हुआ कहते हैं । उनकी दृष्टि में वेद पढ़ने और तत्वभेद जानने में अन्तर है ।[१] बेदी को भेदी (ब्रह्म का रहस्यवेत्ता) से व्यर्थ विवाद नहीं करना चाहिए क्योंकि बेदी दूसरे के कथन को दुहराता है और भेदी अनुभव करके कहता है --

"रामचरण बेदी अड़े, भेदी सूं बेकाम ।
बेदी परमारथि कहै, भेदी परसी राम ।"[२]

बेदी तत्व का रहस्यद्रष्टा नहीं, वह अपने पेट के लिए बारबार बेद का वाचन करके संसार को फंसाये रहता है ।[३] वस्तुत: स्वामी जी की दृष्टि में वेद संसार का जाल है, साधु इससे विरत रहकर रामभजन में लीन होता है । उसे विधि, क्रिया, यज्ञ, योग तपादि से कोई वास्ता नहीं रहता --

"वेद जाल संसार कूं, साधु सुमरै राम ।
विधि क्रिया जिग जोग तप, इनसूं रहै नकाम ।"[४]

---

१- वेद पढ़या भी भेद न पाया, बैख्या नहीं सुण्या सो गाया -- अ०वा०, पृ० ७२ ।
२- वही ।
३- बेदी तत्तभेदी नहीं, बांचै बारंबार ।
आप उदर कै कारणै, उलझायो संसार -- वही ।
४- वही ।

'विश्रामबोध' के छठे विश्राम में स्वामी जी ने बतलाया है कि ग्रंथ पढ़कर उसका अर्थ ज्ञान कर लेने के बाद मन में अहंकार का भाव जागृत हो जाता है। 'काम-दाम' की तृष्णा विकसित होकर मनुष्य को अज्ञानी बना देती है। इससे अच्छा तो अनपढ़ रहना ही है क्योंकि अपढ़ को गुरु द्वारा बताये ज्ञान से ही संतोष होता है।

> "ग्रंथ अर्थ पढ़ि बाँचि के मन आयो अभिमान ।
> काम दाम तृष्णा बंधी तो पढ़ि क्यूं पढे अज्ञान ।
> तो पढ़ि क्यूं पढे अज्ञान अग्नि ज्यूं घृत सिंवाई ।
> पाय पनंगनी दूध मध्य मिश्री जु मिलाई ।
> जायूं तो अपढे भले संतोष रता गुरु ज्ञान ।
> ग्रंथ अर्थ पढ़ बांच के मन आयो अभिमान ।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि संस्कृत और प्राकृत में लिखित ज्ञान का अर्थ तो बनाकर निकाल लेते हैं पर माया में लीन प्राणी के हृदय में वह ज्ञान अपना स्थान नहीं बना पाता।[2] स्वामी जी का मत है कि कथावाचन तो जीविकोपार्जन का उपाय है, सिद्धि का उपाय कदापि नहीं। सिद्धि तो साधना से ही संभव है।[3]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में विभिन्न ग्रंथों के ज्ञान की सार्थकता 'निष्काम' से ही है, कि फिर चाहे चारों वेद,[4] षटदर्शन,[5] नौ व्याकरण,[6] अठारह पुराण,[7]

---

१-अ० वा०, पृ० ८९७।

२- संस्कृत प्राकृत को अरिउ अर्थ बनाय।
पं माया रता प्राणिया ज्यां सिरै सिरै न काय।
-- वही, पृ० ८९७।

३- साधन करि सिधि पाइये, तो आप सुखी सुख और।
बिन साधन वाचक कथा, करै जीविका दौर।"
---वही।

४- चार वेद : ऋग्, यजु, साम, अथर्व।

५- षटदर्शन : सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त।

६- नौ व्याकरण : इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, शकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती।

७- अठारह पुराण : विष्णु, वाराह, वामन, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कण्डेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कंद, कूर्म, गरुड [संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, संत साहित्य --डा०प्रेमनारायण शुक्ल]।

कविता और कुरान का ज्ञान हो चाहे संस्कृत और प्राकृत भाषा का हो, बिना नाम के सम्पूर्ण ज्ञान अंधा है। यह रहस्य सभी नहीं जानते और जानने वाला कोई भगवान का भक्त ही होता है --

"चत्र शास्त्र नव अष्टदश भी कविता रु कुरान ।
संस्कृत प्राकृत को है निज नाम निधान ।
है निज नाम निधान नाम बिन सब ही अंधा ।
कहो कोण लखि ये भेद लखे कोई अलखी बंदा ।
महापतित पावन करण राम भजन निरवाण ।
चत्र शास्त्र नव अष्टदश भी कविता रु कुरान ।"[१]

'ग्रंथ समता निवास' के सप्तम प्रकरण में पुराण और कुरान के पठन-वाचन पर स्वामी जी का ध्यान गया है। पंडित, काजी, मीर, मुल्ला और सुल्तान सभी पुराण और कुरान का अध्ययन करते हैं किन्तु सभी भ्रम सरिता की धारा में पड़कर बहे जा रहे हैं। इन सभी ग्रंथों का पढ़ना व्यर्थ है क्योंकि बिना रामभजन के किसी की भी संसार सागर से मुक्ति संभव नहीं।[२] स्वामी जी की दृष्टि में तत्व-चिन्तन रहित पुराण या कुरान का अध्ययन वैसा ही है जैसे जल का मंथन। जैसे जलमंथन से घृत की प्राप्ति संभव नहीं वैसे ही कुरान या पुराण के अध्ययन से तत्व शोधन नहीं हो सकता।---

"जो पढ़यो पुरान कुरान कहा भयो कीर रे ।
जे तत्वज सोध्यो नांहि मथ्यो यू नीर रे ।
धिरत चढ़यो नहि हाथ बाद गइ सेर रे ।
परिहां बिन सतगुरु की भेंट लह्यो नहि भेद रे ।"[३]

---

१- अ० वा० (समता निवास, वि०प्र०), पृ० ८७० ।

२- पढ़ि भर्म नदी की धार बहै संसार रे ।
कोइ बिना राम के भजन होय नहि पार रे ।
कहा पंडित काजी मीर मुलां सुलतान रे ।
परिहां रामचरण पढ़ पुराण बांचता कुरान रे ।
--- वही, पृ० ६०७ ।

३- वही, पृ० ६०८ ।

पुराण और कुरान के अध्येताओं को तत्व नहीं मिलता वैसे ही जैसे किसी के हाथ में अन्न न आकर भूसा आवे। स्वामी जी कहते हैं कि कुरान-पुराण पढ़कर व्यक्ति अहंभाव से भर उठता है और अभिमान में रहकर मन को तोष नहीं दे पाता और न संसार-सागर से पार होने का मार्ग ही खोज पाता है --

"पढ़ि पढ़ि पुरान कुरान जो तत्व न पाईया।
सो जिम कण आयो हाथ कि कूकस गहिया।
पढ़ फूल्या मूल गुमाय न मन पर सोधिया।
परिहां कर बिचार भवत्यार पार नहिं सोधिया।"[1]

इस प्रकार स्वामी जी गीता, भागवत, वेद, पुराण, कुरान, साखी, शब्द सभी के पठन या वाचन को सारहीन समझते हैं।[2] सभी पाठों का मूल राम का नाम है जिन्होंने राम का विचारपूर्वक स्मरण किया उनका कार्य सिद्ध हुआ --

"सकल पाठ का मूल है, रामचरण इक राम।
जिन सोधि सुमरण किया, जिनका सरिया काम।"[3]

जात-पांत

स्वामी जी ने चारों वर्ण एवं आश्रमों को भी निरर्थक बतलाया है। राममयता ही सब वर्णों एवं आश्रमों के ऊपर है --

"च्यार वर्ण च्यारूं आश्रमा राम बिना सब खाली।
रामचरण रुचि आन धर्म सूं दुनियां यों जिग आली।"[4]

ग्रंथ 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण में स्वामी जी मानव जाति में ऊंच-नीच की भावना पर प्रहार करते हैं। स्वामी जी की दृष्टि में पांच तत्व और तीन गुणों की

---

१- अ० वा०, पृ० ६०८।

२- पढ़बो गीता भागवत, सौ चतुर अठारा भाख।
रामचरण इक राम बिन, ज्यूं माखी की मिष्ट।
--अ०वा०, पृ० ७३।

३- वही।

४- वही, पृ० ७४।

से निर्मित सभी मानव चेहरे एक हैं, इनमें भेदभाव व्यर्थ है --

"जैसे ऊँच नीच मध्य विविध प्रकारन के,
अंकुकुल्य मान भूलि न्यारी न्यारी टेक है।
रामचरण कहै गहै गुरु ज्ञान मान,
पांच तीन मांही तन नर चहरो एक है।"[१]

चाहे हिन्दू हो या मुसलमान सभी मानव चेहरे एक हैं जैसे नारायण एक है। दोनों को दो कहना नारायण को दो कहने के समान है --

"नर वर्ण मांसे चहरो एक है क्या हिन्दू मुसलमान।
ज्यों ही नारायण एक दोय कहै अजान।"[२]

करतार की रचना में कहां कोई हिन्दू है, कहां कोई यवन या चाण्डाल, कहां ऊँच-नीच और चार वर्ण हैं ? भगवान की सृष्टि में यह विभाव नहीं है, यह तो मनुष्य ने अहंकार में बंधकर अपने आप भेद उत्पन्न कर लिया है। किन्तु भगवान ऊँच और नीच का भेद नहीं गिनते, जो अपने को ऊँचा समझता है वह अभिमानवश मानव जन्म की हानि करता है --

"कहा कोउ हिन्दू अरु जवन चण्डार जू।
ऊँच अरु नीच पुनि वर्ण चारि।
कीन्ह करतार करतूति रचना नवै।
आप अहंकार बंध होय न्यारी।
... ... ...
ऊँच अरु नीच का भेद हरि ना गिणे
कोइ जन पिवत है पिवत्र धारा।
पिवत्र निज नाम पर कुल को मानिये,
जानिये रचे सब थाट सारा।
राम ही चरण जे ऊँचकुल मानि है,
हानिकर जन्म अभिमान कीनों।"[३]

---

१- अ० वा०, पृ० २२६।
२- वही।
३- वही।

भेख

स्वामी रामचरण ने साधुवेश धारण कर साधुकर्म से विरत होने वालों की अच्छी खबर ली है। उनका कहना है कि वेष धारण कर साधु की संज्ञा से तो विभूषित हो जाता है पर राम को स्मरण नहीं करता प्रत्युत व्यभिचारी का जीवन अपनाकर जन्म व्यर्थ नष्ट करता है --

"साधु कुहावे राम का करै सबा कूं याद ।
रामचरण व्यभिचार धर,जन्म गुमायो बाद ।"[1]

जगत की अधीनता में रहने वाले वेषधारी को स्वामी जी हीनभक्त की संज्ञा देते हैं, भक्त तो वह है जो संसार को भक्ति भावना से पूर्ण कर दे --

"जगत मांहि भक्ति करै, सो भक्तिवान जनलीन ।
हीण भक्ति सो जांणिये, भक्त जगत आधीन ।"[2]

स्वामी जी कण्ठी, तिलक, माला धारण करने वाले पर भी दृष्टि रखे हुए हैं। यह सारा स्वांग 'हरि मिलन' के नाम पर रचा जाता है पर वस्तुत भेखधारी भगवान से विमुख हो संसार में रत हो जाता है, वह घर घर जाकर माया को देखता है --

"माथै तिलक बणाई कै, कंठा कंठी धार ।
रामचरण माया तकै, भटकै घरघर बार ।"
सांग कछ्यो हरि मिलणा कूं, हरि सूं फेरी पूठ ।
रामचरण माया रता, चल्या जगत संग ऊठ ।"[3]

स्वामी जी भेख को स्वांग की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि भेष धारण कर स्वामी बनने वाला रामविहीन भेषधारी की दशा उस विधवा सदृश होती है जो पति हीन होने पर शृंगार करती है --

---

१- अ० वा०, पृ० ६७ ।
२- वही, पृ० ६८ ।
३- वही ।

"सांग पहर स्वामी भया, राम नहीं उर मांहि ।
तो विधवा का शृंगार है, पति कहूं दीसै नांहि ।"[१]

साधु का स्वांग करने वाले ढोंगियों के वेषाविन्यास को देखकर कवि को वेश्या के उस शृंगार की स्मृति हो आई है जिसे वह संसार को रिझाने के लिए करती है --

"जगत रिझावण कारणै, गणिका किया शिंगार ।
यूं मन माया तन भेष धरि, मारि खाय संसार ।"[२]

भेष धारण करने के बाद यदि हरि भजन द्वारा हृदय पवित्र नहीं किया तो स्वामीजी की दृष्टि में वह पोशाक 'बंदर की पोशाक' है --

"भेष पहर हरिभजन करि, किया नहीं दिल पाक ।
तो रामचरण यूं जाणिये, करि बंदर पोसाक ।"[३]

जो भेष धारण कर दूसरे का अन्न ग्रहण करते हैं पर राम का स्मरण नहीं करते, वे पाप करते हैं और इस पाप से उन्हें दुःख मिलता है --

"भजन बिना पर अन्न भेष धर खाईया ।
परिहां रामचरण हे पाप इसा दुख पाईया ।"[४]

भक्त वेश में रहने वाले कलियुगी पर स्वामी जी का यह आक्षेप भी अपनी यथार्थता के कारण ध्यान देने योग्य है --

"कलूकाल भगत की चाल यारों जाकी संगति मेत्र निवास है रे ।
पानफूल सुगंध घुटे बिजिया जहां सूल तमाखू की नास है रे ।
तहां ज्ञान वैराग भजन्न की खण्डना नाचना कूदना हांसि है रे ।
जहां रांडियाभांडिया आय मिले मिथियारसगाय विलास है रे ।"[५]

---

१- अ० वा०, पृ० ६८ ।
२- वही, पृ० ७० ।
३- वही ।
४- वही, पृ० ८४-८५ ।
५- वही, पृ० १०३ ।

"सांग पहरस्वामी भया, राम नहीं उर मांहि ।
तो विधवा का श्रृंगार है,पति कहूं दीसै नांहि ।"[१]

साधु का स्वांग करने वाले ढोंगियों के वेशाभिन्यास को देखकर कवि को वेश्या के उस श्रृंगार की स्मृति हो आई है जिसे वह संसार को रिझाने के लिए करती है --

"जगत रिझावण कारणैं, गणिका किया शिंगार ।
यूं मन माया तन भेष धरि, मारि खाय संसार ।"[२]

भेष धारण करने के बाद यदि हरि भजन द्वारा हृदय पवित्र नहीं किया तो स्वामीजी की दृष्टि में वह पोशाक 'बंदर की पोशाक' है --

"भेष पकर हरिभजन करि, किया नहीं दिल पाक ।
तो रामचरण यूं जाणिये, करि बंदर पोसाक ।"[३]

जो भेष धारण कर दूसरे का अन्न ग्रहण करते है पर राम का स्मरण नहीं करते, वे पाप करते हैं और इस पाप से उन्हें दुःख मिलता है --

"भजन बिना पर अन्न भेष धर खाईया ।
परिहां रामचरण ई पाप हुवा दुख पाईया ।"[४]

भक्त वेश में रहने वाले कलियुगी पर स्वामी जी का यह कटाक्ष भी अपनी यथार्थता के कारण ध्यान देने योग्य है --

"कलूकाल भगत की चाल यारो जाकि संगति येह निवास है रे ।
पानफूल सुगंध छुटै बिजिया जहां सूक तमाखू की नास है रे ।
तहां ग्यान बैराग भजन्न की खण्डना नाचना कूदना हांसि है रे ।
जहां रांडियाभांडिया साथ मिले मिथियारसगाय विलास है रे ।"[५]

---

१- अ० वा०, पृ० ६८ ।

२- वही, पृ० ७० ।

३- वही ।

४- वही, पृ० ८४-८५ ।

५- वही, पृ० १०३ ।

स्वामी जी कहते हैं कि संसार में साधु की पहचान भी मुश्किल हो गई है। हाथ में धातु का पात्र, जामा और पगड़ी का पहनावा, कमर में कटारी लटकी हुई, पीठ पर गठरी का भार लिये हुए मानो कोई संसारी है। फिर कैसे उसे पहचानें और प्रणाम करें। उनमें तो रामशरण का कोई दाग भी नहीं दिख सकता।[1] स्वामीजी वेषधारी का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि वेष का यश दाम-काम के परित्याग, लोभ-काम से उदासीनता और समता से सुमिरन करने में है। संत को आठों पहर सचेत रहना चाहिए और सहज स्वभाव ज्ञान-वैराग्य मय होकर विचरना चाहिए --

"बाना को यश बिड़द है त्यागै दाम रु काम।
समता सूं सुमरण करै नहीं लोभ अरु काम।
नहीं लोभ अरु काम जाग अठ रहै सुचेता।
बिचरै सहज सुभाय ज्ञान वैराग्य सहेता।
रामचरण तब साइये शोभा सुख अभिराम।
बाना को यश बिड़द है त्यागै दाम रु काम।"[2]

अन्य देवोपासना का निषेध

स्वामी रामचरण ने राम के अतिरिक्त अन्य किसी भी देवता की उपासना का खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में अन्य देवता का उपासक व्यभिचारिणी नारी सदृश होता है, उसका मुंह काला होता है --

"आन उपासै राम बिन जाका काला मुख।
रामचरण पतिपरिहर्यां स्वप्नै नांही सुख।"[3]

---

१- क्या सूं साध पिछांणिये कैसे कीजै आध।
कर में पातर धातुकी पहर्यां जामोपाघ।
पहर्याजामो पाघ कमर सूं बंधी कटारी।
पूठ गांठड़ी भार जांण आयो संसारी।
रामचरण दीसैनहीं रामशरण को दाग।
क्या सूं साध पिछांणिये कैसे कीजै आध। -- अ० वा०, पृ० १६८।

२- वही।

३- वही, पृ० १६।

'कन्द्रायणा विचार को अंग ' में स्वामी जी 'सबको निरजणाकार' एक राम के अतिरिक्त अन्य किसी की भी उपासना का खण्डन करते हैं[1]--

क्योंकि --

"रामनाम निज मूल और सब डार रे ।
शाखापत्र अनेक बहुत विस्तार रे ।"[2]

अन्य देवोपासना से 'पीव' नहीं मिलता, जैसे जार रत नारी को उसका 'कन्त' नहीं मिलता । स्वामी जी अन्य देव की उपासना को नारी के जार प्रेम सदृश समझते हैं --

"आन देव की सेव पीव क्यूं पाइये ।
ज्यूं तरुणी रत जार यूं कन्त रिसाइये ।"[3]

'अणभै विलास' के चौदहवें प्रकरण में स्वामी जी इस घोषणा के साथ अन्य किसी भी देवता की उपासना का निषेध करते हैं कि "रामसनेही राम का नहीं आन का दास"[4] उनका दावा है कि राम के आगे कोई देवता क्या कर सकता है । देवताका अधिकार जगत पर हो सकता है, भक्त पर नहीं --

"रावल आगै देवता कहा करैगा कोय ।
देवां दावो जगत पर नहीं भक्त पर होय[5]।"

ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के तेरहवें प्रकाश में कवि 'सठ' को आरोपित करता है कि वह अपने 'खालक' को छोड़ कर अन्य को पूजने जाता है, इस प्रकार आंख रहते धोखा खाता है --

"खालक पालक है सदा ताका न कछु चीन्हें ताहि ।
घटता पूजण जाय बाहिर न साप न्हावें ।

---

१- यूं सबको निरजणाकार एक है राम रे ।
परिहां रामचरण भज ताहि आन नहिं काम रे ।"-- अ० वा०, पृ० ४३ ।

२- वही ।

३- वही ।

४- वही, पृ० २७४ ।

५- वही ।

घटता पुजण जाय चाहि तन ताप लगावै ।
पूरा शीतल करै कामना ताय बुझावै ।
रामचरण लोयन क्षलां देखत खोटा खाय ।
सालक पालक है सदा घटता पुजण जाय ।"[१]

इसीलिए कवि इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता है कि --

"आन की सेव नहीं सुखदायक,
सेव बिना नर खेद उपावै ।"[२]

'विश्वासबोध' के सत्रहवें प्रकरण में वे 'आनदेव खण्डन' शीर्षक के अन्तर्गत भैरव और भूत आदि के पूजन की निन्दा करते हैं तथा 'परमानन्द निरंजन' की उपासना में लीन होने की प्रेरणा देते हैं --

"परि हरि परमानन्द निरंजन पूजे भूता ।
जाकूं सिद्धि मिलै नहि क्यूं ही यूंही जमकिंकुता ।"[३]

अन्य देव की उपासना करने वाले को कवि 'कुलक्षी' की संज्ञा इस तर्क के साथ देता है कि जिस करतार ने गर्भ से जन्म देकर पालन-पोषण किया उसे भुलाकर अन्य देवता का ध्यान करता है । ऐसा व्यक्ति जो 'करता की करतूति' को भूल जाता है विपत्ति का भाजन होता है --

"गर्भ मांहि पैदा कियो पोख्यो रिछ्या कराय ।
कुलघणी ताहि बीसरयो आन मनावै ध्याय ।
आन मनावै ध्याय तास कै भय करि हरि है ।
करता की करतूति परिश्रूर्या विपता भरि है ।
रामचरण औसे नरा खरा खराबी पाय ।
गर्भ मांहि पैदा कियो पोख्यो रिछ्या कराय ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० ४९५ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० ७४५ ।
४- वही ।

स्वामी जी की दृष्टि में राम विमुख होकर अन्य देव की पूजा करने वाला 'प्रपंची' होता है, वह इस पूजन से पुत्र और धन की आशा करता है और आशा अपूर्ण रहने पर पछताता है। इस उपासना को वह 'हरि हेत' का नाम भी देता है। पर भगवान तो अन्तर्यामी है। वह प्रपंची के अन्तर तम में झांक लेता है --

"परपंची पूजत फिरै हणी कूं उपजाय।
सुत वित की आशा धरैं विन मध्यां रहै पिछताय।
विन मध्यां रहै पिछताय, कियो हरि हेत बतावै।
हरि अंतर की लखै कहो कैसे भरि पावै।"[1]

कवि ऐसे लोगों को "हीण बुधी नर" नाम से अभिहित करता है जो अन्य देवों की सेवा करते हैं, चाहे वह पत्थर, धातु, काठ, माटी या गोबर के बने हों --

"रामचरण जे हीण बुधी नर, और और कूं सेवत।
पाखण धात काठ रंग माटी, कै गोबर का देवत।"[2]

ऐसे ही स्वामी जी अपने ग्रंथों में विभिन्न स्थलों पर अन्य देवों की उपासना से विरत होकर केवल राम में रत होने को कहते हैं।

ढोंगी तत्वों का रहस्योद्घाटन

स्वामी रामचरण ने समाज में परिव्याप्त ऐसे तत्वों का भली भांति पर्दाफाश किया है जो समाज में ढोंग-ढकोसला या पाखण्डों के सहारे जीते हैं और उन्हीं के आवरण में अपने दुराचरणों को छिपाते हैं। ऐसे तत्व मुख्यतया पण्डित और योगी या साधु के रूप में समाज में विचरते हैं और समाज को ठगकर अपने आचरणभ्रष्ट जीवन का पोषण करते हैं।

पंडित रूप

स्वामी जी ने पंडित शब्द ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त किया है। ग्रंथ 'पंडित संवाद' में प्रारंभ में ही पंडित के लिए ब्राह्मण शब्द का प्रयोग कर कलियुगी पंडितों की अच्छी

---

१- अ० वा०, पृ० ७४५।
२- वही, पृ० ७४६।

खबर ली है । कवि पण्डितों को व्यर्थ वाद करने के परिणाम से अवगत कराता है --

"ब्राह्मणवाद न कीजिए, तेरी लच्छ विचार ।
कर्म छांड़ि कुकर्म करै, तो धक्का खाय बरबार ।"[१]

कलियुग के पंडितों को उन्होंने स्पष्ट रूप से पाखण्डी कहा है जिनके घर में कुबुद्धि रूपा वेश्या का वास रहता है ।[२] पण्डित स्नानादि से शरीर स्वच्छ कर लेता है पर मन में कामना की मैल बैठी रहती है । स्वामीजीकुरेद कर कहते हैं कि शरीर धोने से उत्तम नहीं होता, उत्तम मन तो नामस्मरण करने से होता है --

"न्हाय धोय अपरस हुवै बैठा
मन में मैल चाहिका पैठा ।
तन धोया नहिं उत्तम होई ।
उत्तम नाम लियाँ मन होई ।"[३]

पंडित कथा-वाचन करते हैं और अनेक अर्थ विचारते हैं पर मन में माया की आशा धारण किये रहते हैं । बहु अर्थ करने में ही पापी को धर्मी कह देते हैं और रामभक्तों से ईर्ष्या रखते हैं । ललाट पर शिव का तिलक लगा लेते हैं पर शिवस्मरण के रहस्य से सर्वथा अनभिज्ञ हैं । कहने को ब्राह्मण हैं पर ब्राह्मण का लक्षण एक भी नहीं दृष्टिगत होता, धरती को छूते हुए आकाश में उड़ना चाहते हैं --

"कथा करै बहु अर्थ विचारै ।
अंतर आश माया की धारै ।
पापी कूं धर्मी कह भाखै ।
रामजनां सूं द्वेषता राखै ।
माथे शिव का तिलक बणावै ।
शिव सुमरै सो भेद न पावै ।
विप्र कहै पर एक न दशी ।
चाहै उड्यो धरणि कूं पर्शै ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० ६८४ ।

२- कलियुग के पंडित पाखंडी, घर में कुबुधि कारूपा रण्डी । --- वही ।

३- वही ।

४- वही ।

पंडित ज्ञानी को कहते हैं, वह विद्वता का रूप ही होता है, पर यहाँ पंडित को ज्ञान-ध्यान से कोई नाता नहीं है।[1] पंडित पिंड का शोधनकर्ता होता है, वह महाबली मन को ~~xxxxxxxxx~~ समझाता है।[2] किन्तु कलियुग का पंडित तो वासना की साक्षात् मूर्ति है। स्वामी जी ने वासना के पुतले पंडित को कुत्ते सदृश वासना में लिप्त देखा है --

"कामणि संग कूकर ज्यूं लागै ।
विषा की लहरि कुमति नहि जागै ।"[3]

स्वामी जी पण्डित से कहते हैं कि पहले तो मनुष्य योनि में उत्पत्ति फिर ब्राह्मण की उत्तम देह तुम्हें मिली है, तुम्हें तो राम का भजन करना चाहिए। राम का नाम लेने वाले अधम भी मुक्त हो गए पर पंडित तू क्यों चूकता है ?

"मिनख जन्म उत्तम ~~देही~~ द्विज देही ।
जाकरि भजिए राम सनेही ।
राम कहत अधम तिर गया ।
तू क्यों पंडित गाफिल भया ।"[4]

स्वामी जी की दृष्टि में चारों वेद का वक्ता, नवों शास्त्र एवं व्याकरण का ज्ञाता, संध्या तर्पण और गायत्री में रत रहने वाला पंडित यदि भक्ति विमुख है तो वह पापी है --

"वक्ता च्यारुं वेद बखाणै ।
शास्त्र षट् नव व्याकरण जाणै ।
संध्या तर्पण गायत्री व० जापै ।
भक्ति विमुख सो कहिये पापी ।"[5]

ज्योतिषाभिमानी उत्तमवंशी पंडित का रत्न सदृश जीवन नष्ट होते देख कवि को पछतावा होता है, वह कहता है --

---

१- ज्ञान ध्यान दोइ बैठाधार, शुकुछारै ता पसार -- वर्तमा० अ०वा०,पृ० ६८४।
२- पंडित सोही पिण्ड कूं शोधे, महा अपरबल मन कूं बोधे -- वही।
३- वही।
४- वही।
५- वही, पृ० ६८४-८५।

"रतन जनम हार्यो अज्ञानी ।
उत्तम कुल जाति का अभिमानी ।"[1]

परन्तु है तो वह पंडित, अतः स्वामी जी उससे प्रश्न करते हैं कि लोभ, मोह और अज्ञान में बंधकर पण्डित तूने क्या पाया ? खैर, जो हुआ सो हुआ पर अब गफलत छोड़कर राम का नामस्मरण कर संसार सागर से मुक्त हो जा ।

"लोभ मोह अज्ञान बंधाया ।
तैं पंडित होइ कहा कुमाया ।
रामचरण अब ढील न करिये ।
रामसुमर भवसागर तिरिये ।"[2]

योगी रूप

स्वामी रामचरण ने साधु-सन्यासी या योगियों के वेश में समाज को ठगने वाले तत्वों का गहरा अध्ययन किया था । वास्तव में ये सभी विभिन्न सम्प्रदायों या पंथों का वेश धारण कर लेते थे और धर्म भीरु समाज को ठगने में कोई कोर कसर न उठा रखते थे । ऐसे विभिन्न वेषी साधुओं एवं योगियों से स्वामी जी ने समाज को सजग किया था । 'विश्राम बोध' के आठवें एवं 'समता निवास' के आठवें प्रकरण तथा 'लच्छ अलच्छ जोग', 'वैमुखि तिरस्कार' और 'शब्द' आदि ग्रंथों में इन तत्वों का पर्दाफाश खूब हुआ है ।

नागा साधु

नागाओं के समूह को स्वामी जी ने सेना के रूप में देखा है । 'विश्राम बोध' के आठवें विश्राम में 'नागी सेना' शीर्षक देकर उन्होंने नागाओं के सम्पर्क-जन्य सैनिक रूप का वर्णन किया है --

"तन पर खाख चढ़ाय कै, करख लीन्हीं हाथ ।
तुपक स्यारी बांधि कै, चाले जोड़ जमात ।"[3]

ग्रंथ 'लच्छ अलच्छ जोग' में सभी साधुओं से बड़े विनम्र शब्दों में स्वामी जी नागाओं को साधु-समाज का अवांछित तत्व बतलाते हैं । कलियुग में नागा के रूप में

---

१- अ० वा०, पृ० ८५ ।
२- वही ।
३- अ०वा०, पृ० ८३१ ।

दानव प्रकट हुए हैं, जहां यज्ञादि महोत्सव होते हैं, वहां ये दानव सदृश विध्वंस करने पहुंच जाते हैं --

"कलि में दानव प्रगट्या, नागा बड़ी कलाय ।
जिन महोछा देखिवे, दौड़ि विध्वंसे जाय ।"[1]

नागाओं की सेना काल की सेना के सदृश किसी भी नगरी में पहुंचकर नगर-निवासियों को आतंकित कर देती है । स्वामी जी ने इस संदर्भ में विभिन्न साधु सम्प्रदायों के नाग-साधु संगठनों की चर्चा की है, जैसे -- निर्वाणी, संतोषी, निर्मोही, खाकी, गूदड़िया आदि । इन सभी वैरागी अखाड़ों के नागा कुश्ती लड़ने डण्ड-व्यायामादि में रत रहते हैं[2] --

"नागा की फौज बखाणूं ।
मैं भांति भांति परमाणूं ।
कटक काल को आवै ।
नगरी दुनिया धड़कावै ।
निरालंब निर्वाणी ।
ये संतोषी अगिवांणी ।
खाकी धूल्या आया ।
निर्मोही कुण्डल बणाया ।"[3]

स्वामी जी इस निष्कर्ष पर हैं कि नागा संगठन साधु-समाज में असामाजिक तत्त्व हैं । इनसे राजा भी डरता है, ये प्रत्यक्ष काल स्वरूप हैं --

"रामचरण नागा नगन प्रत्यग काल स्वरूप ।
जगत बिचारो क्या करै, धड़को मानै भूप ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० ६८६ ।

२- कुश्ती का पूंचा मोड़ै....ये पेलै डंड वियामा । --- वही, पृ० ६८६ ।

३- वही ।

४- वही, पृ० ६८७ ।

## योगी

अपने लघु ग्रंथ 'शब्द' में स्वामी रामचरण ने 'चौपाई' और 'निशाणी' छन्द शैलियों में कलियुग के योगियों का भण्डाफोड़ किया है। यहाँ योगी से स्वामी जी का तात्पर्य नाथ-योगियों से ही है जो कनफटे, मुंडित सिर एवं भगवाधारी होते हैं। 'कानफड़ाया सिर मुण्डाया भगवा भेष बणाइन्दा'[1]। ये आदि पुरुष का रहस्य तो जानते नहीं। हाँ, लबेद के सहारे भीख की उगाही अवश्य करते फिरते हैं, कहने को नाथ कहे जाते हैं पर घर घर घूमते हैं --

"आदि पुरुष का लखै न भेद।
भीख उघावै लियां लबेद।
... ... ...
गावै गीत भंडाई करैं।
नाथ कहावै घर घर फिरैं।"[2]

स्वामी जी की दृष्टि में ये नाथ योगी पंच विकारों[3] से मुक्त नहीं और सहज तो ऊपर से योगिनी का साथ भी हो जाता है। स्वामी जी इस निष्कर्ष पर हैं कि कलियुग के योगी करणी भ्रष्ट और पंचरस भोगी हैं --

"पांचू छूटी सकै न साथ।
बहुरि सिमरड़ी जोगणि साथ।
... ... ...
करणी भ्रष्ट पंचरस भोगी।
रामचरण ये कलिजुग का जोगी।"[4]

## अन्य सम्प्रदायों के साधु

स्वामी जी को कलियुग में विरक्त विरला ही दीखता है, सभी कनक-कामिनी में लीन हैं। 'बेकुक्ति-तिरस्कार' में उन्होंने सभी मतों के साधुओं की वासना

---

१- अ० वा०, पृ० ६६१।

२- वही।

३- काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद -- संत साहित्य, पृ० २०५।

४- अ० वा०, पृ० ६६१।

रत रैसा है चाहे वह भगुवेशी हो, या जटाधारी, चाहे खाकी हो या कन-फटा, चाहे जैनी हो या नमाजी -- सभी नारी योनि के भोग में रत हैं --

"रामचरण कलुकाल में, बिरक्त विरला कोय ।
कनक कामणी रत घणा, बैठा जल मल खोय ।

... ... ...

कान फड़ाय रु जोगी भया ।
नारि कनफड़ी सूं मन दिया ।
कफुल मुद्रा व एक रंग ।
छिल कुबाला नाना रंग ।
बार बार याकूं धिक्कार ।
शक्ति पुज भुगते भरतार ।"[१]

कवि ने इसी शैली में विभिन्न वेशधारी एवं मतावलम्बी साधुओं को नारी संयोग में रत होने के लिए दुत्कारा है । अति यथार्थ के धरातल पर उतर कर उन्होंने समाज के समक्ष समाज के इन पाखण्ड रूपों का सही रूप प्रस्तुत कर दिया है ।

मादक वस्तुओं का सेवन निषेध

स्वामी जी ने अपने जीवन में सदाचार एवं सात्विकता को विशेष महत्व दिया है । उन्होंने अहिंसा पर इतना बल दिया था कि पानी छानकर पीने का आदेश अपने जिज्ञासुओं को दिया । मांसाहार की तो बड़ी भर्त्सना की । इसके साथ उन्होंने मादक वस्तुओं -- तम्बाकू, गांजा आदि -- के सेवन का भी निषेध किया । अपने महाग्रंथ 'अणभै वाणी' में उन्होंने इस आशय की चर्चा की है । 'साखी भेख को अंग' की निम्न लिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त कथन को पुष्ट करती हैं --

"के आफू के भांग तमाखू, घोटा कुण्डी सार ।
भक्त हुआ पण राम न जाणी, अमलांका अधिकार ।
भक्त हुआ आछा भजन करण कूं, भजन रह गया दूर ।
भांग तमाखू लगाकर, कर्म किया भरपूर ।"[२]

'कुपहल्या भेख को अंग' में स्वामी जी भांग तमाखू को भेष को भांड़ने वाला कहते हैं --

१- अ० वा०, पृ० ६८६ ।
२- वही, पृ० ६८ ।

राधा का स्वांग रचकर, नारी का चेहरा बनाकर घर घर नाचता फिरता है और इस 'प्रगट कपट' को संसार भक्ति की संज्ञा देता है --

"स्वारथ नाचै डुमड़ा कहै राधिका कान्ह ।
रामचरण आंधा पशु, ताहि देत है दान ।
राधा राणी कृष्णकी, सब ही में अधिकार ।
ताकी नकल बणाय कै, नाचै घर घर बार ।
ऊपर चेहरा नारि का, मांहि पुरुष आकार ।
रामचरण प्रग्गट कपट, भक्ति कहै संसार ।"[1]

स्वामी जी ऐसे राधा-कृष्ण का नटन करने वालों तथा उन्हें दान देने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि राधा को नाचते और कृष्ण को कूदते देखा गया है --

"राधा देखी नाचती कूदत देखे कान्ह ।
रामचरण ताहि दि दान दे, आंधा पशु अजान ।"[2]

नारि का स्वांग बनाकर नाचने वाला मूर्खों का धनमाल अपहृत करता है पर बुद्धिमान लोग जहां ऐसी आचरणहीनता देखते हैं, कदम नहीं रखते । इसी को संसार धर्म कहता है पर स्वामी जी [illegible] की दृष्टि में यह 'प्रगट पाप' दीखता है । ऐसे पाप का निषेध स्वामी जी निधड़क करते हैं --

"नारी सांग नरतन करै, हरै मुग्ध धनमाल ।
बुध जन तहां न पग धरै, दखै चाल कुचाल ।
... ... ...
धर्म कहै संसार सब प्रग्गट दीसै पाप ।
पुत्र नचावै दान दै, नाचै माई बाप ।"[3]

स्वामी जी ऐसे अधम मानव को अधवेसर की संज्ञा देते हैं जो स्त्री का स्वांग बना कर लोगों में काम-वासना का जागरण करते हैं । इनके पैर पीटने, ताली बजाने,

---

१- अ० वा०, पृ० ६५।
२- वही ।
३- वही ।

नकल करने और गाने से आकृष्ट जनों की मनसा विचलित होती है। अपि यह देख कर अचम्भा है कि संसार में ऐसे अनेक जन हैं जिन्हें ढग कर भांड अपना जीवन यापन करते हैं --

"अधम गति अध भेसरा, मूर्ख डहकावें रे।
कामिणि सांग बणाय कै, मन काम जगावें रे।
... ... ....
पग पीटे मकला करै, ताली दे गावें रे।
कौतिक देखै कौतिगी, मनसा बिचलावें रे।
... ... ....
रामचरण संसार की, कछु अकल न आवें रे।
ज्ञान हीणा हिय अंध की, मैंडवा ठग खावें रे।"[1]

भीणूं सो मारग हाथ न आवै : एक समीक्षा

'सवैया साच को अंग' में स्वामी रामचरण ने परमात्मा तक पहुंचने के पंथ को भीणा मारग (सूक्ष्म पंथ) कहा है। यह 'भीणा मारग' सांसारिक माया जाल, ढोंग-पाखण्ड से नहीं मिलता। इसके लिए गुरु प्रदत्त ज्ञान अपेक्षित है।[2] पर मनुष्य भौतिकता के बंधन में जकड़ा हुआ है। इस भौतिकता के भ्रम के कारण ही कोई काशी में जाकर वेदाध्ययन करता है, कोई करवत लेता है, कोई हिमालय में जाकर हड्डियां गलाता है तो कोई केदार तीर्थ का पत्थर लाता है।[3] स्वामी जी की दृष्टि में आबू, गिरनार पर्वतों की चढ़ान, गोमती संगम स्नान, दण्डकारण्य का वास, गोदावरी की सिद्धि, केशलुंचन, मुख पर कपड़ा लगाना, कान फड़ाना, लिंग का चमड़ा कटवाना द्वारिका, मक्का भ्रमण, पुराण, कुरान का अध्ययन तथा इसी प्रकार के अन्य विविध कर्मकाण्डों से भगवान नहीं रीझता --

---

१- अ० वा० (सुख विलास, सप्तम प्रकरण), पृ० ३७६।

२- "रामचरण बिना गुरु ज्ञानहि भीणूं सो मारग हाथ न आवै।"
--- अ० वा०, पृ० ६६।

३- कोइक काशी में बेद पढ़ै पुनि कोइ करवत शीश चढ़ावैं।
कोइक हाड़ हिमाला में गालत कोइ केदार को कांकर लावैं।
--- वही।

"कोइक आबू चढ़ै, गिरनार कोइक गोमती संगम न्हावै ।
कोइक वास करै दण्डकारण्य कोइक सिद्धि गोदावरी पावै ।

...    ...    ...    ...

लुंच कियां मुख पाट दियां हरि नांहि मिलै अंगछार लगायां ।
कान फड़्यां लिंगवाम कट्यां राम रीझै नहि मुंड मुंडायां ।

...    ...    ...    ...

हिन्दू को देव द्वारिका राजत वेद पुराण में पण्डित गावै ।
कुरान कतेब तुरक्क पढ़ै सिध बैठ जिहाज मक्के चलि जावै ।"[1]

स्वामी जी की दृष्टि में कर्मकाण्डों से भ्रम उत्पन्न होता है । संसार के प्रपंचों में बुद्धि के कारण मनुष्य को मुक्ति का मार्ग नहीं मिल पाता । स्वामी जी ने इन सभी कारणों की धज्जी उड़ाई है और कर्मकाण्डों के परित्याग का उपदेश दिया है । इसके साथ सामाजिक रूढ़ियों, पाखण्डों और उनके पोषक विभिन्न वेशधारी ढोंगियों को भी अच्छी खबर ली है । उन्होंने सबसे विरत हो रामस्मरण का पंथ सुझाया है ।

रचनात्मक

स्वामी रामचरण ने जहां लोक-जीवन से अमंगलमयता को ध्वस्त करने का उद्घोष किया था वहीं उन्होंने जीवन को मंगलमय करने के लिए रचनात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया था । इनकी कल्पना का सज्जीवन एक आदर्श जीवन था जिसके लिए उन्होंने जन-मानस को अपनी प्रेरणाओं से भर दिया था । इसलिए उन्होंने नामोपासना सत्संग, अहिंसा, दया, श्रद्धा, विश्वास आदि विभिन्न आदर्शों को जीवन का पाथेय बनाने का संदेश दिया था ।

नामोपासना

निर्गुण साधक संतों में से अधिकांश ने राम नामस्मरण का उपदेश दिया था । स्वामी रामचरण ने नामोपासना की महिमा का गान करते हुए सभी को रामभजन की

---

१- अ० वा०, पृ० ६९ ।

प्रेरणा दी । भगवान के नाम स्मरण से मनुष्य निष्पाप हो जाता है । जैसे सूर्य का का प्रकाश 'शीतकोट'[१] को समाप्त कर देता है वैसे ही नामस्मरण से पाप कट जाते है । नाम पाप रूपी शीतकोट के लिए सूर्य है, पाप रूपी धुंआं के लिए मारुत सदृश है, यदि पाप समूह भेड़ों का यूथ है तो नाम सिंह है, पाप व्याल के लिए नाम मयूर है । पाप रूपी जंगल के झाड़ के लिए नाम पावक है --

"पाप शीत के कोट नाम आदित्य प्रकाशी ।
पाप धोम की धाम नाम मारुत विनाशी ।
पाप भेड के यूथ नाम के हरि मल गज्जै ।
पाप बावर्ण भजंग नाम मोरा ज्यों भज्जै ।
अघ बारण उलझाड़ नाम पावक परजालै ।
अघ पाला के पुंज नाम सूरज तप गालै ।
रामचरण मोरी सुरंग गढ छांड़ि बीखर जाय ।
इसो अपरबल राम है भजतां सुख धाय ।"[२]

नामोपासना से मन शुद्ध होता है, जैसे साबुन से मैल कटती है वैसे नामस्मरण से मन धुल जाता है, नाम वह अग्नि है जिसमें अपावन जल कर नष्ट हो जाता है । एतदर्थ स्वामी जी वेद और साधुओं की साक्षी की बात भी कहते हैं --

"मलवर काटै मैल नाम यूं मन को धोवै ।
बहु बन जालै अनल नाम अैसे भ्रम खोवै ।
... ... ...
वेद साध मत ठीक है सुमरन सूं सुख होय ।
रामचरण सतगुरु शब्द राखो हिरदै पोय ।"[३]

---

१- शीतकोट -- मरुभूमि में ग्रीष्मकाल के मरीचि नीर सदृश शीतकाल में सूर्योदय से कुछ पहले पश्चिम दिशा में 'कोट कंगूरे' बुर्ज आदि से युक्त नगर-सा दिखाई पड़ता है पर सूर्य का प्रकाश होते ही भ्रमित करने वाला नगर अदृश्य हो जाता है । यही शीतकोट है ---- लेखक ।

२- अ० वा० (नाम समर्थाई को अंग), पृ० १०६ ।

३- वही, पृ० १०५ ।

'चन्द्रायणा, नाम समर्थाई को अंग' में स्वामी जी रामनाम के प्रताप का स्मरण कराते हैं और कहते हैं कि यह एकमेव 'तारक' है। इसके प्रताप से जीव तो क्या पत्थर भी पार हो जाते हैं --

> "राम नाम परताप सुरति कर जोय रे।
> या बिन तारक नांहि दूसरो कोय रे।
> अट्ठ तिरे जल मांहि लिख्यो रंकार रे।
> परिहां पांहणा उतरे पार जीव क्या भार रे।"[1]

'समता निवास' के द्वितीय प्रकरण में कवि रामनाम को अनन्य 'मंगलपद' कहता है जिसके स्मरण में कुछ लगता नहीं और मन में भी कोई अन्य भाव नहीं उपजता प्रत्युत तीनों ताप से मुक्ति मिल जाती है। नामस्मरण से मन में पूर्ण शान्ति आती है और अशांति दूर होती है। यह रामनाम अनेक जन्मों के संचित पापों का अपहर्ता बड़ा चोर है --

> "रामनाम सम दूसरो कोइ मंगल पद नहिं और।
> सो लेतां कछु लागत नहीं जीं आवत नांही और।
> जीं आवत नांही और तापत्रय रहण न पावै।
> सुमरत शाता पूर अशाता निकट न आवै।
> संचित सब पाप केइ जन्म के वे हरणे बड़ चोर।
> रामनाम सम दूसरो कोइ मंगल पद नहिं और।"[2]

'राम रसायण बोध' के द्वितीय प्रकरण में कवि राम नाम को 'परमपद' की संज्ञा देता है जिसकी स्मृति से समस्त कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं, संतोष की उत्पत्ति होती है और मन की वासनाएं नष्ट होती हैं। 'राम जी' सूक्ष्म-स्थूल सभी में व्याप्त हैं जिन का सुमिरन 'अभंग सुख' का दाता है --

---

१- अ० वा०, पृ० ७६।
२- वही, पृ० ८७०।

परमपद हक राम कामना मनकी पूरन ।
उपजावै संतो का मनोरथ करिहै चूरन ।

... ... ...

रामचरण हक राम जी सुखिम थूल सर्वंग ।
जाको जे सुमरण करै जाक सुक्ख अभंग ।"[१]

'विश्राम बोध' के तृतीय विश्राम में स्वामी जी राम नाम को जीव की जीविका या आधार कहते हैं, जो प्राण की जीविका धान है वैसे ही जीव की जीविका राम है --

"प्रांन की जीविका जांनि यह धांन है जीव की जीविका राम कहिये ।
धांन सूं प्रांन अरु अरु राम सूं जीव है ताही तैं राम का नाम लहिये"।[२]

'सुख विलास' के तृतीय प्रकरण में स्वामी जी भजन विचार को हृदय में उत्पन्न होने वाले 'आनन्द प्रकाश' का कारण मानते हैं। राम का नाम स्मरण करने से दुःख-द्वन्द्व, भय-प्रमादि का नाश होता है --

"भजन उदय जहां जानिये, उर आनंद प्रकाश ।
रामचरण दुख द्वन्द्व गया, भया भर्म भय नाश ।"[३]

इसी प्रकार 'अणभै विलास' के पंचम प्रकरण में स्वामी जी नामस्मरण को 'भक्ति का अंग' स्वीकारते हुए उसे सब अंगों में श्रेष्ठ घोषित करते हैं। राजा हो या रंक जो भी राम का नामस्मरण करता है उसे सद्गति मिलती है --

"सुमरण भक्ती अंग कही जे ।
सब मांही शिर ताजा ।
सुमरै राम सोही गति पावै ।
कहा रंक कहा राजा ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० ८७० ।
२- वही, पृ० ६६० ।
३- वही, पृ० ३४६ ।
४- वही, पृ० २३५ ।

'सवैया नाम महिमा को अंग' में स्वामी जी ने राम का नामस्मरण कर मुक्ति पाने वालों की चर्चा के साथ नामप्रताप को उजागर किया है। ग्राह से पीड़ित गज, तोता को राम-राम पढ़ाने वाली वारवधू, अघी अजामिल, ध्रुव, प्रह्लाद, कबीर आदि अनेक नाम के अनुरागियों के उद्धार का संदर्भ प्रस्तुत कर स्वामी जी ने नामोपासना की महिमा गाई है --

> "गज ग्राह गह्यो तब राम कह्यो नहिं ढील करी जिहिबार उबारे ।
> रामहि राम पढ़ावति कीर हूं वारमुखी कैसे कर्म निवारे ।
> रामनारायण नाम लियो सुत हेत अजामिल अघ: प्रजारे ।
> रामचरण्ण दयासिन्धु रामजी पौरे हि मैं ओ पांवर त्यारे ।"
>
> ... ... .. ...
>
> काशी में एक कबीर भयो जुलहा घर आय प्रवेश कियो है ।
> छांड़ि दियो सबही कुल को धर्म नाम निरंजन सोधि लियो है ।
> शाह सिकंदर ताप दई तब पुरण ब्रह्म में प्राण दियो है ।
> रामचरण्ण ये संत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है ।"[१]

'साखी सुमरण को अंग' में कवि ईश्वर के दीदार का साधन नामस्मरण को मानता है, बिना भजन के भवपाश से मुक्ति संभव नहीं है --

> भजन बिना छूटै नहीं, रामचरण भव पासि ।
> जे चाहुवै दीदार कूं, तो रटिये सास उसास ।"[२]

स्वामी जी राम के नामस्मरण पर बार बार बल देते हैं क्योंकि वह सुख का सागर एवं दुख भंजक है। भाव से रामभजन करने से प्रेम का विकास होता है। अत: कवि संसार की झूठ रीति को छोड़ने और राम भजन को न छोड़ने का सत्परामर्श सभी को देता है। इसी संदर्भ में वह इसे आनन्दपद कह देता है --

---

१- अ० वा०, पृ० ८६ ।
२- वही, पृ० ६ ।
~~३- वही, पृ० ७ ।~~

"सुख का सागर राम है दुख का भंजनहार ।
रामचरण तजिये नहीं भजिये बारंबार ।

... ... ...

रामभजन कर भावसूं दिनदिन सघती प्रीति ।
रामचरण संसार की तजि देवै रारीति ।

... ... ...

रामभजन आनंदपद दुख दीघी संसार ।
रामचरण दुख परिहरी, सुखपद करो विचार ।"[1]

अंत में स्वामी जी यह कहते हैं कि गुण, इन्द्रियाँ और मन पर विजय करके राम का नामस्मरण करना चाहिए क्योंकि यही 'मोक्षपंथ' है, अन्य पथ नहीं --

"सुमरै रमता राम कूं गुण इन्द्री मनजीत ।
रामचरण यह मोक्ष पंथ, और सकल विप्रीत ।"[2]

यह राम का नाम 'रसायन' है, इसका पान करने वाला व्यक्ति जीवनमुक्त हो जाता है, उसे पुन: माता जन्म नहीं देती । 'रामरसायण बोध' की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं --

"जननी कबहूं नां जणै जो पीवै रामरसाण ।
राम रसायण पीवतां मिटै जीव की कांण ।"[3]

इसी लिए तो संत अब अपनी 'रमइया' के दीदार के लिए बेचैन हैं, वह निशिदिन रामनाम की टेर लगाये हुए है । 'गावा का पद' का यह पद इसी भावना से ओत प्रोत है --

"रमइया मेरी पलक न लागै हो ।
दरश तुम्हारे कारणै निशिवासर जागै हो ।
चहूं दिशा आतर कहूं, तेरी पंथ निहारूं हो ।
राम नाम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० ८ ।
२- वही, पृ० ६ ।
३- वही, पृ० ६२६ ।
४- वही, पृ० १००६ ।

कवि ने रामनाम की उपासना का महत्व समझा है और सभी को राम के नाम-स्मरण की प्रेरणा दी है क्योंकि यह मंगलपद, परमपद, आनंदप्रकाश, भक्ति का साधक आनंद पद, सुखपद, मोक्षपद आदि सभी कुछ है। यह राम का नामस्मरण सचमुच भव-पाश से मुक्त करने वाला है। इसीलिए स्वामी जी सभी को नामोपासना का संदेश देते हैं।

## सत्संग

स्वामी रामचरण ने सत्संग को लोकजीवन के लिए अत्यावश्यक समझा है। मन की निर्मलता, सदाचरण एवं अन्य सद्विचारों की रक्षा एवं विकास सत्संग से ही संभव है। समाज में कुत्सित विचारों एवं व्यवहारों वाले लोगों की संख्या कम नहीं है। उनके प्रभाव से समाज को अछूता रखने का गंभीर प्रयास संत जीवन का प्रमुख उद्देश्य होता है। स्वामी रामचरण ऐसे संतों में प्रमुख स्थान रखते हैं जिन्होंने जीवन के नैतिक मूल्यों उच्चादर्शों एवं मोक्षादि के लिए सत्संग को बड़ा ही आवश्यक बतलाया है। उन्होंने नामस्मरण के साथ सत्संग को भी नितान्त आवश्यक अंग समझा है। `अणभै-विलास` के बीसवें प्रकरण में सत्संग को कवि ने `रामबाग` की संज्ञा दी है जिसमें उत्तम उत्तम गुणों वाले वृक्ष हैं --

"उत्तम उत्तम तरु सरु है सकल गुण।
राम ही चरण रामबाग सत्संग है।"[1]

सामान्य रूप से अच्छे जनों के सम्पर्क में रहकर उनसे सद्चर्चा करना सत्संग कहलाता है, स्वामी जी ने साधु संगति को सत्संग का पर्याय सदृश मान लिया है और हरि चर्चा को सत्संग के रूप में स्वीकार किया है। कहा भी है कि सत्संग वह सरोवर है जिसमें राम जल होता है और जिसका घाट कोई साधु ही बांधता है --

"सतसंग सरवर रामजल, कोई साधु बांधे घाट।
करम कबोई आत्मा, बहती रांके बाट।"[2]

---

१- अ०वा०, पृ० ३१०।

२- वही (साखी साध संगति को अंग), पृ० २२।

कवि सत्संग की चर्चा के साथ कुसंग से परहेज भी करता चलता है। जहां वह सत्संग को मोक्ष का कारण कहता है वहीं कुसंग को बंधन समझता है। नरदेह के साथ इन दोनों तथ्यों का लगाव प्रमाणित है --

"सत संग कारण मोक्ष को, कुसंग बंधन जान।
रामचरण नरदेह में, ये परियलक्ष प्रमान।[1]

कुसंग का परिणाम दुःख होता है। स्वामी जी का विचार है कि सत्संगति मिलते ही कुसंगति से विरक्त हो जाना चाहिए, यदि तनिक भी लापरवाही हुई तो खेल के उल्टा हो जाने की संभावना हो जाती है। देखिए न, जीव ब्रह्म का अंश है पर देही का संग मिल जाने के कारण दुःख पाता है --

"आवू सतसंगति मिले, सो तजे कुसंगति मैल।
रामचरण गाफिल रह्यां, होय जाय उलटा खेल।

... ... ... ...

रामचरण कुसंग का देखो फल निरताय।
जीव ब्रह्म का अंश है, देही संग दुख पाय।"[2]

सत्संग दुःख मुक्ति का सरल साधन है। सत्संग ऐसा पद है जिससे जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा मिल जाता है। स्वामीजीका मत है कि ज्ञान की न्यूनता में राम का भजन करना चाहिए, इससे हृदय में काम-क्रोध का विकार नहीं होता और दुःख तो सभी मिट जाते हैं --

"सत्संग सुगम उपाय ध्याय के कीजिए।
उसे दुःख मिट जाय इसो पद लीजिए।
ज्ञान गरीबी पाय भजे नित राम रे।
परिहां रामचरण उर क्रोध घन व्यापै काम रे।"

... ... ...

सर्व दुःख मिट जाय, कियां सत्संग रे।
तृष्णा सकी विकार न व्यापै अंग रे।"[3]

---

१- अ०वा० [साखी साध संगति को अंग], पृ० २२।
२- वही [साखी कुसंगति को अंग], पृ० २३।
३- वही [चन्द्रायणा साधु संगति को अंग], पृ० ७८-७६।

स्वामी जी सत्संग को बुद्धि की निर्मलता का कारण घोषित करते हैं। सत्संगति से लोभ, मोह और क्रोधादि मिट जाते हैं तथा उसके स्थान पर शील, संतोष और दया जैसे सात्विक गुणों की उत्पत्ति होती है। सत्संग धैर्य के रस का पान कराता है और काम-कुबुद्धि को समाप्त करता है। कवि कहता है कि मानव जीवन में सत्संग बड़े भाग्य से मिलता है, इसलिए साधु संगति अवश्य ही करनी चाहिए---

"करि मन संगति साधुन की जहां बुद्धि निर्म्मल रामहिं गावै।
लोभ अरु मोह विरोध मिटै सब शील संतोष दया उपजावै।
धीरज को रस पाय कुकाय वै कामकुबुद्धि की नजरि न आवै।
रामचरण नरातन पाय कै भाग बड़ो सत्संगति पावै।"[1]

कवि की दृष्टि में सार-असार का अन्तर भी सत्संग में ही स्पष्ट हो पाता है।

"सार-असार का भेद थारो सत्संग बिना नहि पावसीजी।"[2]

'कवित साध संगति को अंग' में स्वामी जी स्पष्ट कहते हैं कि सत्संग के समान दूसरा कुछ भी नहीं है क्योंकि सत्संग में ही ब्रह्म निरूपण होता है और निज-नाम की अनन्य भक्ति भी मिलती है। सत्संग से भय-भ्रमादि नष्ट होते हैं और आत्मा विकार रहित निर्मल हो जाती है। इसलिए सत्संग को सर्वश्रेष्ठ समझकर करना चाहिए।

"सब साधन के शिरै समझ सत्संगति कीजै।
तन मन धन अरु शीश अर्पि सतगुरु को दीजै।
अनन्य भक्ति निज नाम साध संगति में पावै।
मिलै न दूजी ठांय भर्म अरु लोकी आवै।
रामचरण सत्संग सम और न दीसै कोय।
जहां निरूपण ब्रह्म को सदा सर्वदा होय।"[3] आदि

'सुख विलास' के छठें प्रकरण में स्वामी रामचरण ने 'सत्संग महिमा' शीर्षक के अन्तर्गत सत्संग को 'ज्ञान का सागर' कहा है। जैसे सांभर नमक का भण्डार है

---

1 अ० वा० [सवैया साध संगति को अंग], पृ० ८८
2- अ० वा० [झूलणा साधु संगति को अंग], पृ० १०२।
3- वही, पृ० ११२।

वैसे ही सत्संग ज्ञान का ।[1] इसीलिए स्वामी जी शुद्ध बुद्धि से साधु संगति करने का उपदेश देते हैं और सत्संग से प्राप्त ज्ञान को हृदय में धारण करने को कहते हैं ।[2]

इसी प्रकरण में स्वामी जी ने संगति के दोनों प्रकारों की भी चर्चा की है । उनके अनुसार दो प्रकार की संगति होती है -- १- तारक, २- नाशक अर्थात् सत्संग और कुसंग । इनमें से जो पसंद आये उसको धारण कर लेने की बात भी वे कहते हैं । किन्तु स्मरणीय है कि सत्संग तुम्बिका है और कुसंग पाषाण । तुम्बी के सहारे मनुष्य पार जा सकता है पर पत्थर तो किनारे ही डूब जायेगा ।

"संगति दोय प्रकार की करिये परख विचार ।
इक तारण इक बोवणी मन मानै सो धार ।
मन मानै सो धार तुम्बिका सत्संग जानो ।
पाखण जिसो कुसंग उभय अर्थो सूं मानो ।
रामचरण अपणी उक्ति ऐसी जुक्ति निहार ।
संगति दोय प्रकार की करिये परख विचार ।"[3]

दोनों को स्पष्ट करने के लिए कवि ने एक प्रतीक का सहारा लिया है । लोहे का स्वभाव जल में डूब जाने का है पर लकड़ी का स्वभाव तैरने का है । लोहे का कांटा नौका में जड़ा रहता है वह भी उसी के साथ तैर जाता है । इसी प्रकार लोहे के घन में लकड़ी का बेंट लगा रहता है जो लोहे के साथ जल में डूब जाता है । जगत के जीव लोहे के सदृश हैं और संत जन दारु (लकड़ी) के समान । तात्पर्य यह कि संतों के सत्संग से संसारी जीव का उद्धार हो जाता है पर संसारी जीव के कुसंग में पड़ा व्यक्ति डूब जाता है --

"लोहा भव जल डूब है दारक तिरण सुभाय ।
जे कांटा नौका जड़ै तो दारक संग तिर जाय ।

---

१- सांभर आगर लूंण को यूं सत्संग आगर ज्ञान । -- अ०वा०, पृ० ३४८ ।
२- संगति कीजे साध की दिल की दुर्मति खोय ।
जो सत्संग में ज्ञान होय सो लीजै हिरदै पोय ।
सो लीजै हिरदै पोय बिसरिये कबहूं नांही ।
जो लूं देह थ्यात बरतिये गुरुगम मांही ।
रामचरण नर देह को लबही कारज होय ।
संगति कीजै साध की दिल की दुर्मति खोय । -- वही, पृ० ३४८ ।

तो वारक संग तिर जाय जगत जीव लोहा जांना ।
निर्विकार निर्लेप सो ही जन वारक समांना ।
तुच्छ वैरो घणा में जड़ है भिन्न भिन्न उपाय हुवाय ।
लोहा भव जल डूब है वारक तिरण सुभाय ।"[1]

'अमृत उपदेश' के चतुर्थ प्रकाश में भी 'सत्संग महिमा' की भांक में स्वामी जी ने सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन किया है । सत्संग प्रेमामृत की नदी है जिसमें अनेक संत डूबे हैं पर सत्पुरुषों के संग बिना इस प्रेमपीयूष की सरिता में डूबते किसी को भी नहीं सुना गया --

"पेम पियूष दरियाव में डूबे संत अनेक ।
सत्पुरुषां का संग बिन डूबे सुणो न एक ।"[2]

सत्संगति प्रेमामृत की नदी तो है ही वह ज्ञानजल से पूर्ण भी है । समता ही उस नदी का तट है जहां जिज्ञासु हंस शांति का वरण किये मोती चुगता है और माया मछली की ओर ध्यान भी नहीं देता --

सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि ।
समता तट शाला लियां हंस जिज्ञासी तांहि ।
हंस जिज्ञासी तांहि नाम मोता फल चुगिहै ।
माया मच्छी देख ताहि दिशि चित्त न धरिहै ।
रामचरण तज मानसर छीलर आशै नांहि ।
सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि ।"[3]

'विश्वास बोध' के बारहवें प्रकरण में 'सत्संग' की भांक में स्वामी जी कहते हैं कि सत्संग की महिमा अपार है ।[4] सत्संगति तमहर है, वह ज्ञान का उदय करती है, वह संसार समुद्र को पार करने वाला पोत है --

"सत्संगति अगि तम हरै, करै ज्ञान उद्योत ।
जन दानी निज नाम का, भवतारण वड़ पोत ।"[5]

---

१- अ०वा०, पृ० ३६६ ।
२- वही, पृ० ४५० ।
३- वही ।
४- 'रामचरण सत्संग की महिमा को नहि पार ।' --- वही, पृ० ७२१ ।
५- वही, पृ० ७२२ ।

सत्संग से समता-ज्ञान की उपलब्धि होती है और शोभा बढ़ती है, किन्तु संसार का संग दुःख की खान है --

"सतसंगति शोभा बध, प्रापति समता ज्ञान ।
रामचरण संसार के संग, है दुख रूपा खान ।"[1]

'विश्रामबोध' के चौथे विश्राम में कवि सत्संग की धारणा को शुभ का कारण कहता है, शुभ से सन्तोष का उदय होता है और अशुभ इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं --

"सत संगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय ।
शुभ संतोष उदै करै अशुभ कामना खोय ।
अशुभ कामना खोय नफा टोटा दरशावै ।
टोटा सै टलवाय नफा को धर्म दिढावै ।
निजबोधिश्च निजनाम है जन भव जल त्यारण सोय ।
सत संगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय ।"[2]

इसी विश्राम में कवि सत्संग करने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता समझता है और श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश देता है --

"सतसंग श्रद्धा सूं करो श्रद्धा सूं त्यो ज्ञान ।
श्रद्धा सूं हरि सुमरिये श्रद्धा सूं दो दान ।"[3]

'समता निवास' के चतुर्थ प्रकरण में 'सत्संग ताको बखाण' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने सत्संग को ज्ञान की नदी कहा है। उस ज्ञान सरि में भगवन्नाम का जल प्रवाहित होता है, जो उसका स्पर्श करता है वह निश्चित ही निष्काम हो जाता है।

"सत्संगति ज्ञाना नदी जीं शीतल जल निज नाम ।
कोइ परसी आतर लियां सो निर्मल होइ नहकाम ।
सो निर्मल होइ नहकाम कामना मन न रखावै ।
सुख शाता अंतर पर अशाता अघ बिलावै ।
रामचरण मृतलोक मैं संत सजीवण धाम ।
सत्संगति ज्ञाना नदी जीं शीतल जल निज नाम ।"[4]

---

१- अ०वा०, पृ० ७२३ ।
२- वही, पृ० ७६६ ।
३- वही, पृ० ७६८ ।
४- वही, पृ० ८८२ ।

स्वामी जी सत्संग का मिलना और करना -- दोनों को दुर्लभ बताते हैं --

"सत्संगति मिलिबो दुर्लभ, भी दुर्लभ करणो जांणि ।
दुर्लभ आशै पारख्या, दुर्लभ शब्द पिछांणि ।"[1]

कुसंग त्याग का संदेश
---------------

स्वामी रामचरण ने सत्संग की महिमा का बखान करके उसे ग्रहण करने का जहां संदेश दिया है वहीं कुसंग से दूर रहने की चेतावनी भी बारबार दी है । गंधी और कलाल के निकट बसने का प्रतीक प्रस्तुत कर वे स्पष्ट करते हैं कि जैसे गंधी की पड़ोस में बसकर 'शुभ सुबास' लेना चाहिए, कलवार की पड़ोस में बसकर 'अशुभ कुबास' लेना अनुचित है वैसे ही अशुभ कुबास सदृश कुसंग का परित्याग और आगम अर्थ की प्राप्ति के लिए सुवास सदृश सत्संग को ग्रहण करना चाहिए --

"गंधी कै पाड़ोस बसि शुभ लीज्यो बास सुबास ।
तज पाड़ोस कलाल को जीं घर अशुभ कुबास ।
जीं घर अशुभ कुबास कुसंगति यूं ही परिहरिये ।
जहां लहै आगम का अर्थ ध्याय सत संगति करिये ।
ऊंच नीच परखै जिके जा उर उत्तम आश ।
गंधी कै पाड़ोस बसि शुभ लीजै बास सुबास ।"[2]

स्वामी जी 'अणभैविलास' के बारहवें प्रकरण में कुसंग का बड़ा स्पष्ट निषेध करते हैं --

"कबहूं नांहि कुसंगति कीजै ।
काशा आपणी सब तज दीजै ।
ऊंची दशा बणाया तन पर ।
ज्ञान बिहूंणा फिर है घरघर।"[3]

---

१- अ० वा०, पृ० ८८५ ।
२- वही, पृ० ८८४ ।
३- वही, पृ० ३६५ ।

कवि की दृष्टि में कुसंग वास से हरिभक्ति की आशा वैसे ही व्यर्थ है जैसे बबूल का बीज बोकर आम की आशा करना --

"बाहै बीज बंबूल का उर आंबा की आश ।
त्यों धरि हरि भक्ति को करै कुसंगा बास ।
करै कुसंगा बास बीज जैसो फल देवै ।
पाप कर्म विस्तार कहो सुख कैसे लेवै ।
रामचरण जैसी वस्तु तैसो होत प्रकाश ।
बाहै बीज बंबूल का उर आंबा की आश ।"[1]

[illegible]

स्वामी जी लोक, वेद और संतजनों की साक्ष्य देकर कहते हैं कि कुसंग भला नहीं। कुसंग से मनुष्य की गुरुता हल्केपन में बदल जाती है । रावण के कुसंग का परिणाम यह रहा कि समुद्र की गंभीरता हलकी पड़ गई और उसमें शिला तैरने लगी --

"लोक वेद अरु संत जन कुसंग भलो कह नांहि ।
कुसंग कहो जे जाय को निषिध कहणता मांहि ।
निषिध कहणा तासांहि जगत फल भकाज कहिई ।
कहा काजी पंडित कोय, विकल बुधि भलो न पाई ।
रामचरण नीची संगति उरंच तोल घटि जांहि ।
ज्यूं रावण का संग दोष सूं समदर सिला तिरांहि ।"[2]

स्वामी रामचरण ने सत्संग की महत्ता और कुसंग के दुष्परिणामों की तुलनात्मक चर्चा करके सर्व सामान्य को सत्संग की ओर चलने का संदेश दिया है । लौकिक जीवन में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोगों से सम्पर्क होता है । ऐसा देखा जाता है कि मानव प्रवृत्ति कुत्सा की ओर तेजी से उन्मुख होकर जीवन को पतित कर देती है, अतएव स्वामी जी ने इस प्रवृत्ति को 'सु' की ओर मोड़ने के लिए सत्संग को सर्वाधिक महत्व-पूर्ण माना है । सत्संग से मानव प्रवृत्ति जीवन के नैतिक मूल्यों की महत्ता आंकती है

---

१- अ० वा०, पृ० २४५ ।

२- वही, [विश्रामबोध, द्वादश प्रकरण], पृ० ७१३ ।

और तदनुसार मानव को सदाचरण की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देती है। सत्संगति मानव के विकासोन्मुख जीवन की आधारशिला है।

जीव दया

स्वामी रामचरण ने `जिज्ञासबोध` के उन्नीसवें प्रकरण में `दया निरूपण` शीर्षक के अन्तर्गत दया की चर्चा की है। स्वामी जीवदया को धर्म की नींव, करुणा का मन्दिर, ज्ञान का स्थान कहा है, दया गुणियों में सुंदरता है। दया दीनों की रक्षा करती है, परपोषण का भाव दया की उपज है। दया से हृदय शुद्ध होता है, दया किसी को सताती नहीं है। दया भाव की उत्पत्ति से मन में निर्दोषिता जन्म लेती है, दया से ही सब जीवों के प्रति मैत्री भाव का जागरण होता है, कोई शत्रु लगता ही नहीं --

"दया धर्म की नींव दया करुणा को मंदिर ।
दया ज्ञान को थान, दया गुनियन में सुंदर ।
दया दीन रिछपाल दया परपोख उपावै ।
दया करै दिल शुद्ध दया कोई न संतावै ।
रामचरण निर्दोषिता दया उपज्यां होय ।
सब जीवां सें मित्रता शत्रु न भासै कोय ।"[1]

स्वामी जी दयावान को देवता समझते हैं और जो जीव हत्या करते हैं वे निर्दय जन राक्षस हैं --

"देव रूप सो जांणिये, जा उर दया सथान ।
आसुर गति सो निर्दई, जेथ ते पराया प्रांन ।"[2]

`दया धर्म को मूल है` -- कहकर कवि ने दया की श्रेष्ठता का निरूपण किया है। दया का संचार जिस जीव में होता है वह `परघात` नहीं करता। दया करुणा के के समुद्र सरिस है और पराई पीर समझने का भाव दयालु जन ही रखते हैं। दया आत्मज्ञान का पंथ है। मनुष्य देह में दया का संचरण तभी तब होता है जब मानव `देवबुद्धि` हो जाता है --

---

१- अ० वा०, पृ० ६२८ ।
२- वही ।

'दया धर्म को मूल है दया न अधर्म होय ।
दया उपज्यां जीव में परघात कदी नहि होय ।
परघात कदी नहि होय दया करुणा को सागर ।
दया लहै परपीर दया वत्सल को आगर ।
मारग आतम आन कै है दयाज आगू सोय ।
रामचरण नरदेह में दया देवबुधि जोय ।'[1]

स्वामी रामचरण ने दयावंत को पवित्र और निर्दय को अपवित्र घोषित किया है ।[2] दयाहीन व्यक्ति को स्वामी जी पाप कमाने वाला पापी कहते हैं । पाप करते उसके हृदय में पीड़ा नहीं होती, वह प्रसन्न होकर हिंसारत होता है और इस कुकर्म से डरता भी नहीं प्रत्युत कुकर्म करते समय उसके हृदय में प्रसन्नता और श्रद्धा रहती है । वह जीवहत्या करके खाता है और मुंह से स्वाद की सराहना भी करता है, इस प्रकार रत्नसदृश नरतन को वह बिगाड़ लेता है --

'पापी पाप कमावतां कसक नहीं उर मांहि ।
हर्ष हर्ष हिंसा करै कुकर्म डरपे नांहि ।
कुकर्म डरपै नांहि मोद श्रद्धा उपजावै ।
परजिव तन कूं हणी खात मुख स्वाद सिरावै ।
नरतन रतन बिगाड़ियौ कहा कहैगो जांहि ।
पापी पाप कमावतां कसक नहीं उर मांहि ।'[3]

स्वामी जी को ऐसे पतित जनों पर तरस है जो अपने स्वाद और स्वार्थ के लिए दूसरे जीव का दर्द नहीं समझते और इस प्रकार लघु एवं क्षणभंगुर जीवन के लिए अपने माथे पर 'पाप-ताप' लेते हैं । कवि ऐसे लोगों को संकेत करता है कि आज जो ले रहे उसे आगे ब्याजसमेत चुकाना पड़ेगा --

---

1- अ०वा०, पृ०५२८

2- दयावंत सो पाक है नापाक निर्दयी जांणि ।
जाकी साखी अब कहूं, सो प्रत्यक्ष लेहु पिछांणि । -- अ० वा०, पृ० ६३९ ।

3- वही, पृ० ६३९ ।

4- वही, पृ० ६३८ ।

"दरघ बिराणाँ ना लखे स्वार्थ स्वादा हेत ।
थोड़ा जीवन कारणें पाप ताप शिर लेत ।
पाप ताप शिर लेत लियाँ आगें भरि देणी ।
ए भोगिर जिन लियाँ व्याज सहिता तोही लेणी ।
लेंणों ज्यूं देणाँ सही काँइ अंतर कीज्यो चेत ।
दरघ बिराणाँ ना लखे स्वार्थ स्वादा हेत ।"[1]

धर्म मूल दया को मानव जभी पाता है जब जब वह कर्तव्य करता है । बिना करनी के ज्ञान तृण और धूल के समान व्यर्थ है --

"करतब सूं पावै सही दया धर्म को मूल ।
करतब बिन कहणी अफल सब जाणों तृण तूल ।"[2]

दया को कवि धर्म की नौका निरूपित करता है, दया से उपकार का जन्म होता है, दया ही हिंसा के प्रति मानव की आँखें खोलती है और सभी कर्मों में तत्व दया ही है --

"दया धर्म की नावड़ी, दया करे उपकार ।
दया दिखावे हिंसता, दया क्रिया में सार ।"[3]

स्वामी जी ने 'दया निरूपण' के माध्यम से हिंसकों, मांसाहारियों की जहाँ भर्त्सना की है वहाँ दया को धर्म का मूल, करुणा का मंदिर, करुणा का सागर, ज्ञान का स्थान, आत्मज्ञान का मार्ग बताकर दयावान को देवरूप और निर्दय को राक्षस सदृश कहा है ।

श्रद्धा

श्रद्धा को परिभाषित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं -- "श्रद्धा महत्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है ।"[4] मैं समझता हूँ कि

---

१- अ० भा०, पृ० ४३८ ।

२- वही ।

३- वही ।

४- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग १, पृ० १४ ।

पूज्य बुद्धि के साथ लगन भी अपेक्षित है। श्रद्धा जिसके प्रति होती है उसके लिए पूज्य भाव रहता है साथ ही भाव की क्रियाशीलता लगन से ही संभव है। स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथों 'सुख विलास', 'विश्राम बोध' और 'रामरसायण बोध' में 'श्रद्धाभक्ति' शीर्षक से श्रद्धा की महत्ता का प्रतिपादन किया है। मानव, जीवन के नाना व्यापारों में जब श्रद्धा के साथ जुटता है तभी उसे सफलता मिलती है। लोकजीवन की रचनात्मकता में श्रद्धा का स्थान महत्वपूर्ण है। धर्म-अधर्म, कर्म-विकर्म सभी में श्रद्धा की भूमिका अपनी महत्ता रखती है। उससे सब कुछ संभव है, बिना उसके कुछ भी संभव नहीं। विकटतम कार्यों में भी व्यक्ति तब तक जमा रह सकता है जब तक उसके तन-मन में श्रद्धा का अभाव नहीं होता --

> श्रद्धा सें सबही बणै बिन श्रद्धा बणै न काय।
> धर्म अधर्म विकर्म कर्म देखो अगन जगाय।
> देखो अगन जगाय सती संग्रामज होई।
> तन मन श्रद्धा धरूयां भग्यो भी जाय न कोई।
> तातैं भजिये राम कूं श्रद्धा अधिक उपाय।
> श्रद्धा सें सबही बणै बिन श्रद्धा बणै न काय।'[१]

पर स्वामी जी श्रद्धा को अधर्म या विकर्म की ओर नहीं झुकने देना चाहते। इससे हानि निश्चित है। वे धर्म के तत्व 'हरिभजन' में श्रद्धा का विकास चाहते हैं --

> 'सार धर्म हरि भजन सैं श्रद्धा अधिक बधाय।
> अधर्म विकर्म धर्म है आका बैठ घटाय।
> आका बैठ घटाय झर्यों में हांसो परिहै।
> इनके कर्म कलेस कष्ट चौरासी भरि है।
> गुरुमुख भजिये राम कूं तजिये आन उपाय।
> सारधर्म हरि भजन सैं श्रद्धा अधिक बधाय।'[२]

'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम में कवि सत्संग, ज्ञान ग्रहण, रामस्मरण, दान अर्पण और सत्पुरुषों के सम्मान आदि के लिए श्रद्धा को नितान्त आवश्यक समझता

---

१- अ०वा० (सुखविलास), पृ० ४०८।
२- वही।

है --

"सतसंग श्रद्धा सूं करी श्रद्धा सूं ल्यो ज्ञान ।
श्रद्धा सूं हरि सुमरिये श्रद्धा सूं यो दान ।
श्रद्धा सूं यो दान किया श्रद्धा निरबाही ।
अण श्रद्धा को किया ठेठ लग निभे जनाही ।
सत्पुरुषां को कीजिये श्रद्धा सूं सनमान ।
सतसंग श्रद्धा सूं करी श्रद्धा सूं यो दान ।"[1]

कवि का विचार है कि किसी भी रीति से कर्तव्य किया जा सकता है पर श्रद्धा पूर्ण से करने पर यश मिलता है। श्रद्धाविहीनता से कार्य बनता नहीं वरन् खींचतान होती है —

कोई रीति किरतब करो, श्रद्धा से जश होय ।
अण श्रद्धा खेंचा खैंची, काज न सुधरे कोय ।"[2]

'रामरसायण बोध' के तृतीय प्रकरण में श्रद्धा और भक्ति का सम्बन्ध कवि ने स्पष्ट किया है। श्रद्धा से भक्ति करने पर विकास में देर नहीं लगती पर श्रद्धारहित कर्तव्य करने से किया कराया मिट्टी हो जाता है --

श्रद्धा सूं भक्ति किया बंधता लगे न बार ।
बिन श्रद्धा किरतब किया सो किया करायो छार ।"[3]

स्वामी जी का दृष्टिकोण है कि इसी प्रकार योग-साधना और नामस्मरण के पर आस्थान भी श्रद्धा की अपेक्षा रखते हैं। एक बात और भी, श्रद्धालु को शोक नहीं होता --

"कहा कोई साधो जोग बिना श्रद्धा कछु नहि कोई ।
श्रद्धा सूं सब बणे भजन श्रद्धा सूं होई ।
रामचरण श्रद्धा लियां कदै न उपजै शोग ।
करणी बिन क्या पाय है जे कालाकी लोग ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० ७९८ ।
२- वही, पृ० ७९८ ।
३- वही, पृ० ६५१ ।
४- वही ।

कवि उदाहरण प्रस्तुत करता है कि रामभक्त श्रद्धालु होते हैं। अत: उनके द्वारा किये गये कार्य सिद्ध होते हैं। श्रद्धा विरहित कार्य निरर्थक है --

"रामभक्त श्रद्धा लियां कियां काज सिधि होय ।
बिना श्रद्धा कारज कियां फलै न फूलै कोय ।"[१]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रद्धा का जीवन के लिए बड़ा महत्व है। जीवन में सदाचरण, सत्संग, रामभजन, भक्ति, योग आदि किसी भी क्रिया या व्यवहार में यदि श्रद्धा का योग रहता है तो सार्थकता चरण चूमती है। जीवन के सम्पूर्ण व्यापार ~~श्र~~ श्रद्धा की अपेक्षा रखते हैं।

विश्वास

स्वामी रामचरण ने जीवन के लिए विश्वास को भी महत्वपूर्ण एवं आवश्यक माना है। अपने ग्रंथ 'विश्वास बोध' में उन्होंने राम में विश्वास रखने की बात कही है। बिना विश्वास के कहीं भी कोई सफलता नहीं मिलती। जहां विश्वास है वहां आदर भी होता है। इसीलिए मन-वचन और काया से अपने स्वामी राम के प्रति विश्वास रखने की सीख कवि देता है --

"सुनो शिख मन धीरकारक, एक तारक नाम है।
राखिये विश्वास याको, नाम जाको राम है।
बिना एक विश्वास माहैं, काहैं सिद्धि न जानिये।
जहां तहां विश्वास आदर, सर्वथाही मानिये।
... ... ...
ताही तैं विश्वास राखो, एक अपना स्वांम को।
मन वाच कामक दूसरी तजि, छोड़ै रहो इक रामको।"[२]

स्वामी जी ने इसी सन्दर्भ में ध्रुव, अजामिल, वाल्मीकि, गणिका आदि का नाम गिनाया है जिन्होंने अपने अटूट विश्वास के सहारे संघर्षों में सफलता पाई है --

---

१- अ० वा० , पृ० ६५१ ।
२- वही, पृ० ४४६-४७ ।

"देखि ध्रुव विश्वास भक्ता, भये मुक्ता नाम मैं ।
हरि आज्ञा बैकुण्ठ राजत, बहुरि मिलि है राम मैं ।
राखियो विश्वास दृढ़ता, विचलता परिहारियो ।
अजामिल ऋषि आदि गणिका, एक नाम उचारियो ।"[१]

ग्रंथ 'अणभै विलास' के चौदहवें प्रकरण में उन्होंने अविश्वासी को बावरा कहा है जिसे अविश्वास के कारण चैन नहीं । उस अविश्वासी को क्या पता कि सर्वत्र और उसके सिर पर 'समर्थ राम' है --

"बेविश्वासी बावरा जाके नहिंहैं आराम ।
उन कहा जांणी सर्वभर, शिरपर समर्थ राम ।"[२]

'जिज्ञास बोध' के पंचम प्रकरण में स्वामी जी विश्वासघाती की चर्चा भी कर दी है । विश्वासघाती को उन्होंने इस भांति परिभाषित किया है --

"तन विरक्त आशारकत दगाबाज है सोय"[३]

यहाँ ऋषि किसी को दगा (धोखा) न देने का संदेश भी देता है --

"दगो न किसी को दीजिए दगै दगो फलपाय ।"[४]

स्वामी जी ने विश्वासी, अविश्वासी और विश्वासघाती -- तीनों की समीक्षा की है और राम में विश्वास धारण करने का ~~संदेश~~ संदेश जनसमाज को दिया है । दया और श्रद्धा सदृश विश्वास भी जीवन को सुखमय करने के लिए आवश्यक है ।

संतोष

संत साहित्य में संतोष की बड़ी महिमा गाई गई है । संतोष मानव हृदय से तृष्णा-लोभादि विकारों को दूर करता है । स्वामी रामचरण ने संतोष की चर्चा

---

१- अ० वा०, पृ० ६४७ ।
२- वही पृ० ३७६ ।
३- वही, पृ० ५४५ ।
४- वही ।

सद्गुण के रूप में की है । 'जिज्ञासबोध' के छठवें प्रकरण में कवि संतोष को तीनों लोक का धन बतलाया है जिसका भोग केवल हरि जन ही कर सकते हैं, लोभी कदापि नहीं । ████ ████०█०

"रामचरण संतोष मैं तीन लोक को धन्न ।
लोभी जन विलसै नहीं विलसैं हरि का जन्न ।"[1]

स्वामी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि धर्म की शोभा संतोष में है । लोभ से धर्म की शोभा बिगड़ती है । सत्य बात का सत्यपोषण संतोष में ही होता है, इसीलिए लोभी और संतोषी के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं । लोभी लोभ में रत रहता है और संतोषी संतोष में --

"लोभ लगन लोभी मगन संतोखी संतोख ।
शोभ धर्म संतोष मैं लोभ कुशोभा दोख ।
लोभ कु शोभा दोख बात ये नाही छानै ।
सो पंडित परबीण लोभ मैं ममता मानैं ।
रामचरण संतोषमय साच बात सतपोख ।
लोभ लगन लोभी मगन संतोखी संतोख ।"[2]

संतोष तृष्णा विनाशक है । कवि की दृष्टि मे तृष्णा की अग्नि संतोषजल से ही शांत होती है । "रामचरण संतोष जल तृष्णा अनल सिराय"[3] अतः संतोष के समक्ष तृष्णा का जागरण नहीं होता और संतोषरहित व्यक्ति उसी में पच मरता है --

"संतोष सदा साबूत होय, तो तृष्णा जागै नाहिं ।
रामचरण संतोष धन, लागि पचै तामांहि ।"[4]

संतोषी सदा सुखी

स्वामी रामचरण की दृष्टि में संतोषी सदा सुखी रहता है । चाहे वह गृहवासी हो या वनवासी । उसका हृदय आनन्द, उदारता और उत्तम आशा का निवास है ।

---

१- अ० वा०, पृ० ५५१ ।
२- वही ।
३- वही (विश्राम बोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९८ ।
४- वही ।

"संतोषी सुखिया सदा सक्त गृही सनवास ।
आनन्द कंद उदारचित उत्तम आश निवास ।"[१]

कवि कहता है कि संसारी, भक्त, काजी, पंडित में से कोई भी यदि तृष्णावंत है तो सुखी नहीं हो सकता, सुखी तो वही होगा जो संतोषी हो --

"तृष्णावंत सुखिया नहीं, सुखी संतोषी होय ।
कहा जगत भक्ता कहा, कहा काजी पंडितकोय ।"[२]

संतोषी व्यक्ति चाहे भ्रमण करे, या एक ही स्थान पर बैठा रहे, वह जहां रहेगा सुखी रहेगा, किन्तु लोभी को कहीं भी सुख नहीं --

"रामचरण रामत करो, मत बैठ रहो इक ठांहि ।
संतोषी जहां तहां सुखी, लोभी सुखिया नांहि ।"[३]

ध्यान की ~~अवश्य~~ अवस्था भी संतोष से ही विकसित होती है और स्वार्थ से ध्यान कुध्यान में परिणत हो जाता है । भक्ति भावना में कमी आ जाती है और गुरुप्रदत्त ज्ञान सम्मान सभी बिना जाते हैं --

"ध्यान बंधे संतोष में, स्वारथ होय कुध्यान ।
भक्तिभाव घट जाय सब, बिले मांन गुरुज्ञान ।"[४]

संतोष से आदरभाव

स्वामी रामचरण ने 'विश्वास बोध' के आठवें प्रकरण और 'समता निवास' के छठें प्रकरण में उपर्युक्त की पुष्टि की है । वे कहते हैं कि संतोष से आदर अधिक होता है और लोभ से उतना ही तिरस्कार --

"आदर अधिक संतोष सें अत्यंत लोभ तस्कार ।
गुण अवगुण अपणो आप में गुण कोरो अधिकार"[५]

---

१- अ० वा०, पृ० ५५१ ।
२- वही, पृ० ६९८ ।
३- वही (विश्वासबोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९९ ।
४- वही (विश्रामबोध, एकादश विश्राम), पृ० ८४९ ।
५- वही (विश्वासबोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९९ ।

इसी भावना का विकास 'समता निवास' के कई प्रकरण में भी दिखलायी पड़ता है। कवि के अनुसार संतोष के द्वारा आदर में वृद्धि होती है और लोभ से उसका विनाश होता है --

"आदर बंधे संतोष में अरु लोभ लाग्या घटि जाय ।
कहां मला पढ़ि पंडिता निज दर्शव इक भाय ।
निज दर्शण इक भाय आपको आप घटावैं ।
घर घालि बहूड़ी जाहि नीचगति कमी कुमावै ।
तातैं यह विचार कै कोइ समता रखो सम्भाय ।
आदर बधे संतोष म अरु लोभ लग्या वर्ष घटि जाय ।"[१]

स्वामी जी संतोष भाव की श्रेष्ठता यह कहकर निरूपित करते हैं कि उसकी महिमा अवर्णनीय है। पर संतोष की महिमा केवल संतोषी जनों को दिखती है -- लोभियों को तो वह भासित ही नहीं होती --

"रामचरण संतोष की महिमा कही न जाय ।
लोभ्या कूं भासै नहीं, कोइ संतोष्या दरशाय ।"[२]

स्वामी जी ने संतोष भाव के पोषण के साथ-साथ तृष्णा लोभ आदि विकास विकारों का तिरस्कार भी किया है। उनकी दृष्टि में तृष्णा और संतोष का मेल संभव नहीं है। संतोष से जीवन में सात्त्विक गुणों का विकास होता है। लोक-जीवन के रचनात्मक दृष्टिकोण में संतोष का बड़ा महत्व है।

सत्य

स्वामी रामचरण ने लोक जीवन एवं व्यक्तिगत जीवन में सत्य की बड़ी प्रतिष्ठा आंकी है। स्वामी जी की दृष्टि में जीवन का आदर्श ही सत्य है। सच बोलना, सच

---

१- अ० वा०, पृ० ८६६ ।
२- वही, पृ० ५५१ ।

सुनना, सच देखना और सत्य का ही ध्यान करने को ही वे जीवन का आदर्श मानते हैं और इसी आदर्श को जीवन में उतारने का संदेश देते हैं। "अमृत उपदेश" के ग्रंथ के पन्द्रहवें प्रकाश में "सत्य प्रशंसा" के अन्तर्गत कवि ने इस आशय से व्यक्त करते हैं --

"मुख सूं साच उचारिये साचहि सुनिये कांन ।
नैंनां साच परखिये उर धर साच्यो ध्यांन ।
उर धर साच्यो ध्यांन झूठ में शासिल नांही ।
शामिल की कथा कली गांठ को मूल गुमांही ।
रामचरण ये मैं कहूं कह गये संत सुजान ।
मुख सूं साच उचारिये साचहिं सुनिये कांन ।"[1]

सत्य इतना प्रबल होता है कि उसे दबाया नहीं जा सकता। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे सारा संसार जानता है। यदि कोई सत्य पर आवरण डालना भी चाहे तो दो-चार दिन से अधिक यह व्यापार नहीं चल सकता। सत्य को स्वामी जी 'सूर्य' कहते हैं। सूर्य भला छिपाने से छिप सकता है। भ्रम के मेघों की आड़ में सत्य का सूर्य छिपाया नहीं सकता --

"साच दबायो ना दबै प्रगटै सब संसार ।
जे कोई दाब्यो चहै तो रहै दिना दोइ च्यार ।
रहै दिनां दोइ च्यार सूर क्यों छिपै छिपायो ।
भर्म बादलां ओट कहां भयो निजर न आयो ।
रामचरण घूंघट कियो जो नाची हाट बाजार ।
साच दबायो ना दबै प्रगटै सब संसार ।"[2]

'साच झूठ को न्यौरो' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी सत्य की अकथनीय प्रखरता की चर्चा करते हैं। सत्य की आंच राजा, रावत, ज्ञानी, पंडित, साधु, योगी, जंगम सन्यासी-दरवेश किसी को भी नहीं भाती। संसार में कोई विरला ही सच्चा होगा जिसे सत्य पसन्द हो --

---

१- अ० वा०, पृ० ५०४ ।

२- वही ।

"राजा रावत जगत सब ज्ञानी पंडित भेख ।
जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दरवेस ।
कोई बिरला संसार साच साचां कूं भावे ।
कलिजुग करणी लुटि कै स्वारथ भूया विशेष ।
राजा रावत जगत सब ज्ञानी पंडित भेख ।"[१]

स्वामी जी सत्य भाषण पर अति जोर देते हैं । उनका कथन है कि स्वामी (ईश्वर) सत्य की बेलि है, झूठ से उसका रिश्ता नहीं, यह समझकर मुख से सत्य भाषण करना चाहिए --

"साईं बेली साच का, झूठा बेलि नांहि ।
रामचरण यूं समझ कै, साच भाख मुख मांहि ।"[२]

स्वामी जी यह भी कहते हैं कि जो साचझूठ की धारणा को नहीं समझता है उस जीव की बुद्धिभ्रष्ट ही समझा जाना चाहिए --

"साच झूठ की धारणा, समझे नांही आश ।
रामचरण ता जीव की, भयो बुद्धिको नाश ।"[३]

'जिज्ञासबोध' के अठारहवें प्रकरण में 'झूठसाच को विचार' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी झूठ को अनित्य और साच को नित्य कहते हैं, इसीलिए वे झूठ को मनसा वाचा परित्याग करने के लिए प्रेरित करते हैं --

"झूठ उड़ै दिन दोयकी, अंत रहैगा साच ।
रामचरण तजि झूठकूं, ये जांणो मनसावाच ।"[४]

कवि का निश्चित मत है कि इस लोक में झूठ की साख नहीं चल सकती । मिथ्या वादी मिथ्या बोलकर अपनी शोभा नष्ट करता है --

"शोभ गुमावै आपणी झूठा झूठी साखि ।
रामचरण या लोक में चलै न झूठी साखि ।"[५]

---

१- अ० वा०, पृ० ५०४
२- वही ।
३- वही ।
४- वही, पृ० ६२३ ।
५- वही ।

स्वामी नरतनधारी झूठे को धिक्कारते हैं और उसे पशु से भी गया गुजरा समझते हैं ।

"ज्या घट साच न संचरै, झूठ तणों विस्तार ।
तासूं तो पशवा भला धा नरतन को धिरकार ।"[1]

इसलिए कवि लोक जीवन को सत्य के निम्नलिखित आदर्श को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है --

"मुख उचरै सांचा बचन साचाहि सुणीज बैन ।
चित चितवन साची करै सांचा परखे नैन ।।
साचा परखे नैन थर्ह नर तन की शोभा ।
झूठ कपट पाखण्ड दगा सें होय कुशोभा ।
रामचरण भज राम कूं तज्यो गहो यह सहन ।
मुख उचरै सांचा बचन साचाहि सुणीज बैन ।।"[2]

निष्कर्ष यह कि स्वामी जी ने जीवन में सत्य को उतारने की प्रेरणा समाज को सदैव दी और उसे 'साँई की सेली' कहकर उसकी महत्ता प्रदर्शित की ।

एकता
----

स्वामी रामचरण ने 'रामरसायण बोध' के तीसरे प्रकरण में एकता की महत्ता की चर्चा की है । स्वामी जी ने एकता के लिए बूंद बूंद से धारा बनने का दृष्टान्त देकर कार्य-सिद्धि के लिए एकता-स्थापन की बात कही है --

"बहु बूंदा एकधार नीर सो प्रगट कहिये ।
सब काज सुधारण जोग एक में आनंद लहिये ।"[3]

स्वामी जी की दृष्टि में एकता सुख का कारण है । एकत्वहीनता से दुःख और कष्ट सदैव घेरे रहते हैं । इसीलिए कोई भी निश्चय या विचार एक होकर ही करना

---

१- अ० बा०, पृ० ६२४ ।
२- वही, पृ० ६२५ ।
३- वही, पृ० ८५२ ।

चाहिए --

> "आशै बासै एक होय सुख पूर है ।
> एक बिना दुख द्वन्द निकट पण दूर है ।
> तातैं बात बिचार एक होई कीजिए ।
> परिहां रामचरण भज राम हो सुख लीजिए ।"[1]

एकता : शक्ति का प्रतीक

स्वामी रामचरण एकता में शक्ति का अनुभव करते हुए लिखते हैं कि एक और एक के मिलने से ग्यारह की शक्ति आती है । दोनों एक को अलग कर जोड़ने से केवल दो ही रह जाता है । इस प्रकार ९ की शक्ति समाप्त हो जाती है । अलग-अलग दो को दुर्जन भी घेरकर मार सकता है । नीति की बात करते-करते अध्यात्म जगत में पहुंच कर राम और गुरु की एकता का भी संदेश देने लगते हैं --

> एकै एक मिलाप में ग्यारा को बल होय ।
> एक एक न्यारा गिणै तो जासूं कहिये दोय ।
> तो जासूं कहिये दोय मिटै बल नोवां केरो ।
> दोइ न्यारा मारा जाय आय दुर्जन ने घेरो ।
> रामचरण गुरु राम को एक रूप कर जोय ।
> एकै एक मिलाप में ग्यारा को बल होय ।"[2]

स्वामी रामचरण द्वारा एकता का संदेश जन-जागरण की दिशा में बढ़ा हुआ प्रेरक कदम के रूप में निरूपित किया जा सकता है । एकता, सुख और शक्ति दोनों को जीवन में प्रविष्ट कराती है ।इसी सन्दर्भ में कवि राम और गुरु में अभेद देखने का भी संदेश जन-सामान्य को देता है । जो पृथकतावादी (अण मिलता) है उनसे उदासीन रहने की बात भी स्वामी जी स्पष्ट रूप से कहते हैं । जैसे सोना और रांगा का मिलाप नहीं हो सकता और यदि हुआ तो स्वर्ण का विनाश निश्चित है उसी प्रकार 'अन मिलता' से पहले तो मेल संभव नहीं, यदि कहीं मेल हो गया तो सोने सदृश व्यक्ति

---

१- अ०वा० पृ० ६५२ ।

२- वही, पृ० ६५२-५३ ।

"कनक रांग नांही मिलै मिलै तो कनक बिनास ।
रामचरण तातैं रहो अणमिलताज उदास ।"[१]

इस प्रकार स्वामी जी एकता की भावना लोकजीवन के लिए आवश्यक समझकर उसे सभी मिलकर को जीवन में चरितार्थ करने का उपदेश देते हैं ।

यह रहा स्वामी रामचरण की लोकपक्ष संबंधी विचारधारा का एक संक्षिप्त निरूपण । स्वामी जी के लोकपक्षीय विचारप्रवाह पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि स्वामी जी की लोकजीवन में गहरी रुचि थी । वे भक्तहृदय संत कवि थे । जीवन और जगत में परिव्याप्त कुल्सताओं की उन्होंने कड़ी तीखी आलोचना की और जन-समाज को ढोंगियों, पाखण्डियों एवं अनेक सामाजिक रूढ़ियों तथा अन्ध-विश्वासों से मुक्त कराने के लिए भरपुर प्रयास किया । एतदर्थ उन्होंने प्रतिमापूजन, व्रतोपवास, रोजा-एकादशी, पूजा-नमाज, मूर्तिपूजा, मादक पदार्थों का सेवन, देवल-मस्जिद, पुस्तकज्ञान आदि विभिन्न विषयों पर लेखनी उठाई और उन सभी का निषेध किया । साथ ही उन्होंने जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक रचनात्मक सुझाव भी दिये जिससे लोक का बड़ा उपकार हुआ । एतदर्थ उन्होंने राम नाम की उपासना, सत्संग, जीवों के प्रति दयाभाव, श्रद्धा-भक्ति, विश्वास, संतोष, सत्यपालन, एकता आदि मानवोचित गुणों को अपनाने की प्रेरणा दी । इसके अतिरिक्त वचन विवेक, विनयशीलता, कथनी करनी की एकता आदि की संक्षिप्त चर्चा उन्होंने की है । स्वामी रामचरण के सम्पूर्ण साहित्य में लोकजीवन के प्रति उनकी उदारता की एक अच्छी झांकी देखने को मिल जाती है । इस संदर्भ में `श्री रामस्नेही सम्प्रदाय` के लेखकों का निम्नलिखित कथन युक्तियुक्त है --

"मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है, उन गुणों की अनेक बार अनेक रूपों में `अणभैवाणी` में चर्चा हुई है । उन गुणों को अपनाने से यह धरती स्वर्ग बन सकती है । हमारा व्यावहारिक बाह्य-जीवन सब प्रकार से सुखी, सम्पन्न और स्पृहणीय बन सकता है ।"[२]

--०--

---

१- अ० वा०, पृ० ५५३ ।

## तृतीय खण्ड : काव्यत्व

सप्तम अध्याय : अनुभूति पक्ष

अष्टम अध्याय : अभिव्यक्ति पक्ष

# सप्तम अध्याय

## अनुभूतिपक्ष

सप्तम अध्याय

## काव्यत्व : अनुभूतिपक्ष

संतों की काव्यरचना के उद्देश्य की चर्चा करते हुए पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं --"ये रचनाएं मनोरंजन के लिए नहीं की गयी थीं और न इनका उद्देश्य कभी किसी प्रकार से 'यश' वा 'धन' का उपार्जन ही रहा । इनके रचयिताओं ने अपने सामने 'कविता कविता के लिए' का भी आदर्श नहीं रखा और न अपनी उन्मुक्त कल्पना के प्रभाव में विभिन्न भावनाओं की सृष्टि कर एक अपना मनोराज्य स्थापित करने की कभी चेष्टा की । उनकी व्यक्तिगत स्वानुभूति में विश्वजनीन अनुभूति की व्यापकता थी और उनके आदर्श पक्ष की स्थिति ठेठ व्यवहार से कहीं बाहर न थी । अपनी रचना के माध्यम को भी प्रायः इसी कारण, उन्होंने उसके विषय से अधिक महत्व कभी नहीं दिया और न उसके शब्द और शैली में चमत्कार लाने के पीछे, उससे भाव सौंदर्य के प्रति वे कभी उदासीन हुए । इसके सिवाय, अपने उच्च से उच्च एवं गंभीर से गंभीर भाव को भी वे सदा सर्वसाधारण की भाषा में व्यक्त करते आए और उन्हीं के दृष्टान्तों एवं मुहावरों द्वारा उन्होंने उसका स्पष्टीकरण भी किया ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण संत-काव्य-रचना के उद्देश्यों पर यथार्थ टिप्पणी है । संतों ने काव्य-रचना का उद्देश्य कभी भी कला-कौशल का प्रदर्शन नहीं माना था और न उन्होंने किसी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही काव्य-रचना की थी । संत वस्तुतः मस्त-मौला थे, उनकी काव्य-गंगा का प्रवाह जन-जीवन को अपने स्पर्श से परिमार्जित करता था । अपनी काव्यधारा से लोकजीवन को प्रक्षालित कर उसे निर्मलता प्रदान करना ही संतों की काव्य-रचना का उद्देश्य था, साथ ही योग-साधना का ओज, भक्ति-भावना का माधुर्य और दोनों के संयोग का प्रसाद, जो उनकी अनुभूति से निस्सृत होता था,

---

१- पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य - भूमिका, पृ० ४९-५० ।

का प्रकाशन भी वे करते थे। ब्रह्म, जीव, माया, सृष्टि आदि के प्रति उनके हृदय में जो धारणाएं जन्म लेती थीं वे सभी उनकी काव्य-सामग्री बनती थीं। जीवन की सफलता के प्रति आस्था, लोक-जीवन के लिए मंगल-कामना, जीवन की सामाजिकता से कुत्सा का लोप आदि विभिन्न विषय उनकी कविता में वर्णित होते थे। पर इन सभी की आधारशिला उनकी स्वानुभूति थी। उन्होंने इसी के सहारे ईश्वर को अपने प्रेम का विषय बनाया, उसकी रहस्यमयता को अपनी भावाकुलता से सराबोर कर दर्शन का नहीं कविता का विषय बनाया।

स्वामी रामचरण के विशाल काव्य-साहित्य में उपर्युक्त तथा उन्हीं सदृश विभिन्न विषय उनकी कविता के वर्ण्य हैं। कबीर आदि संतों की भाँति अनुभवजन्य भावों के निर्भीक प्रकाशन उनके कवि-व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रभावशाली बना देता है। स्वामी जी की कविता का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय हमें इस ~~काव्यकाव्य~~ संत भावधारा को ही प्रमुखतया दृष्टि में रखना ही होगा। पिछले अध्यायों में हम स्वामी जी के द्वारा निरूपित विभिन्न विषयों की चर्चा कर चुके हैं। इस अध्याय में उनकी रचनाओं में काव्यत्व की प्रमुख संवेदनाओं पर विचार करेंगे।

## प्रेमानुभूति

संत कवियों ने जिस प्रेम की चर्चा की है वह आध्यात्मिक प्रेम है। परमात्मा के प्रति अनन्य आसक्ति ही इस प्रेम की प्रमुख विशेषता है। स्वामी रामचरण ने 'प्रेम प्रकाश को अंग' के अन्तर्गत प्रेम का वर्णन किया है। साधक का प्रेमी हृदय जब भक्ति-भावना से भावमय हो उठता है तब प्रेम की तरंगें उसके हृदय में सागर की वीचियों सदृश प्रवाहित होने लगती है और उनकक अनुराग की लहरों से उसका सर्वांग भीग जाता है --

> "प्रेम लहरी होते बहै, जपै सिन्धु तरंग।
> रामचरण ताकी लर्यू, भीजत है सब अंग।"[१]

प्रियतम परमात्मा की प्राप्ति दाम्पत्य भाव की अपेक्षा रखती है। प्रेम बड़ा ही सूक्ष्म होता है। जो सच्चा 'आशिक' होगा वही 'महबूब' को पा सकेगा।

---

१- अ०वा०, पृ० १२।

"राम ही चरण कहै इस्क बारीक है ।
होय आशिक मशूक पावै ।"[1]

प्रेमानुभूति गुरुकृपा से ही सम्भव है । गुरु प्रेम-बाण से हृदय-बेध देता है और शिष्य प्रेमपूर्वक उसे झेलता है । तब उसके हृदय में प्रेम का प्रकाश होता है । प्रेम रूपी भाले की नोक हृदय में प्रवेश कर जाती है । वह बाहर नहीं निकलती, अहर्निश प्रेम की पीर हृदय को सालती रहती है --

"संता बाण चलाइया, धरकर सूधी मूठ ।
प्रेम सहित सिख झेलिया, गया कलेजा फूट ।
प्रेमभाल भीतर धुसी, बाहर दीसै नाँहि ।
रामचरण सालत रहै, निसिवासर उर माँहि ।"[2]

प्रियतम प्रभु के लिए उसके प्रेमी साधक के हृदय में विरहाग्नि प्रज्वलित रहती है किन्तु हृदय में जब प्रेम का प्रकाश हो जाता है तो विरहाग्नि शीतल हो जाती है और प्रेम हृदयगामी हो जाता है --

"विरह अग्नि शीतल भई, जब भया प्रेम प्रकास ।
रामचरण अब पाइया, मनवें प्रेम निवास ।"[3]

इसी प्रसंग में कवि प्रेमानुभूति के लक्षणों की चर्चा भी करता है । उसके अनुसार जब साधक के रोम-रोम से रामधुन का उच्चारण होने लगे तब प्रेम का उपकार समझना चाहिए । जब काम-क्रोधादि विकारों से मुक्त मन का रंग बदला हुआ प्रतीत होने लगे तब प्रेम का विकास होना समझना चाहिए । जब लोक-वेद की मर्यादा से परे होकर निःशंक भाव से, निर्गुण भाव से साधक आविर्भूत हो तब प्रेम को खुला हुआ मानना चाहिए --

रोम रोम में होय रह्या ररंकार उच्चार ।
रामचरण तब जाणिये ये प्रेमतणा उपकार ।

---

१- अ० वा०, पृ० १९३ ।
२- वही, पृ० १२ ।
३- वही ।

प्रेम खुल्या तब जाणिये, मन का पलटै रंग ।
काम क्रोध व्यापै नहीं कूड़ा करै न संग ।
प्रेम खुल्या तब जाणिये, गुण तजि निर्गुण होय ।
लोक वेद मुरजाद की, शंक न मानै कोय ।"[1]

प्रेम-पट के खुलते ही परमात्मा प्रियतम से मिलकर विरहिणी आत्मा निहाल हो जाती है । दुख की छाया स्मृति से दूर चली जाती है और निशिवासर वह मुदित रहती है --

"प्रेम खुल्या साईं मिल्या विरहनि भई निहाल ।
रामचरण दुख बिसर्‌या निसिदिन रहत खुस्याल ।"[2]

स्वामी जी की धारणा है कि प्रेम का नाम तो सभी रटते हैं पर प्रेमानुभूति नहीं कर पाते क्योंकि उसकी बाधा लज्जा बन जाती है । कवि पूछता है कि लज्जानुभूति क्यों जब अपना ही प्रियतम स्पर्श कर रहा है ? लोक-लाज विरहित होने पर ही प्रिय-मिलन हो सकेगा अन्यथा नहीं --

"प्रेम प्रेम सबको कहै, प्रेम लखै नहि कोय ।
प्रेम जहां लज्जा नहीं, लज्जा प्रेम न होय ।
अपना साईं परसता, लाज करो मति कोय ।
संक करै संसार की तो साईं मिलणा न होय ।"[3]

स्वामी जी घोषित करते हैं कि प्रेम के बिना सुख नहीं और इस प्रेम सुख की प्राप्ति अपने प्रियतम के मिलन में ही सम्भव है --

"रामचरण साची कहै, प्रेम बिना सुख नांहि ।
साईं मिलै तो सुख लहै, नांतर लख चौरासी मांहि ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० १२ ।
२- वही ।
३- वही ।
४- वही ।

प्रेम की हिलोर कर्म-धूल को बहा ले जाती है और तब तन-मन में उज्ज्वल आलोक का दीदार होता है। कवि इस प्रेमालोक का अवलोकन कर विस्मित है, अंधेरी रात में चन्द्रमा सदृश यह प्रेम हृदय में विकसित है --

"करम भार सब बह गई, आई प्रेम हिलूर ।
रामचरण अब दरसिया, तनमन उज्जल नूर ।
रामचरण इचरज भया, देख्या प्रेम उजास ।
निसि अंधियारी चंद ज्यूं, मनवै किया विगास ।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में निरूपित प्रेम ही स्वामी रामचरण का अभीष्ट है। प्रेमानुभूति के पलों में विरह से जली उस प्रेमी की देह की तपन मिट जाती है। और उसका रोम रोम उस प्रेम का रसपान करके शीतल हो जाता है। पर यह सब उस दयालु राम की दया से ही सम्भव है --

"राम दयाल दया करी, बरस सुकाई लाय ।
रोम रोम शीतल भया, पीया प्रेम अघाय ।"[2]

अथवा--

"विरह अग्निदाधी देह, सींची प्रेम अघाय ।
~~रोम-रोम-शीतल-भया,~~
तप्त मिटी शीतल भई, रोम रोम रस पाय ।"[3]

आध्यात्मिकता के उज्ज्वल आलोक में स्वामी रामचरण ने कबीर आदि अन्य संतों की भांति प्रेमानुभूति की है। 'प्रेम का उजास' उनकी दृष्टि में चन्द्र के उजास सदृश है। वे प्रेम को ही सुख का मूल मानकर लज्जा रहित होकर प्रियतम परमात्मा से प्रेम लाभ करने का संदेश देते हैं। और इसके लिए रामभजन को ही सर्वश्रेष्ठ साधन समझते हैं। भजन-प्रताप से ही यह प्रेम निवास मिलता है --

"रामभजन परताप तैं, पाया प्रेम निवास ।
रामचरण निर्भय भया, मिटी काल की त्रास ।"[4]

---

१- अ०वा०, पृ० १२।

२- वही।

३- वही।

४- वही।

रहस्यानुभूति

संतकाव्य में रहस्यानुभूति बहुचर्चित विषय रहा है। "रहस्यवाद शब्द प्राय: काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है"।[१] डा० गोविन्द त्रिगुणायत लिखते हैं कि "जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजा कर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।"[२] डा० रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद को इस प्रकार परिभाषित किया है -- "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, यह संबंध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। जीवात्मा की शक्तियां इसी अनन्त शक्ति के वैभव और प्रभाव से ओतप्रोत हो जाती हैं। जीव में केवल उस दिव्य शक्ति का अनन्त तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है।"[३]

संत-साहित्य में रहस्यानुभूति विषय की चर्चा करते हुए डाक्टर प्रेमनारायण शुक्ल ने लिखा है कि "संत-साहित्य में अनेकानेक स्थलों में रहस्यानुभूति की उपलब्धि होती है। संत प्रकृत्या तत्वचिंतक थे। उनका चिंतन का क्षेत्र बड़ा व्यापक एवं गंभीर था। उन्होंने आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का परिचय प्राप्त किया था। यह परिचय केवल बौद्धिक विकास के रूप में न होकर साधना की पूर्ण परिपक्वावस्था के रूप में था। अत: अपनी अनुभूति की गहनता में उन्होंने जिन तथ्यों का प्रकटीकरण किया है, वे सामान्य धरातल से कहीं अधिक ऊंचे हैं जिन्हें साधारण मानव समझने में असमर्थ है। जो साधक अपनी आत्मा का जितना ही अधिक विकास कर लेगा वह उन रहस्यानुभूतियों से उतना ही अधिक परिचय भी प्राप्त कर लेगा।"[४]

---

१- पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, पृ० १२१।

२- डा० गोविन्द त्रिगुणायत : कबीर की विचारधारा, पृ० ३३६।

३- डा० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ० ३४।

४- डा० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० ४६-४७।

रहस्यानुभूति संबंधी उपर्युक्त टिप्पणियों को दृष्टि में रखकर जब हम स्वामी रामचरण की कविता पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि तत्व-चिंतक रहस्य-दर्शी संतों में स्वामी रामचरण का स्थान महत्वपूर्ण है। वे कबीर आदि निर्गुण संत कवियों की परंपरा के रहस्यदर्शी कवि थे। उनकी भक्ति-भावना की सीमा में उस रहस्यमय प्रियतम के लिए आत्म-समर्पण का भाव, प्रेमाकुलता और उससे एकाकार होने की स्थितियों के चित्र रूपायित हुए मिलते हैं। इस अनुभूति का आधार संत-हृदय की भावुकता है। इसीलिए संतों की इस रहस्यानुभूति को समीक्षकों ने भावात्मक रहस्य-वाद की संज्ञा दी है। योगपरक साधना की चरम परिणति सहज समाधि है और वह भी रहस्यवाद की समीपवर्तिका है। इसे साधनात्मक रहस्यवाद के नाम से अभिहित किया जा जाता है।

यद्यपि रामचरण जी हठयोग की कठिन साधना के समर्थक थे फिर भी सुरति शब्द योग की साधना ब्रह्मानुभूति का प्रमुख साधन थी। इस योग कि साधना में स्वामी जी ने 'कण्ठ ध्यान' को कठिन बतलाया है पर 'हृदय ध्यान' की स्थिति आते ही सारे साधनों का अन्त हो जाता है। 'कण्ठध्यान की स्थिति की कठिनाई का आभास 'शब्द प्रकाश' की निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है --

"कण्ठ ध्यान बहुत कठिणाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।"[१]

पर उसके आगे --

"हृदय ध्यान जमी जब होई।
दूजो साधन रहै न कोई।"[२]

पर योग-साधना की प्रक्रिया का आरंभ भी नामस्मरण से ही होता है। इस नाम-स्मरण से ही उस रहस्यमय के प्रति लगाव बढ़ता है और तभी उससे सम्बद्ध होने का भाव मन में उमड़ने लगता है। यही रहस्यमय के प्रति जिज्ञासा का भाव है। जिज्ञासु का मन अनवरत उसके प्रेम में स्नात रहता है --

---

१- अ० वा०, पृ० १०६।

२- वही (नामप्रताप), पृ० १०७।

"आठ पहर चौसठ घड़ी, मन प्रेम मैं भीना ।"[१]

यह प्रेम भीना मन लिये साधक आठों पहर नित्य 'पिया' के प्रेम में मस्त होकर घूमता रहता है । यही रहमान के रंग में सराबोर फ़कीर की स्थिति है --

"फकीरा रंग रता रहमान ।
आठ पहर घूमत रहै नित प्रेम पिया मस्तान ।
... ... ...
जग में बिचरै सहज यूं वै, ना काहू सूं सनेह ।
आसिक वैसे रहना, हुंक जारूं आपा देह ।"[२]

प्रियतम के प्रेम की मादकता में संत डूब जाता है । उसे राम का व्यसन अलमस्त दीवाना बना देता है । हृदय में उसी का ध्यान सदैव बना रहता है । शरीर की सुध जाती रहती है और उस प्रेम प्याले का पान अविस्मरणीय हो जाता है --

"संत दिवाना अलमस्ताना राम अमल गलताना वै ।
तन बिसराना उर धरि ध्यान,प्याला नांहि भुलाना वै ।
परगट छाना आप लुकाना, दुनिया मरम न जाना वै ।
राव रंक की शंक न आना, आनंद में अस्थाना वै ।"[३]

साधक मन को अन्य दिशाओं से विरत कर प्रियतम के कदमों में दे देता है, वह प्रियतम (मियां) कभी विस्मृत नहीं होता । ज्ञान के जल से 'गुसल' करता है, गगन गुफा में उसका बिस्तर है जहां वह ध्यानमग्न है । यह संसार उस दर्वेश का रहस्य नहीं जानपाता जो अलख का "आंजूम" देख पाता है --

"आन दिशा सूं कब्ज कर वै, दिल दिया कदमुं मांहि ।
निमा स्यांम फजरां दिवै, मीयां कबहूं बिसरै नांहि ।
ज्ञान आब में गुसल कर वै, तस्बी तत बणाय ।
गगन गुफा में बिस्तरा, मीयां बैठे ध्यान लगाय ।

---

१- अ० वा० (गावा का पद), १००५ ।

२- वही, पृ० १००५ ।

३- वही ।

रामचरण दर्वेश का के, खलक न जांणै भेव ।
अलख लग्या आँजूद मैं, मीयाँ सदा असंडित सेव ।"[१]

आत्मा जब परमात्मा को प्रेम करने लगती है तो पल भर का वियोग असह्य हो जाता है । आत्मा-परमात्मा का मिलन ही अनन्त संयोग है । इसके लिए साधक विरहिणी सदृश बेहाल रहता है । वह प्रियतम से उसकी दया की भीख माँगता है । दीन निवेदन मे वह अपनी विरहजन्य शारीरिक स्थिति का वर्णन करता है । दीदार के लिए लिए उसके नयन तरसते हैं । उसका प्रियतम उसे न भूले, पर जहाँ भी हो आकर उसे गले से लगा ले, यही उसकी साध है --

"साँईया अरज हमारी हो ।
बिरहनि उप्पर कीजिए, टुक महर तुम्हारी हो ।
... ... ...
मेद सुसत सकुची त्वचा, मेरो बदन गयो मुरझाय ।
आस की दीदार की, दोय नैन रहे फड़लाय ।
दुखी तुम्हारे दर्श बिन, तुम कबर मिलोगे आय ।
रामचरण की बीनती, पिया मति मोहि बीसर जाय ।
बिरहनि कूं विश्राम दीजै लीजै कण्ठ लगाय ।"[२]

प्रेम की इस आकुलता मे उसे नींद नहीं आती । अपने प्रियतम से उसे अब यही शिकायत है कि तुम्हारे दर्शन के लिए उसे निशिवासर जागना पड़ता है --

"रमइया मेरी पलक न लागै हो ।
दरस तुम्हारै कारणै निशिवासर जागै हो ।"[३]

प्रियतम की मिलनोत्सुकता के लिए चातक का आदर्श स्वामी जी को अभीष्ट है --

"स्वाति बूंद चातक रटै, जल और न पीवै हो ।
घन आशा पुरै नहीं, तो कैसे जीवै हो ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० १००५ ।

२- वही, पृ० १००६ ।

३- वही (गावा का पद), पृ० १००६ ।

४- वही ।

और अब वियोग के बाद संयोग । इस स्थिति में साधक अपने प्रियतम से एकाकार होने की स्थिति में आ जाता है । दोनों प्रेमी-प्रेमिका सदृश आपस में एकदूसरे का स्पर्श करने लगते हैं । यह पति-पत्नी का होली मिलन है । अविनाशी अविगत वर और सुन्दरी नवलकिशोरी सुरति पत्नी का यह फाग दृश्य ! क्या कहना है इस फाग का......... फागुन में यह फाग आरंभ हुआ और भादों आ गया, अम्बर बरसने लगा । सुरति सुंदरी भींगकर सुख में विभोर हो गई, उसका प्रियतम मुरारी उसका रूप निहारता है । इस मिलन फाग का करारा रंग ऐसा लगा कि उसका जन्म सफल हो गया --

"ररंकार पति सुरति सुंदरी अही पशी रमैं होरी हो ।
वर अविगत नकलन अविनाशी, सुंदरि नवलकिशोरी हो ।
पंचरंग पीस गुलाल उड़ाई, तिरगुण के सर गारी हो ।
अरी अबीर याच करि पूंधी, भरल प्रेम पिचकारी हो ।
... ... ... ...
फागुन फाग रमत भयो भादू, अम्बर बरसैं भारी हो ।
भीजत सुरति गरक भई सुख में, निरखत रूप मुरारी हो ।
जीवन सुफल भयो नागरि को, लागो रंग करारी हो ।
रामचरण पिव फगवा बकस्या, पूरी आश हमारी हो ।"[१]

ऐसे ही पिया के संग प्यारी नित्य ही फाग खेलती है ।[२] तभी एक दिन फाग खेलते में ही प्रिय ने उसे सुहाग-दान कर दिया । प्रिय ने प्रिया को अपना लिया, सदा के लिए अपना बना लिया । साधक का भाग्योदय हो गया क्योंकि प्रियतम से उसका राग-बंधन हो गया, समर्पण का यही फल है । उसका प्रियतम गुणागार है । उसने अपना अंग देकर चंचलता को अचलता में बदल दिया । प्रियतम और प्रिया का परस्पर एकदूसरे का स्पर्श सरिता-सागर के मिलन जैसा है --

"खेलत फाग री, मोहि बकस्यो राम सुहाग ।
पकड़्यो हाथ नाथ अला को, अंतर भरम बिलायो ।

---

१- अ०वा०, पृ० १००१ ।
२- 'पिया संग प्यारी, अरी नित ही खेलत फाग'-- वही, पृ० १००६ ।

जाग्यो भाग राग रंग्यो पिव सूं, शरणा को फल पायो ।
भरि पिचकारी प्रेम पियारी, सनमुख स्याम चलाई ।
आवत छक्या लई पतिव्रित सूं, सुंदरि अंग लगाई ।
अपणो अंग दियो गुण सागर, चंचल अचल कराई ।
जैसे नीर नदी सरिता को, समंद समंद कहाई जाई ।
अरस परस अंतर नहिं दरसै, परी प्रीतम प्यारी ।
ऐसे हरि गति परस्य की, सूंणा सो जानल्यारी ।"[1]

शरणागत की यही सुखानुभूति है । प्रिया और पिया का यही तन-मन का परस्पर अर्पण और मिलन है । यह अद्वैत स्थिति अवर्णनीय है --

"तन मन अर्पे मिली पिव पत्नी, न्यारी नैक न जावै ।
रामचरण शरणै सुख पायो, ताको कहत न आवै ।"[2]

उसे भासित होता है कि उसका प्रियतम सर्वव्यापी है । वह कहाँ नहीं है, यह कहा नहीं जा सकता । जल-थल, वृक्ष, पुष्प, तिल सभी में विद्यमान है । यह सम्पूर्ण विश्व उसी रहस्यमय का विस्तार है --

"रमईयो सब में रमि रह्यो भी ।
हा हो कहुं नाहिं कह्यो नहिं जाय ।
अवनी उदक दारु में कुसुमुख पुष्प गंध तिल तैल ।
पय में घिरत परशि परिपूरण, ऐसे हो मिल्यो है सुमैल ।
अगम अगोचर निकट न दरसै, तिन करणी सुख दूर ।
भजन कियाँ उर अंतर दरस पावै, आपा पर मैं भरपूर ।"[3]

साधक को अपने प्रियतम की सामर्थ्य का आभास हो गया, वह आभारी है क्योंकि उसने उस पर कृपा की है, उसका वह पहचानता है --

"साँईयां मैं समथ जाण्या भी ।
महर करी मुझ ऊपरैं, मेरा वरघ पिछाण्यां हो ।"[4]

---

१- अ० वा० (गावा का पद), पृ० १००६

२- वही ।

३-वही, पृ० १००० ।

४-वही, पृ० १००८ ।

स्वामी रामचरण की कविता का रहस्यवादी स्वर उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। रहस्यवादी अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव लेकर उसकी ओर आकुल आकृष्ट होता है। उसे प्रेमी या प्रेमास्पद के रूप में देखने लगता है। उसके प्रेम की मादकता उसे दीवाना बनाये रखती है और वियोगावस्था में वह अपने हृदय की सम्पूर्ण करुणा व दीनता अपने उपास्य के चरणों में उड़ेल देता है। भावाकुल हृदय 'पिया' के दीदार के लिए बेचैन हो उठता है --

"दास की अरदास सुण, पिया दरशण दीजे हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब विलम न कीजे हो।"[1]

आत्मा-परमात्मा के मिलन की आनन्दानुभूति का तो कहना ही क्या है, दोनों 'पिया-प्यारी', 'पिव पतनी' या 'आशिक-माशूक' सदृश एकाकार में तन्मय हो विलासरत होते हैं। रहस्यानुभूति की यही चरम परिणति है। उपर्युक्त के कथन की पुष्टि यहीं होती है --"पवित्र और उमंग भरे प्रेम से परिचालित आत्मा का परमात्मा में गमन ही तो रहस्यवाद कहलाता है।"[2] इसी प्रकार आत्मा परमात्मा का एकाकार के प्रति समान आकर्षण की बात भी रहस्यानुभूति की एक विशेषता है। स्वामी रामचरण का साधक रहस्यानुभूति के इस सोपान पर पहुँच कर अनन्त संयोग का अनुभव करने में तन्मय हो जाता है। संत कवियों के रहस्यवाद की जिस विशेषता की ओर हमारा ध्यान निम्नलिखित पंक्तियाँ ले जाती हैं उसके तत्व स्वामी रामचरण के काव्य में वर्तमान है। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है।

"ऐसा ज्ञात होता है कि संत सम्प्रदाय के रहस्यवाद में वैष्णवभक्ति के प्रेम का उत्कर्ष और सूफी मत के इश्क की मस्ती का योग है।"[3]

अंत में हम 'पीव पिछांण को अंग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे जिनमें कवि रहस्यमय प्रियतम के मिलन के विवरण को 'क्या कु मन का भावता' में ही समाप्त कर 'का सू कहिये बैण' में अपनी असमर्थता प्रकट

---

१- अ० वा० [गाथा का पद], पृ० १००६।

२- डा० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ० ३०३।

३- हिन्दी साहित्य : द्वितीय खण्ड [सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा] के अन्तर्गत डा० रामकुमार वर्मा लिखित 'संतकाव्य', पृ० २२९।

कर देता है । इस अक्षमता का कारण अनुभूति की तन्मयता ही है --

"पीव पिछाण्या है सखी, आदि अंत का मैण ।
पया शु मन का भावना, कासूं कहिये बैण ।"[१]

रसानुभूति

विद्यावाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र ने `काव्य-दर्पण` ग्रंथ की तैतीसवीं छाया में `अनुभूतियाँ` शीर्षक के अन्तर्गत रसानुभूति पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है --

"रसानुभूति -- काव्य की उस अनुभूति को जिसमें मन रम जाता है, आगे बढ़ता हुआ भी पाठक दर्शक या श्रोता उससे विरत होना नहीं चाहता, रस कहा जाता है । काव्यानुभूति और रसानुभूति में कोई विशेष अन्तर नहीं, पर कुछ लोगों का विचार है कि काव्यानुभूति विशेषत: कवि को और रसानुभूति दर्शक, पाठक या श्रोता को होती है । यह कहा जा सकता है कि दोनों को दोनों प्रकार की अनुभूतियां होती हैं। दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध रहता है । कवि जब काव्य की अनुभूति करता है और पाठक को उसमें रस मिलता है तभी वह काव्य कहलाता है ।"[२]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कवि या काव्यानुरागी दोनों को रसानुभूति होती है । अब यहां संतकाव्य में रसानुभूति का प्रश्न उठना स्वाभाविक है । यहां यह स्मरणीय है कि संतों ने कविता को लौकिक उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम कभी नहीं बनाया । उन्होंने सदैव कविता को आध्यात्मिकता की भावभूमि का पसारा दिया है । उनके लिए कविता साध्य नहीं, साधन थी । इसी लिए संतों की वाणी में काव्य तत्वों के खोजकर्ताओं को शास्त्रीयता का सर्वथा अभाव मिलेगा । संत काव्य की रसात्मकता पर टिप्पणी करते हुए `संतकाव्य` शीर्षक के अन्तर्गत डाक्टर रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "जिस रुचि और विशेषता के साथ काव्य में रस की सृष्टि होती है वैसी विशेषता संतकाव्य में रस की नहीं है । रस का जो विशेष गुण साधारणीकरण है वह इस काव्य में अवश्य है । वस्तुस्थिति का सौन्दर्यबोध भी संतों द्वारा ग्रहण किया

---

१- रा० वा०, पृ० १३ ।

२- पं० रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० १३१ ।

गया है। किन्तु स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की सम्मिलित अनुभूति से रस-निष्पत्ति में संतों का काव्य नहीं लिखा गया। अपनी अनुभूति के चित्रण की विह्वलता में उनके पास इतना अवकाश भी नहीं था कि वे रस के उपकरण खोजते।"[1]

स्वामी रामचरण संत कवि थे। उनका विशाल 'वाणी' एवं ग्रंथ साहित्य विभिन्न अनुभूतियों का आगार है। यद्यपि उन्होंने रीति कवियों की भाँति रस-वर्णन की शास्त्रीय पद्धति नहीं अपनायी फिर भी उनका काव्य उनके रस-बोध का परिचायक है। स्वामी जी ने लोक जीवन को निकट से देखा था। उसमें व्याप्त कुलता की उन्होंने भर्त्सना की और सभी स्तर के सामाजिकों को उन्होंने रामभक्ति का पुनीत संदेश दिया था। वस्तुत: यह भक्ति-भावना ही उनके काव्य में व्याप्त विविध रसों की प्रेरणा है। इस दृष्टि से विचार करने पर हमें उनके काव्य में शृंगार, शांत, अद्भुत, बीभत्स और हास्य रसों का प्राधान्य मिलता है। रहस्यवादी रचना में आए दाम्पत्य प्रतीकों में शृंगार रस के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग, के बड़े ही मर्मस्पर्शी चित्र मिलते हैं। उपदेश और चिन्तावणी के अंगों में शान्तरस की अजस्रधारा प्रवाहित होती है। यों तो स्वामी जी के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य में शान्त-रस का सागर ही लहराता मिलेगा। इसी प्रकार ब्रह्म की विराटता आदि के वर्णन में अद्भुत और लोकजीवन की रूढ़ियों तथा बाह्याचारों के थोथेपन का मजाक उड़ाने में हास्यरस की अभिव्यक्ति पायी जाती है। यहां संक्षेप में उनके काव्य विभिन्न रसों की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत है।

## शृंगार रस

शृंगार रस को रसराज कहा गया है। इसमें स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्रेम का वर्णन होता है। शृंगार की लौकिकता संतकाव्य का अभीष्ट नहीं है पर जीव और ब्रह्म के पारस्परिक मिलन की मधुर भाव-भूमि में संयोग और ब्रह्म को पाने की बेचैनी, तड़पन में वियोग शृंगार के अनेक भावक, मोहक एवं मर्मस्पर्शी चित्र स्वामी रामचरण की कविता के शृंगार बनकर आये हैं।

---

१- डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य, पृ० २३३-३४।

संयोग श्रृंगार

एक-दूसरे के प्रेम में पड़कर नायक-नायिका जब आपस में प्रेम-क्रीड़ा (आलिंगन, चुम्बन, मधुर सम्भाषण, दृष्टि का आदान-प्रदान आदि) में रत रहते हैं तब श्रृंगार के संयोग पक्ष की अभिव्यंजना होती है। लौकिक श्रृंगार के संयोग पक्ष में उपर्युक्त क्रीड़ाएं वर्णित हैं पर आध्यात्म श्रृंगार के संयोग पक्ष में जीव-ब्रह्म या आत्मा परमात्मा के संयोग या मिलन की अभिव्यक्ति प्रतीकों में हुई है। स्वामी रामचरण के काव्य में आत्मा नायिका और परमात्मा नायक रूप में चित्रित हैं। ररंकार पति और सुरति-सुंदरि के परस्पर स्पर्श का यह चित्र कितना मादक है। होली का यह दृश्य संयोग श्रृंगार का सुंदर उदाहरण है --

"ररंकार पति सुरति सुंदरी अही पर्स रमै होरी हो।
वर अविगत नखक्ल अविनाशी सुंदरि नवलकिशोरी हो।
पचरंग पीत गुलाल उड़ाई, तिरगुन केसर गारी हो।
अकै अर्गार माव करि सुधो भरत प्रेम पिचकारी हो।"[१]

ररंकार पति और सुंदरी सुरति के केलि का यह दूसरा चित्र भी संयोग श्रृंगार का अच्छा उदाहरण है। इसमें भी सुंदरी को उसका नायक स्पर्श सुख देता है --

"ररंकार पी परसिया सुरति सुंदरि नारि।
रामचरण केला करै, मिनकी गिगन मंझारि।"[२]

दोनों सुख-सेज पर विलासरत हैं, इसके आगे जगत विलास नीरस लगता है। आठ पहर चौसठ घड़ी (भी) सुख विलास में समय व्यतीत होता है। प्रियतम के संयोग सदृश दूसरा सुख इस धरती पर नजर नहीं आता --

"पिव पलनी सुख सेज पर किलमिल करत विलास।
रामचरण खाली लगै, फीका जगत विलास।
आठ पहर चौसठ घड़ी, सुख विलसत दिन जाय।
पिव अविनाशी संग सुरति, नाम कहै नहिं थाय।

---

१- अ० वा०, पृ० १००१।

२- वही, पृ० १४।

रामचरण पिव पाइया तब निजर न आवे और ।
जो सुख सुख पिव की सेज पर, सो नहीं दूसरी ठौर ।[१]

वियोग के बाद मिलन में जिस संयोग की सुखानुभूति होती है उसका चित्र निम्न निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है । सुंदरि के भाग्य से विरहिणी का प्रियतम उसकी सेज पर आ गया है । विरह की आग बुझ गयी । विरहिणी के हृदय में आनन्द का उछाह भर गया और वह प्रियतम के आलिंगन-पाश में बंधकर सो गई । बहुत दिनों का वियोगी प्रियतम मिला था, पिउ ने स्पर्श किया और सभी काम बन गये --

"बिरहनि अंदर सुख भया, बलती बुझगिज आगि ।
पीव पधार्या सेज में, मोहिं सुंदरि के भाग ।
बिरहनि अनंद उछाव कर, मिली पीव सूं धाय ।
रामचरण सुख सेज पर, सूती अंग लगाय ।
बहोत दिनां का बिछुड्या, मिल्या सनेही राम ।
रामचरण पिव परसतां, सरिया सबही काम ।"[२]

'गाथा का पद' से संयोग श्रृंगार का एक और चित्र देखिए । नायिका का हृदय संयोग सुख की कल्पना से भरा हुआ है । आज उसके महल में उसके प्रियतम का आगमन है । वह हर्षातिरेक से विभोर हो रही है उसके साहब ने उसकी पुकार पर प्यार जो दिया है, उसका हृदय नयी नयी कल्पनाओं का निधान बन गया है । वह अपने प्यारे को पान देगी, कत्था, चूना, सुपारी सब मौजूद है । प्रेम के दीपक से उसका मन्दिर जगमगा उठेगा । वह प्रीति की सेज सजायेगी । शील का श्रृंगार सजाकर प्रियतम के अंग से लगकर आलिंगन सुख में जी भर झूलेगी । हृदय आनन्दोल्लास से भर उठा है । नया नया प्यार जो हुआ है । इस नये नेह में वह अपने प्रियतम पर सर्वस्व (तन मन धन) न्योछावर कर देने की उत्कण्ठा से विह्वल है । बहुत दिनों पर प्रियतम से मिलन हुआ है । कामनाओं को जीवन मिल गया, जो वह उल्लास में विलसने लगी

---

१- अ० वा०, पृ० १४ ।
२- वही, पृ० ११ ।

हो, घर आये अपने स्वामी को एक पल की शतांश अवधी के लिए भी उसे ढीला नहीं छोड़ी । आज वह सबकुछ हो गया जो उसके 'मन का भावता' है । संशय, शोक, दुर्भाग्य कहीं जा छिपे । वह सुहागवती हो गयी, प्रियतम के संग प्रेयसी का भाग्योदय हो गया --

"मेरे महल पधार्‌या प्रीतमा हो, सखी री मेरे साहिब सुनी है पुकार ।
पणकर पांन भाव करि आयी, चुनी कनी जलाय ।
सांच सुपारी साजकर बिड़लो मोहि सतगुरु दियो है भिलाय ।
प्रेम का दीपक जोय मंदिर में, प्रीति का पिलंग बिछाय ।
शील श्रृंगार साज पिव परसुं अंग सू अंग लगाय ।
उर आनंद उछाव भयो अति, लग्यो है सबलो नेह ।
तन मन धन न्योछावर करि हूं, साहिब कूं आपा देह ।
बहुत दिनां से प्रीतम पाया, सर्‌या है मनोरथ काम ।
पाव पलक ढीला नहि छाडूं घर आया केवल राम ।
अब तो मेरा भया है भावता, दरिया सबही संत ।
शिव सनकादिक शेष रटत है, सो हि मैं पाया है कंत ।
शांशो शोक दुहाग दुर्‌यो सब, सुंदरि लह्यो जि सुहाग ।
रामचरण पूरण पद पायो, पिया संग जाग्यो है भाग ।"[१]

फाग के रसरंग में पिया को प्रियतम ने सुहाग दे दिया । उसका हाथ पकड़ कर उसके हृदय का संशय दूर कर दिया । फिर क्या, प्यारी ने प्रेमभरी पिचकारी साध कर अपने प्रियतम पर चला दी और पति ने आकर बड़े प्यार से उस उत्कंठिता को आलिंगन में आबद्ध कर लिया । अंगों के इस रंग विनिमय में प्रियतमा के चपल तन-मन थिर हो गये जैसे चंचल सलिला सागर में मिलकर सागर ही हो जाय । प्रेमी-प्रेमास्पद के पारस्परिक स्पर्श से अन्तर अदृश्य हो गया --

"खेलत फाग री, मोहि बकस्यो राम सुहाग ।
पकर्‌यो हाथ नाथ अबला को, अंतर परम मिलायो ।
जाग्यो भाग राग बंध्यो पिव सूं, शरणा को फल पायो ।
भरी पिचकारी प्रेम पियारी सनमुख स्याम चलाई ।

---

१- अ० वा०, पृ० ९९९-१००० ।

आवत स्वन लई पति हित सूं, सुंदरि अंग लगाई ।
अपणी अंग दियौ गुणसागर, चंचल अचल कराई ।
जैसे नीर बहै सरिता को, समंद समंद होई जाई ।
अरस परस अंतर नहिं दरसै, परसैं प्रीतम प्यारी ।
जैसे हरी गरी सब रस की, कंगा करै अब न्यारी ।[१]

तन मन प्रिय को अर्पित करके पत्नी अपने प्रिय की हो गयी । अब उससे तनिक भी विलग नहीं होगी । कवि की दृष्टि में शरण सुख की इस अवस्था को वाणी नहीं दी जा सकती ।

"तन मन अर्प मिली पिव पत्नी,
न्यारी नैक न जावै ।
रामचरण शरणै सुख पायो ।
ताको कहत न आवै ।"[२]

स्वामी जी के संयोग श्रृंगार की नायिका परकीया नहीं प्रत्युत स्वकीया है, वह अपने प्रियतम की प्रियतमा पत्नी है । आध्यात्मिक संयोग श्रृंगार के वर्णन में स्वामी जी को अन्यतम सफलता मिली है । संयोग की तीव्रानुभूति उपर्युक्त विवेचन से पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है ।

## वियोग श्रृंगार

परस्पर अनुरागरत नायक और नायिका जब एक-दूसरे से विलगावस्था में बिछुड़न की अनुभूति करने लगते हैं तब वियोग श्रृंगार की व्यंजना होती है । स्वामी रामचरण के काव्य में नायक ब्रह्म और नायिका जीव (परमात्मा और आत्मा) के एक दूसरे से बिछुड़ने की बड़ी मर्मस्पर्शिनी अभिव्यक्ति हुई है । स्वामी जी के वियोग श्रृंगार में पूर्व-राग की विभिन्न स्थितियों के चित्र मिलते हैं । पर मान और प्रवास का कदाचित् समावेश नहीं । स्वकीया विरहिणी अपने प्रियतम के लिए बेचैन होकर बारम्बार

---

१- अ० वा०, पृ० १००९ ।

२- वही ।

उसका स्मरण करती है । उसके लिए तड़पती है । `विरह को अंग` में ऐसे अनेक मर्म-स्पर्शी स्थल हैं जिसमें कवि का विरही हृदय अपने `राम` के लिए आकुल है । कवि अपने उर्स रामधन का चातक है । वह चकोर है जो सारी जिन्दगी शशि पर ध्यान रखता है । वह अपने राम को वैसे ही स्मरण करता है जैसे राही प्रभात को --

"ज्यूं चात्रग घन कूं जपै, शशि कूं जपै चकोर ।
रामचरण रामै जपै, जैसे पंथी भोर ।"[1]

राम के लिए उसका जी तड़पता है । अत: वह राम को बार-बार स्मरण करता है, जैसे सीप स्वाति को और दुखियारी अपने प्रिय का स्मरण करती है --

"सीप जपै ऋतु स्वाती कूं, आरतवंती पीव ।
रामचरण रामै जपै, तुम बिन तलफै जीव ।"[2]

विरह विकास की अवस्था में रातदिन तड़पते तड़पते हृदय में घाव हो गया है, इस घाव का उपचार केवल उसका प्रियतम राम ही कर सकता है, जो वैद्य है --

"रात-दिवस तलफत रहै, राम वैद तुम आव ।
रामचरण बाधी विरह, कियो करेजे घाव ।"[3]

इस विरह रोग की वेदना कोई नहीं जानता । इसे या तो वियोगिनी का प्रियतम या फिर स्वयं विरहिणी या विरही --

"रामचरण विरह रोग की पीड़ न जाणै कोय ।
कै विरहनि का प्रीतमा, कै जाघट विरहा होय ।"[4]

विरह अग्नि है जिसमें नित्य जलना विरहिणी की रीति है । कवि कहता है कि सती तो अपना शरीर एक बार जलाती है पर वियोगिनी का रोज जलना उसकी रीति है --

"भस्म करै तन आपणो, सती बिर्ष की प्रीति ।
विरह अग्नि में नित जलै, ए विरहनि की रीति ।"[5]

---

१- अ०वा०, पृ० १० ।
२- वही ।
३- वही ।
४- वही, पृ० ११ ।
५- वही ।

और विरहाग्नि में मन तन जल गया, लोहू और मांस भी नहीं शेष रह पाया। तभी विरहिणी ने आर्त स्वर में निवेदन किया कि हे रामा, हे प्रियतमा ! तुम्हारे दीदार बिना सांस नाभि का स्पर्श ही नहीं कर पाती --

> "बिरह अग्नि सब तन दझ्यो, लो ही रह्यो न मांस ।
> राम पियारे दरस बिन, नाभि न बैठे सांस ।"[1]

प्रियतम के दीदार के लिए विरहिणी दिनरात जगती है । उसे पल भर के लिए भी नींद नहीं आती । बाट जोहते उमर कटती है । उसके नेत्रों को दर्शन की आशा है उस पपीहे के सदृश जो बादलों से आशा पूरी होने की प्रतीक्षा में जिया करता है । प्रिय दर्शन में तनिक भी विलम्बउसे सह्य नहीं --

> "रमइया मेरी पलक न लागे हो ।
> दरश तुम्हारे कारणे, निशिबासर जागे हो ।
> दशूं दिशा आतर फिरूं, तेरी पंथ निहारूं हो ।
> राम राम की टेर दे, दिन रैणा पुकारूं हो ।
> नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आशे हो ।
> हिरदो तलफै देख कूं, हरि कब परकाशे हो ।
> स्वाति बूंद ज्यूं चातक रटै जल और पीवैं हो ।
> घन आशा पूरे नहीं, तो कैसे जीवैं पो ।
> दास की अरदास सुणा, पिया दर्शण दीजे हो ।
> रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजे हो ।"[2]

प्रियतम से दया की याचना करती हुई विरहिणी अपनी वियोगावस्था की विभिन्न स्थितियों का वर्णन करती है । अब तो मांस भी बिना पीड़ा के नहीं सरकती । दर्द के साथ जब श्वास भीतर प्रवेश कर शरीर में व्याप्त होती है तो इस शरीर के पंजर दुखने लगते हैं । शरीर की हड्डियां उस काठ के सदृश्य हो गई हैं जिसमें विरह के घुन लग गये हैं । मज्जा सूख रही है, त्वचा में संकुचन आरंभ हो गया है ।

---

१- अ० वा०, पृ० ११ ।
२- वही, पृ० १००६ ।

मेरा आनन मुरझा गया है। दीदार की आशिकी में दोनों नयन झर रहे हैं --

"साँईया अरज हमारी हो ।
बिरहनि ऊपर की जिये टुक महर तुम्हारी हो ।
साम सपीड़ा सकै व्यापै, पिंजर रह्यो है पिराय ।
काठ जैसे अस्थि बीमर्ग, बिरहा घुंण ज्यूं खाय ।
मैव सुकत शुकुनी त्वचा, मेरो बदन गयो मुरझाय ।
आसकी दीदार की, दोइ नैन रहे झड़लाय ।"[1]

'नैत्र तुम्हारे दर्शन के बिना दुखी हैं', इस बहाने भी प्रिय पे तो मिलन हो जाय पर तभी विरह की तीव्र धार फूट पड़ी और बहाने बह चले । विरहोत्कंठिता का स्वर गूंजने लगा । वह विश्वास मांगती है, प्रियतम के गले में लग जाना चाहती है । उसने न भूलने की पुन:पुन: विनती करती है --

"दुखी तुम्हारे बिन, तुम कबर मिलोगे आय ।
सोही बिछाड़ी मीसरे तो नो एक वर्षा के भाय ।
रामचरण की बीनती पिया मति भोही बीसर जाय ।
बिरहनि कूं विश्वास दीजै, लीजै कण्ठ लगाय ।"[2]

विरहिणी का जीव पिउ में बसता है, नित्य उसी में लीन रहता है इस आशा में कि कभी तो उसकी मनोकामना उसका प्रिय पूरी करेगा । इस संसार में सभी सुखी हैं, केवल विरही मन ही दुखी रहता है --

"सुखिया सब संसार है विरही चित उदास ।
जीव बसे नित पीव में, कब हरि पुरै आस ।"[3]

विरहिणी अन्य सभी दुख झेलने को तैयार है, पर प्रिय वियोग का दुख असह्य है, अत: वह प्रियतम से शीघ्र मिलने की आकांक्षा व्यक्त करती है । निम्नलिखित पंक्तियों में कितनी आतुरता है --

---

१- अ०भा०, पृ० १००६ ।

२- वही ।

३- वही, पृ० ११ ।

"दूजा दुख सबही गहूं, पिव दुख सह्यो न जाय ।
रामचरण विरहनि कहै, वेग मिलो हरि आय ।"[1]

अब उसे केवल दीदार की लालसा मात्र रह गई है। वह प्रियतम को देखकर ही संतोष करने को प्रस्तुत है। इसीलिए कहती है प्रियतम ! तुम क्यों छिपे हुए हो ? ऐसी निठुराई ? दरस दो प्यारे, तुम बिन रहा नहीं जाता। दर्शन दो नहीं तो प्राण शरीर छोड़ देंगे --

"दुखी तुम्हारी दरस बिन, तुम क्यूं रहे लुकाय ।
के दरसो के तन तजूं, तुम बिन रह्यो न जाय ।"[2]

स्वामी रामचरण के विरह में दर्पण में आदर्श विरही का रूप झलकता है। विरहानुभूति की विभिन्न दशाओं के अनेक मार्मिक चित्रों का चित्राधार है स्वामी जी का विरह काव्य। इस विरह निवेदन में पपीहे की आर्त पुकार है। चकोर की तन्मयता है, घायल हृदय की तड़पन है। और है प्रिय मिलन की तीव्र उत्सुकता तथा दीदार के अभाव में तन त्यागने की चुनौती। विरह की आग बढ़ती गई, दर्शन की आतुरता सीमा पार कर गई। विरहिणी की आर्त पुकार आर्ततर से आर्ततम होती चली गई। विरहिणी का सर्वांग वियोगानल की लपटों में आ गया, अब बुझने की आशा नहीं दीखती। क्या करती बेचारी, 'रमइया बिन की चाह' हृदय में संजोये विरह में जलती रही। तभी विरह की लपटों से एक बेबस स्वर सुनाई पड़ा --

"विरह बधी विस्तार कर, फैली सब घट मांहि ।
रामचरण क्यूं ही किया, बुझती दीसै नांहि ।"[3]

तभी उसे विदित हुआ कि उसका महबूब निरंजन राम तो उसके अति निकट था पर माया ने पर्दा डाल रखा था जिससे दर्शन दुर्लभ हो गया। निकट की दूरी खल गई। आशा बंधी 'पीव हजूर' के दर्शन की। अब उसे प्रतीक्षा है पर्दा के मिट जाने तक की। माया का पर्दा विरहिणी और उसके प्रियतम निरंजन राम के बीच से जब हटेगा तो वह उसका दीदार कर निहाल हो जायगी --

---

१- अ० वा० पृ० ११ ।
२- वही ।
३- वही ।

"रामनिरंजन निकट है माया पड़दै दूर ।
बिरह विरहनि का पड़दा मिटै तो दरसै पिव हजूर ।"[१]

यही है स्वामी रामचरण की विरहानुभूति । इसमें विरही हृदयों की काँकी के अनेक सवाकृत चित्र दृष्टिगत हो रहे हैं । स्वामी रामचरण का विरह वह आईना है जिसमें मीरां सदृश विरहिणियां अपना रूप देख सकती हैं ।

शांत रस

संतों ने सर्वाधिक प्रमुखता से जिस रस की अनुभूति की है वह शान्त रस ही है । असार संसार के प्रति निर्वेद भाव के जागरण होने पर ही शांतरस की अनुभूति होती है । स्वामी रामचरण के काव्य में शांत रस का प्राधान्य सर्वत्र दृष्टिगत होता है । यों तो उनके सम्पूर्ण साहित्य में शांतरस की अनुभूति होती है पर चिंतावणी और उपदेश के अंगों में इस रस का वर्णन विशेष रूप से हुआ है । शांतरस के कतिपय पद इस विवेचना में प्रस्तुत करना समीचीन होगा ।

'कुण्डलिया चिंतावणी को अंग' में सांसारिक संबंधों एवं उपकरणों की नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए स्वामी जी इन सभी से परे होकर भजन द्वारा मुक्ति का उपाय सुझाते हैं । धरा-धाम-धन, रिश्ते-नाते सभी यहीं छूट जाते हैं, केवल यश-अपयश संसार में रह जाता है --

"धरा सनंधी धाम धन संग ले चल्यो न कोय ।
जश कुजश संसार में, पीछे रह गया दोय ।
पीछे रह गया दोय संग शुभ अशुभ सिधाया ।
शुभ स्वर्गादिक सुख अशुभ दुख नरक भुगाया ।
रामचरण इनसे परे मुक्ति भजन में होय ।
धरा सनंधी धाम धन संग ले चल्यो न कोय ।"[२]

'गाथा का पद' का निम्नलिखित पद भी मन में निर्वेद का संचार करता है । यह शरीर पाहुने के समान है, इस पर गर्व करना निरर्थक है । मेहमान सदृश आज या

---

१- अ० वा०, पृ० ११ ।
२- वही, पृ० ९७२-७३ ।

अन्त में यह भी उठकर चले जाना है । संसार का मोह मिथ्या है । तन धन धाम सभी झूठ है । इसीलिए सजग होकर राम का स्मरण करना चाहिए --

"यो तन पाहुणाँ रे मति कोई करो गुमान ।
पिर यूं कालह कि आज केह में रे, उठ चलै मिजमान ।
नदिया नाव संजोग है रे, बिछड्या मेला रे नांहि ।
गया सो फेर ना बाहुड्या रे, समझ देख मन मांहि ।
छत्र सिंहासन छांड़ि कै रे, मर मर गया रे अमीर ।
तू क्यों गाफिल होय रह्यो रे, काचा धार शरीर ।
मौत खड़ी शिर ऊपरै रे, जीवण झूठी रे आश ।
कहा जांण कब चालसी रे, बाट बटाऊ राम ।
झूठी जग की मोहणी रे, झूठा तन धन धाम ।"
रामचरण अब चेत कै रे, सुमर सनेही राम ।"[1]

इसी प्रकार प्रकट जल को छोड़कर मरीची नीर के पीछे भटकते मन को कवि सचेत करता है --

"मन तू भरम भूल्यो बीर ।
मृगतृष्णा जल देखि धायो, परिहरि परगट नीर ।
सांचा प्रीतम परिहर्या रे, झूठे कीयो सीर ।
भीड़ पड़्यां सब जायगा रे, कोई न बंधावै धीर ।
माता पिता सुत कामिनी रे, इन संग पावै पीर ।
धन जोबन मति देखि भूलै, ये सब नांही थीर ।
जगत धार्यो राम बिसार्यो, गह छाड़ी तज हीर ।
अन्त काल पछितायगो रे, सुन कायर के पीर ।
भ्रमि भ्रमि सं लागियो रे, समझ्यो नीर न छीर ।
काचा सब चल जायगा रे, ज्यूं पावक संग कथीर ।
सतगुरु शब्द पिछांण कै रे, लाहि बीनर तीर ।"
रामचरण दरियाव भजिये, राम गुणां गंभीर ।"[2]

---

१- अ० वा०, पृ० १००६ ।

२- वही, पृ० १०१० ।

रामस्मरण के साथ संतों की संगति भी शांत रस का विषय है । संसार से विरक्त होकर संत सागर में निवास करने का उद्देश्य स्वामी जी निम्नलिखित पद में देते हैं --

"कर मन संत सागर बास ।
यो संसार विनाश हीलर, देख होय उदास ।
ज्ञान जल मुजादि मत दृढ़, थाग पावत नांहि ।
शब्द साखी सीप भरिया, राम मुक्ता मांहि ।
समंद सूमर सीप सूभर, चुगत हंसा दास ।
आन दिशा को उड़त नांही, पाय परम निवास ।
तीन बिधि की ताप में जग जलत हीलर तीर ।
रामचरण जहां जाइये, जहां सुख सुख की सीर ।"[1]

जीवन भाग रहा है, मृत्यु निकट आती जा रही है । संत सचेत कर हरिस्मरण के लिए प्रेरित करता है । सोते-सोते जीवन बीत गया । पर इस जीव ने हरि से हेत नहीं लगाया । उपर्युक्त भाव से पूरित यह पद शान्त रस की अनुभूति कराता है --

"जागो रे जीवन जाइ भागो, मरणो आवै आघो रे लो ।
संत जगावै भर्म नशावैं, हरि के सुमरण लागो रे लो ।
ज्यों सोया ज्यां सरबस खोया, हीरा-सा जन्म बिगोया रे लो ।
जन जाग्या हरि सुमरण लाग्या, कर्म कालम्यां धोया रे लो ।
सूता कूं जम आप पहूंता, जागत देख डरायो रे लो ।
गज गणिका पशुवां ने हनतां, आपो आप बचायो रे लो ।

... ... ...

सोवत सोवत जन्म बिदिता, तस्कर मुसै न चिता रे लो ।
रामचरण हरि हेत न जाग्या, आदि अंत रह्या रीता रे लो ।"[2]

इसी प्रकार स्वामी रामचरण के काव्य-साहित्य में शांत रस के पदों की भरमार है । वस्तुत: संतों का जीवन ही शान्ति का स्रोत है । उनसे शांत भाव की प्रेरणा मिलती है । फिर उनके साहित्य से शांत रस की अनुभूति क्यों न हो ?

---

१- अ० वा०, पृ० १०१०।
२- वही, पृ० १०११ ।

अद्भुत रस

अलौकिक प्रसंगों से उत्पन्न विस्मय से अद्भुत रस की अनुभूति होती है । संत-साहित्य में ब्रह्म की विराट कल्पना, अगम देश, अगम पुरुष आदि के वर्णन में विस्मय भाव का परिपोषण हुआ है । स्वामी जी के साहित्य में अद्भुत रस के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं । 'दृष्टान्तसागर' के दृष्टिकूटों में भी अद्भुत रस के उदाहरण प्राप्त हैं । अगम देश की चर्चा में कवि अद्भुत रस की अनुभूति कराने में सफल हुआ है । निम्नलिखित पंक्तियां इस दृष्टि से दृष्टव्य हैं --

" बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर ।
बिन श्रवणां अनहद सुणै जहां ब्रह्मसभा भरपूर ।
जहां ब्रह्म सभा भरपूर और कोई निजर न आवै ।
सुरति रही मठ छाय देह तहां जाण न पावै ।
रामचरण वा देश में बहु परकाशै सूर ।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर ।"[1]

'नाम प्रताप' में सागर हंस का हंस में प्रवेश का विस्मयकारी वर्णन अद्भुत रस की अनुभूति कराता है --

"सायर तट हंस बैठा आई ।
सायर हंस मे रहा समाइ ।
ओतप्रोत गया हंस न दरसै ।
संत सरक ब्रह्म सुख कूं परसै ।" [2]

गगनवासी अलेख पुरुष की आश्चर्यमय वर्णन भी इस संदर्भ में दृष्टव्य है --

"गिगन मण्डल में रम रह्या, रमता पुरुष अलेख ।
रूप रेख जाकै नहीं, नहि कोइ स्याम न सेत ।"[3]

---

१- अ० वा०, पृ० १४१ ।
२- वही, पृ० २०७ ।
३- वही, पृ० १३ ।

'दृष्टान्त सागर' में सीप मोती के दृष्टान्त द्वारा अद्भुत रस की प्रतीति इन पंक्तियों में होती है --

"सीप नारि को उदर छक, मिलि नहीं भरतार ।
बिन्दु फौल पैदा क्रिया, पीछर पत अपार ।"[१]

इसी अन्वी का दूसरा उदाहरण भी प्रस्तुत है --

"तात नहीं माता नहीं, नहीं तातकी आस ।
भई सपूती पुत जणा, गई न गावर पास ।"[२]

स्वामी रामचरण को अद्भुत रस के वर्णन में सफलता मिली है । उपर्युक्त विवेचन से इस बात की पुष्टि होती है ।

## बीभत्स रस

घृणित उपकरणों को देखने या तद्विषयक चर्चा से जिस जुगुप्सा की अनुभूति होती है, उसे बीभत्स रस कहते हैं । वैराग्य उत्पन्न होने पर सांसारिक वस्तुओं के प्रति जिस स्वाभाविक घृणा की अनुभूति होती है वह भी बीभत्स की सीमान्तर्गत है । जैसे श्रृंगार रस के उद्दीपक शरीर के विभिन्न वई अंगों का सौन्दर्य विराग के कारण बीभत्स की अनुभूति कराने में सहायक होता है । संत काव्य में बीभत्स रस की अनुभूति इसी रूप में हुई है । 'पंडित संवाद' ग्रंथ की निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़कर जुगुप्सा की अनुभूति होती है --

"कामणि संग कसार ज्यूं लागै ।
विष की लहरि सुमति सहि जागै ।
तन मन मैल्यो मूत विकारा ।
मोहि बतायो कहां आचारा ।
जीं द्वारे छोडके तूं आया ।
सोई फिर भुगतण कूं ध्याया ।
... ... ...
रह्या मास दश गृभ के मांही ।
काया रस सूं रुचि उपजाही ।

---

१- अ० वा०, पृ० १०३५ ।   २- वही ।

विष्टा मूत्र को रस पीयो ।
ता आधार गर्भ में जीयो ।"[१]

'चन्द्रायणा साच को अंग' का यह अंश भी वीभत्स रस की अनुभूति कराने में समर्थ है --

"हाड़ चाम अरु रक्त मांस की पोट रे ।
आंत ओझ मल मूत्र भर्या मन खोट रे ।
ऊपर कीयां स्नान शुचि नहिं कर्म रे ।
परिहां रामचरण भज राम और तज धर्म रे ।
देह भरी दुर्गन्ध बहै नव द्वार रे ।
चोकी चूल्हो पोत कहै आचार रे ।
नरनारी का मांस भखन मद पीवणां ।
परिहां शुचि राम बिन धिक्कार वृथा जग जीवणां ।"[२]

इसी प्रकार 'कामी नर को अंग' में नारी संग के प्रति जुगुप्सा का भाव उत्पन्न कवि वीभत्स की सृष्टि करने में सफल हुआ है --

"तन मन मैली नार, मैला नर संगति करै ।
ले जाय नरक दुवार, जहां मैल दुर्गन्ध भरै ।"[३]

स्वामी रामचरण को वीभत्स रस के वर्णन में उपर्युक्त स्थलों पर पर्याप्त सफलता मिली है । संत कवि मानव हृदय में लौकिकता के प्रति वीभत्स रस का भाव जगा कर विराग ग्रहण करने की प्रेरणा देता है । स्वामी रामचरण ने नारी के तन मन के प्रति घृणा तो जगाई ही है, हाड़-मांस के शरीर के प्रति भी जुगुप्सा उत्पन्न करने में सफल हुए हैं ।

## हास्य रस

हास स्थायी भाव की पुष्टि के द्वारा हास्य रस की अनुभूति होती है । हिंदी काव्य-साहित्य में निर्मल हास्य का प्राय: अभाव ही है । फिर संत काव्य में तो उसका

---

१- अ०वा०, पृ० ६८४ ।
२- वही, पृ० ८४ ।
३- वही, पृ० ५६ ।

मुअस्सर नहीं और भी गुजारा नहीं । हास्य के नाम पर व्यंग्य को प्रश्रय मिला है । स्वामी रामचरण की कविता में भी हास्य के नाम पर व्यंग्य ही मिलेगा । ग्रंथ 'पंडित संवाद' में स्वामी कलियुगी पंडितों का मजाक उड़ाते हैं कुछ इस प्रकार व्यंग्य करते हैं --

"कलियुग के पंडित पाखण्डी ।
घर में कुबुधि करकसा रण्डी ।"[1]

'वैराग्य तिरस्कार' ग्रंथ में साधु सन्यासी के वेष की नारी वेष से उन सभी का मजाक उड़ाने में स्वामी जी हास्य रस की पुष्टि करते हैं । मुंडित सन्यासी और नारी की अनुरूपता का चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णित है --

मुंड भेष नारी सूं संग ।
मिला मुंड दाल्यू इक रंग ।
मूंडा बिना पुरुष नहिं दीसे ।
जो रांड रांड मिल पीसे ।"[2]

इसी प्रकार कनफटा जोगी और कनफटी सी नारी की अनुरूपता दिखाकर स्वामी जी कनफटे योगियों पर व्यंग्य करते हैं --

"कान फड़ाय रु जोगी भया ।
नारि कनफड़ी सूं मन दिया ।
कर्णफूल मुद्रा इक संग ।
छैल छबीला नाना रंग ।"[3]

'साच को अंग' में स्वामी जी मुल्ला की अजान का मजाक यह कह कर उड़ाते हैं कि वह सर्वव्यापी करीम बहरा नहीं है, फिर तू क्यों बांग देता है --

"सकल जिहान में रमि रह्या, मुल्ला इक रहीम ।
बांग सुणावै कूंण सूं बहरा नाहिं करीम ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० ६८४ ।
२- वही, पृ० ६८८ ।
३- वही, पृ० ६८६ ।
४- वही, पृ० ६४ ।

स्वामी रामचरण के काव्य में यद्यपि हास्य प्रचुर मात्रा में नहीं है, फिर भी व्यंग्य प्रधान उक्तियों से वे हास्यरस की सृष्टि कर सके हैं। इतने विशाल काव्य-भण्डार में जहां जीवन का कोई पक्ष अवर्जित नहीं है, यह कैसे संभव था कि हास्य की चर्चा न हो। अनेक लौकिक रूढ़ियों, साम्प्रदायिक बाह्याचारों और जीवन की कुरूपताओं पर हुए व्यंगों में हास्य रस की अनुभूति हम कर सकते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वामी जी सामाजिक जीवन में कितनी रुचि रखते थे।

भक्ति रस

ईश्वर, देवता और गुरु के प्रति श्रद्धामय प्रेम भाव से ही भक्ति रस की अनुभूति होती है। क्या भक्ति को एक स्वतंत्र रस की मान्यता मिलनी चाहिए यह विवाद पुराना है। हिन्दी के आचार्यों ने भक्ति को रस रूप में मान्यता दी है। विद्या-वाचस्पति पं० रामदहिन मिश्र ने अपने 'काव्य-दर्पण' में इस विवाद का अन्त करते हुए लिखा है, 'इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय साधु-संतों ने भक्ति का जो रूप खड़ा किया है वह सांगोपांग है। शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर भक्तिरस परिपूर्ण तथा खरा उतरता है और रसश्रेणी में आने के उपयुक्त है। भक्ति-रस के विरुद्ध जितने तर्क हैं वे निस्सार हैं। भक्तिरस की आस्वाद योग्यता निर्बाध है।'[1] अतः भक्ति का रस रूप में निरूपण करने में कोई आपत्ति नहीं है। संत-का मूल ही भक्ति है। संत चाहे वे निर्गुणोपासक रहे हों या सगुणोपासक, सभी ने भक्तिभाव से अपने आराध्य को स्मरण किया है --

भक्ति निरूपण के प्रकरण में भावभक्ति शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी की भक्ति-भावना का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। यहां कवि की रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन के संदर्भ में भक्ति को रस रूप में निरूपित करते समय स्वामी रामचरण के काव्य में भक्तिरस की संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित लगी। स्वामी जी का भक्त-हृदय उनकी सम्पूर्ण कविता में परिव्याप्त है। उन्हें सम्पूर्ण चराचर में 'राम' की सत्ता के दर्शन होते हैं। यह राम उनके आराध्य हैं। वे भक्तिरस को ही 'रामरस' कहते हैं। 'गावा के पद' की ये पंक्तियां इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं --

---

१- पं० रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० २०४।

"रामरस पनहन कीजे न्यारी ।
ऐसी बूंज बहुरि नहि पावे मरकन को अवतारी ।"[1]

'गाथा का पद' में भक्तिरस के अनेक आदर्श पद भरे पड़े हैं । साधु-दर्शन पाने के बाद भाव-विह्वल कवि गा उठता है --

"आज भया मन भाया रे ।
मैं साधु दर्शण पाया रे ।
हरिजन भला पधार्‍या रे ।
जड़ जीवन कूं निस्तार्‍या रे ।
साधु पर उपकारी रे ।
ये तो भवदुख के परिहारी रे ।
प्रीति जगत सूं न्यारी रे ।
उन संतन की बलिहारी रे ।
हरि रस पीवण प्यारा रे ।
जन बिषिया रस सूं न्यारा रे ।
रामचरण धुनि गाई रे ।
मोहि ली ज्यो बांह गहाई रे ।"[2]

भक्त भगवान के प्रेम में डूब कर नर्तन करने की अभिलाषा व्यक्त करता है । वह प्रभु के चरणाकज में लीन होना चाहता है । उसे स्वर्गलोक का सुख नहीं चाहिए । वह तो केवल अपने भगवान के दास रूप में प्रसिद्ध होना चाहता है । वह चारों पदार्थों को भूलकर भक्ति धारण करने के लिए तत्पर है । उसे ऋद्धि-सिद्धि लक्ष्मी का वैभवादि कुछ नहीं चाहिए । वह अपने उपास्य की शरण में रहकर उसकी चरण सेवा का अभिलाषी है --

"निशिवासर हरि आगे नाचूं ।
चरणाकमल की सेवा जाचूं ।
स्वर्गलोक का सुख नहि चाहूं ।

---

१- अ० वा०, पृ० १००४ ।

२- वही, पृ० ९९६ ।

जनम पाय हरिदास कुहाऊं ।
च्यार पदारथ मना बिसारूं ।
भक्ति बिना दूजो नहिं धारूं ।
रिधि सिधि लक्ष्मी काम न मेरे ।
सेऊं चरण शरण रहूं तेरे ।
शिवसनकादिक नारद गावै ।
सो साहिब मेरे मन भावै ।
राम राय इक अर्ज हमारी ।
रामचरण कूं द्यो भक्ति तुम्हारी ।"[1]

भक्ति रस में सराबोर स्वामी जी के हृदय ~~विमलस्पन्द~~ उद्‌गार की निम्नलिखित पंक्तियों में अनेक भक्तों की चर्चा हुई है जिनका उद्धार भगवान ने किया । कवि अपने उसी प्रभु के विनय में रत है --

"विनऊं रे म्हारो रामसनेही, सब विधि काज संवारे रे लो ।
अधम उधार बिरद हद जाको, चरण गह्यां भवतारे रे लो ।
जल डूबत गज राखि लियो है, अजामील निस्तार्‌यो रे लो ।
पावक में प्रह्लाद सम्हार्‌यो, असुर रह्यो पचिहार्‌यो रे लो ।
ध्रु नछत्र नीकां बैठार्‌यो, गणिका राम उचार्‌यो रे लो ।
रामचन्द्र के सायर पार्‌यो, अर्ध नाम शिर धार्‌यो रे लो ।
... ... ... ...
अनंत कोटि जन महिमा गाई, निगम सुजश विस्तार्‌यो रे लो ।
रामचरण को समर्थ स्वामी, नाम लेत अघ टार्‌यो रे लो ।"[2]

स्वामी जी के काव्य का उपर्युक्त निरूपण सिद्ध करता है कि उनकी कविता में भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है । ईश्वर के अतिरिक्त संतजन एवं गुरु के प्रति श्रद्धामिश्रित अनुराग से भरे अनेक पदों एवं छन्दों से स्वामी जी का विशाल काव्यभंडार भरा पड़ा है । यहां अति संक्षेप में भक्ति का निरूपण रस रूप में किया गया है । स्वामी रामचरण की कविता में वर्णित प्रमुख रसों की इस संक्षिप्त चर्चा के साथ रसानुभूति का यह प्रकरण यहीं समाप्त होता है ।

---

१- अ० वा०, पृ० १००२ ।    २- वही, पृ० ११११ ।

प्रकृति-चित्रण

संत-साहित्य में प्रकृति चित्रण विषय पर पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने 'संत-काव्य' की भूमिका में विचार किया है । वे लिखते हैं --"संतों की साधना अन्तर्मुखी वृत्ति के आधार पर चलती थी और वे अधिकतर अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति में ही लगे रहते थे । बाह्य जगत की चर्चा छेड़ते समय भी वे बहुधा अकर्मन्य व्यक्तियों वा पाखण्डियों आदि के विविध आचरणों का उल्लेख कर दिया करते थे....... प्राकृतिक दृश्यों के प्रसंग वे केवल ऐसे अवसरों पर लाते थे जहां उन्हें सर्वव्यापी परमात्मा के अस्तित्व एवं प्रभाव की ओर संकेत करना रहता था । अथवा अपनी विरह दशा के वर्णन वा अन्योक्तियों की रचना करते समय उनका ध्यान इधर चला जाता था । इसी लिए प्राकृतिक वस्तुओं के स्वरूपादि के वर्णन संबंधी उल्लेख उनकी रचनाओं में बहुत कम देखने को मिलते हैं ।"[१]

स्वामी रामचरण के काव्य में भी प्रकृति का उपयोग परमात्मा के रूपाभास या कविता के उद्दीपन प्रतीक आदि रूपों में हुआ है । 'रमइया मित्त' की चाह के लिए वियोगिनी का आदर्श मोर जो घन का प्रेमी है और कोयल जो वन वन विचरण करती है --

"कोयल चाहै विविध बन, मोरा चाहै घन ।
रामचरण यूं विरहनी चहै, रमइया मित्त ।"[२]

कमल और मधुकर भी माया और जीव के प्रतीक बनकर 'कविल माया को अंग' में उपस्थित हैं --

"माया कमल स्वरूप ज्यूं मधुकर मन फूले ।
विषिया रस मोहित होय निज घर कूं भूले ।"[३]

इसी प्रकार कीचड़ के मध्य स्थित कमल के मूल का निकट निवासी दादुर और कमल के पुष्प की गंध का प्रेमी भ्रमर दोनों ही 'शिष्य निरणा को अंग' की शोभा बढ़ा रहे हैं --

---

१- पं० परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ० १०३ ।
२- अ०वा० पृ० ११ ।
३- वही, पृ० १२१ ।

"कमल मूल मधि कीच मीच मिण्डुक अधिकारी ।
भंवर बा ाना नेते करे नहिं ताप मंझारी ।
अलि दादुर क्यूं मेल आश पुनिवास विवर्जित ।
सुख गत बढ़े कलेश होय कबहूं जो संगति ।"[1]

गगन मण्डल में विराजमान 'प्राण-पुरुष' का रूपवर्ण प्रभात वेला के सौन्दर्य-सदृश अवर्णनीय है, 'नाग प्रताप' की इन पंक्तियों में चित्रित है --

"रूप वर्ण कैसो तड़का को ।
एसो कहां बखानो जाको ।"[2]

'अमृत उपदेश' के आठवें प्रकाश का आरंभ ही रवि और शशि के उदयास्त के वर्णन से होता है । परक और विरक्त को कवि ने क्रमशः चन्द्रमा और सूर्य के रूप में देखा है ।

"रवि के आथ्यां रैण होई उदै भयां दिन होय ।
शशि ऊग्यां नांही दिवस, आथ्यां निशा न होय ।
आथ्यां निशा न होय साध यूं चाहि अवाही ।
चाही शशि सामान अवाही अर्क सदा ही ।
रामचरण लख अलख कूं लखै विचक्षण सोय ।
रवि के आथ्यां रैण होई उदै भयां दिन हो ।"[3]

शीत, उष्ण और पावस ऋतुओं को कवि ने 'जिज्ञास बोध' के पहले प्रकरण में त्रय ताप के रूप में निरूपित किया है । ऋतुएं आते समय प्यारी लगती हैं और पीछे संताप देती हैं --

"शीत उष्ण पावस ऋतु है अतिसै त्रयताप ।
आवत ही प्यारी लगै पीछे लगै संताप ।"[4]

---

१- अ०वा०, पृ० १२३ ।
२- वही, पृ० ३०७ ।
३- वही, पृ० ४६६ ।
४- वही, पृ० ५१६ ।

'गावा का पद' में स्वामी जी ने विरहिणी को निर्वाण पद स्पर्श की राय दी । इस सन्दर्भ में असाढ़, सावन, भादों और आश्विन मासों की चर्चा बड़ी मोहक लगती है --

"[illegible]

[illegible]

"निरगुन परमपद निर्वाण ।

अचल के संग होय नहचल मिटै आवण जांण ।

असाढ आगम राम घन को, चातक चित उछाव ।

आनंद अंग न मावही, भयो शरद ऋतु को चाव ।

सावन भावन घटा घमण्डी, गावन रसना राम ।

सुमरण की झड़ लुब लागी, बरसत आठूं जाम ।

भादवै भिदि गयो हिरदै भरै सागर पूर ।

निकट सागर प्रेम पिवै, नाहिं भर्म दूर ।

आसोज आरत प्यास भागी, भरै चातक चंच ।

स्वाति शीतल अधर झेलै, भई तिरपति पंच ।

गगन में घन मगन बोलै, अकल सुख आराम ।

रामचरण मिल ब्रह्म पूरण, भरै परबस काम ।"[1]

संतों ने प्रकृति वर्णन को अपने काव्य में वर्णन का अभीष्ट नहीं बनाया था, फिर भी उद्दीपन प्रतीक आदि के रूप में प्रकृति की सुन्दरता तक उनकी दृष्टि पहुंची अवश्य है । स्वामी रामचरण के काव्य से कतिपय स्थलों [illegible] को उद्धृत कर कवि और प्रकृति के संबंधों को स्पष्ट किया गया है । स्वामी जी के लिए प्रकृति-चित्रण की उतनी महत्ता नहीं पर प्रकृति के उपादानों से उनका लगाव किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होता रहता है ।

## पौराणिक तथा अन्य सन्दर्भ

क्रान्तिदर्शी संत कवि अपनी वाणी के माध्यम से समाज को नवजागरण का संदेश देते थे । एक ओर वैष्णव भक्ति-भावना के पोषक साधुओं के सुव्यवस्थित मठीय

---

१- अ० वा०, पृ० १००६-०७ ।

गठन से जो सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं से समन्वय स्थापित करके अपना भक्ति संदेश समाज को देकर धन्य करते थे । इन साधुओं और इनके सम्प्रदाय के भक्तों या आचार्यों का समाज में बड़ा सम्मान था । उच्च वर्णी समाज इन्हें श्रद्धा अर्पित करता था । दूसरी ओर वे निर्गुनिये संत थे जो सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं से निःसंकोच टकरा गये । इन्हें लोकजीवन की कुरूपताओं से समझौता बिलकुल पसंद न था । समाज का उच्च वर्ग इनसे बचने की कोशिश करता था किन्तु निम्नमध्य वर्ग के प्राणी इनकी अटपटी बानी में रुचि लेते थे । वे इन लोगों की खरी-खोटी से प्रभावित हो इन्हें अपनी श्रद्धा का भाजन समझते थे ।

संतों को अपनी बात सम्पूर्ण समाज को सुनानी ही नहीं मनवानी भी थी । उधर सगुणोपासक वैष्णव संत-महंत पौराणिक सन्दर्भों का साक्ष्य उपस्थित कर समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर अपने द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों, कर्मकाण्डों को धर्म का मूल घोषित करते थे । पौराणिक सन्दर्भों को अपने रग रग में सजाए भारतीय समाज की झुकाव का उधर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था । निर्गुन गायक संतों को भी अपने कथनों के प्रतिपादन के लिए उन्हीं सन्दर्भों का सहारा लेना पड़ा । संतों ने उन संदर्भों का निरूपण अपने ढंग से प्रस्तुत किया । और इस प्रकार समाज जीवन को अपने प्रभाव क्षेत्र के घेरे में करने में सफल हुए ।

स्वामी रामचरण ने अपनी अणभैवाणी और ग्रंथों में अनेक स्थलों पर भागवत आदि पुराण ग्रंथों के साक्ष्यों का सहारा लिया है । व्यास के कथनों का संदर्भ उपस्थित कर अपने मत का प्रतिपादन करने में वे पीछे नहीं रहे हैं । गणिका, गीध, अजामिल आदि की कथाएं, ध्रुव-प्रह्लाद की त्याग-तपस्या आदि की चर्चा उन्होंने बार-बार की है । अपने पूर्ववर्ती संतों कबीर, गोरख, नानक आदि का नाम भी आदर के साथ लिया है और इन लोगों को आदर्श भक्त चित्रित कर समाज को उनके बताये संदेशों की ओर आकृष्ट करने की भरपूर कोशिश भी की है । ऐसे ही कतिपय संदर्भों का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकरण का अभीष्ट है ।

स्वामी जी ने व्यास और भागवत की चर्चा स्थान-स्थान पर की है । भक्ति निरूपण में उन्होंने भागवत में वर्णित भक्ति का उल्लेख किया है । अपने ग्रंथ 'अमृत-उपदेश' के तृतीय प्रकाश में भक्ति के प्रकारों की चर्चा में व्यास और भागवत का नाम उन्होंने लिया है ।

"व्यास कही भागवत मैं भक्ति तीन प्रकार ।
कनिष्ट उत्तम मध्यमा जाकू जो अधिकार ।"[१]

ग्रंथ 'पंडित संवाद' में पंडितों की अच्छी खबर लेने के बाद वे गीता, भागवत, वेद आदि की चर्चा करते हैं और पंडितों को तदनुसार आचरण करने का उपदेश देते हैं। सच कहने के लिए उन्होंने गीता की साखी दी है। ~~अन्तरगत करने का उपदेश~~

"साच कहत कुछ शंका न राखी ।
नव जोगेश्वर गीता साखी ।"[२]

चारों वर्णों की चर्चा में स्वामी जी भागवत की साक्ष्य का उल्लेख करते हैं --

"च्यारूं वर्ण राम की उत्पति ।
ताहि तज्यां पावै कौन गति ।
रामचरण भागवत बतावै ।
पंडित शोध सो तत कूं पावै ।"[३]

स्वामी जी पंडितों को अपने मन की उलझन दूर कर रामभजन के लिए ~~प्रेरित~~ प्रेरित करते हैं पर पण्डित उनके कथन को सिद्धान्त वाक्य कैसे मानेगा, अतः पण्डितों को विश्वास दिलाने के लिए स्वामी जी वेद की साखी भरते हैं --

"राम भजन बिन पार न पावो ।
पंडित अपना मन सुलझावो ।
मेरी बात नहीं पतियाना ।
तो वेद मांहि फिर देख सयाना ।
वेद बतावै सो अब कीजै ।
रामचरण कूं दोष न दीजै ।"[४]

ग्रंथ 'अणभै विलास' के अठारहवें प्रकरण में पर नारी पर कुदृष्टि रखने वालों पर प्रहार करते समय स्वामी जी को चन्द्रमा, इन्द्र, रावण, कीचक, बालि, भस्मासुर आदि की स्मृति हो आई है, ये सभी परनारी पर आसक्त थे --

---

१- अ०वा०, पृ० ४४३ ३- वही ।
२- वही, पृ० ६८५ ४- वही ।

"चन्द इंद रावण जिस्या चक कीचक बालि विचार ।
कला हीन अरु मलीन भा और मिलाये छार ।
और मिलाये छार पाप पर नारी केरी ।
विषय मान विचार दृष्टि करनी का फेरी ।
रामचरण ईं कलंक सुं जहां तहां नहीं उबार ।
चन्द इन्द रावण जिस्या कीचक बालि विचार ।
भस्मासुर भस्मी भयौ चितवत ही पर नारि ।
जो प्रत्यक्ष ई भोगवै तो उबरै कोण विचार ।"[१]

स्मरणीय है कि चन्द्रमा और इन्द्र ने गौतम पत्नी अहिल्या को छला था, रावण ने सीता का अपहरण किया था । अज्ञातवास के समय पाण्डवों के साथ द्रौपदी विराट् के यहां सैरन्ध्री के रूप में थी । कीचक ने उसपर कुदृष्टि डाली थी । बालि ने अनुज वधू को ही अपनी रखैल बना लिया था और भस्मासुर पार्वती पर ही आसक्त हो गया था । इन सभी को जो भुगतना पड़ा उसकी ओर संकेत कर स्वामी जी ने जहां एक ओर जनमानस को परनारी के प्रति कुभाव न रखने का संदेश दिया है वहीं उन्होंने रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसंगों की याद भी दिलायी है । रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसंगों की चर्चा स्वामी जी ने अपने ग्रंथ 'नाम-प्रताप' में की है । इन प्रसंगों की चर्चा स्वामी जी ने अन्य ग्रंथों में भी यथास्थान की है । ऐसा लगता है कि ये सन्दर्भ स्वामी जी को बड़े प्रिय थे --

१- ध्रुव प्रसंग

'रामनाम ध्रुव ध्यान लगावै ।
बसि वैकुण्ठ बहुरि नहिं आवै ।
रामभक्त छूटा भव कर्मा ।
चन्द्ररु सूर दैय परिकर्मा ।"[२]

अंतिम पंक्ति में ध्रुव के अटल होने का संकेत कवि ने दिया है ।

---

१- अ० वा०, पृ० १९६ ।

२- वही, पृ० २०३ ।

२- प्रह्लाद प्रसंग

"राम राम प्रह्लाद पुकार्यो ।
ताको पिता बहुत पचि हार्यो ।
संकट सह्यो परा राम न छांड्यो ।
रामभरोसे भरण हि मांड्यो ।
अनिधार पर्वत सूं राख्यो ।
विष सर्प गज परिहरि नाख्यो ।
अंधकूप मैं राम बचायो ।
जन को जश हरि जग दिखरायो ।
कोप्यो असुर खड्ग लियो कर मैं ।
जन के हित प्रगट्यो हरि खंभ मे ।
मार्यो असुर भक्ति विस्तारी ।
जन प्रह्लाद की मीच निवारी ।"[1]

'कुण्डल्या जिज्ञासी को अंग' में स्वामी रामचरण सप्तम स्कंध भागवत में रामधन के संदर्भ में प्रह्लाद के कथन को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं --

"सेवाकरि फल बंछवैं सो सब भाड़ैती जांन ।
करत मजूरी मांग ले तब दाम घणा की श्रांन ।
तब दाम घणा की श्रांन मान यूं हिरदै धारी ।
स्कंध सातवां मांहि भाखि प्रह्लाद बिचारी ।
रामचरण कुछ आश धरि सुसरप नहीं पिछांन ।
सेवा करि फल बंछवैं सो सब भाड़ैती जान ।"[2]

इसी प्रसंग में होलिकादहन की चर्चा भी अनपेक्षित न होगी --

"राम राम प्रह्लाद उचारै, होरी जर भई छारा हो ।
जै जैकार भयो हरिजन कै रामविमुख मुखकारा हो ।"[3]

---

१- अ० वा०, पृ० २०३ ।

२- वही, पृ० ९१८ ।

३- वही, पृ० १००० ।

३- अजामिल प्रसंग

"निज अजामेल मद माँस अहारी ।
गणिका रति विषय अति भारी ।
कर्म करत तृष्णी नहि भयी ।
विषय संग आयु क्षीण ह्वै गयौ ।
अन्त समय जमदूतन घेर्यो ।
रामनरायण सुत को टेर्यो ।
जमदूतन सूं लियो छुड़ाई ।
आपणो जाण रु हरी सहाइ ।"[१]

४- गणिका प्रसंग

"गणिका एक गरक कर्मन में ।
हरि की शंक कछु नहि मन में ।
जाकूं संता सैन बतायौ ।
राम राम कहि कीर पढ़ायो ।
सुवा पढ़त विषया भूली ।
रामप्रताप सुख सागर झूली ।"[२]

५- वाल्मीकि प्रसंग

"वाल्मीकि बहु जीव सताया ।
जीव शीव का भेद न पाया ।
संतां शब्द मरा कहि भाख्यो ।
गहि विश्वास ह्रदय धरि राख्यो ।
सीधे शब्द उलटि भये रामा ।
वाल्मीकि का सरिया कामा ।
शत कोटी रामायण गाई ।
रामप्रताप असो है भाई ।"[३]

६- गजग्राह प्रसंग

"गहि गज ग्राह समंद में घेर्यो ।
राम राम ऊँचे स्वर टेर्यो ।

---

१- अ०वा०, पृ० २०४ ।
२- वही, पृ० २०४ ।
३- वही ।

राम रटत छुट्यां मन फंदा ।
मुक्त भयो तत्काल गयंदा ।"[1]

७- राजा परीक्षित प्रसंग

"नरप परीक्षित भयो परायण ।
शुकदेव सूं शब्द पिछायण ।
राम राम दिन रात पढायो ।
तजि नरलोक परमपद पायो ।"[2]

८- हनुमान प्रसंग

"हनूमान अंजनि को पूता ।
रामचन्द्र को कहिये दूता ।"[3]

९- अंबरीष-दुर्वासा प्रसंग

भक्ति महिमा के प्रसंग में अंबरीष पर दुर्वासा के क्रोधित होने की चर्चा स्वामी जी ने की है । उन्होंने यही प्रसंग उद्धृत कर बतलाया है कि भगवान का भक्त ही बड़ा होता है, चाहे विप्र हो या शूद्र --

"अंबरीष पर कोप करा दुर्वासा कीयो ।
द्वादश क्रोड़ पिसाच नगर जिन जश लीयो ।
राम भजै तेही बड़ा आदि विप्र कहा शूद्र ।
भक्ति बिना कुल उत्तम को आपो सबै चूर ।"[4]

१०-भरथरी-गोरख प्रसंग

"भरथरि कूं गोरख मिल्या, मोह मेट दिया ज्ञान ।
रामचरण ऐसा गुरु, करै तुरत कल्यान ।
गोरख जिरणा गुरु मिले, भरथरि जा सिख होय ।
रामचरण ऐसा बिना, ज्ञान काफी मति कोय ।"[5]

---

१-अ० वा०, पृ० २०४ ।
२- वही, पृ० २०५ ।
३- वही, पृ० २०४ ।
४- वही, पृ० ११६ ।
५- वही, पृ० ४० ।

११- रामानन्द-कबीर प्रसंग

रामानन्द जी कबीर के गुरु थे, यहां यह भी स्पष्ट होता है --

"मिलिया दास कबीर कूं, सतगुरु रामानन्द ।
चरण परस निर्भै भया, छूट गया दुख द्वन्द ।
परे हुते जो पंथ में, दास कबीरा आप ।
रामानंद की लात सूं मिट गयी तीनूं ताप ।"[1]

१२- सिकंदर लोदी-कबीर प्रसंग

"काशी में एक कबीर भयो जुलाहा घर आप प्रवेश कियो है ।
छांडि दियो सबही कुल को धर्म रामनिरंजन सोधि लियो है ।
शाह सिकंदर ताप दई तब पुरण कुल में प्राण दियो है ।
रामचरण्ण थे संत न सुभ्त ता नर को धिरकार जियो है ।"[2]

स्वामी जी ने सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को कष्ट दिये जाने की चर्चा अपने साहित्य में एकाधिक बार की है । इससे यह भ्रम तो दूर हो ही जाता है कि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन नहीं थे । फिर कबीर काशी में हुए थे, यह भी स्पष्ट समझने की गुंजाइश यहां स्वामी जी कर देते हैं ।

१३- दादू प्रसंग

स्वामी रामचरण ने संत कवि दादू का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया है । 'नाम प्रताप' में उन्हें नीच कुलोद्भव बतलाया है और रामस्मरण द्वारा उनके ऊंचे पद पर पहुंचने की बात भी कही है --

"दादू दास जन्म कुल नीचै ।
रामरटत पहुंच्यो पद ऊंचै ।
नीच ऊंच कुल भेद बिचारै ।
सो तो जन्म आपणों हारै ।"[3]

दादू के साथ स्वामी जी ने रज्जब की आदर्श शिष्य के रूप में चर्चा की है --

"दादू सिरषा गुरु मिले, शिष रज्जब सही जांण ।
एक शब्द में सुलझिया, फिर रही न ऐंचाताण ।"[4]

---

१- अ० वा०, पृ० ४० ।
२- वही, पृ० ८६ ।
३- वही, पृ० २०५ ।
४- वही, पृ० ४० ।

१४- नगर बलख का मीर

नगर बलख के मीर की चर्चा स्वामी जी ने अपने काव्यमें कई स्थानों पर की है। गुरु गोरखनाथ के प्रभाव में आकर इस मीर ने राजपाट छोड़ दिया था --

"मोला से छुमी तजी नगर बलख के मीर ।
गैवर ऊंट अरल्ला उमरावा की भीर ।
उमरावां की भीर खीर घृतपाक रसोई ।
माल मुलक सुख आपा त्याग जोगेश्वर होई ।
रामचरण जग जाल का जानि मझार जंजीर ।
मोला से छुमी तजी नगर बलख के मीर ।
नगर बलख का मीर कूं मिलिया गोरखनाथ ।
भवसागर में बूड़तां गहकर आह्या हाथ ।
गहकर आह्या हाथ जोग के मारग लाया ।
हिरदा का पट खोल नाम का भेद बताया ।
~~[illegible]~~
रामचरण पूरा पर्श भरि आद की बाथ ।
नगर बलख का मीर कूं मिलिया गोरखनाथ ।"[1]

१५- जंगड़-जाट प्रसंग

स्वामी जी ने इस जाट की चर्चा की है। इसे भी गोरखनाथ का शिष्य कहा गया है जिसे चौथे जन्म में मुक्ति मिली --

"मिलिया जंगड़ जाट कूं साधु गोरखनाथ ।
रामचरण चौथे जन्म, गहकर आह्यो हाथ ।"[2]

यहां स्वामी रामचरण के काव्य में वर्णित कतिपय प्रमुख संदर्भों की चर्चा हुई है। किन्तु ये केवल कुछ प्रसंग हैं। इस विशाल साहित्य में ऐसे अनेक प्रसंग आए हैं जिन्हें अलग लेखन के लिए चुना जा सकता है। स्वामी जी की इन विभिन्न प्रसंगों में गहरी पैठ देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे एक जिज्ञासु संत थे

---

१- अ० वा०, पृ० १५६ ।
२- वही, पृ० ३७ ।

और उनकी साधु समाज तथा लोकजीवन में अच्छी पैठ थी। यहाँ 'गाला का पद' से एक पद उद्धृत है जिसमें अनेक देवी-देवताओं, भक्तों और आचार्यों का नाम स्वामी जी ने बड़ी श्रद्धा से साथ लिया है --

"भइया ऐसो नगर मैं वांहि नांहि ।
जा ते अनंत कोटि जन बसैं मांहि ।
जहां शिवसनकादिक शेष साध, मुनि नारदशारद ध्रुव प्रह्लाद ।
कमला उमा हनुमान, जहां नेति नेति कहै निगम नाम ।
जहां कपिलदेव अरु भरत साय, तहां नवजोगेश्वर जनक राय ।
अपिलदेव अरु बाल्मीकि, जहां ध्यान धरै शुक अंबरीष ।
जहां रामानंद नीमानंद साम, तहां माधवाचार्ज विष्णुश्याम ।
और शिष्य लिया संग साथ, इन च्यारन पकड्यो सबको हाथ ।
जहां गोरखभरथरिगोपीचंद, तहां नानक फरिदंरजरु बाजिंद ।
महमद दादू कबीर निवास, जहां भक्ति एकादश हरिदास ।
अस्य अकल गिणती न आय, या पदकी महिमा कही न जाय ।
जाम पूरि भरपूरि वास, जहां घरघर आनंद सुख विलास ।
जहां सब संतन की पाय शील, चरणांजल रज मुं गयी है मील ।
मैं संतदास की पनहं दास, राखी रामचरण कूं चरणापास ।"[१]

--०--

---

१- अ० वा०, पृ० ६६६ ।

# अष्टम अध्याय

## अभिव्यक्ति पक्ष

# अष्टम अध्याय

## काव्यत्व : अभिव्यक्तिपक्ष

" कलात्मक कौशल की दृष्टि से संत-साहित्य का परिशीलन करने वालों को प्राय: निराश ही होना पड़ेगा । रचना की काव्यमयता की ओर इन संतों का ध्यान नहीं था । वे अपनी अनुभूतियों का दान मानव समाज को देना चाहते थे और वह भी केवल इसलिए कि बिना ऐसा किये उनकी कल्याणकारिणी प्रवृत्ति को परितोष नहीं होता था । "[१] डाक्टर प्रेमनारायण शुक्ल के इस कथन से पूर्णतया सहमत होते हुए निवेदन है कि संतों ने काव्य-सृजन करते समय काव्य-कौशल को कोई महत्व नहीं दिया। विचारगत अनुभूतियों का प्रकाशन ही उनका लक्ष्य था । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन लोगों ने कविता को अच्छा माध्यम समझा । ऐसा करते समय उनका ध्यान काव्य के कलापक्ष पर नहीं जा सका जो स्वाभाविक भी लगता है । बात यह है कि अनुभूति-वादी संतों को काव्य की शास्त्रीयता से कोई मतलब नहीं था । उन लोगों ने अपने विचारों की बोधगम्य अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों, प्रतीकों आदि का विधान किया और प्रचलित छंदों एवं रागों में अपनी वाणी को बांधकर उसे जनोपयोगी बनाया । संत पर्यटनशील प्राणी होते थे । अत: उनकी वाणी में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं, आंचलिक बोलियों और विदेशी मूल के शब्द मिल जाते हैं । संतों ने भाषा में शब्दों की तत्समता के लिए आग्रह नहीं किया । सुगमतम शैली में वे समाज को अपना संदेश देने के पक्षपाती थे । स्वामी रामचरण भी कबीर आदि संत कवियों की परम्परा के अनुगामी थे । उन्होंने भी भावाभिव्यक्ति के लिए शास्त्रीयता का आग्रह नहीं किया प्रत्युत लोकजीवन में समरस भाषा में अपनी अनुभूति समाज को देते रहे । ऐसा करते समय उन्हें कतिपय अलंकारों, प्रतीकों आदि का सहारा लेना पड़ा है और विभिन्न छन्दों तथा रागों की योजना भी करनी पड़ी है । यहां इन्हीं प्रकरणों का निरूपण हमारा अभीष्ट है ।

---

१- डा० प्रेमनारायण शुक्ल : संत-साहित्य, पृ० ४७ ।

अलंकार विधान

"संतों के काव्य को कृत्रिम अलंकरण की आवश्यकता कभी अनुभव नहीं हुई, लेकिन कहीं-कहीं अलंकार अनायास ही उनकी वाणी से अलंकृत होकर गौरवान्वित होते चले आए।"[1] अलंकार विधान की दृष्टि से जब हम स्वामी रामचरण के काव्य पर विचार करते हैं तो उद्धृत वाक्य के विचारों से पूर्णतया सहमत होना पड़ता है। स्वामी जी ने अपनी अनुभव वाणी को व्यक्त करने में कहीं कहीं अलंकारों को सचमुच गौरव ही दिया है। यहां अलंकार विधान की दृष्टि से स्वामी जी के काव्य पर संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

यों तो हिन्दी साहित्य में अलंकार अगणित हैं, पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, विशेषोक्ति, उदाहरण, लोकोक्ति आदि अर्थालंकार और अनुप्रास, यमक आदि कतिपय प्रमुख शब्दालंकार हैं। स्वामी जी के काव्य में भी ये सभी अलंकार अपनी स्वाभाविक गति से शोभित हुए हैं। नीचे हम स्वामी जी के वृहद् काव्य-भण्डार से कतिपय प्रमुख अलंकारों के उदाहरण उद्धृत करेंगे।

अनुप्रास

अनुप्रास अलंकार में वर्णों की आवृत्ति होती है जिसके कारण काव्य-पंक्ति श्रवण सुखद हो जाती है --

"नाड़ि नाड़ि में चले गिलगिली।
सुखधारा अति बहे झिलमिली।"[2]
... ... ...
"घरर घरर अनहद घररावै।
परम ज्योति दामिनि झलकावै।"[3]
... ... ...

---

१- सं० पं० परशुराम चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ० ५२२ (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

२- अ० वा०, पृ० २०६।

३- वही, पृ० २०७।

"करुणामय करतार करम सब दूरि निवारैं ।
भक्त बिछलता बिरद भक्त तत्काल उधारैं ।"[१]

यमक

भिन्न अर्थवाची वर्णों या निरर्थक वर्णों की आवृत्ति में यमक अलंकार होता है ।[२] शब्द की आवृत्ति में अर्थ भिन्नता से काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है --

"जल बरख्यौ भीजै नहीं नहि दामनि सूं जल जांहि ।
नहिं गर्जे सैं थर्सै यम्मर तै नभ मांहि ।"[३]

यहाँ पहले 'जल' का अर्थ पानी और दूसरे का अर्थ जलना है --

"बधती बधती जाय मेघ जल वर्षा बुझावै ।
यूंही तृष्णा ताप राम संतोष मिटावै ।"

उपर्युक्त में 'बधती' का अर्थ अग्नि और दूसरे 'बधती' का अर्थ बढ़ना है ।

पुनरुक्ति प्रकाश

सौन्दर्य वृद्धि के लिए जब काव्य में किसी एक ही शब्द की उसी अर्थ में आवृत्ति होती है तब पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार होता है । यह अलंकार स्वामी जी के काव्य में जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होता है ।

"रोम रोम में होय रही, ररंकार गुणकार ।
रामचरण अचिर्ये कहा, यौ अद्भुत सुख अपार[४]।"

... ... ... ...

"रामचरण बिभचारिणी, जन्म जन्म होय खवार
पतिबरता की पति सूं मिलै, मिलसैं सुक्ख अपार[५]।"

... ... ... ...

"पतिबरता की पीव के, दिन दिन आदर मांन ।
रामचरण बिभचारिणी, निकट न पावै जान[६]।"

---

१- अ० वा०, पृ० ३ ।
२- "वहै शब्द फिरि फिरि परै अर्थ और ही और"
३- अ० वा०, पृ० ३५२ ।
४- वही, पृ० १४ ।
५- वही, पृ० १५ ।

"पात पात पुरुषोत्तम व्यापक, ताकूं तोड़ मतावै ।
माटी का महादेव बणावै, जापर ल्याय चढ़ावै ।"

उपर्युक्त उद्धरणों में रोम रोम, जन्म जन्म, दिन दिन, और पात पात में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है ।

उपमा

साहित्य का सर्वाधिक प्रिय अलंकार जिसमें किसी वस्तु का वर्णन करके उसकी तुलना किसी समान धर्मा उपमान से की जाती है --

"सतगुरु बरसै मेघ ज्यूं, शिख जिग्यासी होय ।
रामचरण तन नीपजै, निरफल जाय न सोय ।"[१]

इसमें सतगुरु की उपमा मेघ से दी गई है ।

रूपक

उपमेय में उपमान के निषेधरहित आरोपण को रूपक कहते हैं । स्वामीजी के काव्य में रूपक अलंकार की छटा खूब देखने को मिलती है --

"सतसंग सरवर रामजल, कोइ साध बांधे घाट ।
करम कलोई आत्मा, बहुतीरोकै बाट ।"[२]

... ... ... ...

"रामचरण बिरहा भवंग, डस्यो कलेजो आय ।
राम गारडू बिण हरै, जे कोइ देय मिलाय ।"[३]

... ... ... ...

"प्रेम माल भीतर धुवी, बाहर दीसै नांहि ।
रामचरण अपकल रहै, निशिवासर उर मांहि ।"[४]

उपर्युक्त उद्धरणों में सत्संग को सरोवर, राम को जल, विरहा को भुजंग, राम को गारडू (विष वैद्य) का रूप दिया गया है । रूपक के अनेक उदाहरण स्वामी रामचरण के काव्य से संचित किये जा सकते हैं ।

---

१- अ०वा०, पृ० ४ ।
२- वही, पृ० ११ ।
३- वही, पृ० १० ।
४- वही, पृ० ११ ।

विभावना

जहां कारण के बिना ही कार्य हो जाय वहां विभावना अलंकार होता है --

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर ।
बिन श्रवणां अनहद सुणी, जहां ब्रह्मसभा भरपूर ।"
जहां ब्रह्मसभा भरपूर और कोइ निजर न आवै ।
सुरति रही मठ छाय देह तहां जांण न पावै ।
रामचरण वा देश में, बहु परकाशै नूर ।
बिन रसना गुण गाइये, बिन कर बाजे तूर ।"[1]

रेखांकित में विभावना अलंकार है ।

विशेषोक्ति

कारण रहते जहां कार्य न हो सके वहां विशेषोक्ति अलंकार होता है --

"सहंस सूर शशि को उदय कियो न होय उजास ।
सतगुरु ज्ञान उद्योत में किंचिय होत प्रकास ।
किंचिय होत प्रकास सभी अंधियारो भागै ।
स्वप्नावत संसार जाबा जोवत सो जागै ।
परख भजे परमातमा रहै न मैली आस ।
सहंस सूर शशि को उदय कियो न होय उजास ।"[2]

लोकोक्ति

काव्य में लोकप्रसिद्ध कहावत के प्रयोग में लोकोक्ति अलंकार होता है । संतकाव्य में लोकोक्ति अलंकार का प्राधान्य है --

"ज्ञान बिनै कूं साधता मुक्ति न पावै कोय ।
जो सींचे पेड़ बबूल का, तो आम कहां सूं होय ।"[3]

उदाहरण

साधारण रूप से कही गई बात की ज्यों, जैसे आदि वाचक शब्दों द्वारा जब किसी अन्य बात से समता की जाती है तब उदाहरण अलंकार होता है ।

---

१- अ० वा०, पृ० १४१ ।
२- वही, पृ० २११ ।
३- वही, पृ० ७४५ ।

"कपटी की किरपा बुरी, जैसे बीज बबूल ।
ऊपर सूं अति सुलसुली अंतर भरीज सूल ।"[१]
... ... ...
"आशी भया कबीर जी, ज्यूं ही भया बांतड़े संत ।
भवसागर की धार सैं, ज्यां तार्‍या जीव अनन्त ।"[२]
... ... ... ...
"प्रेम लहरि ऐसी बहै जैसे सिन्धु तरंग ।"[३]

उदाहरण माला

साधारण रूप से कही गई बात की समता के लिए जब एक से अधिक उदाहरण दिये जाते हैं तब उदाहरणमाला अलंकार होता है। 'विरह को अंग' की निम्नलिखित साखी इस अलंकार के उदाहरण रूप में प्रस्तुत है --

"ज्यूं चात्रग घन कू जपै, शशि कूं जप चकोर ।
रामचरण रामै जपै, ज्यों पंथी भोर ।"[४]

उल्लेख

जब किसी वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है। तब उल्लेख अलंकार होता है। 'रामरसायण बोध' से निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें गुरु का वर्णन अनेक रूपों में कवि ने किया है --

"गुरुपारख सोही गुरु गुणातीत गंभीर ।
आदीत जैसा परकाशवत् निर्मल जैसा नीर ।
निर्मल जैसा नीर धीर धर शांति शशी है ।
रामनाम दातार गुरु गति जान रुपी है ।
रामचरण ये लक्षणा जो मेरे सिर पीर ।
गुरुपारख सो ही गुरु गुणातीत गम्भीर ।"[५]

---

१- अ० वा०, पृ० ३८४ ।
२- वही, पृ० ८५६ ।
३- वही, पृ० १२ ।
४- वही, पृ० १० ।
५- वही, पृ० ६३४ ।

दृष्टान्त

जहां उपमेय और उपमान के साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से कथन हो, वहां दृष्टान्त अलंकार होता है --

"नानगन्ध महाबहेड जब मुख को कहा करै सतसंग ।
रामचरण कर दीप ने परै कुम मति अंग ।"[१]

अतिशयोक्ति

किसी वस्तु के वर्णन की अतिशयता जब लोकसीमा का उल्लंघन कर जाती है तब अतिशयोक्ति अलंकार की पुष्टि होती है --

"राम तुमारे नाम को कौन करै परमान ।
होय यक्ष जिह्वा रटै तोहि शेष न पावै मयान ।
तोहि शेष न पावै मयान जहां नर की कहा ताकति ।
गिण्या न आवै पार होय रहै नित शरणागति ।
तुम तो समर्थ नाथ जी मैं अनाथ किन जान ।
राम तुमारे नाम को कौन करै परमान ।[२]

विनोक्ति

जहां 'बिना', 'रहित' आदि शब्दों की सहायता से एक के बिना दूसरे को शोभित अथवा अशोभित कहा जाता है, वहां विनोक्ति अलंकार कहा होता है --

"राम बिना बेहाल चैन कहुं पावै नांही ।"[३]

यहां 'बिना' के सहारे चन को अशोभित किया गया है ।

दूसरा उदाहरण -- "जन बिन रवि भागै नहीं, यूं भजन बिना नहि शीव ।"[४]

अन्योक्ति

जहां अप्रस्तुत (उपमान) के द्वारा प्रस्तुत (उपमेय) का वर्णन किया जाता है वहां अन्योक्ति अलंकार होता है --

"काग उड़या बुगला बस्या, तरुवर भया दुरंग ।
जो माली मूल धपाय दे, तो कूंपल आम सुरंग ।"[५]

---

१- अ० वा०, पृ० ११२ ।

२- वही, पृ० २३८ ।

३- वही, पृ० २४४ ।

४- वही, पृ० ८ ।

५- वही, पृ० १९१७ ।

अर्थान्तरन्यास

जहाँ विशेष से सामान्य का या सामान्य से विशेष का समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यथा --

"पतिव्रत को व्रत हरत कहो कुणी सुख पायो।
हरणाकशिप दशकंध मंदमति नाश गुमायो।
तपरासुर भये भस्म चाहि शिव की अर्धंगा।
विष्णु पथर तन तज्यो व्रत वृन्दा को भंगा।
द्रोपदि को पट पाणि गहि दु:शासन नास्यौ गये।
रामचरण इतिहास दे पतिव्रत खंड ऐसे भये।"[1]

इस काव्य खण्ड में स्वामी जी ने 'पतिव्रत-हरण से किसी को सुख नहीं मिलता' यह एक सामान्य बात कहकर उसका समर्थन पांच विशेष बातों से करते हैं, अत: यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार हुआ।

तद्गुण

जहाँ कोई वस्तु अपना गुण त्याग कर अपने समीपवर्ती का गुण ग्रहण कर लेती है वहाँ तद्गुण अलंकार होता है। यथा --

"रामचरण बहती नदी सागर पहुँची जाय।
नहचल संग नहचल भई, चंचल गई बिलाय।"[2]

नदी चंचल होती है और सागर निश्चल। नदी सागर के पास पहुँचकर अपना गुण चंचलता छोड़कर सागर का गुण निश्चलता ग्रहण कर लेती है। तद्गुण अलंकार का यह बड़ा सुंदर उदाहरण स्वामी जी ने दिया है।

अतद्गुण

जब कोई पदार्थ अन्य समीपस्थ पदार्थ के गुण नहीं ग्रहण करता तो अतद्-गुण अलंकार होता है। स्वामी जी की निम्नलिखित पंक्तियों में अतद्गुण अलंकार के लक्षण विद्यमान हैं --

"भवंग टिपारी सेइये तोहि मिटै नहीं निज बांण।
क पय पावै शत वर्ष लूं विष की होय न हांण।"[3]

... ... ... ...

---

१- अ० वा०, पृ० १०८।

२- वही।

३- वही, पृ० ७३।

श्वान पूंछ बारा वर्ष गड़ी रहै भू मांहि ।
तौ भी मिटै न बांक बल मूर्ख होयज नांहि ।"[1]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में अतद्गुण अलंकार के दर्शन होते हैं । यदि सर्प को शत वर्ष दूध पिलाया जाय पर उसका विष नहीं मिटता, कुत्ते की पूंछ बारह वर्ष भूमि में गाड़ कर सीधी की जाय पर उसका टेढ़ापन नहीं मिटता ।

मानवीकरण
---------
भावनाओं अथवा वस्तु में जब मानव गुणों का आरोप किया जाता है तब मानवीकरण अलंकार होता है । नीचे की पंक्तियों में विरहभाव का मानवीकरण स्वामी जी ने किया है --

"बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है ।
जीवन सुणी पुकार कि किवरा फाटि है ।
पसै बटाऊ लोग न पूछै पीड़ दै ।
परिहां रामचरण बिन राम करै कुंण पीड़ दै ।[2]

रूपकातिशयोक्ति
---------------
जब उपमेय और उपमान इतना अभेद हो जाता है कि उपमेय का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है, केवल उपमान से ही उपमेय जान लिया जाता है तब रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है । यह स्वामी जी का बड़ा प्रिय अलंकार है । 'दृष्टान्त सागर' में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं --

"गज मृग कीर कपोत कंब, केहरि कोयल सात ।
इन मिल कदली बास करी, जोधबोध भखि जात ।"[3]

यहां नारी शरीर के रूप में कदली (केला) है । इस केला पर सात जीवों का वास है । ये सातों नारी के विभिन्न अंगों के उपमान रूप में चित्रित हैं । गज - जंघा, मृग-नयन, कीर - नाक, कपोत - ग्रीवा, कंब - चाल, केहरि - कमर, कोयल - वचन । ये सातों मिलकर योद्धा अर्थात् शूर (पंडित) का बोध (ज्ञान) खा जाती हैं । इन अलंकारों के अतिरिक्त और भी अनेक अलंकार स्वामी जी के काव्य में पाये जाते हैं ।

---

१- अ० वा०, पृ० १६४ ।
२- वही, पृ० ७७ ।
३- वही, पृ० १०१८ ।

## प्रतीक विधान

'प्रतीक' का अर्थ है चिह्न । पं० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा प्रतीक की व्याख्या में लिखी गयीं पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं --"प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इंगित करने वाला न तो संकेत मात्र है, न उसका स्मरण दिलाने वाला ही कोई चित्र वा प्रतिरूप ही है । यह उसका एक जीता-जागता तथा पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है जिसके कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्याज से उसके उपर्युक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है ।...... इनकी सहायता बहुधा ऐसे अवसरों पर ली जाती है जब हमारी भाषा पंगु और अशक्त सी बनकर मौन धारण करने लगती है और हम जब अनुभवकर्ता के विविध भाव-शिला से चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतों की भाँति फूट निकलने के लिए मचलने से लग जाते हैं । ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए उनके साम्य की खोज अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों में करने लगते हैं और जिस किसी को उपयुक्त पाते हैं उसका प्रयोगकर उसके मार्ग द्वारा अपनी भावधाराओं को प्रवाहित कर देते हैं ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रतीकों का विधान भावों के प्रकाशन के लिए होता है । विशेषतः ऐसे भावों के प्रकाशनार्थ जिन्हें हम भाषा की अभिधा या लक्षणा शैलियों में भी नहीं व्यक्त कर पाते । ऐसी स्थिति में प्रतीक हमारी भाव-धारा को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । साहित्य में प्रतीकों के माध्यमसे भावाभिव्यक्ति की परंपरा पुरानी है । 'उपनिषदों में अनेक गाथायें पूर्णतः प्रतीक पर आश्रित हैं ।'[2] हिन्दी भक्ति-साहित्य में प्रतीकों का अच्छा विधान हुआ है, विशेष रूप से निर्गुण साधक संत कवियों ने अपनी आध्यात्मिक भावधारा की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक शैली का अवलंबन किया है । ये प्रतीक हमारे जीवन के नाना व्यापारों एवं प्रकृति के अनेक रूपों से ग्रहण किये गये हैं ।

स्वामी रामचरण भावाभिव्यक्तिके लिए प्रतीक शैली का अवलंबन करने वाले निर्गुण साधक संत कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । कबीर दादू आदि संतकवियों

---

१- पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख,(तृतीय संस्करण),पृ० १४६-४७ ।

२- डा० प्रेमनारायण शुक्ल : संत-साहित्य, पृ० ८४ ।

द्वारा अपनायी गयी प्रतीक शैली का विकास स्वामी जी के काव्य-भण्डार में भरा हुआ दृष्टिगत होता है। यों तो स्वामी जी के इस विशाल साहित्य-भण्डार में स्थान-स्थान पर इस शैली में भावाभिव्यक्ति मिलती है, पर `नासा का पद`, `दृष्टान्त सागर` एवं `परचा` अंगों में प्रतीकों की अच्छी योजना दृष्टिगत होती है। स्वामी जी ने अपने भावप्रकाशन के लिए दाम्पत्य भाव, दास्य भाव और कहीं कहीं सख्य भाव के प्रतीकों का भी सहारा लिया है। प्रकृति मानव जीवन की सहचरी है। प्रकृति के नाना दृश्यों को भी प्रतीक विधान के लिए उन्होंने अपनाया है। संख्या-वाची एवं पारिभाषिक प्रतीकों का भी यथास्थान ग्रहण हुआ है। यहां स्वामी रामचरण द्वारा उनके काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों की संक्षिप्त समीक्षा हमारा उद्देश्य है।

दाम्पत्य प्रतीक
-----------
स्वामी रामचरण की रचनाओं में दाम्पत्य भाव के प्रतीक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इन प्रतीकों के सृजन में उन्हें विशेष सफलता मिली है। इन दाम्पत्य प्रतीकों में संयोग और वियोग दोनों पक्षों के प्रतीकों का विधान स्वामी जी ने किया है। जीव और ब्रह्म के मिलन और विछोह की अत्यन्त मार्मिक स्थितियों को लेकर प्रतीकों के सहारे आध्यात्मिक श्रृंगार के वर्णन में कवि अद्वितीय हो गया है।

संयोग पक्ष -- संयोग पक्ष में स्वामी रामचरण ने आत्मा-परमात्मा या जीव-ब्रह्म के मिलने के बड़े ही भावमय और मादक चित्र निर्मित किये हैं। `परचा को अंग` में प्रतीकात्मक पति-पत्नी के प्रतीक द्वारा संयोग की बड़ी मर्मस्पर्शी व्यंजना हुई है। सुरति शब्द के ब्याह का यह चित्र ध्यान देने योग्य है --

"सांसी रही सुरति में कहा मिलेंगे राम।
सुरति ब्याह कै ले गया, शब्द आपणे धाम।"[1]

प्रियतम का स्पर्श कर सुरति प्रियतममय हो गई जो पाला गल कर नीर में मिल जाता है। अद्वैत का यह भाव निम्नलिखित पंक्तियों में है --

---

१- अ०वा०, पृ० १४।

"रामचरण पिव परसि कै, सुरति भई गलतान ।
जो पाला नीर मैं, गलि कै भया समान ।"[1]

पीव की पहचान उसे काया नगरी में ही हो जाती है --

"पीव पिछाण्या हे सखी, काया नगरी मांहि ।
रामचरण गाढ़ा गह्या, बाहर भरमैं नांहि ।[2]

संयोगात्मक प्रतीक के श्रेष्ठतम उदाहरण 'वाणी का पद' में संगृहीत हैं । मैं ऐसे एक पद प्रस्तुत है जिसमें प्रियतम प्रियतमा के महल में पधार रहा है । प्रियतमा हर्षित है उसके साहब ने उसकी पुकार जो सुन ली है । वह प्रेममय हो रही है, चारों तरफ प्रेम ही प्रेम छाया है, वह महल में प्रेम का दीपक जलाकर प्रीति का पलंग बिछायेगी और शील से शृंगार कर अंग से अंग लगाकर प्रियतम का स्पर्श करेगी । बहुत दिनों के बाद प्रिय-मिलन हो रहा है अतः वह उसे 'पलक 'पाव पलक' भी ढीला छोड़ने को तैयार नहीं है --

"मेरे महल पधार्या प्रीतमा हो ।
सखीरी मेरे साहिब सुनी है पुकार ।
... ... ...
प्रेम का दीपक जोग मंदिर में,
प्रीति का पिलंग बिछाय ।
शील शृंगार साज पिव परसूं,
अंग सूं अंग लगाय ।
... ... ...
बहुत दिना मैं प्रीतम पाया,
सर्या छ मनोरथ काम ।
पावपलक ढीला नहिं छाडूं ।
घर आया केवल राम ।"[3]

वह अपने रूठे प्रियतम को रिझाकर मना लेगी । नाटक और संगीत के राग का प्रतीक तो प्रस्तुत है ही, शील, संतोष, दया के गहने से सजकर प्रियतम का हृदय जीत

---

१- अ०वा०, पृ० १४ ३- वही, पृ० ९९९-१००० ।
२- वही, पृ० १३ ।

शैली --

"रूठा राम रिफाय मनाऊं, निशिवासर गुण गाऊं हो ।
नटवा ज्यूं नाटक करि मोहूं, सिन्धु राग सुणाऊं हो ।
शील संतोष क्षमा आभूषण, सम्या भाव बधाऊं हो ।
सुरति निरति सांई में राखूं, आन दिशा नहिं जाऊं हो ।"[1]

और यहीं `फाग` का भी एक प्रतीक प्रस्तुत है जिसमें ररंकार पति और सुरति सुंदरी स्वामी की सुखानुभूति करते हुए होली खेलन खेलने में रत है --

"ररंकार पति सुरति सुंदरी ।
अशी पशी रमैं होरी हो ।
वर नहचल अविगत अविनाशी ।
सुंदरि नवल किशोरी हो ।"[2]

प्रिय के संग उसका यह फाग नित्य ही ऐसे ही चलता रहता है । कवि के शब्दों में रंगिक, प्रतीकों में यह संयोग सुख कितना मोहक बन पड़ा है ।

"पिया संग प्यारी, अब नित ही खेलत फाग ।
समता राम उचार सुहागणि, पिव सूं प्रीति बधावै ।
काम कपट पकड़ा करि न्यारा, आसपास गुण गावै ।
चित चंदन ममता शिल घिसके, पिव के अंग चढावै ।
चवैत मगन भई महासुंदरि, सांगोपांग लगावै ।
ज्ञान गुलाल अबीर अधै करि, भारी भरभरि ल्यावै ।
हंसि हंसि हर्ष हर्ष पति सनमुख, प्रेमसहित परचावै ।
कंत कामना के सर मारी, लाकी अंग कढ़ावै ।
पांचु ठांम रंगे रंग भीनी, दूजो रंग न आवै ।
तन मन अर्प मिली पिव पतनी, न्यारी नैक न जावै ।
रामचरण शरणै सुख पायो, ताकी अकत न आवै ।"[3]

---

१- अ०वा०, पृ० १००१ ।
२- वही, पृ० १००१ ।
३- वही, पृ० १००८ ।

गैगी --

"इठा राम रिझाय मनाऊं, निशिबासर गुण गाऊं हो ।
नटवा ज्यूं नाटक करि मोहूं, सिन्धु राग सुणाऊं हो ।
शील संतोष दया आभूषण, सम्या भाव बधाऊं हो ।
सुरति निरति माहें मैं राखूं, आन दिशा नहिं जाऊं हो ।"[1]

और यहाँ `फाग` का भी एक प्रतीक प्रस्तुत है जिसमें ररंकार पति और सुरति सुंदरी स्त्री की सुखानुभूति करते हुए होली खेलने में रत है --

"ररंकार पति सुरति सुंदरी ।
जहाँ परी रमैं होरी हो ।
वर नहचल अविगत अविनाशी ।
सुंदरि नवल किशोरी हो ।"[2]

प्रिय के संग उसका यह फाग नित्य ही ऐसे ही चलता रहता है । कवि के शब्दों में देखिए, प्रतीकों में यह संयोग सुख कितना मोहक बन पड़ा है ।

"पिया संग प्यारी, यौं नित ही खेलत फाग ।
रसना राम उचार सुहागणि, पिव सूं प्रीति बधावै ।
काम कपट पड़दा करि न्यारा, अरसपरस गुण गावै ।
चित चंदन ममता शिल घिसकै, पिव के अंग चढावै ।
चवेत मगन भई महासुंदरि, सांगोपांग लगावै ।
ज्ञान गुलाल अबीर अधे करि, झोरी भरभरि ल्यावै ।
हंसि हंसि वर्षा वर्षा पति सनमुख, प्रेमसहित परचावै ।
कंत कामना के मर गारी, ताकौ अंग चढावै ।
पांचू ठांम रंगे रंग भीनी, दूजो रंग न भावै ।
तन मन अर्प मिली पिव पतनी, न्यारी नैक न जावै ।
रामचरण शरणै सुख पायो, ताकी कहत न आवै ।"[3]

---

१- अ०वा०, पृ० १००१ ।
२- वही, पृ० १००१ ।
३- वही, पृ० १००६ ।

संयोगात्मक प्रतीकों के विधान में स्वामी जी सचमुच अद्वितीय प्रतीत होते हैं। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। ऐसे अनेक संयोग प्रतीक स्वामी जी के काव्य में पाये जाते हैं।

<u>वियोग पक्ष</u> -- दाम्पत्य भाव की वियोगावस्था की तीव्र अनुभूति स्वामी रामचरण के काव्य में मिलती है। इस वियोगानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए स्वामी जी ने प्रतीकों का विधान किया है जिनमें से कुछ उदाहरणों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। प्रिय वियुक्ता विरहिणी प्रियतम राम के दीदार के लिए बेचैन हो उठी है। वह अपने साईं को दयासागर, निरधारों के आधार, जग जीवन, जगदीश आदि अनेक सगुण सम्बोधनों से पुकारती है। उसका प्रियतम अधम उधारण पतितपावन सब कुछ है, वह उसे इन सभी विरुदों की संभाल करने को कहती है। पर प्रियतम जब इन प्रशंसात्मक वचनों पर ध्यान नहीं देता तो वह अपनी दशा का वर्णन करने लगती है। वह कहती है कि सब सखियों की सेज 'सलूंणी' है, पर उसकी ही 'अलूंणी' है। प्रियतम ! एक नजर इधर भी देखो, अकेली न छोड़ो। राजा की रानी कहाँ जाय, दूसरे घर में उसका गुजारा भी तो नहीं हो सकता है। प्यारे ! तुमने मेरी बांह पकड़ी है, हृदय से लगाया है, अब मुझे छोड़ो नहीं। स्वामी ! प्रेमजल की वर्षा करके मेरा विरह शांत करो। माना तुम्हारे मेरी जैसी अनेक हैं पर तुम तो मेरे लिए एक ही हो, इसलिए वियोगिनी को व्याकुल न करो, इसका भार तुम्हारे ही कंधों पर है --

> "साँइ राम दया कर दर्शन दयो हो।
> दर्शन दो मेरा मन की पुरवो आश ।
> तुम हो दयाल दया के सागर, निरधारां आधार।
> जगजीवन जगदीश गुसाँई, सब विधि जाणनहार ।
> तुम रीझो तो हम नहिं साझ्यो, भई हैं दुहागणि नारि ।
> अधम उधार पतित के पावन, अपणो बिरद संभार ।
> और सखिन की सेझ सलूंणी, मेरी अलूंणी खाट ।
> नैक निहार निजर भर स्वामी, तजिये नहीं निराट ।
> भूपति नारि कहो कहाँ जावै, दूजे घर न समाय ।
> बांह पकड़ि छाड़ो मति सईयां, अपणी कर अंग लगाय।"

मेरी बिरह बुझाय गुसांई, बरसि प्रेमजल धार ।
बिरहनि कूं व्याकुल नहिं कीजे, बंध तुम्हारे भार ।
तुम्हरे हमसी नारि घणेरी, तुम बके हो हमारे एक ।
रामचरण कूं शरी रावरी, बकसीजे गुन्हा अनेक ।[1]

विरहिणी अपने प्रियतम 'रमइया' के दीदार के लिए अहर्निश जागती है, उसकी पलकें नहीं लगतीं । नयन दर्शन के लिए दुखी हैं, हृदय प्यार के लिए उमड़ रहा है, पता नहीं प्रियतम का प्रत्यक्ष होगा । उसकी दशा उस पपीहे सदृश हो गयी है जो स्वाति की एक बूंद पर आशा लगाये रहता है । यदि घन उसे निराश कर दे तो वह कैसे जीवित रहेगा । अतः कवि की विरहिणी अविलम्ब दर्शन देने के लिए प्रियतम से विनती करती है --

"रमइया मेरी पलक न लागे हो ।
दरस तुम्हारे कारणे, निशिबासर जागे हो ।
दशूं दिशा आतर करूं, तेरो पंथ निहारूं हो ।
रामराम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो ।
नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आशी हो ।
हिरदो हुलस हुलसै हेतकूं, हरि का परकाशी हो ।
स्वाति बूंद चातक रटै जल और न पीवै हो ।
घन आशा पुरै नहीं तो, कैसे जीवै हो ।
दास की अरदास सुणि, पिया दर्शण दीजै हो ।
रामचरण विरहनि कहै, अब विलम न कीजे हो ।"[2]

आगे स्वर में वह प्रियतम से 'महर' की याचना करती है --

"साइयां अरज हमारी हो ।
बिरहनि ऊपर कीजिये टुक महर तुम्हारी हो ।"[3]

---

१- अ०वा० पृ० ८६६ ।
२- वही, पृ० १००६ ।
३- वही ।

क्योंकि विरहाग्नि में उसका सारा शरीर जल गया है, अब न रक्त है न मांस। प्रियतम मेरे राम! तुम्हारे दर्शन के बिना अब मेरी नाभि में सांस का रुकना मुश्किल हो गया है --

"बिरह अग्नि तन तन दझ्या, लो ही रह्या न मांस।
राम पियारे दरस बिन, नाभि न रुठे सांस।।"[1]

'चन्द्रायणा विरह को अंग' में घटा, निर्झर, विद्युत के प्रतीकों द्वारा विरह भाव का विकास दिखाया गया है। बेहाल विरहिणी का यह प्रतीक चित्र कितना पूर्ण बन पड़ा है --

"विरह घटा घरराय नैणा नीझर झरै।
चित चमकै बीज की हिरदो ओलह रै।
मन्दिरऊं विरहनि है बेहाल दयाकर म्हालियो।
परिहां रामचरण कूं रामदेव सम्हालियो।।"[2]

विरह स्वयं हाथ में छुरी लेकर कलेजा काटने आ रहा है। हृदय फट जायगा की पुकार प्रियतम नहीं सुन रहा है। सभी राजी हैं, पर उनमें से कोई पीड़ा के विषय में नहीं पूछता है, बिना राम के कोई भी पीड़ क्या कर सकती है?--

"बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
पीव न सुणै पुकार कि हियरा फाटि है।
सबै बटाऊ लोग न पूछै पीड़ रै।
परिहां रामचरण बिन राम कौ कुण भीड़ रै।।"[3]

हृदय में विरह का छुरा लगा हुआ है, सांसा पीड़ा के साथ आती है। घाव फट जाने से दर्द और बढ़ गया है, निशि दिन वह रामदेव के आगमन के लिए पुकारती रहती है क्योंकि बिना राम के यह विरहोत्पन्न घाव भरेगा नहीं।

---

१- अ० वा०, पृ० ११।
२- वही, पृ० ७७।
३- वही।

"विरह सपीड़ा गाग बहै उर करव रे ।
धाव गयौ ह फाटि बध्यौ अति वरघ रे ।
निशि दिन करै पुकार वैद हरि आव हौ ।
परिहां रामचरण बिन राम मरै नहीं घाव हौ ।"[1]

इसी लिए है हरी ! विरहिणी की पुकार सुनते ही दौड़ आइये और सभी आवरण हटा कर स्वयं दरौन दीजिए --

"सुणा विरहनि तणी पुकार बेगि हरि ध्याईयो ।
सब पड़दा कर दूर आप दिखलाईयो ।"[2]

दास्य प्रतीक
दास्य भाव में दैत प्रवृत्ति के कारण निर्गुण का कीर्तन करने वाले प्रतीकों के सृजन में कठिनाई पड़ती है । स्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में 'स्वामी' और 'गुलाम' के प्रतीक के सहारे दास्य भाव की समर्पण स्थिति निर्माण करने में सफलता पाई है ।

"स्वाँम के उतार वोण, लागत गुलाम कूं ।
त्रिगुण पार गुण अपार, आंणियेज स्वांम कूं ।
... ... ...
जैसी जाँन गायौ तिन, तैसी पद पायौ मानि ।
आप है अनामी नाम, सुमरण काम कूं ।"[3]

स्वामी रामचरण ने संख्यामूलक, पारिभाषिक एवं प्राकृतिक प्रतीकों का विधान किया है । भाव की दृष्टि से प्रतीकों के विवेचन में इनमें से कुछ की चर्चा भी हुई है । यहाँ इन्हीं विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्वामी जी के प्रतीक विधान का अध्ययन प्रस्तुत है ।

संख्यामूलक प्रतीक
योग-साधना के संख्यामूलक प्रतीकों का विधान स्वामी जी के काव्य में मिलता है । कतिपय उदाहरण देना समीचीन होगा । यहाँ एक पद उद्धृत

---

१- अ० वा०, पृ० ७७ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० ६६४ ।

है जिसमें शरीर को अद्भुत नगर मानकर उसमें विभिन्न संख्यापरक प्रतीकों का विधान किया है --

"करता अद्भुत नगर बनाया ।
जाका बहु विधि ज्ञान बणाया ।
ताहि नगर के नव दरवाजा ।
पाथर पांच च्यार के साजा ।
आवै जाय सप्त के मांहि ।
दोय मिनायू पैगण नांहि ।
सात पौलका काबिल च्यार ।
अठ बाजूं सातूं ही द्वार ।
मुसरफ च्यार एक दातार ।
तीन साय खरचै न लगार ।
एक घरा में भरती आवै ।
दोय मांहि नीसर के जावै ।"[१]

एक और उदाहरण है जिसमें पांच, पचीस और तीन अंक प्रतीक के रूप में आए हैं --

"पांचू पकड़ पचीसूं घूंकूं ।
तिरगुण को बिसराऊं हो ।
चौथे दांव चेत मैं खेलूं ।
मौज मुक्ति की पाऊं हो ।"[२]

पारिभाषिक तथा अन्य प्रतीक

योग मार्ग में प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग संत साहित्य में हुआ है । संत कवियों ने इन शब्दों को नाथों से ग्रहण किया था । स्वामी रामचरण की रचनाओं में उन सभी शब्दों का प्रयोग मिलता है । कतिपय उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं । अन्य प्रतीकों में प्राकृतिक एवं पारिवारिक प्रतीक सम्मिलित हैं ।

---

१- अ० वा०, पृ० १००१ ।

२- वही ।

त्रिवेणी -- इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का मिलनस्थल दोनों भौंहों ~~के मध्य~~ के मध्य में स्थित है ।

"इंगला पिंगला सुखमणा मिले त्रिवेणी घाट ।
जहां न्हावै जल फूलि कै, निर्मल होय निराट ।"[1]

त्रिकुटी -- भौंहों के मध्य का स्थान । इसे त्रिवेणी भी कहते हैं ।

"त्रिकुटी संगम किया सनाना ।
जाइ चढ़्या चौथे अस्थाना ।"[2]

अनहदनाद -- योगियों को समाधि अवस्था में शरीर के भीतर सुनाई पड़ने वाली मधुर ध्वनि जिसमें संत डूबा रहता है --

"अनहदनाद निरन्तर नहिं आवै ।
भाँति भाँति के राग उपावै ।"[3]

गगन -- शरीर के भीतर का आकाश जहां ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है । इसको 'शून्य' भी कहा जाता है --

"अब त्रिवेणी न्हाइ कै कीया गगन प्रवेश ।
तीन लोक सूं अलग सुख या ओइ चौथा देश ।"[4]

हंस -- नव द्वार के पिंजड़े पिंजड़े (शरीर) में बंद जीव ही हंस है ।

"सायर तट हंस बैठा जाई ।
सायर हंस में रह्या समाई ।"[5]

भ्रमर -- मन, जीव के लिए भ्रमर का प्रतीक स्वामी जी ने अपनाया है ।

"मही सी नारी मंगल गावै ।
तहं मन भंवरा अति सुख पावै ।"[6]

... ... ...

"अष्ट उधै जहं कमल प्रकासा ।
सुरति भंवर होइ करत विलासा ।"[7]

---

१- अ०वा०, पृ० २०७ ।
२- वही, पृ० २०९ ।
३- वही, पृ० २०९ ।
४- वही, पृ० २०७ ।
५- वही ।
६- वही ।
७- वही ।

दसवां द्वार -- ब्रह्मरन्ध्र को कहते हैं ।

"द्वारैं दसवैं ध्यान ध्यान खंडित नहि होई ।
परा मुक्ति परवेश जहां जन पहुंचे कोई ।"[1]

अगम देश -- शरीरस्थ गगन प्रदेश जहां ब्रह्म का निवास है --

"मुंणी मांमली मन कहै जायूं भर्म न जात ।
रामचरण वैसी कहै अगम देश की बात ।
अगम देश की बात जहां सब संत पधारैं ।
मिले ब्रह्म मैं जाय बहुरि होवैं नहि न्यारैं ।
अकल देश आसण किया मिटी काल की घात ।
मुंणी सांमली मन कहै जायूं भर्म न जात ।"[2]

इसी को स्वामी जी ने अकल देश भी कहा है । यही चौथा धाम या चौथा घर भी है ।

"अब चौथे घर पहुंचा जाई ।
जहां का वचन मैं कहूं सुणाई ।"[3]

नाभिकमल -- नाभि स्थित कमल जिसे मणिपूर चक्र कहा गया है इस कमल में दस दल होते हैं और यह नील वर्ण का होता है --

"नाभिकमल मैं शब्द गुंजारैं ।
नारी नारी मंगल उचारैं ।"[4]

उपर्युक्त के अतिरिक्त और भी पारिभाषिक एवं संख्यामूलक प्रतीक हैं, जिनका स्वामी रामचरण के साहित्य में बाहुल्य है । अब कतिपय अन्य प्रतीकों की चर्चा करके यह प्रकरण समाप्त करेंगे ।

बाजार मेला का प्रतीक -- स्वामी जी ने संसार को बाजार मेला कहा है जो सांझ होते ही उठ जाता है --

"यो संसार बजार मेला, सांझ बीछड़ जाय ।
लाभ टोटी बिणज वोईं, लेय आप कुमाय ।"[5]

... ... ...

---

१- अ० वा०, पृ० १४२ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० ३०७ ।
४- वही, पृ० ३०६ ।
५- वही, पृ० १०१० ।

"यो संसार हटवाड़ा को मेलो ।
निशि पड़ियाँ बीछड़ जासी रेलो ।"[१]

विवाह का प्रतीक

स्वामी जी ने सुरति और शब्द को दुलहिन और वर के रूप में प्रस्तुत कर विवाह का प्रतीक खड़ा किया है । इस विवाह की चाँरी गगन में है । इसी चाँरी पर सुरति सुहागिन शब्द वर से वरी गई । यहीं दोनों का मिलाप हुआ और पोषापद रूपी मिष्ठान्न से फाोली भर उठी । बड़ा ही सुन्दर प्रतीक बन पड़ा है --

"चाँरी गगन मंफार रची है रंग भरी ।
सुरति सुहागिनी शब्द वर यूं वरी ।
अस पशी होय एक पिया संग रमत है ।
परिहां मोख पद मिष्ठान्न की फाोरी भरत है ।"[२]

एक और उदाहरण --

"सुरति ब्याह के ले गया शब्द आपणे धाम ।"[३]

ऋतु प्रतीक

ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के निरूपण के लिए स्वामी जी ने ऋतुओं का प्रतीक प्रस्तुत किया है । शीत को ज्ञान, ग्रीष्म को वैराग्य और पावस को भक्ति का प्रतीक कहा है --

"शीत सरस ऋतु शीत में ग्रीष्म अधिक तपांहि ।
तब समझ्या कै कहै पावस अति वर्षाहिं ।
पावस अति वर्षाहिं चरन मन भक्ति उपावै ।
यूं प्रथम ज्ञान वैराग्य उभय मिलि बधावै ।
ये आवांणी आगम कहै जांणे सो लखि जांहि ।
शीत सरस ऋतु शीत में ग्रीष्म अधिक तपांहि ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० १०११ ।
२- वही, पृ० ७७ ।
३- वही, पृ० १४ ।
४- वही, पृ० २२१ ।

मास प्रतीक

'गाथा का पद' में महीनों के प्रतीक का एक बड़ा सुंदर पद स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है । आषाढ़, सावन, भादों, आसोज महीनों को लेकर रचा गया प्रतीक यहां प्रस्तुत है --

"बिरहनि परसपद निर्वाण ।
अचल के संग होय नहचल, मिटै आवण जांण ।
अषाढ़ आगम राम घन को, चातक चित उछाव ।
आनंद अंबर भाव ही, भयौ शरद ऋतु को चाव ।
सावन भावन घटा घमण्डी, गाजन रसना राम ।
सुमरणकी झड़ि लूंब लागी, बरसत आठूं जाम ।
भादवै मिथि गयौ हिरदै, भरे सागर पूर ।
निकट सागरि प्रेम पीवै, सांझि भरवै दूर ।
आसोज आरत प्यास भागी, भरे चातक चंच ।
स्वाति शीतल अधर झौलै, मई निरपति पंच ।
गगन में बस मगन झोलै, अकल सुख आराम ।
रामचरण मिल ब्रह्म पूरण, सरै सरब सकाम ।"[१]

फाग का प्रतीक

दाम्पत्य प्रतीकों में फाग या होली की चर्चा हो चुकी है । यहां अलग से भी इसका वर्णन इसलिए अपेक्षित है क्योंकि यह स्वामी जी का बड़ा ही प्रिय प्रतीक है । अनेक स्थलों पर जीव ब्रह्म के बीच होली का रंग स्वामी जी के पदों में मचा है --

"पिया संग प्यारी, अब नित ही खेलै खेलत फाग ।"[२]

... ... ...

"खेलत फाग री मोहि बकस्यो राम सुहाग ।"[३]

... ... ...

"ररंकार पति सुरति सुंदरी, अबी पर्श रमै होरी हो ।"[४]

---

१- अ० बा०, पृ० १००६-०७ ।

२- वही, पृ० १००६ ।

३- वही, पृ० १००६ ।

४- वही, पृ० १००१ ।

आरती का प्रतीक

स्वामी जी ने गावा का पद के अंत में तीन आरती के पदों की रचना की है। इन पदों में संख्यामूलक, पारिभाषिक प्रतीकों का विधान तो स्वामी जी ने किया ही है। अन्तिम पद में 'आरती' को ही प्रतीक मान लिया है। इसमें आरती की पाँच स्थितियों का प्रतीकात्मक वर्णन हुआ है --

'आरति अवल पुरुष अविनाशी ।
घट घट व्यापक सकल प्रकाशी ।
परथम आरति मंदिर बुहार्या ।
राम राम रटि कर्म निकार्या ।
दूसरी आरति दीपक जोया ।
हिरदै प्रेम चांदणा होया ।
तीसरि आरति कुम्भ भराया ।
नाभि कमल सूं गगन चढ़ाया ।
चौथी आरति चौकि बिराजै ।
जहां अनहद का बाजा बाजै ।
पंचम आरति पूरण कामा ।
सुरति परसिया केवल रामा ।
सेवक स्वामी भया समाना ।
रामहि राम और नहिं आना ।
रामचरण की आरति कीजै ।
पारि अमर वर जुग जुग जीजै ।'[१]

स्वामी जी ने पशु-पक्षियों को भी अपने प्रतीक का विषय बनाया है। चातक मोर, कोयल आदि की चर्चा तो सामान्य ढंग से हुई है, संतों की दुनिया का बहुचर्चित पक्षी 'हंस' या 'अलपंख' भी प्रतीक रूप में स्वामी जी के काव्य में सम्मिलित है। यहाँ 'टेक को अंग' की कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत हैं जिनमें टेक के लिए उन्हें आदर्श माना गया है --

---

१- अ० वा०, पृ० १०१२-१३ ।

अनल पक्ष

"अंडज पंख आकाश में, रहै अधर मठ छाय ।
रामचरण घर ना धरै, अपणा मत न जाय ।"[1]

चकोर

"ऐसी टेक चकोर की, पावक करै अहार ।
रामचरण छांड़ै नहीं, जो जलबल होवै छार ।"[2]

हंस

"रामचरण मुकताल बिन हंसा चंच न बाहि ।
मांग मरः भर भुग्गना, कर्म कीट चुगि जाहि ।"[3]

चातक

"आश करै आकाश की, चातक रहै उदास ।
भूमि पड्यो जल ना पिवै, एकराम विश्वास ।"[4]

स्वामी जी ने सूर्य, चन्द्र, गंगा, यमुना, अम्बुज, कुमुद, तथा अन्य अनेक प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक रूप में ग्रहण कर अपने काव्य में स्थान दिया है । यहां संक्षेप में थोड़े प्रतीकों की चर्चा हुई है ।

स्वामी जी का ग्रंथ 'दृष्टान्तसागर' प्रतीकों का भण्डार है । उलटवांसियों एवं दृष्टिकूटों की रचना स्वामी जी ने जहां अपने पाण्डित्य ज्ञान का परिचय दिया है वहीं उन्होंने संत-साहित्य की उलटवांसी परंपरा का भी निर्वाह किया है । इन्हें स्वामी जी ने दृष्टान्त कहा है । इन दृष्टान्तों की टीका उनके शिष्य स्वामी रामजन जी ने बनाई है, जो हर दोहे के साथ सम्बद्ध है ।

पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि "'उलटबांसी' शब्द को ही 'उलटा' तथा 'अंश' इन दो शब्दों को जोड़कर बनाया गया माना जा सकता है ।"[5] व्युत्पत्तिमूलक अर्थ जो भी हो किन्तु उलटवांसियों की परंपरा बड़ी प्राचीन है । संत कवियों ने रहस्यात्मक प्रतीकार्थों के लिए उलटवांसियों की रचना की है । इनमें से कुछ प्रतीकों

---

१- अ० वा०, पृ० ४६ ।
२- वही ।
३- वही ।
४- वही ।
५- पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, पृ० १५५ ।

पर आधारित है और कुछ अलंकार से जुड़ी हुई है । स्वामी जी के ग्रंथ दृष्टान्तसागर की उलटबांसियों पर टिप्पणी करते हुए 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने लिखा है, "...... इस ग्रंथ में स्वामी जी ने जीव, ब्रह्म, सृष्टि आदि के रहस्यों को छिपा-कर प्रकट किया है ।"[1] यहां स्वामी जी की उलटबांसियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं --

१- पितामरण सुत जन्मियो, निकसे लुकी गाय ।
पुत्र उठे तन त्यागियो, लुकी मांहि समाय ।"[2]

२-"पीछ रम्हाली जन्म जग, बाहिर निकसी मांहि ।
कन्या कंवारी सुत जण्यो, सुत शोभा जग मांहि ।"[3]

३-"रैण भई क्यूं दिवस में, दिवा रैण क्यूं हवा ।
सब पृथ्वी में है नहीं, कहुं कहुं भूमि विसेस ।"[4]

दृष्टकूट

दृष्टकूटों का निर्माण भी पाण्डित्य प्रदर्शन एवं कम चमत्कार प्रकाशन के लिए संतों ने किया था । सूर के दृष्टकूट प्रसिद्ध हैं । स्वामी रामचरण के 'दृष्टान्त-सागर' में 'दृष्टकूटों' के उदाहरण मिलते हैं । यहां दृष्टकूट के कतिपय उदाहरण लिखे जाते हैं --

[१] "भूमि डसन रिपु तासरिपु जा शिख पर असवार ।
तासुत वाहन ज्यूं फिरै, काम ष लंपट संसार ।"[5]

[भूमिडसन - दीमक - रिपु - मुर्गा - रिपु - बिलाव - शिष्य - सिंह - असवार - भवानी - सुत - भैरव - वाहन - कुत्ता - अर्थात् लंपट संसार कुत्ते की तरह भटकता ही फिरता है । ]

---

१- वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ७१ ।
२- अ० वा०, पृ० १०३५ ।
३- वही, पृ० १०३३ ।
४- वही, पृ० १०३४ ।
५- वही, पृ० १०१८ ।

[२] "दधिसुत और सुमेरु सुत, रविसुत तीन मिलाप ।
ये साधक तो जब बनें, मिटैं संग त्रय ताप ।"[१]

[दधिसुत - मोती । सुमेरु सुत - सोना । रविसुत - कर्ण आदि सुकाम । इन तीनों के मिलाप का अर्थ हुआ सोना में मोती पिरो कर कान में पहनना । यह साधक तब बन सकता है जब श्री-लक्ष्मी के साथ त्रयताप -- माया हो ।]

[३] "गज मृग कीर कपोत कंठ, केहरि कोयल सात ।
इन मिलि अबली बाराअरि, बोधबोध भखिजात ।"[२]

[ अबली - मैला - स्त्री का तन । इस तन में इन सातों का वास है । गज - जंघा, मृग - नयन, कीर - नाक, कपोत - ग्रीवा, कंठ - बाल, केहरि - कमर, कोयल - बयन । स्त्री तन के उपर्युक्त आकर्षण बोध - शूर का बोध - विवेक [ज्ञान] खा जाते हैं । ]

[४] "मच्छ कीर मैं सुर गुरु, ता पतनी सुत सोय ।
ताप पिता मुख ओपमा, हरि जन संग न होय ।"[३]

[मच्छकीर - पालवार में सुरगुरु - बृहस्पति की पत्नी का सुत बुध का पिता - चन्द्रमा । चन्द्रमा जिसके मुख की उपमा है वह है स्त्री । स्त्री का हरि जनों से संग नहीं हो सकता । ]

[५] "अवनी सुत सुत शैल सुत, पृथ्वी के सुत सोय ।
समुंद सुता का भावता, हरिजन संग न होय ।"[४]

[अवनी सुत - सीसा [एक धातु विशेष] - सुत - रुपया । शैल सुत - सोना । पृथ्वी सुत - तांबा । समुद्र सुता - कौड़ी । अर्थात् रुपया, सोना, तांबा और कौड़ी संसार को अच्छे लगते हैं, इनसे का हरि जनों का साथ नहीं हो सकता । ]

---

१- क० ग्रं०, पृ० १०१६ ।
२- वही, पृ० १०१८ ।
३- वही, पृ० १०२७ ।
४- वही ।

द्वारा वेद, उपनिषद् एवं शास्त्र पुराणों की अनेक बातें ज्ञात हो गई थीं । वैसे ही संगीत शास्त्र से भी उनका परिचय हुआ होगा, इसमें संदेह का कोई कारण नहीं दीखता । यों सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो विदित होगा कि भक्त-कवियों की प्रवृत्ति संगीत की ओर थी । विद्यापति, तुलसी, सूर, कबीर और मीरां आदि के काव्यों में संगीतात्मकता वर्तमान है । कबीर, दादू आदि लगभग सभी संत कवियों ने पद शैली में काव्य-रचना की थी और उसे विभिन्न रागों में बांधा गया था । यह बात भिन्न है कि उन्हें रागबद्ध स्वयं कवियों ने किया था या बाद में किसी उनके भक्त या प्रशंसक ने ।

स्वामी रामचरण के काव्य में संगीत तत्व उपलब्ध है । 'राग का पद' ही उनकी काव्य-रचना पद शैली में लिखी विभिन्न रागों में बद्ध संगीतप्रधान रचना है । वैसे उनके अन्य ग्रंथों में भी बीच-बीच में रागबद्ध पद मिल जाते हैं । डा० अमरचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि --"स्वामी रामचरण भी इसी मस्ती में संगीत की ओर झुक गये परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे संगीतशास्त्र के ज्ञाता थे ।"[1] स्वामी जी भक्तिभावना की मस्ती में संगीत की ओर झुके होंगे, इससे तो मैं पूर्णतया सहमत हूं पर उन्हें संगीत से उनकी कोई जान-पहचान नहीं थी । यह विचार चिन्त्य है ।

पं० परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' में 'कबीर साहित्य और संगीत' शीर्षक लेख में यह सिद्ध किया है कि कबीर संगीत में रुचि रखते थे, उनकी संगीत में गति भी थी । कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे पर मैं समझता हूं कि उन्होंने भी संगीत की जानकारी सत्संग में ही की होगी । फिर स्वामी रामचरण तो सम्पन्न वैश्य परिवार में उत्पन्न हुए थे । पढ़े-लिखे थे एवं जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारी भी रह चुके थे । जयपुर राज्य भारतीय विद्या एवं कला का केन्द्र रहा है । ऐसी स्थिति में यह कहना कि स्वामी रामचरण संगीत से अपरिचित थे कुछ युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता ।

स्वामी रामचरण के साहित्य के विषय में यह भी कहने की गुंजाइश नहीं है कि उनके काव्य-ग्रंथों या वाणी का सम्पादन स्वामी जी के जीवन-काल में नहीं हुआ ।

---

१- डा० अमरचन्द्र वर्मा : स्वामी रामचरण - एक अनुशीलन, पृ० २८७ ।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि स्वामी रामचरण दृष्टिकूटों की रचना में निपुण थे। सूर ने दृष्टिकूटों के लिए पदशैली अपनायी है पर स्वामी जी ने दोहा छन्दों में भी दृष्टिकूटों की रचना कर अपने पाण्डित्य का परिचय दिया है। 'दृष्टान्त सागर' में ऐसे अनेक कूट दोहे भरे पड़े हैं।

इन पृष्ठों में स्वामी रामचरण के प्रतीक विधान का संक्षेप में निरूपण किया गया है। स्वामी जी के संत हृदय से निःसृत उद्‌गारों से प्रतीक योजना सजती चली गयी है। स्वामी जी के काव्यग्रंथों एवं अनबद्ध वाणी में इतने प्रतीक हैं कि उनका अलग से अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। इनमें से कतिपय उद्धरणों के सहारे स्वामी जी की प्रतीक योजना की विवेचना की गई है। दृष्टिकूटों और उलटवांसियों का अध्ययन भी प्रतीक के अन्तर्गत ही मुझे उचित लगा क्योंकि इनका सृजन भी प्रतीकों द्वारा ही स्वामी जी ने किया है। एक बात और, 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'दृष्टान्त सागर' में प्रकाशित स्वामी जी के पांडित्य और वाग्वैदग्ध्य को स्वीकार तो किया है किन्तु वे लोग इसे स्वामी जी की स्वाभाविक शैली नहीं मानते।[1] इस सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि स्वामी जी के विशाल साहित्य में उनके द्वारा अपनायी गई विभिन्न शैलियों में से कूट और उलटवांसियों की भी शैली है। जहां तक इसकी स्वाभाविकता का प्रश्न है। मैं समझता हूं कि दोहों में लिखे गए इन दृष्टिकूटों एवं उलटवांसियों में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। भाव प्रकाशन में न तो उन्हें कहीं कठिनाई हुई है और न ग्रहण में टीकाकार को ही।

संगीत विधान

संतों का काव्य संगीतमय है। संतकवि संगीत प्रेमी थे। यह बात भिन्न है कि संगीत शास्त्रीयता में वे बहुत पारंगत न रहे हों पर संगीत से उनकी अच्छी जान पहचान थी, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। कतिपय समीक्षक कहते हैं कि संतों को संगीत का बिल्कुल ज्ञान ही न था क्योंकि वे पढ़े लिखे नहीं थे। निवेदन है कि आज अनेक पढ़े-लिखे लोगों में बहुमत संगीत न जानने वालों का ही है। संतों ने भी स्वरों के

---

१- वैद्य भिलराम स्वामी तथा अन्य : श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १३४।

द्वारा वेद, उपनिषद् एवं शास्त्र पुराणों की अनेक बातें जानती थीं। वैसे ही संगीत शास्त्र से भी उनका परिचय हुआ होगा, इसमें संदेह का कोई कारण नहीं दीखता। यदि सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो विदित होगा कि भक्त-कवियों की प्रवृत्ति संगीत की ओर थी। विद्यापति, तुलसी, सूर, कबीर और मीरां आदि के काव्यों में संगीतात्मकता वर्तमान है। कबीर, दादू आदि लगभग सभी संत कवियों ने पद शैली में काव्य-रचना की थी और उसे विभिन्न रागों में बांधा गया था। यह बात भिन्न है कि उन्हें रागबद्ध स्वयं कवियों ने किया था या बाद में किसी उनके भक्त या प्रशंसक ने।

स्वामी रामचरण के काव्य में संगीत तत्व उपलब्ध हैं। 'गाने का पद' शीर्षक उनकी काव्य-रचना पद शैली में लिखी विभिन्न रागों में बद्ध संगीतप्रधान रचना है। वैसे उनके अन्य ग्रंथों में भी बीच-बीच में रागबद्ध पद मिल जाते हैं। डा० अमरचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि --"स्वामी रामचरण भी इसी मस्ती में संगीत की ओर झुक गये परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे संगीतशास्त्र के ज्ञाता थे।"[1] स्वामी जी भक्तिभावना की मस्ती में संगीत की ओर झुके होंगे, इससे तो मैं पूर्णतया सहमत हूं पर उन्हें संगीत से उन्हें कोई जान-पहचान नहीं थी। यह विचार चिन्त्य है।

पं० परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' में 'कबीर साहित्य और संगीत' शीर्षक लेख में यह सिद्ध किया है कि कबीर संगीत में रुचि रखते थे, उनकी संगीत में गति भी थी। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे पर मैं समझता हूं कि उन्होंने भी संगीत की जानकारी सत्संग में ही की होगी। फिर स्वामी रामचरण तो सम्पन्न वैश्य परिवार में उत्पन्न हुए थे। पढ़े-लिखे थे एवं जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारी भी रह चुके थे। जयपुर राज्य भारतीय विद्या एवं कला का केन्द्र रहा है। ऐसी स्थिति में यह कहना कि स्वामी रामचरण संगीत से अपरिचित थे कुछ युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता।

स्वामी रामचरण के साहित्य के विषय में यह भी कहने की गुंजाइश नहीं है कि उनके काव्य-ग्रंथों या वाणी का सम्पादन स्वामी जी के जीवन-काल में नहीं हुआ।

---

१- डा० अमरचन्द्र वर्मा : स्वामी रामचरण - एक अनुशीलन, पृ० २०७।

था । स्मरणीय है कि उनके सम्पूर्ण साहित्य को उनके शिष्य स्वामी रामजन एवं नवल राम जी ने उनके जीवनकाल में ही सम्पादित कर डाला था । यह तथ्य भी इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी जी के साहित्य का सम्पादन उनकी देखरेख में ही हुआ होगा । इतना ही नहीं उनके गुरु दांतड़ा गद्दी के महंत स्वामी कृपाराम जी ने स्वामी जी की `वाणी` देखी भी थी। अत: उनके पदों को उनकी देखरेख में ही रागबद्ध किया गया होगा या उन्होंने स्वयं उन्हें रागों में बांधा होगा, इसमें संशय का कोई कारण नहीं ।

जहाँ तक स्वामी जी के संगीत ज्ञान का प्रश्न है उन्हें संगीत की जानकारी थी । उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर `छत्तीस राग` की चर्चा की है । अनहदनाद को उन्होंने संगीत के इन सभी रागों से भिन्न एवं अलौकिक बतलाया है । `साखी परचा को अंग` में लिखते हैं --

"रामचरण संसार में, राग छतीस बखांण ।
संत सुनत हैं गिगन में, अनहद बैपरमांण ।"[१]

छत्तीस रागों की चर्चा तो वे करते हैं, विभिन्न वाद्य यंत्रों एवं उनसे निकलने वाले स्वरों पर भी उन्हें स्वामित्व प्राप्त था । वे झालरी, वीणा, मृदंग, शहनाई, बांसुरी भेरी, रणसिंग, करनाल, चंग, उपंग, मंजीरा, ढोलक और राममोहचंग का नाम गिनाते हैं । नृत्य-घुंघरू की रुनझुन से भी उनकी जान-पहचान है । इन सभी से यदि वे परिचित न होते तो अनहद नाद में इन सभी वाद्यों के नाद का आनन्द अनुभव कर उसे व्यक्त कैसे करते । `रेखता पचा को अंग` में उन्होंने `अनहदनाद` की अनुभूति के वर्णन में इन सभी वाद्यों के मधुर-मधुर स्वर की मधुर चर्चा की है --

"घोर अनहद की गगन गिरणाईया,
होत बहु सोर नहिं कहत आवै ।
झालरी वीणा मरदंग सहनाईयां,
बांसुरी तान झुणकार लावै ।
भेरि रणसिंग करनाल बंक्या बजे,
चंग अरु उपंग गति करत न्यारी ।

---

१- अ० वा०, पृ० १४ ।

एक एक नाद में में, राग नाना उठै ।
स्वर
मधुर, मधुर स्वर, बजत भारी ।
मंजीरा मान धधकार थनिक करै,
गिड़गिड़ी राम मोहचंग बाजै ।
रुणझुणूं रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुंघरू,
घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ।"[1]

उपर्युक्त चर्चा के बाद मैं इस निष्कर्ष पर हूं कि स्वामी रामचरण को संगीत के सभी रागों एवं वाद्यों की जानकारी भलीभांति थी । यह कहना कि वे संगीत के ज्ञाता नहीं थे अनुचित है । इसी सन्दर्भ में एक अंत:साक्ष्य और प्रस्तुत कर उनके द्वारा प्रयुक्त रागों की चर्चा करूंगा । 'ताल धमाल' में लिखे अपने एक पद में अपने रूठे राम को मना कर प्रसन्न करने के लिए जहां वे नट सदृश नाटक करके उसे मोहेंगे, वहीं उसे मोहने के दूसरे उपक्रम के रूप में 'सिन्धु राग' भी सुनाएंगे । 'आसा सिन्धु' राग में उन्होंने पद रचना की है --

"रूठा राम रिझाय मनाऊं,
निशिवासर गुण गाऊं हो ।
नट बाज्यूं नाटक करि मोहूं,
सिन्धु राग सुणाऊं हो ।"[2]

उपर्युक्त साक्ष्य से यह भी स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी स्वयं भी एक अच्छे गायक थे । उन्होंने 'गावा का पद' में निम्नलिखित रागों में पद रचे हैं --

| | | |
|---|---|---|
| १- भैरव | ६- आसा | ११- धमाल |
| २- ललित | ७- गौड | १२- काफी |
| ३- विभास | ८- सारंग | १३- आसा सिन्धु |
| ४- बिलावल | ९- गौड़ी | १४- कल्याण |
| ५- अवन्ती | १०- बसंत | १५- कानड़ा |

---

१- अ० वा०, पृ० ९९२-९३ ।
२- वही, पृ० १००१ ।

एक एक नाद मैं मैं, राग नाना उठै ।
मधुर,मधुर स्वर, कनत भारी ।
मंजीरा मान धधकार थलिक करै,
गिड़गिड़ी राम मोहचंद बाजै ।
रुणझुणूं रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुंघरू,
घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै ।"[1]

उपर्युक्त चर्चा के बाद मैं इस निष्कर्ष पर हूं कि स्वामी रामचरण को संगीत के नाना रागों एवं वाद्यों की जानकारी भलीभांति थी । यह कहना कि वे संगीत के नाना पक्षों से अवगत थे । इसी सन्दर्भ में एक अंत:साक्ष्य और प्रस्तुत कर उनके द्वारा प्रयुक्त रागों की चर्चा करूंगा । 'ताल धमाल' में लिखे अपने एक पद में अपने रूठे राम को मना कर प्रसन्न करने के लिए जहां वे नट सदृश नाटक कर के उसे मोहेंगे, वहीं उसे मोहने के दूसरे उपक्रम के रूप में 'सिन्धु राग' भी सुनाएंगे । 'आसा सिन्धु' राग में उन्होंने पद रचना की है --

"रूठा राम रिझाय मनाऊं,
निशिवासर गुण गाऊं हो ।
नट ज्यूं नाटक करि मोहूं,
सिन्धु राग सुणाऊं हो ।"[2]

उपर्युक्त साक्ष्य से यह भी स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी स्वयं भी एक अच्छे गायक थे । उन्होंने 'गावा का पद' में निम्नलिखित रागों में पद रचे हैं --

| | | |
|---|---|---|
| १- भैरव | ६- आसा | ११- धमाल |
| २- ललित | ७- गौड | १२- काफी |
| ३- विभास | ८- सारंग | १३- आसा सिन्धु |
| ४- बिलावल | ९- गौड़ी | १४- कल्याण |
| ५- जै जैवन्ती | १०- बसंत | १५- कनड़ी |

---

१- अ० वा०, पृ० ९९२-९३ ।
२- वही, पृ० १००१ ।

| | | |
|---|---|---|
| १६- कनड़ी | २१- सुवा गोरठ | २५- केदारी |
| १७- बिहाग | २२- मारू | २६- जोग धनाश्री |
| १८- मंगल | २३- जैत श्री | २७- गिरनारी गोरठ |
| १९- पंजाब | २४- धनाश्री | २८- आरती |
| २०- गोरठ | | |

स्वामी जी ग्रंथारंभ में राग भैरव का प्रयोग अपनी रचना में करते हैं ।

राग भैरव

"मनवा एक घर राख्या,
दूजा घर सूं दिल अलाक्या ॥टेक॥
एको ब्रह्म दूसरै माया ,
दूज तज्या एकै घर आया ।
एक आश्रय नैक उपाया ।
एकै मांहि अनेक समाया ।
जहां जाऊं जहां एक अकाशा ।
एक सूर ब्रह्मण्ड प्रकाशा ।
एक पवन अरु एक ही पाणी ।
एक धरणी पर सब घट जांणी ।
एक जीव एकै मन पावै ।
नाना मारग क्यूं उलझावै ।
मोही सतगुरु एक बतावै ।
गुरु बिन फिर फिर जन्म गुमावै ।
एक रमइया रसना मनसै- भाख्या ।
रामचरण जिन राम रस चाख्या ।"[१]

राग ललित के एक पद में वे अपने नाथ से हाथ पकड़कर सनाथ करने का निवेदन कर रहे हैं --

"मैं हूं अनाथ नाथ साहि हाथ मेरो ।
कीजिए सनाथ तात आप साथ तेरो । ॥टेक॥

---

१- अ० वा०, पृ० ६६१-६२ ।

जगत की जंजाल जाल भर्म कर्म के घेरी ।

ज्ञान हरण भरण व्याधि जन्ममरण फेरी ।

... ... ...

मोह के समुद्र परत भरत काल बेरी ।

रामचरण रामशरण साध संगति मेरी ।"[1]

राग बिभास में स्वामी जी मानव को जागरण का संदेश सुनाते हैं ।

"जाग जाग नर रैण बिती ।

जोबन भोर भयो अगाचीती । (टेक)

जांम एक गयो मोल माल में, दोह में गुणा बधायो ।

बांगी चिंता जरा गिराज्यो, यों जन्म गुमायो ।"[2] आदि

राग बिलावल में लिखित पद में कवि राम के नाम पर न्यौछावर है । राम की महिमा में तल्लीन होकर वह उनके प्रति समर्पित हो जाता है --

"राम तुम्हारे नाम की, मैं बलि बलिहारी ।

जीव तिरत कहा फेर है, पाथर शिल तारी । (टेक)

मैं अपराधी मनमुखी, नहिं साच बिचारी ।

झूठो कपटी लालची, मनहीणा भिखारी ।

अजामील सूं अधिक मैं, अघ अपार सारी ।

गणिका केती गिणति मैं, कैसी पति म्हारी ।

अवगुण भर्या भूर करि, मेरी बोझिस भारी ।

चहूं दिशा कोई दूसरी, नहिं ओट करारी ।

तुम बड़ सेवक राम जी, शरणागत भारी ।

रामचरण जो बूड़ि है, तोहि लाजि तुम्हारी ।"[3]

---

१- अ०वा०, पृ० ६६२ ।

२- वही, पृ० ६६३ ।

३- वही ।

राग जैजैवन्ती का एक पद यहां उद्धृत है जिसमें स्वामी जी मन को संबोधित करते हैं। मन! तू सोता क्यों है? पलकें उठाकर देख दिन भाग रहा है। रामनाम के स्मरण की प्रेरणा से पद पूर्ण है।

"रे मन सोवै कहां राम राम गाय रे।
पलक उघारि देखि दिन चल्या जाय रे। (टेक)
पाछली पहर रह्या, आगली गयी है हांनि।
अब ही सम्हाल प्यारे, चेत तैं सुजान रे।
सुत दारा धन धाम, सबही ठिगइया जान।
चित में सुचेत होय पिया कूं पिछांनि रे।
काल की अवाई आई, घर नै तवाई मान।
सजन सगाई त्याग, तेरी सुख मान रे।
क्यों चलि भाई आंन, संगी सो गयी पतांन।
रामचरण रामध्याय हरि हैं आन रे।"[१]

राग सारंग के अधोलिखित पद में स्वामी जी अपनी तपोभूमि 'कुहाड़' का का स्मरण करते हैं। कुहाड़ को भक्ति का प्रतीक मानकर आत्मा को उसी की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हैं। पद में स्मरण संचारी की प्रतीति होती है --

"गैबी चलो तो कुहाड़ जाईये।
और दिशा कूं गमन न कीजै, सुरति सहज घर लाईये। (टेक)
ऊंचा नगर अजब कलास्या मंदिर, निर्मल भूमि सुहाईये।
चौड़ी शिला बड़ला की छाया, जहां गोविन्द गुण गाईये।
गोकुलदास धना के बंशी, जिनकूं हरि पंथ लाईये।
ठंडा जल सरिता का अचवन, शीतल ठौर सुपाईये।
जन सुंदर अरु रामसनेही, उन कूं संग लगाईये।
रामचरण सतगुरु के शरणै, सब संता मन भाईये।"[२]

---

१- अ० वा०, पृ० ६६५।
२- वही, पृ० ६६७।

राग विहाग में स्वामी जी ने भक्ति-रस में सराबोर बड़े ही मधुर पदों का निर्माण किया है। सबके 'सिरजनहार' राम की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वह ऊँच-नीच के भेदभाव से परे है, जो उसे स्मरण करता है उसी का उद्धार करता है--

"रामजी सबका सिरजनहारा ।
ऊँच-नीच कोई भेद न जाणै, भज्यां उतारै पारा ।
पंडित गावै वेद पुराणा, दुनियां ओंन मसारा ।
हरि मारग की खबरि न पाई, भूल्यो सब संसारा ।
संत मिल्या सबही विधि पावै, भजन भेद अधिकारा ।
रामनाम निर्पख लखावै, नहिं कोई न्यारा न्यारा ।
घट घट व्यापक राम कहीजे, उत्तम मधिम बिचारा ।
जो ध्यावै सोही फल पावै, जामैं फेर न सारा ।
तन मन सील रामरस पीवै, जीवै ह आधारा ।
रामचरण ताहि और न भावै, सबरस लागै खारा ।"[१]

राग पंजाब में फकीरी की मस्ती में कवि जैसे डूब गया है। किसी पद में संत के दीवानेपन की चर्चा करता है तो किसी में फकीरी की श्रेष्ठता घोषित करता है। यहाँ एक पद उद्धृत है जिसमें रहमान के रंग में डूबा संत आठों पहर 'पिया' के प्रेम में मग्न रहता है। सूफियाना इश्क और आम दिशा की चर्चा से अनिप्रोत इस पद में स्वामी जी 'दरवेश' की चाल से अवगत होते हैं --

"फकीरा रंगरता रहमान ।
आठ पहर घूमत रहै, नित प्रेम पियाला मस्तान । [टेक]
आम दिसा सूं आईया, ये काया किया प्रवेश ।
देख दुनी का दरध कूं, पुनि उलटिगया धोही देश ।
जब लग वास सराय में वै, तब लग भाड़ा देय देय ।
अपणी इच्छा छाडि के, भख परइच्छा का लेय ।
जग में बिचरै मजन सूं वै, ना काहू नरै सनेह ।

---

१- अ०वा०, पृ० १००४ ।

आगिन देखे एकवचा, दुख जाकूं आपा देख ।
पंथ तकावे मिल्न का वे, आडे दोजग मांहि ।
दीन दुनी का मैन करि, कछु आपणा चावे नांहि ।
रामचरण दरवेश की वे, कोइ बिरला पावे चाल ।
दुनिया कूं दिन ना देवे, रवे अपणे ख्याल सुख्याल ।"[1]

राग सोरठ के अन्तर्गत गिरनारी सोरठ और सूवा सोरठ तथा सोरठ शीर्षकों के अन्तर्गत पदों के संग्रह मिलते हैं । यहां सूवा सोरठ राग का एक पद प्रस्तुत है जिसमें संसार को समुद्र का रूपक देकर उसके खारे जल से विरत एवं वैराग्य को सरोवर का रूपक देकर उसके शीतल जल से आनन्दित होने की बात स्वामी जी कहते हैं --

"संसार समंद जल खारी रे ।
पीवत प्यास मिटत नहिं कबहू,उठत अधिक धकारी रे । [टेक]
सो के भये सहंस की तिरखा, सहंस भया लख धारी रे ।
लखहूं में क्रोड़ी धज अड़बां, खंडबा पदम पसारी रे ।
सुख चाहूं तो दुख आवाणी , अहनिशि अजब अगारी रे ।
निख भया अ- धी ई प्रापति मांही,रोगशोक शिर भारी रे ।
जो मैं जाति जगत जश चाहूं, मति अपजश की म्हारी रे ।
बिगड़ी में कोइ वल्लभ नांही, सबही दे दुत्कारी रे ।
मेली कूं भय अटक राज को, तस्कर अग्नि अङारी रे ।
ज्यूं देखूं ज्यूं सुखना हि दीसे, संता शरण सधारी रे ।
ज्ञान भक्ति में निरमैलाई, जहां न म्हारी थारी रे ।
रामचरण वैराग सरोवर, शीतल अनंद अपारी रे ।"[2]

और यह राग धनाश्री का एक पद है जिसमें पत्नी भाव से भक्ति मन को पति की ओर से विमुख होने के लिए उलाहना देता है । यौवन के जोर में तूने मुझे खराब कर दिया । यदि मुझे पता होता कि यौवन यम का गुलाम है तो उसको छल कर उदासीन हो जाती --

---

१- अ० वा०, पृ० १००५ ।
२- वही, पृ० १००७ ।

"फिट जोबन जाईं लिया रे ।
तैं मोहि करी रे खराब ।
पति कुं पुठ दिखावता,
म्हारी कछु न राखी आब । (टेक)
दिवस अंधेरी निशि गिणी रे, बस्ती गिणी छै रे उजाड़ ।
विषिया रा कुञ्यो फिरयो रे, तोडि भरम की बाड़ ।
पर को गिण्यो न आपणो रे, ऐसो तूं अंध अमांन ।
दि ज्यार को गारणो रे, फल मैमन मामांन ।
माया केरा कौतमे रे, क्त भूल्यो भगवान ।
तूं तो फन्दक परो गयो रे, मोहि पीव करि बैरान ।
पांन उड़्यां ऊंवर रह्या रे, शोभ न पावै रे डाल ।
मई निलाजी ना कंयु, म्हारी आव गुमाई काल ।
जे हुं ऐसी जाणती रे, जोबन जम को रे वास ।
रामचरण करि रमणां, मैं रहती निपट उदास ।"[1]

राग केदारी में स्वामी जी भ्रम में भूले मन को समझाते हैं --

"मन तू भरम भुल्यो बीर ।
म मृगतृष्णा जल देखि ध्यायो, परिहरि परगट नीर । (टेक)
सांचा प्रीतम परिहर्‍या रे, झूठ कीयो सीर ।
भीड़ पड़्या भग जायगा रे, कोइ न बंधावै धीर ।
मात पिता सुत भामिनी रे, इन संग पावै पीर ।
धन जोबन मति देखि भूले, ये सब नांही थीर ।
जगत धार्‍यो राम बिसार्‍यो, गढ काढ़ी तज हीर ।
अंतकाल पछितायगो रे, सुणा आफर बे पीर ।
मनै कर्म सूं लागियो रे, समझ्यो नीर न खीर ।
आसा सब क्ल जायगा रे, ज्यूं पावक संग कथीर ।
सतगुरु शब्द पिछांणि कैरे, छाडि छीलर तीर ।
रामचरण दरियाव भजिये, रामगुणां गंभीर ।"[2]

---

१-अ०वा०, पृ० १००६ ।
२- वही, पृ० १०१० ।

उपर्युक्त उदाहरणों से सारा स्वामी रामचरण की संगीतात्मकता से अपार परिचय हो जाता है। स्वामी जी के जिन ग्यारह रागों से उदाहरण यहां दिये गये हैं, विस्तारभय के कारण अन्य रागों में लिखित पदों के उदाहरण नहीं दिये जा सके। इन पदों में स्वामी जी के वैयक्तिक स्पर्श की जहां झलक मिलती है वहीं संसार की असारता, रामनाम-स्मरण आदि की प्रेरणा भी। स्वामी रामचरण का भावुक कवि हृदय संत से भक्त हो गया है। संगीत की रागरागिनियों में डूबते-उतराते कवि अपने 'सांवरे' की शरण पा गया है --

"वार पार कहुं थाह न आवै, सुमर सुमर जन मज्जिक समावै।
ऐसा साहब सांवर मेरा, रामचरण चरणों का चेरा।"[१]

<u>छंद विधान</u>

स्वामी रामचरण के छंद विधान का अध्ययन अपने में एक रोचक विषय है। यों संतकवियों ने छंदविधान को बहुत गंभीरता से नहीं लिया है। उनमें से अधिकांश ने 'साखी' और 'सबद' शीर्षकों में काव्य रचना कर छुट्टी ली है। उन्होंने छंदों के नियम-उपनियमों, भेद, मात्रा, वर्ण, गण विचार आदि के चक्कर में पड़ना या तो उचित नहीं समझा या फिर इन सबकी व्यापक जानकारी उन्हें न थी। पर स्वामी रामचरण इस भावधारा के अपवाद लगते हैं। यद्यपि संत परिपाटी के निर्वाह के प्रयास में उनके छंद विधान में भी थोड़ी अव्यवस्था दृष्टिगत होती है। स्वामी जी के 'अणभै वाणी' नामक विशाल संग्रह महाग्रंथ में ३० छन्दशीर्षकों के अन्तर्गत काव्य रचना हुई मिलती है। इन छन्दों में से लगभग सभी छंद पिंगल शास्त्र में उल्लिखित छंद-लक्षणों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। पर इनके अध्ययन में थोड़ी कठिनाई यह होती है कि कुछ छन्दों के अलावा शेष छन्दों में से कतिपय ऐसे हैं जिनके नाम किसी छन्दशास्त्र के प्रचलित ग्रंथों जैसे छन्द प्रभाकर में नहीं हैं किन्तु भिन्न भिन्न नाम से वे मौजूद हैं। दूसरी कोटि उन छंदों की है जिनके लक्षण से विदित होता है कि वे किसी एक ही छंद के विभिन्न नाम धारण कर आये हैं। एक कोटि और भी है। यह कोटि उन छंदों की है जो नाम तो प्रसिद्ध छंदों का धारण किये हुए हैं, पर नामों के छंदों के लक्षणों से उनका कोई मेल नहीं है। नाम की गड़बड़ी से थोड़ा भ्रम अवश्य उत्पन्न होता है। पर यदि नाम की गड़बड़ी को हटा दिया जाय तो वे

१. अ० भा० पृ० १०५२

शास्त्रीय कसौटी पर खरे हैं। यहाँ इसी क्रम से हम स्वामी रामचरण के छंदों का अध्ययन करेंगे।

(क) पहले उन छंदों का विवेचन प्रस्तुत है जिनके नाम एवं लक्षण के संबंध में छंदशास्त्र के ग्रंथों में कहीं भी अनिश्चित स्थिति नहीं है। ये छन्द हैं -- दोहा, सोरठा, चौपई, चौपाई, सवैया, मनहर, त्रोटक या तोटक, पद्धरि, गीतिका, कुण्डलिया और चान्द्रायणा।

१- दोहा

१३ और ११ मात्राओं (विषम चरण में १३ और सम चरण में ११) की यति से २४ मात्राओं का यह छन्द साहित्य की एक गौरवमयी परम्परा अपने साथ रखता है। संत कवि, भक्त कवि, रीति कवि और नीति कवि सभी का यह प्रिय छंद रहा है। स्वामी जी ने अपनी रचनाओं में इसका खूब प्रयोग किया है। एक उदाहरण उद्धृत है --

"जगत अंधेरी बाग है, विविध फूल फल रंग।
रामचरण मन भंवर होय, जहाँ किया परसंग।"[१]

२- सोरठा

दोहे का उलटा छंद सोरठा भी स्वामी जी के काव्य में पर्याप्त संख्या में है --

"संगुरु स्वाद सिंगार, रामचरण ये जात सुख।
संतों के तलवार, जे जन रत्ता राम सूं।"[२]

३- चौपई

१५ मात्राओं के इस छंद का एक उदाहरण स्वामी जी के काव्य से यहाँ प्रस्तुत है --

"काम धाम के निकट न जाय।
हाथ न परसे छिबै न पाय।"[३]

४- चौपाई

१६ मात्राओं का यह छंद संतों और भक्त कवियों का अत्यन्त प्रिय छंद है। स्वामी रामचरण ने इसे अपनी अंगबद्ध वाणी तथा ग्रंथों में प्रचुरता से प्रयोग किया है --

---

१- अ० वा०, पृ० १०।
२- वही, पृ० ९८।
३- वही।

मन उपजी अर पड़ै अयांणा ।
उपजी राखै संत सुजांणा ।"[1]

५- सवैया
---- वाणी साहित्य में स्वामी जी ने इस वर्ण वृत्तिक के अन्तर्गत विभिन्न अंगों की रचना की है । इस छन्द के कई भेद हैं । स्वामी जी ने सवैया नाम पर मत्तगयंद सवैया की ही बहुतायत से रचना की है । प्रत्येक चरण के २३ वर्णों के इस छन्द में ७ भगण और २ गुरु होते हैं । 'नाम महिमा को अंग' से एक सवैया यहाँ उद्धृत है --

"काशी में एक कबीर भयो जुलहा घर आय प्रवेश कियो है ।
छाँडि दियो सबही कुल को धर्म,रामनिरंजन सोधि लियो है ।
शाह सिकंदर ताप दई तब पूरण ब्रह्म में प्राण दियो है ।
रामचरण ये संत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है ।"[2]

६- मनहर
---- मनहर,प्रत्येक चरण में १६, १५ की यति से ३० वर्णों के इस छन्द में भी स्वामी जी प्रचुर मात्रा में रचना की है । यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है --

"साही है फकीरी जिन साई दिल गिरी नाव ।
आई है गरीबी मगरूरी कूं गुमाई है ।
भाग्यो है अभाग राग जागियो बैराग भाग ।
मीति कूं निवास दे अनीति कूं न्हसाई है ।
धमायो दुहाग दूर पायो है सुहाग पूर ।
रामजी सूं प्रीति रीति भावना बधाई है ।
ताही को सन्यास जिन त्यागो है जगत्वास ।
रामचरण ऐसी गुरु ग्यान में बताई है ।"[3]

७- त्रोटक या तोटक
---- १२ वर्णों के इस वृत्त में चार सगण होते हैं । स्वामी जी का यह प्रिय वर्णवृत्त है । 'अणभै विलास' के सप्तम प्रकरण से एक उदाहरण प्रस्तुत है --

---

१- अ० वा०, पृ० ३० ।
२- वही, पृ० ८६ ।
३- वही, पृ० ८६ ।

"सुख राम भजन्न गहै मन रे ।
भ्रम काम विकार तजै तन रे ।
अस लक्खन लक्खन होय जिना ।
सन जाय विनाय कहूंक किना ।"[1]

८- पद्धरी

इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं । स्वामी जी के ग्रंथों में इस छंद में रचे पदों की संख्या भी पर्याप्त है । पर कहीं कहीं मात्रा दोष मिल जाते हैं । लेकिन बहुधा ऐसा नहीं हुआ है --

"वैराग्य रूप गुरु सर्वत्याग ।
उपदेश ज्ञान दे नहीं राग ।
किरपाल मिले किरपाज कीन ।
अत परी पाय हुवै अधीन ।"[2]

९- गीतिका

१४, १२ की यति से इसके प्रत्येक चरण में २६ मात्राएं होती हैं । यह छन्द स्वामीजी के ग्रंथों में नहीं के बराबर प्रयुक्त हुआ है । 'सुख विलास' के साखी प्रकरण में इसका एक उदाहरण मिलता है जिसका प्रथम चरण ही मात्रा की दृष्टि से दोषपूर्ण है । नीचे के दोनों चरण भी दोषपूर्ण हैं --

"संत कहै राम निज धन, तन मन्न पावनकार है ।
परम धर्म प्रकाश निर्मल, परम ^आप^ अपार उदार है ।
सुमरण साख पचीस का नै पै महा आमफल यहीं ही ।
यह सुकाल जो होय पाता राम रसायण वणी ही ।"[3]

१०-कुण्डलिया

स्वामी जी इसे 'कण्डल्या' लिखते हैं । १४४ मात्राओं का यह पूर्ण छंद ६ चरणों वाला है । आरंभ के दो चरण दोहा के और शेष चार रोला के होते हैं । स्वामी जी के काव्य में साखी के बाद इसी छन्द का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है । --

---

१- अ०वा०, पृ० ३४२ ।
२- वही, पृ० ३११ ।
३- वही, पृ० ३५२ ।

"कैरी अपराधी अमरधन बकसै संत सुजाण ।
नैवे नगन नगाच के लहु भागि अलुजाण ।
बड़ भागि बहु जाण जाणपणा बाका नाची ।
गुरुगम नान विचार और धन दरसाी तावी ।
ताहि नवै समभि तो हरिये अवाबलाण ।
कैरी अपराधी अपर धन बकसै संत सुजाण ।"[1]

११- चान्द्रायणा

इसे स्वामी जी ने 'चन्द्रायणा' कहा है । ११,१० की यति से इसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएं होती हैं । ११ मात्रा जगणांत और १० मात्रा रगणांत होनी चाहिए । स्वामी जी के प्रिय छंदों में इसका भी स्थान है । 'सब नाम समर्थाई को अंग' से एक उदाहरण प्रस्तुत है --

"आशा तेरी छांड, नीत का खोट रे ।
जोग सिर यूं जान, आन की चोट रे ।
नान भांण मारुत उदै उडि जाय रे ।
परिहां रामचरण भज राम सकल तरणाय रे ।"[2]

१२- बैताल

छन्दशास्त्र में उल्लिखित 'तामरूप' छन्द का दूसरा नाम बैताल छन्द है ।[3] १६-१० की यति से प्रत्येक चरण में २६ मात्राएं होती हैं । 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण से एक छन्द उद्धृत है --

"मानवी तन धारि कलि में, होय सन्मुख राम सूं ।
विमुखता बैअकल तजिये, नांहि भजिये काम सूं ।
सज्जनता ये सीख मेरी, कहै टेरी संत सू ।
आदि अंत जु राम रिकबा,आप आतम कंत जू ।"[4]

स्वामी जी ने कहीं कहीं बैताल छन्द की ६ चरणों का भी कर दिया है पर मात्रा दोषों से मुक्त रखा है ।

---

१- अ०वा०, पृ० ३५२ ।

२- वही, पृ० ७६ ।

३- भानुरचित 'छन्द प्रभाकर' में द्रष्टव्य तामरूप छंद, पृ० ६१ ।

४- अ० वा०, पृ० ३३० ।

(ख) इस कोटि में उन छन्दों का निरूपण हमारा अभीष्ट है जिनके नाम 'छन्द-प्रभाकर' में दूसरे हैं। यहां स्वामी जी द्वारा उल्लिखित नाम ही के शीर्षकों में उनकी चर्चा की रही है।

१३ - रेखता

यह छन्द प्रभाकर का 'करखा' छन्द है। इस छंद के प्रत्येक चरण में ८ - १२ - ८ - ९ की यति से ३७ मात्राएं होती हैं। अंत में यगण होता है। 'सुमरण को अंग' का यह छन्द यहां उद्धृत है --

"राम का नाम कूं जप्य रे बावरे, राम का नाम बिन मुक्ति नांही।
शिव्व सनकादिका शेष भी रटत है नाम की रटत है गवरि ध्यांही।
मच्छ जोगेश्वरा नाम कूं रटत है गुरुक हनुमंत अरु भैर गांही।
नारदा शारदा रटत मौनी जना नाम तत्सार तिहुं लोक मांही"[१]

इस छंद में भी स्वामी जी ने कहीं चार चरण और कहीं छः चरण रखे हैं पर मात्रा भेद कहीं भी नहीं रखा है।

१४- निशाणी या निशानी

यह छन्दशास्त्र का 'शोभन' छन्द है। भानु जी ने छंद प्रभाकर में यही नाम दिया है। इसका एक नाम 'झूलना' भी है।[२] इस छंद के प्रत्येक चरण में ८ - ८ - ८ - ६ की यति से ३० मात्राएं हैं, अंत में 'गुरु' होना चाहिए --

"अलिका जोगी बिपति वियोगी जोग जुक्ति बिसराइंदा।
कान फड़ाया शिर मुड़ाया भगवां भेष बणाइंदा।
खाक चढ़ाया खोज भड़ाया जोगी जगत कहाइंदा।
सार न पाया तार बजाया घर घर भरथरि गाइंदा।"[३]

१५- निराज

'हीर' छन्द को स्वामी जी ने 'निराज' कहा है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में १२ - ११ की यति से २३ मात्राएं होती हैं। इसका आदि वर्ण गुरु हो

---

१- अ० वा०, पृ० १६० ।

२- भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० ७४ ।

३- अ०वा०, पृ० ६६० ।

और अंत में रगण अपेक्षित है । 'ग्यानी बिलास' के पन्द्रहवें प्रकरण का निम्न-लिखित छन्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत है —

> 'फूठ यूं अकठ सदा, नाव को विगार है ।
> और न उपाव कोई, राम ही उगार है ।
> उत्तम आधार सदा, एक रस नाम है ।
> राम की शरण नाव, नाव की समान है ।'[1]

१६- झंपाल

छन्द प्रभाकर का 'सार' छन्द ही स्वामी जी का 'झंपाल' है । प्रत्येक चरण में १६-१२ की यति से २८ मात्राओं वाले इस छंद के अंत में दो गुरु अपेक्षित है --

> 'जंतर मंतर तंतर करि है, करि है औषधि बूंटी ।
> डंडा फंडा डोरा कंडा, करि क कांमण मूंठी ।
> नाना विधि परपंच पसारैं, माया आश न छूटी ।
> स्याम सिंगारा अति हुंसियारा, पांचूं फिरैं न पूठी ।'[2]

१७- उद्धोर

प्रसिद्ध 'रूपमाला' छन्द ही स्वामीजी का 'उद्धोर' छन्द है, इसके प्रत्येक चरण में १४ - १० की यति से २४ मात्राएं होती हैं, इस छन्द का प्रयोग स्वामी जी ने कम किया है । एक उदाहरण 'पुस्तबिलास' के बारहवें प्रकरण से उद्धृत किया जाता है —

> 'विषय मंदिर देख सुंदर, काहे गर्वै अंध ।
> जम उग्रा मेल्ह जासी, काल ले जाइ बंध ।
> नाम निधि है अमर अम्मर, काहि गंजै नांहि ।
> भय न भूपर तुरत पांहे, मिले निजपद मांहि ।'[3]

१८- सम्पक

छन्दशास्त्र में उल्लिखित 'सखी' छन्द ही कवि का 'सम्पक' छन्द है । इस छन्द के प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं होती हैं । भानु जी ने छन्द प्रभाकर में 'सम्पक माला' छन्द का उल्लेख किया है किन्तु यह वर्णवृत्त है और उसका स्वामी

---

१- अ० बा०, पृ० ३८० ।

२- वही, पृ० ८३२ ।

३- वही, पृ० ४१३ ।

जी के इस सम्पर्क में कहीं मेल नहीं । वस्तुत: स्वामी जी का सम्पर्क छन्द प्रभाकर का नहीं रहा है । 'लक्ष लाख जोग' नामक लघु ग्रंथ का अधिकांश इसी छन्द में है। उसी से एक उदाहरण दिया जाता है --

"साधों की संगति आवै ।
सब नारी के मन भावै ।
ये साध गरीब निवाजा ।
ये सब राजों महाराजा ।"[1]

(ग) इस श्रेणी में उन छंदों का निरूपण हुआ है जिनके नाम छन्दशास्त्र में प्रसिद्ध हैं । पर उन छन्दों के लक्षणों से स्वामी जी द्वारा उद्धृत छंदों के लक्षणों का मेल नहीं है । किन्तु वे सभी छन्द शुद्ध हैं और छन्दशास्त्र में दूसरे नामों से जाने जाते हैं । ये छन्द हैं -- झूलना, शिखरणी, अरेल, त्रिभंगी, भुजंग, मोती दाम, रसाल और चामर ।

१९-झूलना

'झूलना' नाम के तीन छन्दों का उल्लेख भानु जी ने 'छन्द प्रभाकर' में किया है । -- १-झूलना (प्रथम)[2], २- झूलना (द्वितीय)[3], ३- झूलना (तृतीय)[4] किन्तु स्वामी जी का झूलना इनमें से कोई नहीं है । यह छंद स्वामी जी के साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इस छन्द में उन्होंने कई अंगों का निर्माण किया है । यह 'झूलना' छन्दशास्त्र का प्रसिद्ध छंद 'सवैया' है । इस सवैया में भी दो प्रकार के प्रमुख सवैया छन्दों का झूलना के नाम पर स्वामी जी के काव्य में समावेश है । ये छन्द हैं -- १- मदिरा सवैया, २- दुर्मिल सवैया ।

१-मदिरा सवैया का उदाहरण

"यूं कहि मानव मान के कारन सूरति गान बजावता है ।
पढ़ि बेद पुरान कुरान घना बाणी आप बखाण बणावता है ।

---

१- स० सा०, पृ० ६८७ ।

२- भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० ७७ ।

३- वही, पृ० ७८ ।

४- वही, पृ० ७९ ।

करणी गुरु बिना कछु काज नहीं कहीं ठौर न आदर पावता है ।
कैसे घी बात की लक्ष बिना मन रंजक फजीहत गावता है ।-[1]

२-दुर्मिल सवैया का उदाहरण

"बिन साधन सिद्धि न होय प्यारे कोटि बात अनेक बनाय है जी ।
कोउ मन्न लड्डू करि पेट भरै ताकी भूख किमि मिटि जाय है जी ।
बहु भाँति सूं ताकि बिहीन फिरै समता सलेश न पाय है जी ।
जन रामचरण्ण भजन्न बिना जौं भाकर धूरी सताय है जी ।"-[2]

उपर्युक्त दोनों छन्द कुण्डल्यां शीर्षक के अन्तर्गत एक ही स्थान पर उद्धृत हैं । वास्तव में सवैया को ही उन्होंने कुण्डल्यां कहा है । पर सवैया के दोनों प्रकारों का एक ही शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख विचित्र अवश्य है । `अणभैवाणी` में ऐसा कई स्थानों पर देखा है ।

२०-शिखरिणी

प्रसिद्ध वर्णवृत्त `शिखरिणी` से स्वामी जी के शिखरिणी छन्द का मेल नहीं है । वस्तुतः यह `छन्दप्रभाकर` में उल्लिखित `भव छन्द` है । इस छन्द के प्रत्येक चरण में ११ मात्राएं होती हैं, अंत में गुरु होना चाहिए । `अणा गीविता` सप्तम प्रकरण में इसका एक उदाहरण मिल जाता है --

"विरह रूपी सापणी ।
डस्यो है मन्न पापणी ।
लगत तन्न आपणी ।
मिलत नांहि बापणी ।"-[3]

२१-त्रिभंगी

स्वामी जी के छन्द निशाणी तथा त्रिभंगी में अन्तर नहीं है । दोनों एक ही छन्द है । निशाणी `छन्द प्रभाकर` का `शोभन` छन्द है, यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है । रही बात प्रसिद्ध ३२ मात्रा वाले त्रिभंगी छन्द की । उस छन्द का प्रयोग स्वामी जी ने नहीं किया है ।

---

१- अ०वा०: छन्द प्रभाकर, पृ० ३८९ ।
२- कुण्डल्यां अ० वा०, पृ० ३८९ ।
३- वही, पृ० २४५ ।

२२-अरैल

छन्द प्रभाकर में 'अरिल्ल' छन्द का लक्षण लिखा गया है। किन्तु स्वामी जी का 'अरैल' 'अरिल्ल' नहीं है। 'अरैल' छन्द के वही लक्षण हैं जो स्वामी जी के चान्द्रायणा (चान्द्रायण) के हैं, अर्थात् अरैल छन्द चान्द्रायण छन्द ही है।

२३-चामर

स्वामी जी का चामर छन्द 'छन्द प्रभाकर' में उल्लिखित 'विधाता' नामक छन्द है, छन्दशास्त्र का बहुचर्चित चामर छन्द से यह बिल्कुल भिन्न है। १४-१४ की यति से इस छन्द में २८ मात्राएं होती हैं। वैसे तो इस छन्द का प्रयोग इनके ग्रंथों में यत्र-तत्र हुआ है पर लघु ग्रंथ 'विज्ञानवाणी' में इसका अधिक प्रयोग मिलता है। उसी से एक उदाहरण प्रस्तुत है --

'अब तू राम रसना गाय।
बीती जन्म अहली जाय।
तेरा जन्मकी सुण आदि।
मूरख खोइये नहि बादि।'[१]

२४-मोतीदाम

२५-भंगाल

२६-भुजंगी

उपरिलिखित तीनों छन्दों का वर्णन छन्दशास्त्र के ग्रंथों में मिलता है। पर छन्द प्रभाकर में इनके उल्लिखित लक्षणों और स्वामी जी द्वारा लिखित इन छन्दों की रचनाओं के लक्षण बिल्कुल भिन्न हैं। दूसरी बात यह भी कि मोती-दाम, भंगाल और भुजंगी -- इन तीनों नाम से निर्मित छन्द रचनाओं का लक्षण एक है अर्थात् एक ही छन्द को तीन नामों से तीन स्थानों पर लिखा गया है। इन तीनों छन्दों की रचनाओं को देखने से विदित होता है कि ये रचनाएं 'भुजंगप्रयात' छन्द में रची गई हैं।

'भुजंगप्रयात' १२ वर्णों का वर्णवृत्त है जिसमें चार यगण होते हैं। उक्त तीनों छन्दों की रचना नीचे उद्धृत है जिसमें भुजंगप्रयात के लक्षण विद्यमान हैं --

---

१- ब० वा०, पृ० ६७७।

१- मोतीदाम के नाम पर प्राप्त छन्द का उदाहरण

"रचे राम रामं, पचे पूर कामं ।
अकामं अरूपं, अखण्डे स्वरूपं ।
नहीं पावती नं, परापार नीनं ।
महा तेज पूरं, उदै कोटी सूरं ।"[1]

२- भुजंगी के नाम पर प्राप्त छंद का उदाहरण

"नमो राम रूपं गुरूजी अगाधे ।
तुम्ही सेव सानंद सूं सर्व साधे ।
ब्रह्मा ईस विष्णवादि औतार धारे ।
उदा एक महिमा गुरुजी उचारे ।"[2]

३- कंसारा के नाम पर प्राप्त छन्द का उदाहरण

"गुरू ज्ञान रूपं, महिमा अनूपं ।
गुणा तीन पारं, सबै को आधारं ।"[3]

उपर्युक्त उदाहरणों की जाँच करने से स्पष्ट हो जाता है कि सभी में 'भुजंगप्रयात' छन्द के लक्षण वर्तमान हैं । इन तीनों छन्दों की छन्दशास्त्र में महत्ता है साथ ही 'भुजंगप्रयात' भी एक महत्वपूर्ण छन्द नहीं है, फिर कैसे यह नाम हो गया ? चिन्त्य है ।

२०- कवित्त 'छन्द प्रभाकर' में भानु जी ने मनहर या मनहरण का पर्यायवाची कवित्त को लिखा है ।[4] मनहर ३१ वर्णों का छन्द होता है । इसकी चर्चा पीछे हो चुकी है स्वामी जी का 'कवित्त' 'मनहर' नहीं है । इसके लक्षण का कोई दूसरा छन्द भी

---

१- अ०वा०, पृ० ४२६ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० ८५३ ।
४- भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० २१४ ।

नहीं मिलता है। मात्रा की दृष्टि से यह छन्द नितान्त शुद्ध है। ६ पद के इस छंद में १४४ मात्राएं होती हैं। आरंभ के चार चरणों में रोला और बाद के दो चरणों में दोहा के लक्षण मिलते हैं। यह कुण्डलिया का उलटा है। इस छन्द में भी स्वामी जी ने पर्याप्त लिखा है। इस छन्द की टीका में विभिन्न अंग रखे गए हैं --

"अमन सुत मधि नीच नीच पिण्डक अधिकारी।
अंबर वासना नील बौं नहिं तास मंझारी।
बनि दादुर ज्यूं नीर आश पुनिकार विवर्जित।
सुखाल बढ़े क्लेश होय अबहूं जो संगति।
गुरु पूजा कूं खैंचि के यों करत करें शिखज्ञान।
ज्ञान भक्ति वैराग्य मूं रहे रहित अभिमान।"[१]

८८- कुमारी
---- इस छन्द के नाम पर एक पद ग्रंथ 'अगाधी विलास' के बीसवें प्रकरण में उपलब्ध है। १४ - १३ की यति से इसमें कुल २७ मात्राएं हैं। 'छन्द प्रभाकर' में इस नाम और लक्षण का कोई छन्द मुझे नहीं मिला। उदाहरण रूप में इसकी एक पंक्ति दी जाती है --

"राम सदा सुख दानियां, सब वेद पुराण बखानियां।"[२]

८९- साखी
---- यह संत कवियों का सर्वाधिक प्रिय छन्द है। पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि, "साखी शब्द 'साक्षी' का अन्यतम रूप मान लिया जा सकता है।"[३] डाक्टर रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि, "साखी वस्तुतः दोहा ही है किन्तु उसे आध्यात्मिक नाम 'साखी' दे दिया गया है। जो ज्ञान सत्य के साक्षी स्वरूप है वही साखी है।"[४] चतुर्वेदी जी का अनुमान है कि, "साखी-रचना की परम्परा कबीर साहब के समय से अधिक प्राचीन अवश्य रह रही होगी।"[५] दोहा छंद का

---

१- अ०वा०, पृ० १२२।
२- वही, पृ० २७५।
३- पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, पृ० १८४।
४- डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत डा० रामकुमार वर्मा का 'संतकाव्य' शीर्षक लेख, पृ० २३८।
५- पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, पृ० १८५।

प्रयोग भी प्राचीन अपभ्रंश काव्यों में मिलता है अतः यह मान लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि साखी दोहा का ही रूप है । लक्षण की दृष्टि से समता भी अधिकतर होती है । कहीं कहीं अन्तर भी दीखता है यथा । एक उदाहरण ऐसा समीचीन होगा --

"नैतो बाण चलाईया धर कर मूधी मूंठ ।
प्रेमाहित चित्त को लिया, गया कलेजा फूट ।"[1]

किन्तु साखी का सारा उदाहरण जो नीचे उद्धृत है, मात्रा दोष से रहित नहीं--

"गिरिवर कूं मोरा जपै, सायर जपै मराल ।
रामचरण रामै जपै, बुध रंको करण निहाल ।"[2]

इसमें नीचे कि पंक्तियों में दो मात्राएं अधिक हैं । साखी के उपर्युक्त दोनों रूप स्वामि रामचरण के काव्यांगों एवं 'वाणी' में उपलब्ध हैं ।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी रामचरण को पिंगलशास्त्र का अच्छा ज्ञान था । उन्होंने अपने भाव प्रकाशन के लिए ऊपर वर्णित सभी छंदों का विधान किया है । विशेष बात यह है कि मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग उन्होंने किया है । पर मात्रा, वर्ण या गण संबंधी दोष अपवाद स्वरूप ही मिल सकते हैं । स्वामी जी छंद विधान के शिल्पी थे इस कथन में अत्युक्ति नहीं ।

## भाषा

यद्यपि स्वामी रामचरण जी की काव्यभाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन हमारा उद्देश्य नहीं है फिर भी स्वामी जी की भाषा के सामान्य गुणों, शब्द-भण्डार, लोकोक्ति-मुहावरों आदि से परिचित होना हमारा अभीष्ट है । संत कवि अपने सिद्धान्तों के प्रचार के उद्देश्य से काव्य-रचना करते थे । जन सामान्य तक अपने संदेश प्रेषित करना उनका ध्येय होता था । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वे विचरण करते थे और जनजीवन के निकट सम्पर्क में भी आते थे । पर्यटनशीलता के कारण उनके

---

१- अ०वा०, पृ० १२ ।
२- वही, पृ० १० ।

शब्द-भण्डार में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के एवं बोलियों के शब्दों का सम्मिलित हो जाना स्वाभाविक था । दूसरी बात यह है कि अपनी विचार-सामग्री को सर्वग्राह्य बनाने के लिए सहज स्तर की भाषा का प्रयोग करते थे । कदाचित् इसी गुण के कारण सामान्य जन संतों के विचार से प्रभावित होकर उन्हें ग्रहण कर लेता था । हाँ, जहाँ संतों को पांडित्य प्रदर्शन की अभिलाषा हो जाती थी, वहाँ वे भाषा में दुरूहता का समावेश कर दिया करते थे ।

स्वामी रामचरण की भाषा के विषय में 'अणभैवाणी' के प्रस्तावनाकार साधु कायुर्णीराम लिखते हैं -- "इन महावाक्यों की रचना सरल भाषा में होने के कारण सर्व स्त्री-पुरुषों को पठन-श्रवण में सुगम और सहज कल्याणमार्ग दर्शक कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी ।"[1] इसी सम्बन्ध में 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों का मत उद्धृत करना भी असंगत न होगा । वे लिखते हैं कि --"अणभैवाणी की भाषा लोकभाषा के वैभव को लिए है ।"[2] स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की भाषा संत परंपरा की अनुकूलता से समन्वित है । यहाँ हम स्वामी जी की काव्यभाषा की विशेषताओं का संक्षेप में निरूपण करेंगे ।

भावानुकूलता

स्वामी जी की भाषा उनके भावों की अनुगामिनी है । भावानुकूल शब्दों के का चयन भी सशक्त भाषा का मापदण्ड है । इस विचार की पुष्टि में कतिपय उदाहरण देना असंगत न होगा । साँई के सामर्थ्य में जितना ओज है, उसकी अभिव्यक्ति की भाषा से भी स्पष्ट होने लगता है --

"समरथ मेरा साँईया, जाकी समरथ ओट ।
रामचरण ताकूं भज्या, लगै न जम की चोट ।"[3]

भाव के साथ भाषा भी ओजमयी हो गयी है । 'समरथ ओट' और 'जम की ओट' से ओजस्विता ध्वनित हो रही है । भावों के सहज प्रकाशन में उनकी भाषा कितनी

---

१- अणभैवाणी की प्रस्तावना, पृ० २ ।

२- वैद्य बेजराम स्वामी तथा अन्य : श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १३२ ।

३- अ० वा०, पृ० १६ ।

अंजन्य है, निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है । विनय भाव के प्रभावन में भाषा यहां निखरी है --

"तुम तो रामदयाल हो, मैं अनाथ निरधार ।
रामचरण कह रामजी, बेग लगावो पार ।"[1]

आत्मा विरहिणी अपने प्रेमी नायक परमात्मा के आगमन से हर्षित है । हृदय मधुर भावों का आगार हो रहा है, उत्कण्ठाओं को जैसे स्फूर्ति मिल गई हो । भाषा का माधुर्य यहां ध्यान देने योग्य है --

"प्रेम का दीपक जोय मंदिर में, प्रीति का पिलंग बिछाय ।
शील शृंगार साज पिव परसूं, अंग सूं अंग लगाय ।
अति आनंद उछाव भयो अति, लग्यो है नव लो नेह ।
तन मन धन न्योछावर करि हूं, या दिन कूं आपा देह ।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों की शब्दमाला ही भाव संकेतिका है । दीपक पलंग और शृंगार के स्पर्शों से ही प्रेमभावना का माहौल निर्मित हो गया है । 'अंग सूं अंग लगाय' पद से तो 'नवलो नेह' का 'उछाव' फूटा पड़ रहा है । भाषा का यह माधुर्य काव्य का शृंगार है ।

अनुरणनात्मकता

शब्दों से भावों का अनुरणन सशक्त भाषा का एक और मापदण्ड है । भक्त-हृदय के उद्गार भाषा के स्वाभाविक प्रमनन प्रवाह से और भी प्रभावशाली हुए हैं । स्वामी रामचरण की भाषा में इस स्वाभाविक अनुरणन शक्ति के उदाहरण मिल जाते हैं । 'रैलता घुरा को अंक' में अनहद नाद की ध्वनि कवि सुन रहा है । वाद्यों की झंकार हम भी सुन रहे हैं । जो यह अनुरणन भी ध्यान देने योग्य है --

"घोर अनहद की गगन गिरणाई या होत बहु घोर नहिं काल आवै ।
झालरी बीण मरदंग सहनाई या बांसुरी ताल झुणकार लावै ।"[3]

---

१- अ०भा०, पृ० १० ।
२- वही, पृ० १००० ।
३- वही, पृ० १६२ ।

निम्नलिखित पंक्तियों में घटा, निर्भर और बिजली के रूपकों द्वारा विरह को रूपायित करने में कवि को जितनी सफलता मिली है उसका बहुत कुछ श्रेय शब्दों की अनुरणनशीलता को है --

"बिरह घटा घहरात नैन झीभर झरै ।
बिच चमंके बीज कि हिरदो ओलिख है ।"[1]

सचमुच जैसे घटा घहरा रही है, निर्भर झर रहे हैं और बिजली चमक रही हो । हृदय उस स्मृति से उर्फ उल्लसित हो रहा है । कवि के हृदय का यह उल्लास साकार हो उठा है ।

रूपात्मकता

स्वामी जी की भाषा वर्ण्य का रूप खड़ा करने में समर्थ है । होली का एक चित्र है । पिया-पियारी का फाग, गुलाल उड़ रहा है, अबीर गारी जा रही है, रंग अबीर की धूम मची है, पिचकारी में रंग भरा जा रहा है । अनहद नाद सुनाई पड़ रहा है । रंगों की यह बरसात फागुन को भादो बना रही है । इन्हीं वर्णों में योग का सुख में तन्मय प्रिया का रूप उसका प्रियतम निरख रहा है --

"पच रंग पीत गुलाल उड़ाई, निरगुण अबिर गारी हो ।
अधे अबीर गाव करि सुंधी, भरत प्रेम पिचकारी हो ।
शील सिंगार मेड अति मातम, खेलत पिया पियारी हो ।
अनहद नाद बैन धुनि उपठे, गरजत गगन मझारी हो ।
फागुन फाग रमत भयो भादू अंबर बरसै भारी हो ।
भीजत सुरति गरक भई सुख में, निरखत रूप मुरारी हो ।"[2]

शब्द भण्डार

स्वामी रामचरण राजस्थानी थे । उनकी भाषा राजस्थानी है किन्तु उसमें अन्य प्रादेशिक भाषाओं, बोलियों एवं विदेशी मूल के शब्दों का बाहुल्य है । लोक-

---

१- अ० वा०, पृ० ७७ ।
२- वही, पृ० १००६ ।

भाषा का अक्षय शब्द भण्डार उनकी अंगबद्ध वाणी एवं काव्य ग्रंथों में भरा पड़ा है । संस्कृत के तत्सम शब्दों के अलावा अनेक तद्भव, देशज शब्द विभिन्न बोलियों का परि-वेश धारण करके स्वामी जी के शब्द भण्डार में समाविष्ट हुए हैं । पंजाबी, ब्रजी, खड़ी बोली एवं गुजराती भाषाओं के अनेक शब्दों का प्रयोग तो उन्होंने किया ही है, अरबी-फारसी मूल के भी अनेक शब्दों को निःसंकोच भाव से अपनाया है ।

संस्कृत
----

राजस्थानी प्रान्तीयता के प्रभाव स्वरूप संस्कृत के तत्सम शब्दों के रूपों में विकृति स्वाभाविक है किन्तु स्वामी जी ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है । अनेक काव्यपंक्तियां उन्होंने संस्कृत में ही लिखी हैं । यहां एक उदाहरण प्रस्तुत है । 'नाम गुरुदेव को अंग' में लिखते हैं --

"गुरापादौ तु स्पर्शेन पातकं तु विश्यति ।
ज्ञानोदयं रामचर्णः मुक्तिमार्गं तु लभ्यते ।
गुरोर्मन्त्रैस्तु चित्तं मोक्षविशेन लिप्यते ।
सर्वं शुद्धं गतजन्म प्राप्यते सुखसागरम् ।"[1]

स्वामी जी ने अपने काव्य में संस्कृत के ऐसे तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया है जिन्हें सरलता से ग्रहण किया जा सकता है । उनका रूप परिवर्तन उन्हें अभीष्ट नहीं । कुछ शब्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं --

"रामचरण वंदन करै सब ईशन के ईश ।
जगपालक तुम जगतगुरु जगजीवन जगदीश ।"[2]

'स्तुति कवित्त' से उद्धृत उपर्युक्त पंक्तियों में 'वंदन', 'ईश', 'जग', 'पालक', 'जगत', 'गुरु', 'जीवन' और 'जगदीश' आदि शब्द तत्सम शब्द हैं । राजस्थानी में 'व' का 'ब' रूप में उच्चारण होता है । स्वामी जी ने भी अन्य स्थानों पर 'व' के लिए 'ब' लिखा है पर 'व' का 'व' लिखना भी अपवाद नहीं है । संस्कृत की तत्सम शब्दावली का एक और उदाहरण भी प्रस्तुत है --

---

१- अ० वा०, पृ० ३ ।
२- वही, पृ० ३ ।

"चिदानन्द चिरंजीव है, है सुखसागर राम ।
रामचरण सुख राम में, और सबै बेकाम ।"[१]

चिदानंद, चिरंजीव, सुखसागर, सुख तत्सम शब्द हैं ।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का मेल

स्वामी जी ने शब्दप्रयोग में पर्याप्त सफलता से काम लिया है । एक ही शब्द के तत्सम और तद्भव रूप उनके काव्य में मिलते हैं, यह भिन्न बात है कि तद्भवता का कारण राजस्थानी रूप ही । जैसे --

१- उपकार -- लोहा में कंचन भया, ये पारस उपकार ।[२]

उपगार -- रामचरण सतगुरु मिल्या, किया अमोल उपगार[३]

२- गगन -- जब त्रिवेणी न्हाई कै, कीया गगन प्रवेश ।[४]

गिगन -- कुप गिगन मधि अगाध सुख, निसि दिन अभी भरंत है ।[५]

३- सागर -- चिदानंद चिरंजीव है, है सुख सागर राम ।[६]

सायर -- सुंन सायर हंस का बासा ।[७]

४- निशि -- राम नाम निशि वासर गासी ।[८]

निसि -- निसिदिन भजिये राम कूं, तजिये नहीं लगार ।[९]

५- प्रकाश -- राम रट्या का यह प्रकाशा ।[१०]

प्रकास -- सतगुरु ज्ञान ज्योति से किया जीत प्रकास ।[११]

---

१- अ० वा०, पृ० ६ ।
२- वही, पृ० ८ ।
३- वही, पृ० ४ ।
४- वही, पृ० ३०७ ।
५- वही, पृ० १४ ।
६- वही, पृ० ६ ।
७- वही, पृ० २१० ।
८- वही, पृ० २१० ।
९- वही, पृ० ६ ।
१०- वही, पृ० २१० ।
११- वही, पृ० २११ ।

परकास -- यह उजास गुरु ज्ञान सें, उर लोचन परकास ।[१]

परकाश -- सब अंधियारा मिट गया, राम शब्द परकाश ।[२]

१- तत्सम और देशज शब्दों का एक साथ प्रयोग नीचे उल्लिखित साखी में उपलब्ध है ।

"टटपूंज्या धनवंत भया, सतगुरु सरणीं आय ।
रामचरण अब रामधन, मुक्त खरचै खाय ।"[३]

यहां टटपूंज्या (टुटपुंजिया) देशज और धनवंत तत्सम साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं ।

२- इसी प्रकार तत्सम और तद्भव शब्दों का साथ भी नीचे की साखी पंक्ति में देखा जा सकता है --

"रामचरण खेती फल्यां, तृष्णा गई बिलाय ।
निरधनिया धनवंत भया, अब धन खरचै खाय ।"[४]

निरधनिया तद्भव और धनवंत तत्सम साथ प्रयुक्त हैं ।

३- एक उदाहरण विदेशी मूल के शब्द और तत्सम के एक साथ प्रयोग का भी नीचे प्रस्तुत है --

"रामचरण करसण भक्ति, सुख खिरदो यूं खेत ।
नाम बीज गुरु महर जल, जब ब्रह्मज्ञान फलदेत ।"[५]

यहां महर (कृपा) फारसी और जल तत्सम का साथ प्रयोग हुआ है । इस प्रकार के प्रयोगों की भरमार है । स्वामी जी के पास विभिन्न भाषाओं के शब्दों का भण्डार था ।

---

१- अ०वा०, पृ० २११ ।
२- वही, पृ० ११ ।
३- वही, पृ० ४ ।
४- वही ।
५- वही ।

'न' के स्थान पर 'ण'

राजस्थानी भाषा में बहुधा 'न' के स्थान पर 'ण' बोला जाता है। स्वामी जी की रचनाओं में 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग खूब हुआ है। जैसे -- हांणि (हानि), मसांण (मसान), फागण (फागुन), आवणा-जाणा (आना-जाना), कांणि (कानि, आदत), अपणी (अपनी), आसण (आसन)।

'उ' के स्थान पर 'ओ'

उकार के स्थान पर ओकार का समावेश भी स्पष्ट बेशक कम दीखता है। जैसे -- मलोल (मलूल), बाकोली (बाकुली)।

अनुनासिकता

राजस्थानी भाषा अनुनासिकताप्रधान भाषा है। स्वामी जी की भाषा में अनुनासिकता का बाहुल्य यह सिद्ध करता है। जैसे --

"राम बिनां भावे नहीं रामचरण कूं आंन।"[1]

यहां बिना, कू और आन को अनुस्वार लगाकर अनुनासिक बना दिया गया है।

अधिकरण के चिह्न 'में' के स्थान पर 'मैं' और 'मैं' दोनों का प्रयोग 'अणभै-वाणी' में मिलता है।

१- सै ऋतु बारा मास मैं पावस जीवन जांन।[2]
२- नाम बिनां इण लोक मैं सुख कहुं दीसै नांहि।[3]

विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों का प्रयोग

विदेशी मूल के शब्दों को स्वामी जी ने निःसंकोच भाव से अपनाया है। कतिपय शब्दों के उदाहरण देना असंगत न होगा --

---

१- अ० वा०, पृ० १४० ।
२- वही ।
३- वही ।

खाम -- नारि कहावै खाम की पाडोसी सूं मेल ।[१]

दीदार-- मैन दुखी दीदार बिन, रमना रत आशी की ।[२]

अक्ल -- मंत सिपाई अक्ल जमाई, तन तखार सम्भाई वै ।[३]

आसिक(आशिक) - आसिक देखै रब्बदा, दुक जाकूं आपा देह ।[४]

गुसल, आब -- जान आब सूं गुसल कर ।[५]

दर्वेश, खलक -- रामचरण दर्वेश कावै, खलक न जांणै भेव ।[६]

दिल, माबुल -- जा का दिल माबूल है ।[७]

मुरशिद -- तन की तस्त बजाई मुरशद ।[८]

कान, पीर, मीर, मुरीद, फकीर -- काल फकीरी पीर बतावै । मीर मुरीद समझावै वै ।[९]

अक्ल -- ममता अक्ल अर धरि अरमां ।[१०]

बंदगी, बेअदबी -- छांडि बंदगी करै बेदबी, अपणी ही ममदा भावै ।[११]

बरकत, ईमान -- बरकति है ईमान मैं ईमान तज्यां नहि कोय ।[१२]

आसनाई -- तजि अज्ञान ज्ञान गहि लीजै, आसन करि आसनाई ।[१३]

मगरूर -- मैं मेरी संसार मैं अहूं मांन मगरूर ।[१४]

मोहब्बत(मोहब्बत) - मोहब्बत सूं दुख होय पीड पर की बतावै ।[१५]

कसर -- जिकमैं कुत्य कसर लियां मैं मेरी ममता ।[१६]

---

१- अ०बा०, पृ० ४२ । २- वही, १००६ । ३- वही, पृ० १००५ । ४- वही । ५- वही, पृ० १००५, ६- वही । ७- वही । ८- वही । ९- वही, पृ० ११०६ । १०- वही । ११- वही । १२- वही, पृ० ८१२ । १३- वही, पृ० ७४८ । १४- वही, पृ० ७४४ । १५- वही, पृ० ७१० । १६- वही, पृ० ७०८ ।

ग्रंथ 'विश्राम बोध' के छठें प्रकरण के पृष्ठ ८८७-८८ में विदेशी मूल के शब्दों की भरमार है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ इनके प्रयोग में स्वामी जी की अद्भुत रचना मिली है। 'फकीरी' शीर्षक के अन्तर्गत इस शब्द समाज को संजोया गया है। उदाहरण रूप में कतिपय अंशों को यहां उद्धृत किया जाता है।

"फकीरी फकत या जात में भिन्न है,
मन्न और रीति की फिकर नांही।
ख़ुदा न मैं मस्त शिर पीर का वक्त है,
बसत एकान्त रब ध्यान मांही।"[1]

... ... ...

"सफा सबूरी बंदगी आदिग एक इकतार।
मकर मोम दिल पाक सब तज्यां ताहि विस्तार।
तज्यां ताहि विस्तार नहीं उपजे फिकराई।
फैसल फैल फितूर फकीरां ये फुरमाई।
फरमाई ऐसी नियां कियां कब्ज करार।
रामचरण कीजे सदा सुनत उसे दीदार।"[2]

... ... ...

"माल मुल्क औं तज्यां, ज्यूं सीर किया शिरबेश।"[3]

... ... ...

"कमी की नहिं पार मार मौकोकम फुगनामी।
दीन दरगाह मांहि मियां जी आब न आनी।"[4]

... ... ...

खालक मांही खलक, खलक में खालक जाण्या।[5]

... ... ...

---

१- अ० वा०, पृ० ८८७।
२- वही।
३- वही, पृ० ८८८।
४- वही।
५- वही।

"आशिक इश्क लगाय कै जी प्रसन्न किया मशूक ।
इश्क जिनूंरा जांणिये सब इश्कां सिर खून ।
मन इश्कां सिरखूब मीर मुल्ला कि लगाई ।
काजी राजी होय पीर भी करत बड़ाई ।
कहिं रहीम पाजी इश्क जानि इश्कां मैं डूब ।
आशिक इश्क लगाय कै प्रसन्न किया मशूक ।[१]

... ... ...

"दोजग दरद रैनि बिहस्त को उपाव किये ।
वैदी को निकट राखि कबी हूं मे डर है ।"[२]

उपर्युक्त उद्धरणों में रेखांकित शब्द विदेशी मूल के हैं । इनमें से कतिपय शब्दों का रूप स्वामी जी ने परिवर्तित भी कर दिया है । यथा -- खुवाब (ख्वाब), मोहौकम ( ), दरग्गह (दरगाह), आशिक (आशिक), इश्क (इश्क), फुरमाई (फरमाई), बिहस्त (बहिश्त), दोजग (दोजख), दरद (दर्द), इनके अलावा काफिर, हूर, मोकुर (मोकूफ), ओकूर ( नजूर ), खिलवत, सुरमा तथा अन्य अनेक विदेशी शब्दों से स्वामी जी ने अपनी वाणी का शृंगार तो किया ही है, उन शब्दों का नया संस्कार भी कर दिया है ।

पंजाबी

स्वामी रामचरण की 'वाणी' में पंजाबी के शब्द भी पाये जाते हैं । जैसे --

सिख्यां -- "सतगुरु ज्ञान ध्यान का दाता ।
सिख्या आश नहि है ।"[३]

किरपाल-- "तुम करतार किरपाल तुम तुव तुमही गरीब निवाज ।"[४]

---

१- अ० वा०, पृ० ८८ ।
२- वही ।
३- अ० वा०, पृ० २६७ ।
४- वही, पृ० २४४ ।

पृष्ठ ७७६ पर बिपराइन्दा, बणाइन्दा, जणाइन्दा, गाइन्दा, पाइंदा, नाइन्दा, सराइन्दा आदि शब्द पंजाबी बोली के हैं। पंजाब और राजस्थान की सीमाएं एक दूसरे से मिलती हैं। अतः पंजाबी और राजस्थानी में बहुत अन्तर नहीं दिखाया जा सकता।

खड़ी बोली

संतों ने खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया था। स्वामी जी की रचना में भी खड़ी बोली उपस्थित है। यथा --

"कलियुग के पंडित पाखण्डी।
घर में कुबुधि करकसा रण्डी।
... ... ...
ईश्वर इच्छा रहै उदास।
भिक्षा भोजन परम निवास।"[१]

खड़ी बोली के अनेक शब्दों को स्वामी जी ने अपनाया है। कहीं कहीं पूरी पद संघटना ही खड़ी बोली में मिल जाती है।

ब्रजभाषा का प्रभाव

स्वामी रामचरण की काव्य भाषा पर ब्रज भाषा का भी प्रभाव है --

"जगत अंधेरी बाग है विविध फूलफल रंग।
रामचरण मन भंवर होइ जहां किया परसंग।"[२]

तथा- "रामचरण रामैं जपै कौ संधी भौर।"[३]

खड़ी बोली, पंजाबी और ब्रजभाषा और स्वामी रामचरण की काव्यभाषा राजस्थानी के शब्द-भण्डारों में पर्याप्त समत्व है। वस्तुतः ये सभी हिन्दी भाषा की शाखाएं हैं। इन सभी के व्याकरण भी समान हैं। ऐसी स्थिति में इन सभी

---

१- अ०वा०, पृ० ६८४।
२- वही, पृ० १०।
३- वही।

का राजस्थानी से अलग करके विवेचन करना भाषा विज्ञान का विषय है । यहां तो सामान्य रूप से स्वामी जी की काव्य भाषा का विवेचन किया जा रहा है । हां, विशेष रूप से शब्दों की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है । क्योंकि उन शब्दों का प्रयोग स्वामी जी ने जिस ढंग से किया है वह हमारे अध्ययन की अपेक्षा रखता है ।

मुहावरे और लोकोक्तियां

स्वामी रामचरण की भाषा लोकभाषा है । फिर उसमें लोकोक्तियां और मुहावरों का होना स्वाभाविक है । स्वामी जी ने 'कविता कविता के लिए' नहीं की थी । उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य लोकमंगल था । लोकमंगल की इस भावना के प्रचारार्थ उन्होंने कतिपय सिद्धान्त निश्चित किये थे और रामस्नेही सम्प्रदाय नामक पंथ का निर्माण भी किया था । अपनी कविता में उन्होंने अपनी विचारधारा को रखा और जनमानस को स्पर्श करने में सफल हुए । लोकोक्तियां और मुहावरों के माध्यम से लोकमानस को सरलतापूर्वक भापा जा सकता है और इनकी उपस्थिति से किसी भी काव्य भाषा का सौन्दर्य निखरता है । स्वामी जी का काव्य मुहावरों और लोकोक्तियों का कोष ही है । यहां इनमें से कुछ की चर्चा आवश्यक है ।

१- लौ लागना (लौ लगना)

लौ लागी तब जांणिये निसिदिन छूटै नांहि ।[1]

२- काल के जाल कटना

रामचरण लौ के लग्यां कटी काल की जाल ।[2]

३- मीन नीर सम होना

"पतिव्रता कहैं पति यूं कहै सुण हो अंत सुजांण ।
मीन नीर सम होय रही, बिछड़त तजूं परांण ।"[3]

४- घर घर की पणिहारि

पण पछड़ी हरि भक्ति की सो पण हारी नारि ।[4]
रामचरण का हरि नहीं घर घर की पणिहारि ।

---

१- अ० बा०, पृ० १२ ।
२- वही ।
३- वही, पृ० १५ ।
४- वही, पृ० १६ ।

५- धक्का खाना

रामचरण भिखारिणी धक्का खाय दरबार ।[1]

६- राम का हजूरी

संत हजूरी राम का सबदूं रहै उदास ।[2]

७- नूर फलकना

नूर का वदन पर नूर फलकै सदा ।[3]

८- अंधे की गांठ

परस बिन अंध की गांठ खोटा गरथ अंत की बर दुख अधिक होवै ।[4]

९- आक सींच कर आम पाना

अम्ब का वृक्ष कै अम्ब फल लाग है । आक कूं सींच नहीं अम्ब पावै ।[5]

१०-च्यार दिना की चांदणी

"च्यार दिनां की चांदणी बहु अंधियारी रात ।

... ... ...

बिना च्यार की चांदणी, चेतै नहीं अजान ।[6]

११- फिटफिट होना

जो बैटी का राम लै जग मैं फिट फिट होय ।[7]

१२- गरी गरी भटकना (गली गली भटकना)

गरी गरी मैं भटकता हार्यो हरि गिंवार ।[8]

१३- काम संवारना

अपणूं काम संवार लै कहा आवै परवीर ।[9]

१४- श्वान की पूंछ

श्वान पूंछ कारड़ी रहै स्वारथ ढीली होय ।[10]

---

१- अ०वा०, पृ० ९६ । 
२- वही, पृ० ९९ । 
३- वही, पृ० १९३ । 
४- वही । 
५- वही, पृ० १९४ । 
६- वही, पृ० २२० । 
७- वही, पृ० २२३ । 
८- वही, पृ० २२४ । 
९- वही, पृ० २४० । 
१०-वही, पृ० २६० ।

१५- जोरू तणां गुलाम

जोरू तणां गुलाम जी नर तन जाय निकाम ।[१]

१६- रोयां मिलै न राबड़ी तो रोया कुंण रै राज [२]

१७- ऊंची दुकान फीका पकवान

"ऊंची है दुकान जामें फीके पकवान भरे,
बड़े हैं गिंवार लोग जांणो कुलवाई है ।"[३]

१८- फूटा ढोल

जहां तहां बकता फिरै जैं फूटा ढोल ।[४]

१९- बट्टा लगाना

कैसे कहूं बणाय साच कूं बटो लगावै ।[५]

२०- कांटे से कांटा निकालना

"कांटे कांटो नीसरै बिन कांटे निकसै नांहि ।
कोई पयाली प्रीति कर मन कैसी फूंक बिवाहि ।"[६]

२१- माथा मारना

भटकै भर्मक गरल जहां तहां माथो मारै ।[७]

२२- दो अंधों के बीच दीपक रखना

"दोय आंधा बिच दीपक मेल्ह्यां कुंण लहै पर भावं ।
भोला धर्मा रमा माया ताते तिमिर न जावं ।"[८]

२३- कामी कोढ़ी बलना

"कामी कोढ़ी ना बनै अमपकड़ैली बार ।"[९]

---

१- अ०वा०, पृ० २९७ ।
२- वही, पृ० २९६ ।
३- वही, पृ० १०० ।
४- वही, पृ० २८२ ।
५- वही ।
६- वही ।
७- वही, पृ० २३२ ।
८- वही, पृ० २४९ ।
९- वही, पृ० ३६६ ।

२४- कागज की नाव से सागर तिरना

"बिधि मुगण्ण जल पोत के जाकी किरो बणाव ।
कहाँ सायर कैसे तिरे चढ़ि कागद की नाव ।"[1]

२५- मन मैला तन उजला

"मन मैला तन उजला बैसा ज्ञान अनंत ।
रामचरण मन उजला को एक निरचिंत ।"[2]

ऊपर स्वामी रामचरण के विशाल संग्रह में से थोड़े से मुहावरे छांट कर यहां एकत्र किये गये हैं । सागर सदृश विशाल ग्रंथ में मुहावरों का बृहद् कोष सुरक्षित है । किन्तु सांकेतिक रूप में कुछ मुहावरे यहां उद्धृत किये गये हैं ।

लोकोक्तियाँ

स्वामी जी की काव्य-रचनाओं में से थोड़ी सी लोकोक्तियाँ यहां दी जाती हैं --

१---- बावूर्यं बीज बबूल का उर अंम्बा की आश
      वर्ष धरे हरिभक्ति की करें कुसंगा बास ।[3]
२---- मैलो कपड़ो मैल सूं करै न उज्ज्वल थाय ।[4]
३---- जै वृक्ष उखल्या मूल सूं सींच्या हरा न होय ।[5]
४---- कहा तेल की फुलरी, कहा हरण्ड की बाग ।[6]
५---- नारि कुहावै खसम की, पाड़ौसी सूं मेल ।[7]
६---- वैद्य मित्र रोगी तजै, नहीं निरोग सुहाय ।[8]
७---- काजल तजै न कालम्यां गरल न तजै भुजंग ।[9]
८---- नीर तीर अर बाम पियासां मरत है ।[10]

---

१- अ०वा०, पृ० ३७६ ।
२- वही, पृ० ५८६ ।
३- वही, पृ० २६५ ।
४- वही, पृ० ७ ।
५- वही, पृ० २२४ ।
६- वही, पृ० ४४ ।
७- वही, पृ० ४२ ।
८- वही, पृ० ४२ ।
९- वही, पृ० ४२ ।
१०- वही, पृ० ८० ।

९--- कंवर बांधा सूं बुंधर बुरा, ब्यासै अरु भूनै ।[1]

१०--- बाजीगर को बाग कभी कुंणी फल पायो ।[2]

११--- सांड गलैपड्यां मींगणां कदै न खुरमा होय ।[3]

१२--- कोकाकल की माकरी कदै न पावै चैन ।[4]

१३--- अकल गई आकाश कूं मिकल गई पाताल ।[5]

१४--- गिनखूं ई लै लै भया लै लै लग्न लगाय ।[6]

१५--- दैवानां की दिलबरी आग लगी कंगाल ।[7]

१६--- सागर आवै गागरी गागरि जावै नांहि ।[8]

१७--- मोती नाहीं समंद का स्वाति बूंद का होय ।[9]

१८--- भूखा मांगै राबड़ी धायो बकै ज्ञान ।[10]

१९--- आंबा के फल आंब कूल के बूंल्या लागै ।[11]

२०--- आंबा गाय बबूल जमावै तो आंबा उवैं न होय ।[12]

२१--- जो आंसू पूंछै नहीं जासूं किसी पुकार ।[13]

२२--- कोयल कागा उड़ि गया बुगला बैठा आय ।[14]

२३--- सूरां की तरवार की कोइ सूरा हि करै बखांण ।[15]

२४--- घोड़ा पर असवार होइ, गधा चराबा जाय ।[16]

२५--- दूध मलंगा पाइये तो पलट जहर करि लेह ।[17]

स्वामी जी के काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का विपुल भण्डार है । उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस भण्डार में से चुनकर कतिपय लोकोक्तियों एवं मुहावरों को उपयुक्त किया गया है । 'अणभैवाणी' में उपलब्ध लोकोक्तियों और मुहावरों का अलग से अध्ययन किया जा सकता है ।

---

१-अ०भ०वा०, पृ० ७४ ।
२- वही, पृ० ११५ ।
३- वही, पृ० १३६ ।
४- वही, पृ० १५१ ।
५- वही, पृ० ३५४ ।
६- वही, पृ० ४५८ ।
७-वही, पृ० ५५४ ।
८-वही, पृ० ५८६ ।
९-वही, पृ० ५९५ ।
१०-वही, पृ० ६०० ।
११-वही, पृ० ६०९ ।
१२-वही, पृ० ६३५ ।
१३-वही, पृ० ७४६ ।
१४-वही, पृ० ७५८ ।
१५-वही, पृ० ८११ ।
१६-वही, पृ० ८२८ ।
१७-वही, पृ० ८७८ ।

लोकोक्तियाँ एवं मुहावरों के अतिरिक्त स्वामी जी की भाषा में कवि समय के संकेतक शब्दों की भी बहुतायत है । अनल पक्ष, चातक, चकोर, मोर, हंस आदि विभिन्न पक्षियों से संबद्ध कवि सत्यों के सहारे कवि अपनी बात जन-समाज तक ले जाने में पूर्ण सक्षम रहा है । स्वामी जी के काव्य का कलापक्ष सर्वांग पूर्ण है ।

यद्यपि स्वामी रामचरण ने किसी प्रबन्ध महाकाव्य की रचना नहीं की फिर भी उनका यह विशाल काव्य भण्डार महाकाव्य से किसी भी प्रकार कम नहीं । उन्होंने यद्यपि काव्य-रचना के लिए मुक्तक एवं गीति-काव्य की शैली अपनायी है, फिर भी उनका सम्पूर्ण साहित्य उन्हें महाकवि कहने को बाध्य करता है । उनके काव्य में तत्कालीन समाज का जीवन मुखर है । संत कवि विचारक होने के साथ-साथ भावावेशी भी होते हैं, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िगत परंपराओं पर क्षुब्ध होकर जब प्रहार करते हैं तो अनजाने ही सही काव्यदोषों से भी मुक्त नहीं रह पाते । स्वामी रामचरण के काव्य में भी इस आवेश के कारण कहीं-कहीं अश्लीलत्व का दोष झाँकने लगा है, जिसकी समीक्षा मैंने अति यथार्थ कह कर की है । काव्यत्व की दृष्टि से भले ही उसे दोष कह लिया जाय किन्तु समाज के प्राणियों की दृष्टि पर पड़े आवरण को हटाने के लिए जिस स्पष्टवादिता की अपेक्षा समाज के किसी भी अगुवा से की जाती है, स्वामी जी के काव्य का यह दोष उसी अगुवाई का प्रतीक बनकर आया है । इस दृष्टिकोण से उसे हम गुण ही समझेंगे ।

काव्यत्व की दृष्टि से अन्य सभी प्रकार की पूर्णता 'अणभैवाणी' में पायी जाती है । भावपक्ष और कलापक्ष दोनों के निरूपण में यह बात भली प्रकार स्पष्ट हो गयी है । स्वामी रामचरण का काव्य हिन्दी संत-साहित्य का शृंगार है ।

--0--

# उपसंहार

# उपसंहार

स्वामी रामचरण युगपुरुष थे। उनका आविर्भाव अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। वह समय उथल-पुथल का था। राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर देश और विशेषकर राजस्थान प्रदेश की दशा पर्याप्त चिन्त्य थी। दिल्ली के तख्त पर कठपुतली एवं दुर्बल मुगल बादशाह विराजते थे। स्वामी जी के आविर्भाव काल में फर्रुखसियर का वध भी हुआ था, और मुहम्मदशाह ने शासन की बागडोर सम्भाल रखी थी। राजस्थान के कमजोर राजपूत शासक मराठों के आक्रमणों के शिकार बने राजा-महाराजा कहलाने का शौक पूरा कर रहे थे। जयपुर, जोधपुर और उदयपुर जैसे प्रसिद्ध राज्य मराठों द्वारा अनेक बार रौंदे जा रहे थे। स्वामी रामचरण ने जिस समय भीलवाड़ा छोड़ शाहपुरा प्रस्थान किया था, मराठों ने आक्रमणकर भीलवाड़ा को बुरी तरह लूटा और बर्बाद कर दिया था। स्वामी जी के जीवनीकार ने अपने जीवनी ग्रंथ 'गुरुलीलाविलास' में इस आक्रमण की चर्चा की है। इस आक्रमण के परिणामस्वरूप समस्त भीलवाड़ा वीरान हो गया था और नरनारी बाराबाट हो गये थे। स्मरणीय है कि भीलवाड़ा उदयपुर के महाराणा के अधीन नगर था।

देश की धार्मिक स्थिति में भी गिरावट आ गयी थी। मुस्लिम आक्रमण एवं बर्बरता का शिकार हुई जनता प्रभु-स्मरण के सहारे जीने का प्रयास कर रही थी। अठारहवीं शताब्दी आते-आते धार्मिक आडम्बरों की चरम सीमा भी आ पहुंची। राजस्थान, स्वामी रामचरण की जन्म तथा कर्मभूमि, स्वयं धार्मिक असंतुलन की चपेट में था। निर्गुण-सगुण विवाद, नागा साधुओं की फौज का अनाचार, जैन यतियों की प्रबलता, विभिन्न छोटे-मोटे सम्प्रदायों की आपसी नोक-झोंक से समाज-जीवन त्रस्त था। जयपुर की समीपवर्तिनी गलता गद्दी प्रसिद्ध वैष्णव गद्दी थी। स्वामी रामचरण की गुरुगद्दी दांतड़ा के महंत भी इसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। एक बार सम्पूर्ण राजस्थान वैष्णव-भक्ति-भावना से भर उठा था किन्तु कालान्तर में इस

की भावना का स्थान धार्मिक रूढ़ियों एवं पाखण्डों ने ले लिया । स्वामी रामचरण स्वयं कृपाराम जी से दीक्षित हुए थे पर बाद में पंथ में 'खड़-भड़' देख सगुणोपासना से विरत हो गये और भीलवाड़ा में आकर निर्गुणोपासना का प्रचार आरंभ किया । तभी उन्होंने 'रामधर्म' की संज्ञा दी और संगठन को 'रामस्नेही सम्प्रदाय' कहा ।

अब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि अनेक सगुण-निर्गुण पंथों के होते हुए स्वामी जी ने नये पंथ की स्थापना क्यों की । वस्तुतः स्वामी रामचरण साधु वेश धारण करने से पहले जयपुर के राज्य के उच्च पदस्थ अधिकारी थे । उन्होंने विरागी होने के बाद विभिन्न पंथों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं पाखण्डों को देखा । अपने विभिन्न ग्रंथों में उन्होंने साधु-समाज की कुत्सताओं के चित्र प्रस्तुत किये हैं । उन्होंने सच्चे साधु के लक्षण निर्धारित किये और रामस्नेही साधुओं में उन लक्षणों को साकार देखना चाहा ।

गृहस्थों को भी स्वामी जी ने पंथ में महत्व दिया । उन्होंने धर्माचारियों को संयम (ब्रह्मचर्य) पालन करने के लिए प्रेरित किया । अनेक गृहस्थ दीक्षित होकर पवित्राचरण में रत हुए । स्वामी जी ने पंथ की व्यवस्था का भार भी गृहस्थ रामस्नेहियों को सौंपा था और साधुओं को भजनरत रहने का केवल निर्देश दिया था, बारह थम्भे के साधुओं में ग्यारह साधु और एक श्री नवलराम जी गृहस्थ थे । साधु-गृहस्थ समन्वय के कारण ही रामस्नेही सम्प्रदाय आज भी व्यवस्थित रूप से संगठित है ।

स्वामी रामचरण का तत्कालीन जनजीवन पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़ियों पर प्रहार किया और समाज को उनसे विरत होने की प्रेरणा दी । फलतः समाज के रूढ़िवादियों से उन्हें संघर्ष भी करना पड़ा था । एक बार तो उन्हें महाराणा के आदेश से भीलवाड़ा नगर से निकलना भी पड़ा था । किन्तु उनके जागरूक अनुयायियों ने संगठित होकर महाराणा के समक्ष अपना पक्ष रखा और उन्हें इसमें विजय भी मिली । शाहपुरा आगमन के बाद उन्हें अपने मत एवं पंथ के प्रचार-प्रसार की पूर्ण सुविधा रही ।

स्वामी जी समन्वयशील मध्यमार्गी संत थे। निर्गुणिया होने के साथ भी सगुण संप्रदायों से उनका मेल-मिलाप बना रहा। वे स्वयं को दाँतड़ा से बराबर जोड़े रहे। स्वामी कृपाराम के देहावसान के बाद दाँतड़ा गद्दी के उत्तराधिकारी को स्थापित करने में स्वामी जी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। आज भी शाहपुरा के पीठाधीश दाँतड़ा के आचार्य का वैसा ही सम्मान करते हैं जैसा स्वामी रामचरण करते थे।

स्वामी रामचरण साधक-संत थे। उन्होंने भीलवाड़ा को अपनी साधनास्थली बनायी थी और अनेक वर्षों साधनारत रहे थे। उनकी अणभैवाणी, जिसकी रचना भीलवाड़ा में ही हुई थी, उनकी साधनानुभूतियों से पूर्ण है। 'नाम प्रताप' और 'शब्द प्रताप' नामक ग्रंथों तथा परचा अंगों में सुरति-शब्दयोग की बड़ी स्पष्ट कल्पना मिलती है। भजन-प्रताप की चारों सीढ़ियों का बड़ा स्पष्ट विवेचन उन्होंने किया है।

स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य उनकी व्यक्तिगत साधना की अनुभूतियों से ओतप्रोत तो है ही, समाज-जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का भी परिचायक है। उन्होंने एक ओर अध्यात्म के ऊँचे शिखर का स्पर्श किया है तो दूसरी ओर समाज-जीवन के धरातल पर इतना अधिक चले कि आज भी उनके उदार चरणों के अनेक निशान पश्चिमी भारत (राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश) की धरती पर दृष्टिगोचर होते हैं। उनका साहित्य हिन्दी संत-साहित्य की अमूल्य निधि है।

- इति -

## सहायक ग्रंथ सूची

एवम्

## पत्र-पत्रिकाएं

## सहायक ग्रंथों की सूची


१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि० ।

२- आधुनिक हिन्दी साहित्य, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती, इलाहाबाद ।

३- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५२ ।

४- उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पं० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, सं० २००८

५- उपदेशामृत (सुधा पुष्प), स्वामी दर्शनराम जी, अरिशाना, सूरत, गुजरात ।

६- कबीर, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९७१ ।

७- कबीर साहित्य की परख, पं० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, सन् १९७२

८- कबीर ग्रंथावली, डा० भागवतस्वरूप मिश्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९७३

९- कबीर ग्रंथावली, पुष्पपाल सिंह, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६९ ।

१०- कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९७२

११- कबीर की विचारधारा, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, सं० २००९ ।

१२- काव्यदर्पण, पं० रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, बांकीपुर, सन् १९५१ ।

१३- काव्यप्रदीप, पं० रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, सन् १९४८ ।

१४- काव्यशास्त्र, डा० शम्भुनाथ पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सन् १९५८ ।

१५- गुरलीलाविलासकी आम्नाय, हस्तलिखित प्रति ।

१६- चिन्तामणि, भाग पं० रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, प्रयाग, सं० २०२७ वि० ।

१७- छन्द प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', जगन्नाथप्रेस, बिलासपुर, सन् १९३९ ।

१८- तुलसीदास, डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय,

१९- नाथ सम्प्रदाय, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, सन् १९६६ ।

२०- नवधा भक्ति, श्री जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

२१- निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डा० मोती सिंह, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१९ ।

२२- प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश, श्री रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, सं० २००७ वि०

२३- फूलडोल ग्रंथ, श्री जगन्नाथ, हस्तलिखित प्रति ।

२४- ब्रह्मसमाधि के जोग, श्री जगन्नाथ, (अणभैवाणी के अन्तर्गत) ।

२५- भारतीय अनुशीलन ग्रंथ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

२६- भारत का धार्मिक इतिहास, पं० शिवशंकर मिश्र ।

२७- वीर विनोद भाग १,२ ; कविराज श्यामलदास ।

२८- रामसनेही धर्मदर्पण, साधु मनोहरदास जी ।

२९- रामचरण नतावली, सं० प्र० पं० मानकराम, दिल्ली ।

३०- राजस्थान का इतिहास, कर्नल जेम्स टाड, हिन्दी संस्करण, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय इलाहाबाद, सन् १९६५ ।

३१- राजपूताने का इतिहास, डा० जगदीश सिंह गहलोत ।

३२- राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पं० मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९५१ ।

३३- रामपद्धति, स्वामी रामजन जी (अणभैवाणी के अन्तर्गत) ।

३४- रहस्यवाद, श्री राममूर्ति त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६६ ।

३५- संत कबीर, डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, सन् १९६६ ।

३६- संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सं० २००० ।

३७- संत साहित्य, डा० प्रेमनारायण शुक्ल, ग्रंथम, कानपुर, सन् १९६५ ।

३८- संत साहित्य और साधना, भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् १९६९ ।

३९- संतकाव्य, पं० परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५२ ।

४०- सिद्ध साहित्य, डा० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९६८ ।

४१- संत कवि दादू और उनका पंथ, डा० वासुदेव शर्मा, शोधप्रबंध प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् १९६९ ।

४२- सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली १९७० ।

४३- स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, डा० अमरचन्द वर्मा, प्र० जरीवाला, सूरत, गुज०

४४- स्वामी रामचरण जी की अणभैवाणी, स्वामी कायूयराम जी, रामनिवासधाम शाहपुरा, सन् १९२५

४५- स्वामी रामचरण जी की परची, हस्तलिखित प्रति ।

४६- सूरदास, डा० ब्रजेश्वर, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५० ।

४७- संतकाव्य में परोक्षसत्ता का स्वरूप, डा० बाबूराम जोशी, कैलाश पुस्तक भवन, ग्वालियर सन् १९६८ ।

४८- हिन्दुत्व, रामदास गौड़, ज्ञानमण्डल, वाराणसी ।

४९- हिन्दुई साहित्य का इतिहास, गार्सां द तासी । अनु० डा०लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ।
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५३ ।

५०- हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, आचार्य चतुरसेन ।

५१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा,

५२- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, सं० पं० परशुराम चतुर्वेदी,
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१५

५३- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, अनु०पं० परशुराम
चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, १९४८ ।

५४- हिन्दी साहित्य [द्वितीय खण्ड], सं० डा०धीरेन्द्र वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद्
प्रयाग, सन् १९५९ ई० ।

५५- श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पं० केवलराम जी तथा अन्य, आयुर्वेद सेवा निकेतन, ट्रस्ट
बीकानेर, राजस्थान ।

५६- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरीप्रचारिणी
सभा, सं० २००५ ।

५७- हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, डा० ओमप्रकाश, भारतीय साहित्य मंदिर,
दिल्ली, सन् १९५७ ।

५८- हिन्दी मुहावरा कोश, डा० भोलानाथ तिवारी, इलाहाबाद, सन् १९६४ ।

अंग्रेजी

१- श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल, वाल्यूम -२ ।
२- कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, एडिटेड : हरिदास भट्टाचार्य ।
३- ए हिस्ट्री आफ हिन्दू सिविलिजेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल, वाल्यूम-१, प्रमथनाथ बोस ।
४- ए हिस्ट्री आफ हिन्दू लिटरेचर, एफ०ई० के ।
५- कबीर एण्ड हिज फालोअर्स, ,, ,, ।
६- मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड सेन्ट्स आफ इंडिया, जान कैम्पबेल ओमन ।
७- इंडिया सोसाइटी इन द एटींथ सेंचुरी, बी०पी०एस०रघुवंशी, एसोशियेटेड पब्लिशिंग
हाउस, न्यू डेलही ।

पत्र-पत्रिकायें

१- जर्नल आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बेंगाल, फेब्रुअरी, १८३५ ।
२- कल्याण संत-अंक गीताप्रेस, गोरखपुर ।
३- प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का चौदहवां त्रैवार्षिक विवरण [सन् १९२९-३१]
--डा०पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, ना०प्र०स० काशी
४- प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, [१९३८-४०], नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।